शोध दिशा

ISSN 0975-735X

विश्वस्तरीय शोध-पत्रिका : केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा से अनुदान प्राप्त
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा मान्यता प्राप्त पत्रिका

शोध अंक 40 मार्च 2018 200.00 रुपए

संपादकीय कार्यालय
हिंदी साहित्य निकेतन, 16 साहित्य विहार,
बिजनौर 246701 (उ॰प्र॰)
फोन : 01342-263232, 07838090732
ई-मेल : shodhdisha@gmail.com
वैब साइट : www.hindisahityaniketan.com

क्षेत्रीय कार्यालय

हरियाणा
डॉ॰ मीना अग्रवाल
बी-203, पार्क व्यू सिटी-2 सोहना रोड,
गुड़गाँव (हरियाणा)
फोन : 0124-4076565, 07838090237

दिल्ली एन॰सी॰आर॰
डॉ॰ अनुभूति
सी-106, शिव कला
बी 9/11, सैक्टर 62, नोएडा
फोन : 09560554612

(सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।)

संपादक
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल

प्रबंध संपादक
डॉ॰ मीना अग्रवाल

संयुक्त संपादक
डॉ॰ शंकर क्षेम

उपसंपादक
डॉ॰ रश्मि त्रिवेदी

कला संपादक
गीतिका गोयल/ डॉ॰ अनुभूति

उपसंपादक
डॉ॰ अशोककुमार 09557746346

विधि परामर्शदाता
अनिलकुमार जैन, एडवोकेट

आर्थिक परामर्शदाता
ज्योतिकुमार अग्रवाल, सी॰ए॰

शुल्क
आजीवन : व्यक्तिगत : पाँच हजार रुपए
संस्थागत : छह हजार रुपए
वार्षिक शुल्क : छह सौ रुपए
यह प्रति : दो सौ रुपए

प्रकाशित सामग्री से संपादकीय सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका से संबंधित सभी विवाद केवल बिजनौर स्थित न्यायालय के अधीन होंगे। शुल्क की राशि 'शोध दिशा' बिजनौर के नाम भेजें। (सन् 1989 से प्रकाशन-क्षेत्र में सक्रिय)

स्वत्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल द्वारा श्री लक्ष्मी ऑफसैट प्रिंटर्स, बिजनौर 246701 से मुद्रित एवं 16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ॰प्र॰) से प्रकाशित। पंजीयन संख्या : UP HIN 2008/25034

संपादक : डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल

परामर्श-मंडल

डॉ॰ सुधा ओम ढींगरा, 101, Guymon Court, MorrisVille, NC-27560 USA
डॉ॰ सुरेशचंद्र शुक्ल, अध्यक्ष इंडो-नार्वेजियन सूचना एवं सांस्कृतिक मंच
प्रो॰ हरिशंकर आदेश, भारतीय प्राच्य विद्या संस्थान, कनाडा
डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका, ए-98, अशोक विहार फ़ेज-1, दिल्ली 110052
डॉ॰ आर॰पी॰ सिंह, पूर्व कुलपति, मेरठ विश्वविद्यालय एवं पूर्व प्राचार्य बरेली कॉलेज, बरेली (उ॰प्र॰)
प्रो॰ अशोक चक्रधर, जे-116, सरिता विहार, नई दिल्ली
प्रो॰ नंदकिशोर पांडेय, निदेशक केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा (उ॰प्र॰)
प्रो॰ आदित्य प्रचंडिया, हिंदी विभाग, दयालबाग एजुकेशनल इंस्टीट्यूट, दयालबाग, आगरा (उ॰प्र॰)
प्रो॰ हरिमोहन, कुलपति, जे॰एस॰विश्वविद्यालय, शिकोहाबाद (फिरोशाबाद) उ॰प्र॰
प्रो॰ बाबूराम, पूर्व अध्यक्ष, हिंदी-विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय कुरुक्षेत्र (हरियाणा)
डॉ॰ राजेंद्र मिश्र, 14/4 स्नेहलता गंज, इंदौर 452003 (म॰प्र॰)
प्रो॰ रामसजन पांडेय, हिंदी विभाग, इंदिरा गांधी विश्वविद्यालय, मीरपुर, रेवाड़ी (हरियाणा)
प्रो॰ हरिमोहन बुधौलिया, पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष हिंदी अध्ययन शाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन
डॉ॰ दामोदर खड़से, पूर्व कार्याध्यक्ष, महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी, मुंबई (महा॰)
प्रो॰ शंकर बुंदेले, प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी-विभाग, संत गाडगे बाबा अमरावती विश्वविद्यालय, अमरावती
प्रो॰ आनंदप्रकाश त्रिपाठी, अध्यक्ष हिंदी अध्ययन मंडल, डॉ॰ हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर
प्रो॰ अर्जुन चव्हाण, प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर (महा॰)
डॉ॰ माया टाक, पूर्व प्रोफ़ेसर संगीत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज॰)
प्रो॰ अनिलकुमार जैन, पूर्व प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज॰)
प्रो॰ शंभुनाथ तिवारी, हिंदी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़
डॉ॰ अवनिजेश अवस्थी, हिंदी विभाग, पी॰जी॰ डी॰ए॰वी॰ कालेज, नेहरू नगर, नई दिल्ली
प्रो॰ हनुमानप्रसाद शुक्ल, हिंदी विभाग, महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
प्रो॰ चंद्रकांत मिसाल, प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग, एस॰एन॰डी॰टी॰ महिला विद्यापीठ, पुणे (महा॰)
डॉ॰ मुकेश गर्ग, पूर्व एसोसिएट प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
प्रो॰ जितेंद्र वत्स, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया (बिहार)
डॉ॰ माला मिश्रा, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, अदिति कालेज (दिल्ली विश्व॰), बवाना
प्रो॰ श्यामधर तिवारी, हिंदी विभाग, संघटक महाविद्यालय पौड़ी, गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर
डॉ॰ दिनेशकुमार चौबे, हिंदी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग (मेघालय)
डॉ॰ शहाबुद्दीन शेख़, प्राचार्य, लोकसेवा कला व विज्ञान महा॰, औरंगाबाद (महा॰)
डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण', (पूर्व प्राचार्य) 74/3 नया नेहरूनगर, रुड़की (उत्तराखंड)
डॉ॰ महेशचंद्र, पूर्व एसोसिएट प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, मेरठ कॉलेज, मेरठ (उ॰प्र॰)
श्री राकेशकुमार दुबे, पत्रकारिता और जनसंचार विभाग, उड़ीसा केंद्रीय विश्वविद्यालय, कोरापुट (उड़ीसा)
डॉ॰ महेश दिवाकर, अध्यक्ष, अंतर्राष्ट्रीय हिंदी साहित्य एवं कला मंच, मुरादाबाद (उ॰प्र॰)
डॉ॰ अरुणकुमार भगत, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, नोएडा (उ॰प्र॰)
डॉ॰ एम॰एस॰ विमल, असिस्टेंट प्रोफेसर अँग्रेजी, शासकीय पी॰जी॰ महा॰, निवाड़ी, टीकमगढ़ (म॰प्र॰)

आजीवन सदस्य

उत्तर प्रदेश/ उत्तराखंड

डॉ॰ रामानंद शर्मा
पूर्व अध्यक्ष हिंदी विभाग, हिंदू (पी॰जी॰) कालेज
9, जिगर कालोनी, मुरादाबाद (उ॰प्र॰)

डॉ॰ मधुलिका तिवारी
रीडर एवं अध्यक्ष, इतिहास विभाग,
एल॰आर॰ पी॰जी॰ कॉलिज, साहिबाबाद
गाजियाबाद (उ॰प्र॰)

श्री हरिराम 'पथिक'
स्नेहगंगा, विष्णुधाम कालोनी,
गली नं॰ 3, न्यू माधोनगर, सहारनपुर (उ॰प्र॰)

डॉ॰ वंदना सेमल्टे
टी॰एफ॰ 7, प्रेरणा अपार्टमेंट्स,
गांधीनगर, गाजियाबाद 201001

डॉ॰ मनमोहन शुक्ल
147, मायापुरी, आवास योजना
झूँसी, इलाहाबाद 211019

श्री अरुणकुमार भगत
माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता
एवं संचार विश्वविद्यालय, नोएडा परिसर
'माध्यम' सी-56, ए/5, सेक्टर-62
नोएडा 201301 (उ॰प्र॰)

डॉ॰ विपिनकुमार गिरि
पुराना माधवनगर, भारद्वाज गली
सहारनपुर (उ॰प्र॰)

प्राचार्या
आर॰बी॰डी॰ महिला महाविद्यालय
बिजनौर (उ॰प्र॰) 246701

डॉ॰ सुधारानी सिंह
सी-54, सेक्टर-3, सुशांत सिटी
दिल्ली बाईपास, मेरठ (उ॰प्र॰)

डॉ॰ प्रेमव्रत तिवारी
सरस्वती सदन, बेतियाहाता, गोरखपुर (उ॰प्र॰)

डॉ॰ पूनम भारद्वाज
17 प्रेम विहार, मुजफ़्फ़रनगर 251001
09997100697

श्रीमती अल्पना
द्वारा श्री अरुण कपूर, III एच 288 नेहरूनगर
पवन सिनेमा के पीछे, राकेश मार्ग
गाजियाबाद 201001

डॉ॰ वंदना श्रीवास्तव
के 83 सी आशियाना, लखनऊ 226012
09415917170

प्रो॰ धर्मेंद्रकुमार द्विवेदी
असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत
राजकीय महाविद्यालय
पुँवारका, सहारनपुर (उ॰प्र॰)

डॉ॰ महेंद्रपाल सिंह
सहायक प्रोफेसर, हिंदी
सेठ पी॰सी॰ बागला पी॰जी॰ कॉलेज, हाथरस

श्री रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'
सी 1702, जे एम अरोमा
सेक्टर 75, नोएडा (उ॰प्र॰) 201301
मो॰ 09313727493

डॉ॰ अर्चना वालिया
286, जौनपुर दक्षिण, स्नेहकुंज कालोनी
कोटद्वार (गढ़वाल) उत्तराखंड 246149

डॉ॰ सुचित्रा मलिक
37 गांधी आश्रम, विष्णु गार्डन
कनखल (हरिद्वार) उत्तराखंड

डॉ॰ श्रीकांत अवस्थी
राजीव गांधी विद्यालय
कोटा बाग, नैनीताल (उत्तराखंड)

सुरेंद्रकुमार जैन
हिंदी विभाग
स॰ भगतसिंह राजकीय स्नातकोत्तर महा॰
रुद्रपुर (नैनीताल)

मध्य प्रदेश

डॉ॰ राजेंद्र मिश्र
14/4 स्नेहलता गंज, इंदौर 452003 (म॰प्र॰)

डॉ॰ स्मृति शुक्ला
ए-16 पंचशील नगर, नर्मदा रोड, जबलपुर (म॰प्र॰)

डॉ॰ सुरेंद्र यादव
102 नवदीप अपार्टमेंट, 7 शंकर नगर (साकेत)
इंदौर 452018 मो॰ 09009566220

डॉ॰ ज्योतिसिंह
213 अनूपनगर
सी॰एच॰एल॰ अपोलो हास्पिटल के सामने
ए॰बी॰ रोड, इंदौर 452008 (म॰प्र॰)
09926300355

डॉ॰ चंदा तलेरा जैन
जी-17, रेडियो कालोनी, इंदौर (म॰प्र॰) 452001
09425944773

डॉ॰ वंदना अग्निहोत्री
194 सुखदेव नगर, एरोड्रम रोड,
इंदौर (म॰प्र॰) 452001, मो॰ 09926477787

डॉ॰ पुष्पा शाक्य
110, सुंदरनगर मेन, सुकलिया, इंदौर (म॰प्र॰)
09827281203

डॉ॰ चंद्रकिरण अग्निहोत्री
108, रेडियो कालोनी, इंदौर (म॰प्र॰) 452001

प्रो॰ प्रहलाद तिवारी
111, वी॰आई॰पी॰, परस्पर नगर, स्कीम नं॰ 97
पार्ट 4, स्लाइस 4,
इंदौर (म॰प्र॰) 452012
मो॰ 09406631688

डॉ॰ पंकज विरमाल
अध्यक्ष हिंदी विभाग, इंदौर क्रिश्चियन कालेज
इंदौर (म॰प्र॰) 452001

प्राचार्य, शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई
कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय
किला भवन, इंदौर (म॰प्र॰)

डॉ॰ निशा तिवारी
650 नैपियर टाउन, भँवरताल वाटर टैंक के पीछे
जबलपुर 482001 (म॰प्र॰) मो॰ 09425386234

डॉ॰ नीना उपाध्याय
प्रो॰ हिंदी विभाग
868, इंदिरा गांधी वार्ड, अंजनी बिल्डर्स के पास
गढ़ा, जबलपुर (म॰प्र॰) 482003
मो॰ 09424305641

प्रो॰ हरिमोहन बुधौलिया
6 दीप्ति विहार, इंदौर रोड
उज्जैन (म॰प्र॰) 456010
मो॰ 9826214024

डॉ॰ श्रीकांता अवस्थी
1189 गली नं॰ 17 जे॰डी॰ए॰गार्डन
शांतिनगर दमोहनाका
जबलपुर (म॰प्र॰) 482002
मो॰ 9300598160

पंजाब/ हरियाणा

श्री हेमांशु शर्मा
हिंदी विभाग, साईंदास ए॰एस॰सी॰ सी॰से॰ स्कूल
पटेल चौक, जालंधर शहर (पंजाब)

प्राचार्या
कमला नेहरू कालेज फॉर वुमैन
फगवाड़ा (कपूरथला) पंजाब

प्राचार्या
कन्या महाविद्यालय
विद्यालय मार्ग, जालंधर (पंजाब) 144004

डॉ॰ विद्या चौधरी
मिर्जापुर फार्म, कुरुक्षेत्र (हरियाणा) 136119

डॉ॰ विजय इंदु
1608 हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी
सेक्टर 10 ए, गुड़गाँव (हरियाणा) 122001

डॉ॰ कविता यादव
पुत्राीी श्री सुनिलकुमार,
ग्राम व पोस्ट पालावास
जिला रेवाड़ी (हरियाणा) 123035

डॉ॰ राजाराम अग्रवाल
ग्राम व पोस्ट शेखपुर दरौली
जिला फतेहाबाद (हरि॰) 125053
मो॰ 09896789100

डॉ॰ पुष्पा अंतिल
203, टॉवर-9, फ्रेस्को
निर्वाणा, सेक्टर 50, गुड़गाँव (हरि॰) 122018
मो॰ 096547444800

प्राचार्य
राजकीय महाविद्यालय, सिधरावली (गुड़गाँव)

प्राचार्य
द्रोणाचार्य राजकीय महाविद्यालय, न्यू रेलवे रोड, गुड़गाँव (हरियाणा)

प्राचार्य
राजकीय महाविद्यालय, सेक्टर 14
गुड़गाँव (हरियाणा)

प्राचार्य
हरद्वारीलाल राजकीय महाविद्यालय,
तावड़ू (मेवात)

डॉ॰ ऋषिपाल
ऐसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
हिंदी-विभाग, बाबू अनंतराम जनता महाविद्यालय,
कौल, कैथल (हरियाणा)

प्राचार्य
बाबू अनंतराम जनता महाविद्यालय,
कौल, कैथल (हरियाणा)

महाराष्ट्र

डॉ॰ मेहमूद रसूल पटेल
दारुल अमन, काशीनगर,
जालना रोड, बीड़ (महा॰)

डॉ॰ शहाबुद्दीन नियाश मुहम्मद शेख़
(प्राचार्य, लोकसेवा कला व विज्ञान महा॰औरंगाबाद)
अध्यक्ष, राष्ट्रीय हिंदी सेवी महासंघ
78/484 सिविल हडको
अहमदनगर 414003, मो॰ 09850119687

प्रो॰ शेख़ मुहम्मद शाकिर शेख़ बशीर
अध्यक्ष हिंदी विभाग
पूना कालेज ऑफ़ आर्ट्स, कामर्स एंड साइंस
कैंप, पुणे 411201 (महा॰)
मो॰ 09423017017

प्रा॰ डॉ॰ अभयकुमार रमेश खैरनार
मु॰पो॰ जुनवणे, तह॰ जि॰ धुले (महाराष्ट्र)

प्रा॰ अनंत नानाजी केदारे
5 पार्वती अपार्टमेंट, अयोध्या कॉलोनी
दातेनगर, गंगापुर रोड, नासिक 422005 (महा॰)

डॉ॰ मंजूर चाँदभाई सय्यद
'गुलसिता' 223 औदुंबरनगर, अमृतधाम
पंचवटी, नासिक 422004 (महा॰)
मो॰ 09822991516

डॉ॰ शोभा साहेबराव राणे
17 स्वर समृद्धि अपार्टमेंट,
नंदनवन लॉन के सामने
आशाराम बापू आश्रम मार्ग, सावरकर नगर,
गंगापुर रोड, नासिक (महा॰) 422013

डॉ॰ लियाक़त मियाँ भाई शेख़
अखिलेश नगर, प्लाट क्र॰ 11
नए बस स्टैंड के पास,
गंगापुर, (औरंगाबाद) महा॰ 09423933402

डॉ॰ संजय विक्रम ढोढरे
7, मोतीरामनगर, वाडीभोकर रोड,
देवपुर, धुले 424002 (महाराष्ट्र)

डॉ॰ अशोक द्रौपद गायकवाड़
'कृतज्ञता', अवधूत पार्क, आरोह निसर्ग के पास
कादंबरी नगर क्रमांक 1 के पास
पाइप लाइन रोड, सावेडी
अहमदनगर (महा॰) 414003
09822941330

प्रा॰ दत्तात्रय माधवराव टिलेकर
द्वारा संतोष मेडिकल, साई प्रेस्टिज, फ्लैट नं॰ 13
पाटील अली, ओतूर
तह॰ जुन्नर, शिला पुणे (महा॰) 412409
09860229544

डॉ॰ अश्विनीकुमार 'विष्णु'
अध्यक्ष अँग्रेजी विभाग
सीताबाई आर्ट्स कालेज, अकोला (महा॰)

डॉ॰ मजीद मुनीर शेख़
ग्राम व पो॰ साष्ट, पिंपल गाँव,
(वाया अंकुशनगर) तह॰ अंबड
शिला जालना (महा॰) 431212
मो॰ 09765944586

डॉ॰ भरत त्र्यंबक शेणकर
द्वारा होटल जय महाराष्ट्र
ग्राम, पो॰ व तह॰ अकोले
शिला अहमदनगर (महा॰) 422601
09423164521

डॉ॰ पोपट विट्‌ठल कोटमे
फ्लैट नं॰ 5, सत्यसंगम
कोआपरेटिव हाउसिंग सोसायटी
श्री जयनगर, इंदिरानगर, नासिक (महा॰) 422006
मो॰ 09850760866

डॉ॰ एस॰एन॰ देवरे
प्लाट नं॰ 17, सिद्धिविनायक कॉलोनी
देवपुर, धुले (महा॰) 424002

डॉ॰ श्रीमती विजयालक्ष्मी नारायण रामटेके
सुशीला सोसायटी, प्लाट क्र॰ 5
अजय जिम के पीछे, तेलरांधे के सामने
जरी पटका रिंगरोड, जरी पटका पोस्ट ऑफ़िस
नागपुर 440014 (महा॰)

सुश्री शारदा बी॰ जावरे
ओमकार, समृद्धि डेपलपर, फ्लेट क्र॰ 402
प्लाट नं॰ 26, सर्व क्र॰ 137/1 ए,
बराटे स्कूल के पास, वारजे, मालवाडी,
पुणे 411058 (महाराष्ट्र)
मो॰ 08805616654

प्रा॰ (श्रीमती) ऐनूर अजीजभाई इनामदार
स्वामी समर्थनगर, राजूरी रोड, कोल्हार 413710
तहसील राहाता, जिला अहमदनगर (महा॰)
मो॰ 09011449636

सुश्री कामिनी अशोक न्यायाधीश
661 अरुणोदय कालोनी, सिडको एन-5
औरंगाबाद (महाराष्ट्र), मो॰ 09975773345

प्रो॰ डॉ॰ चंद्रकांत मिसाल
प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग,
एस॰एन॰डी॰टी॰ महिला विश्वविद्यालय,
कर्वे रोड, पुणे 411038 (महाराष्ट्र)

प्रा॰ अशोक शामराव मराठे
116, सखाराम नगर,
पेरेजपुर रोड, साक्री, तह॰ साक्री,
जिला धुले 424304 (महाराष्ट्र)

प्रा॰ पंजाबी ममता नानकचंद
19/20, त्रिमूर्ति नगर,
मोरे अस्पताल के पास,
साक्री, तहसील साक्री, जिला धुले 424304

प्रा॰ डॉ॰ योगेश गोकुळ पाटिल
प्लॉट नं॰ 12, नयना सोसायटी,
नकाणे रोड, देवपुर, धुले 424002

प्रा॰ उषा पुंडलिक शिरोळे
द्वारा श्री शशिकांत हरी बागड़े
गुरुकृपा हास्पिटल, डाक पारीपत्यदार
सावतानगर मालेगाँव, तह-मालेगाँव
जिला नासिक (महा॰)

प्रा॰ करुणा दत्तात्रय अहिरे
व्ही॰यू॰ पाटिल कला एवं विज्ञान महाविद्यालय,
साक्री, तह॰ साक्री, जिला धुले 424304

प्रा॰ डॉ॰ प्रमोद गोकुळ पाटील
मु॰पो॰ मोराणे (प्र॰ल॰)
तह॰ जिला धुले 424001 (महाराष्ट्र)

प्रा॰ डॉ॰ अश्फाक सिकलगर
जीएफ-102 ताज अपार्टमेंट,
चालीसगाँव रोड, धुले (महाराष्ट्र)

प्रा॰ डॉ॰ महेंद्रसिंह रघुवंशी
सरस्वतीनगर, प्लॉट नं॰ 10,
वाघेश्वरी मंदिर के पास, नंदुरबार 425412

डॉ॰ रेखा वसंत पाटील
सीतामाईनगर, चालिसगाँव
शिला जलगाँव (महा॰) 424101

प्रा॰ डॉ॰ मंजू तरड़ेजा (सिंघाणी)
ब्लॉक नं॰ आर-10, रूम नं॰ 10,
कुमारनगर, साक्री रोड, धुले 424001
प्रा॰ डॉ॰ चंद्रमादेवी पाटील
59, धनदाईनगर, गोंदुर रोड, वलवाडी,
देवपूर, धुले 424005 (महाराष्ट्र)
डॉ॰ संजयकुमार नंदलाल शर्मा
38, जमनानंद, गुरुकुल कालोनी,
तलोदा, जि॰ नंदुरबार (महाराष्ट्र) 425413
श्रीमती वर्षा सुभाषचंद्र देशमुख
बी-6, चंद्रवेल अपार्टमेंट, गोविंदनगर होटेल
प्रकाश्या भागे, मुंबई नाका,
नासिक (महाराष्ट्र) 422010
डॉ॰ देवकीनंदन महाजन
1 टेलीफोन कालोनी,
धुले रोड, अमलनेर (जलगाँव) महाराष्ट्र
डॉ॰ कल्पना राजेंद्र पाटील
38, जमनानंद, गुरुकुल कालोनी, तलोदा
जि॰ नंदुरबार (महाराष्ट्र) 425413
सुश्री निर्मला पुरुषोत्तम तोमर
फ्लेट नं॰ 12, एस नं॰ 137/2
वारजे मलवाडी, पुणे 411058, मो॰ 08087612123
प्रा॰ डॉ॰ रामचंद्र माली
अध्यक्ष हिंदी विभाग,
क॰वा॰वि॰ महाविद्यालय
नवापुर, शिला नंदुरबार (महाराष्ट्र)
डॉ॰ सुषमा कोंडे
81/ए, प्लाट नं॰ 9/ए,
गिरिदर्शन हाउसिंग सोसायटी, बानेर रोड
पुणे 411007 (महाराष्ट्र)
मो॰ 09822848464
प्राचार्य विद्यावर्धिनी महाविद्यालय
धुले (महा॰) 424001
डॉ॰ हेमलता कांचनकर
43 नंदनवन कालोनी (कैंट)
औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
मो॰ 09730202528
सुश्री नेहा संदीप घोरपड़े
द्वारा सुश्री सुनीता पवार
फ्लैट नं॰ 404, प्रकाश मेमाराइज
एस नं॰ 73, दूध डेयरी, पुणे-411046
सुश्री भारती मधुकर पाटील
मु॰पो॰ सावलदे, तहसील शिरपूर
जिला धुले (महा॰)
प्रा॰ शिंदे नवनाथ सर्जेराव
अध्यक्ष, हिंदी विभाग
सांगोला महाविद्यालय, सांगोला
कडलास रोड, सांगोला (सोलानुर) 413307
मो॰ 09763602304
डॉ॰ मीनल प्रमोद बर्वे
7, गिरिजात्मक, अष्टविनायक रेजिडेंसी,
के॰जे॰ मेहता कालेज के पास, नासिक-पुणे हाईवे
नासिक रोड (महाराष्ट्र) 422001
मो॰ 09423968189
प्रो॰ अमानुल्लाह मो॰ शेख़
श्रद्धा रेजिडेंसी, बिल्डिग ए, बिंग ए-201
आई॰टी॰आई॰ कालेज के पास
पो॰ मुकिंदपुर, तह॰ नेवासा
जिला अहमदनगर (महा॰)
प्रा॰ ईश्वर पदमसिंग ठाकुर
जनशक्ति कालोनी
रिंग रोड, फैजपुर, तहसील यावल (जलगाँव)
डॉ॰ दीपक विश्वासराव पाटील
मुकाम सौंदाणे, निकट कलाविश्व कंप्यूटर सेंटर
पो॰ बडजाई (धुले) महा॰ 424002
मो॰ 099923811609
डॉ॰ अनिता मधुकर अंतरे
मयूर सोलर ऐजेंसी
स्वामी समर्थ मंदिर के पास
पो॰ लोनी बी के, तालुका रहाता
जिला अहमदनगर (महाराष्ट्र) 413736
मो॰ 09970343766

श्री शेख शिराज हसन
पोस्ट बोरी, तालुका खंडाला (सतारा)
415521 (महा॰), मो॰ 09011444059

डॉ॰ विट्‌ठलसिंह नंदरामसिंह ढाकरे
'सी' टाइप कालेज
शास्त्राीनगर, लासलगाँव
जिला नासिक (महाराष्ट्र) 422306
मो॰ 08888590156

डॉ॰ उर्मिला मानसिंह गायकवाड
प्लॉट नं॰ 290-292, सेक्टर-29
गुरु स्मृति अपार्टमेंट, ए-विंग,
फ्लैट नं॰ 303 रावेत निकट डी-मार्ट
पुणे 412101, मो॰ 07620225839

डॉ॰ एफ॰एम॰ शाह
द्वारा श्री टी॰एम॰ धुवारे
छोटा दत्त मंदिर के पास, टी॰बी॰ टोली
गोंदिया (महा॰) 441614
मो॰ 07620042772

डॉ॰ शैला पांडुरंग चव्हाण
फ्लेट नं॰ 1, सुविधिनाथ हाउसिंग सोसायटी
मुख्य फायर ब्रिगेड आफिस के सामने
हीरा-मोती शोरूम के पीछे,
सिंघाड़ा तालाब, नासिक (महा॰) 422001
मो॰ 09850827138

प्राचार्य
कला, वाणिज्य व कंप्यूटर
एप्लीकेशन महिला महाविद्यालय
डोंगर कठोरे, यावल,
जिला जलगाँव (महा॰)

प्रा॰ पुरुषोत्तम कुंदे
हिंदी विभाग, न्यू आर्ट्स कामर्स एंड साइंस कालेज
शेवगाँव (अहमदनगर) 414502 महाराष्ट्र
मो॰ 09850947267

प्रा॰ अमृता भरत पाटिल
प्लाट नं॰ 23, बालाप्पा कॉलोनी
अशोकनगर के पास, जमनागिरि रोड
धुले (महा॰) 424001

डॉ॰ सचिन कदम
हिंदी विभाग, संगमनेर महाविद्यालय
संगमनेर (महाराष्ट्र)

रूपाली नामदेवराव रिंगे
द्वारा बालाजी संभाजी कदम
फ्लैट नं॰ 12, साईं श्रद्धा रेसिडेंसी, प्लॉट नं॰ 78
सी॰डी॰सी॰ पूर्णनगर, चिंचवड,
पुणे 411019 महाराष्ट्र
मो॰ 09420848635, 07276268922

प्रो॰ मनोहर हिलाल पाटिल
प्लॉट नं॰ 1, परिजात कॉलोनी
निकट इंदिरा गार्डन, देवपुर धुले 424002 (महा॰)

गुजरात

श्री गुलाबराव शांताराम बाविस्कर
201, के-टॉवर, श्रीनंदनगर
सोखड़ा रोड, छाणी,
बड़ोदरा (गुजरात) 391740
मो॰ 09624501415

कर्नाटक

डॉ॰ जुबैदा हाशिम मुल्लाँ
बैतुल हाशमी, म॰नं॰ 152, ताजनगर
हुबली 580031 (कर्नाटक)

तमिलनाडु

Dr. V. Jayalakshmi
Mathura, Plot No. 38
5th Cross Street, Gokul Nagar
Perumbakkam, Chennai-600100

डॉ॰ कैलाशंद्र शर्मा 'शंकी'
प्रोफेसर कॉलोनी, स्टेडियम रोड
चरखी दादरी (भिवानी) हरियाणा 127306
मो॰ 09812121233

साहित्य-जगत् में बढ़ती हुई जनसंख्या

साहित्य-जगत् में लेखकों और कवियों की संख्या निरंतर बढ़ रही है, किंतु आश्चर्य की बात यह है कि जैसे-जैसे कवियों और साहित्यकारों की संख्या बढ़ती जा रही है, वैसे-ही-वैसे साहित्य का स्तर नीचे आता जा रहा है।

कभी किसी विचारक ने लिखा था–

'एक समय आएगा, जब बुद्धि का स्तर नीचे आ जाएगा, किंतु बुद्धिजीवियों की संख्या अकल्पनीय हो जाएगी। ऐसा लगता है कि यह वही समय है। गत दिनों मैं एक छोटे से क़स्बे में गया था। वहाँ मुझे बताया गया कि इस क़स्बे में डेढ़ सौ से अधिक कवि और शायर हैं। मेरे लिए यह सूचना निस्संदेह आश्चर्यजनक थी। सब जानते हैं कि साहित्य मनुष्य की भौतिक आवश्यकताएँ पूरी नहीं करता। रोज़ी-रोटी का साधन नहीं बनता। इसके बावजूद यदि लोग इस क्षेत्र की ओर खिंचे चले आ रहे हैं तो इसके कुछ मनोवैज्ञानिक कारण अवश्य होने चाहिए।

इतनी पुस्तकें पहले कभी नहीं छपती थीं, जितनी अब छप रही हैं। इतनी पत्र-पत्रिकाएँ पहले कभी प्रकाशित नहीं होती थीं, जितनी अब प्रकाशित हो रही हैं। छोटे-छोटे शहरों में भी थोड़े-थोड़े अंतराल से भी कभी कोई कविता-संग्रह, कभी कोई ग़ज़ल-संग्रह और कभी कोई कहानी-संग्रह छपकर आता ही रहता है। ऐसे सभी संग्रह प्राय: ढाई सौ, तीन सौ की संख्या में छपते हैं। मित्रों-परिचितों में वितरित कर दिए जाते हैं। विमोचन के अवसर पर नगर के कुछ साहित्य-प्रेमियों को एकत्र कर लिया जाता है। पुस्तक और लेखक पर थोड़ी-बहुत चर्चा होती है और सारी कहानी समाप्त हो जाती है। प्रकाशित पुस्तक को न तो कोई गंभीरता से स्वीकार करता है और न वह गंभीरता से पढ़ी जाती है। वह अधिक-से-अधिक उस लेखक की संतुष्टि का कारण बनती है, जिसने उसे लिखा और अपने पास से धन ख़र्च करके छपवाया। इस तरह पुस्तकों का अंबार लगता जाता है और उन्हें पढ़नेवाले नहीं मिलते। ये समस्या भीड़ के स्वयंभू कवियों और साहित्यकारों की ही नहीं है, मौलिक कलाकारों की भी है। इलैक्ट्रोनिक मीडिया ने जितना बड़ा हमला पुस्तक-बाज़ार पर किया है, वह सर्वविदित है। बड़े-बड़े साहित्यकारों की पुस्तकें शोरूमों में सजी रहती हैं, किंतु ग्राहक उनकी ओर देखता तक नहीं।

पुस्तक-बाज़ार की मंदी हमारा विषय नहीं है। हमारा विषय यह है कि इस भयावह मंदी के बावजूद साहित्य-जगत् में कवियों लेखकों की भीड़ क्यों बढ़ रही है? इतनी भारी संख्या में इतनी अधिक पुस्तकें क्यों छप रही हैं? वह कौनसा कारण है, जो अंशकालिक साहित्य-प्रेमियों को लेखन के क्षेत्र में खींचकर ला रहा है? प्रतिदिन इन पंक्तियों के लेखक के पास कोई-न-कोई ऐसा व्यक्ति अवश्य आता है, जिसे साहित्य की किसी विधा में चर्चा करनी होती है या कोई परामर्श लेना होता है। कुछ ही दिन पहले एक सज्जन आए। कवि थे और अपनी कविताओं का

एक संग्रह प्रकाशित कराना चाहते थे।

पूछा– किस व्यवसाय में हैं? उत्तर मिला– मोटर मैकेनिक हैं। पूछा– शैक्षिक योग्यता क्या है? उत्तर मिला– मैट्रिक फ़ेल हैं। मैंने अनुभव किया कि उनके ये दोनों उत्तर मुझे विचलित करनेवाले नहीं हैं, क्योंकि मैं मानता हूँ कि एक मोटर मैकेनिक भी उतना ही अच्छा साहित्यकार हो सकता है, जितना अच्छा किसी विद्यालय में अध्यापन करनेवाला अध्यापक अथवा किसी समाचार-पत्र के कार्यालय में काम करनेवाला संपादक या उपसंपादक।

साहित्य-लेखन साहित्य से जुड़ी संस्थाओं में कार्यरत लोगों की ही संपत्ति नहीं है। दूसरे क्षेत्रों के लोग भी अच्छे कवि और लेखक हो सकते हैं। शिक्षा का डिग्री वाला स्तर भी मेरे लिए कोई विशेष अर्थ नहीं रखता, क्योंकि मैं सिद्धांत रूप से यह मानता हूँ कि योग्यता डिग्री से नहीं आती, अध्ययन से आती है। अध्ययन बुद्धि का विकास करता है, इसलिए आनेवाले सज्जन का मैट्रिक पास न होना भी मेरे लिए कोई ऐसी बात नहीं थी, जो मेरी राय पर प्रतिकूल प्रभाव डालती। मैं समझता था कि अपने परिश्रम और अध्ययन से तथा समाज एवं जीवन के शिक्षालय से इस व्यक्ति ने इतनी योग्यता अवश्य प्राप्त कर ली होगी, जितनी एक औसत साहित्यकार में होनी चाहिए।

पूछा– बड़े कवियों में अब तक किस-किस को पढ़ा? पुराने लोगों में कबीर हैं, जायसी हैं, अमीर ख़ुसरो हैं, बिहारी हैं, और भी कितने ही महान् कवि हैं। नए लोगों में निराला हैं, मैथिलीशरण गुप्त हैं, महादेवी हैं। आज की पीढ़ी में भी अनेक साहित्यकार हैं, कवि हैं, लेखक हैं। साहित्य का इतिहास क्या है? गति क्या है? क्या-क्या लिखा जा चुका है? क्या-क्या लिखा जा रहा है? आप बता सकते हैं?

उत्तर था– इतना समय कहाँ है जी! सुबह नौ बजे वर्कशॉप जाने के लिए घर से निकलना होता है। रात के नौ बजे घर वापसी होती है। बारह घंटे का शारीरिक श्रम इतना तोड़ देता है कि अध्ययन करने की स्थिति नहीं रहती। सुबह जो अख़बार आता है, उसके रविवारीय परिशिष्ट में जो कविताएँ पढ़ने को मिल जाती हैं, वही मेरे अध्ययन में आती हैं और वही मेरे लिए नमूना बनती हैं। उन्हीं से मैंने प्रेरणा ली है और स्वयं भी कुछ कहने का बुरा-भला प्रयास किया है।

मैं समझता हूँ कि यह उदाहरण हज़ारों-लाखों उदाहरणों में से एक है, जो हमें यह सोचने पर विवश करता है कि अनिवार्य तैयारी के बिना लोग साहित्य की तरफ़ क्यों आकर्षित हो रहे हैं?

गहन विचार के बाद जो बातें इस विषय में मेरे सामने आईं, उनमें सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि प्रकृति कुछ व्यक्तियों को उच्च स्तर के रचनात्मक गुण देती है, कुछ को सामान्य स्तर के और कुछ को निम्न स्तर के। शेष समाज के करोड़ों लोग ऐसे होते हैं, जो इस रचनात्मक गुण से पूर्णतया वंचित रहते हैं। यही वे लोग हैं, जो प्रौढ़ावस्था को पहुँचते-पहुँचते कला और साहित्य के क्षेत्र में सक्रिय हो जाते हैं। यह कोई विचित्र बात नहीं है। जैसे कुछ लोगों का मस्तिष्क आरंभ से ही भौतिकतावादी होता है, कुछ का नहीं होता। कुछ कल्पनाशील होते हैं, कुछ क्रियाशील। कुछ कलाप्रेमी होते हैं, कुछ धनसाधन प्रेमी। कुछ शांत स्वभाव के होते हैं कुछ को हँगामेबाज़ी प्रिय होती है। यह समाज तरह-तरह के और भिन्न-भिन्न स्वभाव के लोगों से भरा हुआ है। इसमें कला और साहित्य के प्रति आकर्षण न रखनेवाले भी हैं और ऐसे लोग भी हैं, जो अपने जन्मजात स्वभाव के कारण कला और साहित्य के लिए पूर्ण रूप से समर्पित हैं। कुछ में रचनात्मकता का

गुण उच्च स्तर का होता है तो कुछ का निम्न स्तर का। हमारा समाज आज भी विज्ञान और भौतिकवादी सभ्यता के वातावरण में भी सबसे अधिक सम्मान कला और साहित्य के क्षेत्र में काम करनेवालों को ही देता है। कवि, साहित्यकारों और लेखकों को जो आदर समाज में मिलता है, वैसा शायद दूसरों को नहीं मिलता। उन्हें धनवानों से अधिक आदर दिया जाता है। एक साधारण सा साहित्यकार अथवा कवि आज भी हमारे समाज में सम्मान का पात्र बन जाता है। उसे दूसरों से कहीं ज़्यादा महत्त्व मिलता है।

यह भी सर्वविदित है कि मानव-प्राणी के पेट और शारीरिक भूख के बाद जो सबसे शक्तिशाली भूख है, वह समाज में नाम, सम्मान और प्रसिद्धि पाने की है। मनुष्य का पेट भरा हो, उसकी दैहिक भूख की संतुष्टि हो रही हो तो ऐसा कोई भी व्यक्ति, जिसके स्वभाव में प्रकृति ने किसी भी स्तर का रचनात्मक गुण दिया है, अपनी मूल आवश्यकताओं की पूर्ति के उपरांत साहित्य और कला के क्षेत्र में सक्रिय हो जाता है। साहित्य के क्षेत्र में सम्मान पाने के लिए जो चीज़ उसे प्रेरित करती है, वह ऐसे रचनाकारों का नाम और ख्याति है, जो समाज में स्वयं को स्थापित कर चुके हैं और समाज से वह सम्मान पा चुके होते हैं, जिसके वे अधिकारी थे। सृजन के क्षेत्र में आनेवाले पहले उन्हें अपना आदर्श मानते हैं और फिर उन्हीं की श्रेणी में पहुँचने की लालसा उन्हें साहित्य के क्षेत्र में खींचकर ले आती है।

प्रकृति जिन व्यक्तियों को पूर्ण रचनात्मक गुण देती है, उनके सम्मुख तो चाहे-अनचाहे साहित्य के क्षेत्र में बने रहने की विवशता होती है, क्योंकि किसी दूसरे व्यवसाय के लिए उनमें कोई रुचि नहीं होती। उनका स्वभाव ही पूर्ण रूप से रचनात्मक होता है। वे आजीविका कमाने के लिए कोई दूसरा व्यवसाय ग्रहण भी करते हैं तो वह साधारणतया ऐसा होता है, जो उनकी रचनात्मक गतिविधियों में बाधा न बनता हो। साहित्य के लिए उनकी व्यस्तता पूर्णकालिक होती है, अंशकालिक नहीं। किंतु ऐसे व्यक्ति, जिन्हें प्रकृति ने आंशिक रूप से यह गुण दिया है या उनमें रचनात्मकता का स्वभाव निम्न स्तर का है, वे मात्र नाम, सम्मान अथवा ख्याति अर्जित करने के लिए इस क्षेत्र में आते हैं। स्थानीय स्तर पर उनकी यह इच्छा पूरी भी होती है। प्रसिद्धि और सम्मान दो आकर्षण ऐसे हैं, जो निम्नस्तरीय रचनात्मक गुणवाले व्यक्तियों को साहित्यिक क्षेत्र में खींच लाते हैं। वे अध्ययन नहीं करते, विभिन्न साहित्यिक विधाओं की पूरी जानकारी करना आवश्यक नहीं समझते, वे समकालीन और पूर्ववर्ती बड़े साहित्यकारों को पढ़ना भी आवश्यक नहीं मानते, पत्र-पत्रिकाओं में जिस तरह का साहित्य छपता है, वही उनके ज्ञान की पूँजी बनता है। इसी पूँजी के सहारे वे साहित्य के शिखर पर अपना नाम अंकित करने की धुन में लग जाते हैं।

वह मोटर मैकेनिक, जो कवि के रूप में मेरे पास आए थे, जब मुझे अपनी काव्य-रचना सुना चुके तो मैंने उनसे पूछा—

'कभी आपने अपने-आपसे यह प्रश्न किया है कि यदि आप कविता नहीं लिखेंगे तो आप अपना सुख-चैन खो बैठेंगे। व्याकुल हो जाएँगे। कष्ट में पड़ जाएँगे। जैसे आप रोटी खाए बिना और कपड़ा पहने बिना नहीं रह सकते, क्या वैसे ही कविता लिखे बिना भी रह सकते हैं?'

वे सज्जन कुछ देर चुप बैठे रहे। फिर उत्तर देते हुए बोले—

'रोटी, कपड़ा और कविता का आपस में कोई संबंध नहीं है। जीवित व्यक्ति कविता लिखे बिना रह सकता है, भोजन लिए बिना नहीं रह सकता।'

मैंने कहा– मैं वास्तव में आपसे यही उत्तर सुनने की आशा करता था। जब कविता आपके लिए भोजन की तरह अनिवार्य नहीं है और आप इसके बिना भी रह सकते हैं तो ये आपके लिए शौक़ हुआ, विवशता नहीं और यदि कविता करना वास्तव में आपकी विवशता नहीं है तो मुझे लगता है कि आप कविता करने के लिए नहीं बने हैं।

मेरा आग्रह यह बिल्कुल नहीं है कि साहित्यकार को कोई और व्यवसाय नहीं करना चाहिए। साहित्य ही उसके लिए सब-कुछ हो। किंतु मैं यह अवश्य देखना चाहूँगा कि चिकित्सा, मोटर मैकेनिकी, व्यापार, नौकरी तथा किसी अन्य पेशे में रहते हुए भी कोई साहित्यकार साहित्य के लिए कितना समर्पित है। यदि वह साहित्य के लिए समर्पित नहीं है, लेखन उसकी विवशता नहीं बना है तो वह साहित्य-जगत् की भीड़ का एक साधारण व्यक्ति है और साहित्यिक समाज में भी उसी तरह जीवित रहेगा, जैसे साधारण लोग मानव-समाज में जीवित रहते हैं।

मैं कहता हूँ, क़लम हाथ में सँभालते ही सबसे पहला प्रश्न अपने- आपसे यह पूछिए कि मैं क्यों लिखना चाहता हूँ? यदि लिखे बिना उसी तरह शांत नहीं रह सकते, जिस तरह मछली पानी के बिना नहीं रह सकती, तो आप अवश्य लिखें। यह आपकी मजबूरी है।

दूसरा प्रश्न जो साहित्य-जगत् में प्रवेश करते हुए आपको अपने-आपसे पूछना चाहिए, वह यह है कि आप क्या लिखना चाहते हैं? 'क्या' का उत्तर देते हुए आपको यह देखना होगा कि आपके पास वह कच्ची सामग्री क्या है, जिसे आप शब्दों का रूप देकर दूसरों तक पहुँचाने के लिए उत्सुक हैं।

कला और साहित्य के क्षेत्र में कार्य करनेवालों को प्रकृति विशेष और अद्भुत कल्पना-शक्ति प्रदान करती है। किंतु मात्र कल्पना-शक्ति के बल पर कोई लेखक वांछित सफलता प्राप्त नहीं कर पाता। कल्पना के साथ ज्ञान, अनुभव, सूक्ष्म दृष्टि, जीवन और समाज अथवा घटनाओं के भीतर उतरकर यथार्थ तक पहुँचने की क्षमता यदि नहीं है तो आपका साहित्य उन ऊँचाइयों को नहीं छू पाएगा, जिसकी आशा उससे की जाती है। कुछ और बातों पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है।

1. क्या सामान्य डगर से हटकर कहने के लिए आपके पास कुछ है?

2. क्या अब तक जो कुछ कहा गया है, उसे कुछ बेहतर बनाकर कहने की क्षमता आपमें है?

3. क्या आपके समकालीन साहित्यकार जिन विषयों पर लिख रहे हैं, उन विषयों को अलग ढंग से और अधिक प्रभावपूर्ण शैली में व्यक्त करने की योग्यता आपमें है?

4. अभिव्यक्ति की जो भाषा आपके पास है, क्या आप उसे रचनात्मक ढंग से व्यवहार में लाने की कला से परिचित हैं?

5. क्या आप सामान्य बोलचाल की भाषा और प्रतिदिन प्रयोग में आने वाली भाषा का रचनात्मक प्रयोग करने में सक्षम हैं?

6. क्या आप उस साहित्यिक विधा का भलीभाँति ज्ञान रखते हैं, जिसे आप प्रयोग कर रहे हैं?

7. आप लेखन से अधिक अध्ययन पर ध्यान देते हैं या नहीं?

8. क्या अध्ययन के साथ आप समाज और अपने युग के मानव की सच्चाई के लिए

सोच-विचार में लगे रहते हैं

9. आपके भीतर अभिव्यक्ति की तड़प कितनी है? क्या आप यह अनुभव करते हैं कि यदि आपने अपनी भावनाएँ व्यक्त नहीं कीं तो आप व्याकुल रहेंगे? आपको संतोष नहीं होगा।

10. आप रचयिता होने के नाते हर प्रकार के भेदभाव से मुक्त हैं या नहीं? आप मानव का मानव के रूप में अध्ययन करते हैं या उसे विभिन्न श्रेणियों में बाँटकर देखते हैं? आपमें मानवता के प्रति कितनी संवेदना है? लेखन से आपका क्या उद्देश्य है?

यही वे प्रश्न हैं, जिन्हें साहित्यिक क्षेत्र में उतरने वाले प्रत्येक नए लेखक को अपने-आपसे करने चाहिए। यदि वह इनका उत्तर सकारात्मक रूप में पाता है तो उसे निस्संकोच लेखनकार्य में लग जाना चाहिए। यदि उत्तर सकारात्मक नहीं है तो उसे सोचना चाहिए कि साहित्य में उसके प्रवेश की इच्छा क्यों है? क्या केवल नाम, सम्मान और ख्याति अर्जित करने के लिए?

साहित्य-जगत् में बढ़ती हुई भीड़ पर अंकुश लगाना संभव नहीं है, किंतु प्रबुद्ध श्रोताओं और समीक्षकों के लिए आवश्यक है कि वे वाहवाही वाली अपनी पुरानी नैतिक परंपरा को बदलें ताकि भ्रमित हो रहे नवागंतुकों को सही मार्ग पर चलने की सीख मिल सके।

भीड़पन ललित कलाओं के लिए घातक है। ललित कलाओं का निर्णय ज्ञान द्वारा होना चाहिए, भीड़ के आधार पर नहीं। साहित्य में जो भीड़ बढ़ रही है, उसे न तो रोका जा सकता है और न उसे नियंत्रित किया जा सकता है। इस लेख में हमने जो प्रश्न उठाए हैं, उन पर भी विचार करने के लिए विवश किया जाना संभव नहीं है, क्योंकि आत्मालोचन के गुण सबमें नहीं होते, ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि हम दोषपूर्ण रचनाओं पर प्रशंसात्मक टिप्पणियाँ करने की पुरानी परंपरा से छुटकारा पाएँ। जहाँ तक संभव हो नवागंतुकों को यह बताएँ कि उन्हें साहित्य के क्षेत्र में रहने के लिए क्या-क्या करना होगा। ग़लत प्रोत्साहन से क़लम की दुनिया की भीड़ बढ़ रही है और उससे साहित्य का स्तर प्रभावित हो रहा है।

समीक्षा समिति

प्रो॰ हरिमोहन, कुलपति, जे॰एस॰विश्वविद्यालय, शिकोहाबाद (फिरोशाबाद) उ॰प्र॰

प्रो॰ आदित्य प्रचंडिया, पूर्व प्रोफेसर हिंदी विभाग, दयालबाग एजुकेशनल इंस्टीट्यूट, दयालबाग, आगरा (उ॰प्र॰)

प्रो॰ रामसजन पांडेय, हिंदी विभाग, इंदिरा गांधी विश्वविद्यालय, मीरपुर, रेवाड़ी (हरियाणा)

प्रो॰ अनिलकुमार जैन, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज॰)

प्रो॰ हरिमोहन बुधौलिया, पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष हिंदी अध्ययन शाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म॰प्र॰)

प्रो॰ शंभुनाथ तिवारी, हिंदी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उ॰प्र॰)

प्रो॰ चंद्रकांत मिसाल, अध्यक्ष हिंदी विभाग, एस॰एन॰डी॰टी॰ महिला विद्यापीठ, पुणे (महा॰)

अनुक्रम

साहित्य-जगत् में बढ़ती हुई जनसंख्या 9
राधाचरण गोस्वामी का काव्यलोक/ **डॉ॰ अशोक उपाध्याय** 16
हिंदी व्याकरण के परिष्कारक आचार्य किशोरीदास वाजपेयी/ **डॉ॰ निर्मला तिवारी** 28
वीरेंद्रप्रसाद जैन का रचना-संसार/ **डॉ॰ अलका प्रचंडिया** 33
क्षण की अनुभूति की गहनता है क्षणिका/ **रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'** 38
प्रगतिशील आलोचना : एक पुनरावलोकन/ **डॉ॰ विजयबहादुर त्रिपाठी** 44
भोजपुरी लोकगीतों में रामकथा का स्वरूप/ **डॉ॰ सतीशकुमार श्रीवास्तव** 48
शोषक व्यवस्था के खिलाफ आदिवासियों की बुलंद आवाज : ऑपरेशन जोनाकी/ **डॉ॰ संजय गडपायले** 54
मानवीय संवेदनाओं को व्याख्यायित करती बच्चन की कहानियाँ/ **डॉ॰ मंजू शुक्ला** 58
स्वाधीनता-आंदोलन में हिंदीपत्र-पत्रिकाओं की भूमिका/ **प्रा॰ डॉ॰ योगेश गोकुल पाटील** 63
देवी-तत्त्व एवं 'सिंह' का मिथकीय संबंध : एक अनुशीलन/ **ध्यानेंद्रनारायण दूबे** 68
उषा राजे सक्सेना कृत 'प्रवास में' कथासंग्रह में व्यक्त संवेदना/ **प्रो॰ शर्मिला सक्सेना** 74
संतसाहित्य के प्रतिनिधि कवि कबीर/ **सुशीलकुमार** 84
स्त्री का युगीन परिदृश्य व उसका बदलता दृष्टिकोण/ **सुरेंद्रसिंह** 90
साहित्य में चित्रित वृद्धों के प्रवासी जीवन की त्रासदी/ **डॉ॰ सीमा चंद्रन, सीमा दास** 95
समकालीन हिंदी कथासाहित्य में निम्नवर्गीय नारी/ **डॉ॰ बळीराम संभाजी भुक्तरे** 102
साहित्यकारों की नजर में बालश्रम/ **साधना यादव** 105
समाज और राजनीति का बहुरंगी आईना 'चरैवेति-चरैवेति'/ **डॉ॰ वंदना श्रीवास्तव** 111
रवींद्र कालिया के उन्यास 'ए॰बी॰सी॰डी॰' में आधुनिक बोध/ **अमनजोत कौर** 116
मीडिया और हिंदीभाषा/ **डॉ॰ पी॰व्ही॰ कोटमे** 119
रामदरश मिश्र के आंचलिक उपन्यासों में ग्राम्यसमाज-जीवन/ **मनजीत कौर** 126
आंचलिक उपन्यासकार फणीश्वरनाथ रेणु/ **रविंद्रकुमार** 131
दलित-चेतना की अभिव्यक्ति : स्वदेश दीपक के कोर्ट-मार्शल नाटक के विशेष संदर्भ में/ **प्रा॰ डॉ॰ ए॰जे॰ बेवले** 135
वाचस्पति कुलवंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/ **मोनिका रानी** 139
वाचस्पति कुलवंत विरचित काव्य में प्रेम का स्वरूप/ **मोनिका रानी** 142
महिलाओं के सामाजिक एवं आर्थिक विकास के विविध आयाम/ **सतीशकुमार** 145

पाँच बहतरीन कहानियाँ : अजय नावरिया सामाजिक यथार्थ का एक दस्तावेज/ **डॉ॰ कंचन पुरी, श्रीमती स्नेहलता** 153
यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र' की कहानियों में सदस्यों की स्वार्थ भावनाओं की समस्या का अध्ययन/ **डॉ॰ सतीशकुमार** 161
भारतीय साहित्य में नारी वैष्यम्य/ **शकुंतला वाघ** 164
अशोक वाजपेयी की कविता में अभिव्यक्त मृत्युबोध/ **प्रो॰ डॉ॰ सदानंद भोसले, नवनाथ शिंदे** 167
कबीर की क्रांतिधर्मिता और सांस्कृतिक प्रवाह/ **डॉ॰ माला मिश्र** 174
शमशेरबहादुर सिंह की काव्यभाषा में बिंब-विधान/ **डॉ॰ अनीता रानी** 182
अर्थ-परिवर्तन : दिशाएँ/ **डॉ॰ आलोककुमार सिंह** 188
सवाल साहित्य के : स्वानुभूति के विविध आयाम/ **डॉ॰ निशा तिवारी** 193
भगवानदास मोरवाल के उपन्यासों में मेवाती संस्कृति का विश्लेषण/ **डॉ॰ वरिंदरजीत कौर** 201
मेहरुन्निसा परवेज की कहानियों में निम्नवर्गीय जीवन/ **वसीम** 208
सामाजिक सरोकार के कवि केदारनाथ अग्रवाल/ **डॉ॰ रतनप्रकाश मिश्र** 212
योगशिक्षा और मूल्याधारित शिक्षा में उसका महत्त्व/ **अमित मोहन** 217
अरुण कमल के काव्य में स्थानीयता बनाम राष्ट्रवाद/ **मोनिका वर्मा** 227
श्रमिकवर्ग तथा शेखर जोशी का रचना-संसार/ **डॉ॰ संजयकुमार राठौर** 234
नरेंद्रमोहन के नाटकों में नारीमुक्ति की कामना/ **डॉ॰ संतराम वैश्य, रितु** 238
गुरु गोविंदसिंह के साहित्य में वीर-भावना/ **डॉ॰ राजविंद्र कौर** 241
संत नितानंद का साधना पथ/ **सुधा महला** 256
वर्तमान समाज में स्त्री-चिंतन/ **सर्वदमन त्रिपाठी** 260
नारी-अस्मिता : बदलता स्वरूप और साहित्य/ **सुमिता त्रिपाठी** 263
वित्तपोषण योजनाओं में लघु उद्योग इकाइयों की समस्या एवं समाधान/ **डॉ॰ प्रमोदकुमार त्रिपाठी** 267
जातीय व वर्गीय चेतना एवं समाजवादी पार्टी/ **डॉ॰ शशिकांत मणि त्रिपाठी** 270
Shashi Deshpande's Views on Feminism/ **Dr. M.S.Vimal** 275
Feministic Approach of Shashi Deshpande/ **Haricharan Ahirwar** 279
Moral Strategy to Check Declining Child Sex Ratio/ **Dr. Kavita Bhatt** 283

शोध दिशा के विशेषांक जो शीघ्र प्रकाशित होगा।
डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका : सृजन और साहित्य विशेषांक
आपकी सक्रिय भागीदारी की अपेक्षा है।

राधाचरण गोस्वामी का काव्यलोक

डॉ॰ अशोक उपाध्याय
हिंदी विभाग, बरेली कॉलेज, बरेली

काव्य-संसार के मर्मस्पर्शी भावसंचार के साथ मानव-हृदय का सामंजस्य स्थापित करने में सक्षम सार्थक शब्द विधान है। इसके द्वारा विभिन्न प्रकार के सुंदर पदार्थों तथा रूपाकारों का ही वर्णन नहीं होता, अपितु मानव-कर्म एवं तद्जनित मनोवृत्तियों का मनमोहक रूप भी जीवन के विविध स्तरों के सदाशयपूर्ण निरूपण के साथ प्रस्तुत किया जाता है। कथन की रसात्मकता और चमत्कार की मार्मिक अंतर्वृत्ति कवि के सृजन-कर्म की निपुणता के साथ जितनी अधिक भावाभिव्यंक रूप में प्रयुक्त होती है, काव्य उतना ही सफल माना जाता है। राधाचरण गोस्वामी सिद्धवाणी में प्रफुल्लित क्रीड़ा-निकुंजों से सुवासित ब्रजभूमि के माधुर्य और अन्याय-विरोधी भावना को युगीन संदर्भ में अभिव्यक्ति प्रदान करने में सक्षम श्रेष्ठ कवि थे। उनकी सरस एवं मनोरंजक कविताएँ समस्त बुद्धिजीवीवर्ग को प्रभावित तथा आंदोलित करने की क्षमता से परिपूर्ण मानी जाती हैं। इनमें एक ओर रीतिकालीन काव्य का वैभव-विलास विरह-बाणों की पीड़ा के साथ विकसित हुआ है, तो दूसरी ओर विदेशी अत्याचारों का विरोध, स्वदेशी के प्रति तीव आस्था तथा समाज को हानि पहुँचाने वालों की व्यंग्यात्मक रूप में आलोचना इत्यादि देशप्रेम की भावना के रूप में भारतेंदुजी के काव्य के समान विरचित हुई है। इनकी प्रशंसा करते हुए गोस्वामीजी ने लिखा है–

वनिज वंश अवतंस धैर्य धीरज व पुधारी
चौंसठ कला प्रवीन प्रेम-मारग प्रतिपारी
विद्या विनय विशिष्ट शिष्ट समुदाय सभाजित
कविता कुल कमनीय कृष्णलीला जग प्लावित
आदि अंतशोभित भए हरिचंद्र प्रातः स्मरन।[1]

गोस्वामीजी का अपनी जन्मभूमि ब्रज और वृंदावन के प्रति अगाध अनुराग अविस्मरणीय है। श्री अमृतलाल चक्रवर्ती के सभापतित्व में आयोजित सोलहवें हिंदी साहित्य सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष पद की प्रतिष्ठा बढ़ाते हुए इन्होंने अपने पद्यमय भाषण में ब्रजभूमि के स्नेहीजनों की चर्चा के साथ-साथ ब्रजभूमि के प्रति अपनी अपार श्रद्धा और प्रेमसमन्वित भक्तिभावना का परिचय इस प्रकार दिया है–

श्रीयमुना-जल पीजिए ब्रज-रज में रहु लोट
दरसन राधारमन के जस की बाँधहु पोट

 ISSN 0975-735X

दिव्यदृष्टि से देखिए, ब्रज को वैभव मीत
वही श्याम वृषभानुजा, वही प्रेम की रीत
वही गऊ अरु गोप व बछिया बछड़ा वेह
ललित लता वे ही लाखों वह तरुवर वह गेह।[2]

गोस्वामीजी ने सहज भक्ति-भावावेश में श्रीवृंदावन के देवालयों का महत्त्व भी अत्यंत लालित्यपूर्ण शैली में 'राधावल्लभलाल' की तन-मन-धन से सेवा का संदर्भ देते हुए प्रकट किया है। अनाथरंजन श्रीगोपीनाथ का मधुर स्वरूप गोस्वामी सुसेव्य राधा दामोदरजी के उपासना मंदिर में विराजमान है—

श्यामसुंदर गोकुलानंद आदि विग्रह धारिकै
वृंदा विपिन गोलोक की सोभा सदा विस्तारिकै
श्रीकृष्णचंदरु रंगजी राधागोपाल निहारिए
शृंगारवट, वंशीपुलिन, पुनि केशि तीरथ न्हाइए
पाँच कोस वृंदाविपिन पिय प्यारी को धाम
पशु पंछी अमरानरा गावत राधा-श्याम।[3]

ब्रिटिश शासन की भय एवं संशय से ग्रस्त पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित सामाजिक जीवनशैली से ग्रस्त जनसमुदाय को ब्रज के वैभवगीतों को दिव्यदृष्टि से देखने का गोस्वामीजी द्वारा दिया गया परामर्श निम्न शब्दों में सदैव स्मरणीय बन गया है—

वह गोवर्द्धन, ब्रह्मगिरि वह नंदीश्वर जान
वह मथुरा, वह कामवन, नंदगाँव बरसान
वही राधिका कुसुमसर, मानसगंगा देख
वह कालिंदी की छटा, प्रेम-प्रवाह विसेख
वह गोपीगण प्रेम की धुजा वही रसरीति
वही दान अरु मान की लीला करहु प्रतीति।[4]

गोस्वामीजी के लिए साहित्य की सबसे अधिक लोकप्रिय विधा काव्य का सृजन भावयोग की विशुद्ध अनुभूति के रूप में कर्मयोग एवं ज्ञानयोग की श्रेणी में शब्दविधान का अक्षय भंडार बन गया था। पाश्चात्य प्रभावों की वृद्धि के कारण जैसे-जैसे मानवीय क्रिया-कलाप बहुरूपात्मक तथा जटिल बनते गए वैसे-वैसे उनके मौलिक स्वरूपों में परिवर्तन आता गया। भावनाजनित मूल मनोविकारों के स्थान पर बुद्धि के माध्यम से आगत ऐसे तथ्यों के विधान में वृद्धि होती गई, जिनके साथ हृदय के सुकोमल मनोभावों की सहज तन्मयता अधिक नहीं थी। उदाहरणार्थ भय का मुख्य कारण है—अपनी दैहिक, दैविक तथा भौतिक हानि से सुरक्षा। धीरे-धीरे धन-जन, मान, अधिकार, स्वामित्व तथा लोकवर्चस्व आदि को सुरक्षित बनाने की भावना अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में सुरक्षा के संसाधनों की चिंता से आच्छादित होती गई। प्रेम, घृणा, हास्य, स्वार्थ, उपार्जन-चिंता इत्यादि के संबंध में भी यही स्थिति बनती-बिगड़ती रही। मार-पीट, बेईमानी, लूट-खसोट, धोखेबाजी तथा कुटिलतापूर्ण स्वभाव के कारण जीवन की जटिलता अवनतिकारक रूप में प्रकट हुई। इस प्रकार के परिवर्तित परिवेश में भी गोस्वामी जी की विरह-व्यथा स्मरणीय है—

जिनके लगें नेह के काँटे

छिन-छिन ससकत कसकत जिय में क्यों हूँ जातन छाँटे
उठ-उठ भजत तजत घर बाहर लजत न नेकहूँ डाँटे
आह! आह! कर पीड़ बढ़ावत धीर-धीरम सों नाँटे
जानत वा दुख कों वे ही जिनसे हैं सैन वे साँटे
राधाचरण कौन से कहिए परे हमारे बाँटे।[5]

उनका परंपरागत संयोग शृंगार-वर्णन प्रणय-व्यापार में प्रवीण राधा-कृष्ण के युगल स्वरूप की मनोरम झाँकी प्रस्तुत करने में सक्षम है–

पावस ऋतु परम पवित्र प्रेम-कुंजन में
बिहरें सखि श्यामा श्याम कुंज निकुंजन में
परिरंभन चुंबन आदिक सुख भंजन में
बिहरें सखि श्यामा श्याम कुंज निकुंजन में
भामिनि चपला सों चोंक-चौंकि डर जाहीं
भुज भर-भर लेत लगाय पिय ताहीं
कवि 'मंजु' मदनमति, रति-गति अति लंजन में
बिहरें सखि श्यामा श्याम कुंज निकुंजन में।[6]

श्रीकृष्ण के प्रेम की रीति सबसे अलग और जटिल है। जो उन पर अपना तन-मन-धन न्योछावर करता है, वे उसी को पीड़ा देकर अपनी 'न्यारी रीति' से परिचित कराते हैं–

लाल की रीति सबन ते न्यारी
जो बारत तन, मन, धन अपनो ताकी करत खुआरी
हम हूँ लखें बहुत से नागर पै यह नहीं निहारी
राधाचरण कहाँ लों निबहें ऐसी भाँति बिहारी।[7]

राधा का प्रेम से परिपूर्ण मुखमंडल प्रभाकर के समान है। कृष्ण के मनोहर दृग-कमल उसे निरखकर सदैव प्रफुल्लित रहते हैं। उनकी संयोगपूर्ण प्रेम-लीला की अंतरंग स्थिति यथेष्ट आनंददायक प्रतीत होती है–

चुंबन करत कबहूँ, भरत भुजान बीच
कबहूँ नगीच हैंच, भींच भरे दाँव के
कबहूँ अधर-सुधा पान करें मान दै दै
कबहूँ कपोल गोल गहकि गुलाब के
मंजुकवि कबहूँ सघन कुच कुंभन पै
करदान नखछत नखराव के
तिय विपरीत करें प्रीति पिआरे
उर लिपट हरि-हरि दाँव के।[8]

गोस्वामीजी का भावलोक एवं प्रेमलोक जीवन की मांसल अनुभूतियों से समन्वित होकर लालित्य के यमुनाजल से अभिमंत्रित कन्हैया की बाँसुरी का स्वर बन गया है। उनकी प्रसिद्ध काव्य-रचना है–दामिनी दूतिका। इस लघुकाव्य में प्रवासी प्रियतम के लिए दामिनी को दूत बनाकर पत्र भेजनेवाली विरह-विदग्धा नायिका की मिलनोत्कंठा और सफल मनोरथ का

 ISSN 0975-735X

सुरुचिपूर्ण वर्णन किया गया है। इसके प्रारंभ में उन्होंने लिखा है–

ओप भरो यूरोप को, विद्या विविध विधान
तरुण अरुण अनुराग सों, आयो हिंदुस्तान
नववय नवविद्या विमल, नव अधिकार असेस
नव उछाह अनुराग नव, नवल वेस नव देस
विनय प्रनय भाजनहती, ताकी कोऊ नारि
मधुर वयन नीरज नयन, रति की सी अनुहारि।[9]

नायिका की विरह-वेदना और मिलन की अभिलाषा निरंतर बढ़ती चली गई। कालिदास के यक्ष के मेघदूत के समान इसने भी संदेश भेजने के लिए दामिनी को दूती बनाया और पत्र-व्यवहार करने का निर्णय लिया। आधुनिक जीवन की ओर अग्रसर भारतेंदुयुग में बिजली या दामिनी को पत्र भेजने के लिए दूती के रूप में प्रयोग कवि की प्रतिभा का प्रमाण है–

विरह-वेदना उत बढ़ी, इत मिलवे की आस
उत अनुभव सुपने इतै, उत अश्रू इत श्वास
तब नागरि मन में कियो, यह विचार निरधार
दामिनी दूती मध्य में, करै पत्र-व्यवहार
दूत कौन विध भेजिए, है महिनन की राह
पत्र मेल से मेलिए, तबहु न होय निबाह।[10]

गोस्वामीजी की दृष्टि में पत्री या पत्र आधा मिलन है। इसके पहुँचते ही विरह-वेदना कम हो जाती है और नायिका के प्रेम का आश्वासन मिलता रहता है–

दूत कौन विध भेजिए, है महिनन की राह
पत्र मेल से मेलिए, तबहुन होय निबाह
पत्री आधो मिलन है, जो वह पहुँचै पास
मोहर हरै बिरहै दरै, करै अधिक आश्वास।[11]

रंग-रंगीली नायिका ने रंगीन कागज लेकर रंग से अपने मन का रंगीन आशय प्रकट करते प्राणप्रिय-प्रेमनिधि नवरंग को अपना जीवन-प्राण स्वीकार करते हुए लिखा–

लिखन पढ़न की है नहीं, कही-सुनी नहिं जात
अपने मन में जानियो, मेरे मन की बात
करम कुटिलवश परम प्रिय जबतें गए बिहाइ
हाय-हाय कर रैन-दिन, ए बिन चैन नसाह।[12]

अभिलाषा, चिंता, स्मृति, उद्वेग और जड़ता आदि विरह-दशाओं के वर्णन से युक्त इस सारगर्भित पत्र में नायिका की यह दशा हो गई है कि वह प्रियतम की तस्वीर सीने से लगाए रहती है और सभी जगह आध्यात्म जैसी स्थिति में उसी की मोहन माधुरी का दर्शन करती है–

जल में, थल में, सकल में तुम्हीं दिखाई देत
फिर क्यों मोहन माधुरी छिन छकाए हरि लेत
कौन भाँति बरनन करौं, हैं कलेस अतिसेस
याते वेगी आइए, फिरकर अपने देस।[13]

नायक इस पत्र के उत्तर में लिखता है कि आवास काफी दूर होने पर भी उसके प्राण सदैव अपनी प्रिया के पास ही रहते हैं। सुखकंद नायक के हृदयानंद प्रदायक पत्र को पढ़कर वह भावविभोर होकर बिन दाम की दासी के रूप में दूसरा पत्र लिखती है। इसके उत्तर में नायक अपनी मनोभावना जलतरंग, सूरज प्रभा और चंद्रकिरण की परछाई का उदाहरण देकर अभिव्यक्त करता है–

हे सुकुमारि! कुमार तन, ज्यों-ज्यों प्रफुल्लित होत
त्यों-त्यों मेरे हृदय में, अभिलाषा उद्योत
तुम्हें एक रस प्रेम को, व्यसन रहै दिन-रात
मैं अनेक उत्पात में, तुव छवि सुमरत जात
'मो में तो में' 'तोहि में मो में' अंतर नाहिं
जल-तरंग सूरज-प्रभा, चंद्रकिरन परछाहिं।[14]

नायिका ने अपने अंतिम पत्र में अपनी मिलनोत्कंठा को अत्यंत प्रभावशाली रूप में नैवैद्य प्रदान किया है। वह उसे सुंदर प्रियपद धारण करने के लिए आमंत्रित करती हुई पत्र को विरह-बाण से उत्पन्न घाव पर नमक छिड़कने के समान मानती है–

बिरह बान हिरदो छिदो, भयो घनेरो घाव
तामें प्रिय पत्री लगै, जैसे लवण पुराव
तप्त तयो हिरदो भयो, बिरहानल के जोर
ता में घृत की आहुती, पत्र होत चितचोर।[15]

मन की सुकोमल भावनाओं के निरूपण में कुशल गोस्वामीजी ने नायिका के माध्यम से तत्कालीन लोकजीवन में प्रचलित उक्तियों का सुंदर वर्णन किया है। इसकी निम्न पंक्तियाँ अत्यंत लोकप्रिय और प्रसिद्ध हैं–

कागज भीजत नयन जल, कर काँपत मसि लेत
पापी बिरहा मन बसत, वृथा लिखन नहिं देत
या बसंत के मध्य में, जो नहिं ऐहों कंत
यो यह प्रान पखेरुआ, उड़ि उठि जैहे अंत।[16]

'सफल मनोरथ' के साथ अंत में इसका समापन भारतेंदुयुगीन 'दामिनी दूतिका' की महत्त्वपूर्ण विशेषता है–

यातायात संदेस की, लखि लीनी गुरु लोग
तबहीं अति आनंद रसों, सम्मत कियो सुजोग
दामिनी दूती मध्य दै भौ विवाह उत्साह
पुनि प्रीया प्रीतम मिले, प्रेमपंथ निर्वाह।[17]

गोस्वामीजी की भक्ति-भावना से संबंधित रचना है–'वैष्णव बोधिनी' और वीररसपूर्ण खंडकाव्य है–'ब्रजेंद्र विजय'। इसमें भरतपुर के राजा जवाहरसिंह द्वारा मुगल सम्राट औरंगजेब आलमगीर पर किए गए आक्रमण की शौर्यगाथा का वर्णन है–

जबलों दिल्ली नगर यवन शोणित नहीं भीजै
तब लों जाट कहाय हाय जग में कहा कीजै?

दिल्ली करूँ बिधंस वंश जो सूरजमल को
यवनबीज नहीं रहै, दिवैयालों तिल जल को।[19]

'पद-प्रलाप'[20] 'प्रेमबगीची'[21] श्रृंगार-भावना के काव्य हैं। 'हित-विंशति'[22] प्रशस्ति काव्य है। 'नवभक्तमाल' जीवनचरित्रात्मक मुक्तक काव्य है। इसमें श्री नानक, श्री गुरुगोविंदसिंह, श्री रनजीतसिंह, श्री आनंदघन, श्री केशवदास, श्री बिहारी, श्री दादूराम, श्री मलूक, श्री रसखान, श्री नागरीदास, श्री नाभा, श्री प्रियादास, श्री हरिश्चंद्र, श्री गंगाबाई आदि से संबंधित मुक्तक पद्यों के साथ ही अंत में अन्य भक्तों की सूची दी गई है। श्री केशवदास के विषय में कवि ने लिखा है–

सोई कविवर केशवदास की रामचंद्रिका राम प्रिय
नृपति बुंदेले निकट रहत नवरत्न सुहायो
मरेउ संग नहिं छुटै सोच गरलै सब खायो
प्रेत जौन दुख भौन मिली छूटै नहिं कैसे
तुलसीदास उपाय पाय कीनी तब तैसे
श्रीरामचरित रसभरित कह प्रेतयोनि सब परि हरिय।[23]

श्री प्रियादास ने भक्तमाल की रसबोधिनी टीका लिखकर प्रेमभक्ति का प्रसार किया है–

श्री प्रियादास रसबोधिनी भक्तमाल टीका करी
देह प्राण को संग संग जमुना को जैसे
शिव गौरी अरधंग प्रेम भक्ति को तैसे
श्रीधर श्रीभागवत नीलकंठ जिमि भारत
निश्चल अर्थ बताय जीव कोटिन को तारत
श्रीनाभा हृदय विराज कै जैसे तैसे मति भरी।[24]

इंद्रगढ़ में राम-कृष्ण के रक्षक श्री रनजीतसिंह की चर्चा 'नवभक्तमाल' में इसप्रकार की गई है–

बिरह-बान हिरदो छिदो, भयो घने से घाव
रनजीतसिंह ब्रज इंद्रगढ़ राम-कृष्ण रक्षाकरी
जुरे फिरंगी आय भरतपुर नगरी घेरी
काल-यवन मधुपुरी मनो नारद की प्रेरी
हल मूसल धर रामचक्र लौ त्रिभुवन नायक
कोटि चोट नहिं लगी हार माने दुखदायक
ब्रजवासिनि के भक्ति बस आठ पहर चौंसठ घरी।[25]

धार्मिक जीवन में गोस्वामीजी की दो रचनाएँ विशेष प्रसिद्ध हैं–'धर्मगीत'[26] और दूसरी 'भूभारहरण प्रार्थना'।[27] 'धर्मगीत' के निम्न छंद के कारण इन पर यह आरोप लगा कि ये वैष्णवधर्म को त्यागकर ब्रह्मधर्म में रुचि ले रहे हैं–

हमें प्रभु की कृपा लखात
भारत में जब फिर वैदिक मत प्रगट होत दिखरात
यहाँ तहाँ मानस पूजा की पर सुनाई जात

राधाचरण सनातन हमरो आर्यधर्म अवदात
हम हैं आर्यावर्त निवासी
आर्य नाम से विदित जग में आर्यधर्म विश्वासी।[28]

'विधवा विलाप'[29] इनकी करुणरस-प्रधान काव्य-कृति है। इसमें निहित पीड़ा संपूर्ण भारतवर्ष की पीड़ा है। इसीलिए कवि में 'करुणा-वरुणा यतन' भगवान से करुण स्वर में प्रार्थना की है–

हे करुणा वरुणा यतन! तन का चित वो हम ओर
विधवा भारत वरस की पावत अति दुख घोर
मनुष्य जन मरिवो हतो जो पै दया विचारि
देते और ही खंड में जहाँ सुखी नर नारि
कौन पाप मैंने कियौ भयौ बाल वैधव्य
अरे दई! रे निर्दयी! धिक तेरो कर्त्तव्य
हाय! हाय! कियौ कहा मैंने जीवन धार
छिनभर दिन रैनभर जानि नाहिं पतिसार।[30]

भारतेंदुयुगीन काव्य का प्रकृति वर्णन प्रायः रीतिकालीन विलास काव्य से प्रभावित है। गोस्वामीजी भी इसके अपवाद नहीं हैं। फिर भी अनंत रूपात्मक प्रकृति के सौजन्य से संपन्न तरणि तनूजा यमुना के तमालतट तथा गिरिराज गोवर्द्धन के चरि साहचर्य से प्रतिष्ठित अनुराग भाव के विलास-वैभव के साथ ऊर्जास्वत सुखभोग की कामना ने इनके प्रतिष्ठित स्वभाव के अनुरूप प्राकृतिक सौंदर्य-वर्णनों को तत्कालीन ब्रजसंस्कृति के राज-वैभव की संस्मृति से हृदयग्राही बना दिया है। प्रफुल्लित पुष्पों की सुरभित वनस्थली, कोकिल की कलकूजन एवं मकरंदरस सिक्त भ्रमरावली के गुंजार से सुवासित रमणीय निकुंजों में शीतल सुरभित समीर के प्रणय आश्वासनों का आनंद चाहे किसी को विषयी या भोगलिप्सु के रूप में मिले या मनोहर भक्ति साहचर्य-संयोग के रूप में; गोस्वामीजी ने अपने आराध्य 'श्यामा-श्यामा के साथ इसे नयनाभिराम बनाने का यथासंभव प्रयास किया है। काव्य-जगत में इनका उपनाम' मंजु' बहुत लोकप्रिय है। 'ग्रीष्म विनोद' में इन्होंने अनुप्रास अलंकार की भव्यता से स्वाभाविक रूप में सर्वप्रियता प्राप्त ब्रजभाषा का अत्यंत सुंदर एवं प्रशंसात्मक रूप तत्कालीन भोगमूलक संस्कृति के परिवेश में प्रस्तुत किया है–

फूल हैं, फरस हैं, फरासी पंखे हैं
फैल है, फरेब है, फुवारे हैं, फुवार हैं
बेली है, सुनायु है, बरफ है, सुबधूजन हैं
बारुणी हैं विधुतै, बिहार है, बहार है
'मंजु' कवि मल्लिका है माधवी है, मालती है
मलयज माधुरी है, मोहनी है, भार है
गान हैं, गुलाब हैं, गिजा हैं, गरकाव हैं
गेंदे गुलगजरे हैं, ग्रीष्म गुंजार हैं।[31]

'ललना और ललन' के वाटिका भवन का सुंदर रूप भी इस संदर्भ में उच्चस्तरीय समाज

 ISSN 0975-735X

के अनुकरण हेतु अवलोकनीय है–

बेला की बंगलियाँ बहारदार मोहत हैं सेवती के शिखर समूह शुभ्र राजै हैं
केलाकेरी कुरम-कबाड़ हैं कदंबन की मालती की मारगोल अति छवि छाजै हैं
लखि-लखि ललना ललन को ललित रूप लाल-लाल रति पति भाजै हैं
फूल के इतरदान विविध कटोरदान बारुनी गिलास फून मानै है
'मंजु' फूलन के बीजना बिछौना बिछे फहरें फुहारें फूल ही के भरे पानी है
फूल ही में फूल बंगला में झरे फूल ही की सी बानी है।[32]

वैभव-विलास के साधनों से संपन्न समाज में ग्रीष्म में भी हेमंत का सुख प्राप्त किया जा सकता है–

ग्रीष्म में प्यारे हिमंत बनाइए
कुंज में लाम समीर के यंत्र शरीर में किंचित कंप बनाइए
शीतलता अनुमोद हेतु हरि हौज भरे हिम माहि नहाइए
पीजिए प्रीतम ऐसो पयोधर पंतन सों निसिकार सुनाइए
कोई विधना अहो! भीषण ग्रीष्म में प्यारे हिमंत बनाइए। [33]

'शिशिर सुषमा' में गोस्वामीजी का प्रेम-परामर्श राधा-कृष्ण के विलास-वैभव का साकार रूप प्रस्तुत करने के साथ-साथ तत्कालीन संपन्न समाज के रसिकजनों के लिए शिशिर के प्रभाव का लाभ उठाने के उपाय बताने में भी समर्थ प्रतीत होता है–

आले रंग-रंग के तनाले दरबाजन में
परदे मुंदाले वे झरोखे ज्यों आवे पौन
चारों ओर गरम गुदाले बिछवाले
गाले छाले धूप अगर अँगीठी दहकाले भौन
मंजु कवि खाले जरा, गज़क चढ़ाले मद
बीड़ियाँ चबाले भरी विविध मसाले जौन
भुजन फँसाले, तिय उर लिपटाले अरे
दुबकि दुशाले ये कसाले तू मिटा ले क्यों न।[34]

शीत से 'सिसराए' हुए दपती के आवास का चित्रण करते हुए कवि ने रीतिकालीन काव्य की झाँकी इस प्रकार प्रस्तुत की है–

फूल हैं फरस हैं फरासी पंखे हैं
रतन जटिल त्यों घटित घर चारों ओर
दरन दिवारन किवारन मुँदाएँ हैं
परदा पसम के असम के पड़े हैं गोल
गेंदुआ गलीचन गिल गुँदवाए हैं
मंजु कवि आतश अँगीठी धूम धूम धूम
धूम झूम-झूम सुचि सौरभ सुहाए हैं
केलि कल क्रीड़ा ब्रीड़ा हसन बसन दुति
दंपति दिपत दिव्य शीत सिसराए हैं।[35]

यह तथ्य सदैव ध्यान देने योग्य है कि सन् 1857 ई॰ की क्रांति के उपरांत तत्कालीन धर्माश्रित एवं लोकाश्रित काव्य की स्वच्छंदतावादी मनोवृत्ति को हिंदू-मुस्लिम सामंजस्य के साथ-साथ ब्रिटिश सभ्यता से भी समझौता करना पड़ा। इसके व्यापक प्रभाव से भारतेंदु युगीन संक्रांतिकाल में एक नए प्रकार के पुनरुत्थानमूलक सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का उदय हुआ, जिसने समस्त जनसमुदाय को नवचेतना से परिप्लावित करके राष्ट्र की उन्नति के लिए प्रेरित किया। सामंतवाद तथा धनी-मानी समुदाय की विचारधाराओं के अंतर्विरोध से परिवर्तित परिस्थितियों में एक नया उत्साह जनभाषा तथा पुनरुत्थान के सृजन माध्यम से श्रेयस्कर प्रभावों द्वारा विकसित नवीन तथा प्राचीन काव्य के नूतन कलेवर में प्रस्तुत हुआ। धनी-मानी जनसमुदाय के द्वारा सृजित भारतीय पूँजीवाद ने सामंतवाद-विरोधी ऐसे बुद्धिजीवीवर्ग को सहज रूप में प्रोत्साहित कर दिया, जो एक ओर तो सामंती सत्ता की मुक्ति के पक्षधर ब्रिटिश शासन का प्रशंसक था और दूसरी ओर जन-शोषणकारी नीतियों का कट्टर विरोधी। स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग का समर्थक, देशी उद्योग-धंधों के विकास एवं भारतराष्ट्र को भारत माता के रूप में भक्ति-भाव के साथ लोकव्यापी विवेकसम्मत धारणाओं से अनुप्राणित यह बुद्धिजीवीवर्ग हिंदी साहित्य के विकास में भी अत्यंत प्रभावशाली सिद्ध हुआ। देश की दुर्दशा करनेवाले 'कलियुग नरेश' की फागलीला का वर्णन गोस्वामीजी ने इस प्रकार किया है–

खेलत बसंत कलियुग नरेश, लिए कपट रूप कामिनी सुदेश
निज भाग फाग लखि उठी फूल, भरे काम, क्रोध फेंटन गुलाल
स्वारथ सुवास उत्तम अबीर, लिए लोभ-मोह पाखंड मुट्ठी धीर
कुलवधु त्रास लखि रही लुकाय, सब जग में हो रही हाय-हाय।[36]

देश की दशा का यथार्थ वर्णन करने के लिए इन्होंने 'टिक्कसी होली' नामक कविता का आश्रय लिया है–

ऐसी होरी खिलाह लाट मो पैटिक्कस लगाई।
साल छियासी ऐसी लागी, हा-हाकार मचाई।
कौन घड़ी के पाप हमारे, मुलक में मातम छाई।
राजा बाबू मीटिंग रोबें, बैठे बनियाँ भाई।
दफ्तर-दफ्तर मुंशी रोबें, हाय कम बढ़ती आई।
अब मछुकरो उपाय जुए सो देनों पड़े न पाई।।
भारत आरत गारत दिन दिन बिना मौंत भर जाई।
हाय! शीघ्र करो कछु उपाई।[37]

'सार सुधानिधि' में प्रकाशित इनकी होली बहुत प्रसिद्ध है। इसमें निहित राष्ट्रीय हित की मंगलकामना स्वाधीनता के संपादन हेतु सदैव स्मरणीय है–

अब विद्यारंग रंगोचित में गुण गुलाल प्रगटोरी।
अमल अबीर कुरीत कुंकुमा देहु भूमि में फोरी।
निडरता डफधुधको री।
कर उत्साह राह में आओ मैं सब भ्रम विसरो री।
स्वाधीनता करो संपादन भारत जैन उचरो री।

राधिका चरन चहो री।[38]

बसंत ऋतु का सुंदर साज-सज्जा-संपन्न वन-उपवन के प्रफुल्लित रूप का वर्णन भी इनके द्वारा किया गया है–

ललिता दिक ललना लई है संग, नवरंग अंग सुखमा सुहाई है सकल साज!
बाजत विविध रूप रागिनी, धरैं सरूप आनंद अनूप चहुँ ओर रही छवि छाज
'मंजु' कवि कापै जाए कहचौ, एक मुख रति रुख मलीन तन छीन भौ मदनलाल
वन-उपवन बाग रागकर फूलि रहे, झूल रहे श्यामा श्यामा सरल हिंडोरे आज।[39]

गोस्वामीजी उच्चकोटि के हास्य-व्यंग्यकार थे। ब्रिटिशकालीन भारत की राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था पर इनके द्वारा विरचित हास्य-व्यंग्य बहुत लोकप्रिय हुए हैं। इनमें स्वाभिमानपूर्ण स्पष्टवादिता के साथ-साथ उस युग का परिहासपूर्ण उक्तिवैचित्र्यपूर्ण राष्ट्रीय अभिमत स्पष्ट प्रतीत होता है–

हे ईलबर्ट बिल हाय हाय, मुश्किल हाय हाय
ब्रिटिश दिखावा हाय हाय, जहर पिलाया हाय हाय
कोई न सुनता हाय हाय, चच्चा चच्ची हाय हाय
लाट न मानें हाय हाय, कुछ नहीं जानें हाय हाय
सूरत फूंकी हाय हाय, थूकाथूकी हाय हाय
जब तक दम है हाय हाय, सिर की कसम हाय हाय
लड़ना मरना हाय हाय, कभी न डरना हाय हाय।[40]

लार्ड रिपन में 'षोडशोपचार पूजन' द्वारा इन्होंने उनसे देश के कल्याण की कामना करके जिस परंपरा का पालन किया है, उसी का विरोध इनके द्वारा दक्षिण-भारत के सन् 1876-77 के भयावह अकाल के कारण करना पड़ा। लार्ड क्लिटन की आलोचना हेतु 'दयामय लार्ड क्लिटन' नामक कविता में इन्होंने निर्भीकतापूर्वक अपना आक्रोशपूर्ण अभिमत व्यंग्यात्मक रूप से इस प्रकार प्रदर्शित किया है–

सुनत प्रजा की दुरदशा, जो नृप नाहिं अधीर
सो नट सम वचन कुशल कहा कियौ भये वीर
करें यज्ञ जब तब अनेक भारतवासी लोग
जो प्रभु लार्ड क्लिटन आय शुभ जोग
बहुत विनत हैं अंत में हम सब भारतवासी
यदि अकाल अपनय करो अहो! अखिल सुखरासी।[41]

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि राधाचरण गोस्वामी भारतेंदुयुग की प्राचीन और नवीन की लोकमंगलकारी समन्वयशील परांपरा के प्रतिनिधि कवि हैं। इनके द्वारा काव्य के परंपरागत कलेवर को नवीन संस्कारों तथा प्राकृतिक वस्तुओं एवं मर्मस्पर्शिनी शक्ति से परिपूर्ण बनाने का भावावेगपूर्ण प्रयास सभी प्रकार की युगीन प्रवृत्तियों के अनुरूप प्रतीत होता है। ब्रिटिश प्रपंचावरण को भेदकर राष्ट्रहितकारी व्यंग्यवाणों का सटीक प्रयोग इनके काव्य की मुख्य विशेषता है। इसे राधा-कृष्ण की सेवा में जनचेतना का मंगलाचरण मानना ही हमारा सौभाग्य है–

जय-जय प्रलय-पयोधि-शयन शुभ-अयत अभीमय

जय-जय अज-अद्वैत-अजर अतिशक्ति भयाभय
जय-जय इष्ट-वरिष्ठ-शिष्ट शरणागत त्राता
जय-जय दीनानाथ दीन-वत्सल दीनन गति
दीनबंधु दीनातिदीन शुद्ध करो मति।[42]

संदर्भ

1. राधाचरण गोस्वामी, नवभक्तमाल, छंद सं॰ 54, ब्रजभूषण यंत्रालय, मथुरा, संवत् 1943 वि॰
2. राधाचरण गोस्वामी, षोड्स हिंदी साहित्य सम्मेलन, वृंदावन कार्य-विवरण, प्रथम भाग, स्वागताध्यक्ष के रूप में गोस्वामीजी का भाषण, पद्यांश, पृ॰ 8, संपादक कृष्णचैतन्य गोस्वामी, विद्याविलास प्रेस, बनारस, संवत् 1983 वि॰
3. वही, पृ॰ 9
4. वही, पृ॰ 8
5. राधाचरण गोस्वामी, कविवचन सुधा, पद प्रलाय, पद 5, अगस्त, 1880 ई॰, संपादक भारतेंदु हरिश्चंद्र, ला॰ प्रेस, बनारस
6. वही, पद 5
7. वही, पद 8
8. वही, ग्रीष्मविनोद, पद 11, अप्रैल, 1878 ई॰
9. राधाचरण गोस्वामी, दामिनी दूतिका, छंद 1, 2, 3, खड्ग विलास यंत्रालय, बाँकीपुर, 1907 ई॰
10. वही, छंद 4, 5, 6
11. वही, छंद 6, 8
12. वही, छंद 11, 12
13. वही, छंद 13, 19
14. वही, छंद 31, 32, 33
15. वही, छंद 35, 36
16. वही, छंद 38, 40
17. वही, छंद 41, 42
18. राधाचरण गोस्वामी, संपादक, अतुलकृष्ण गोस्वामी, श्रीकृष्ण प्रिंटिंग प्रेस, वृंदावन
19. वही, श्री ब्रजेंद्र विजय, पृ॰ 12, मथुरा प्रेस, मथुरा
20. वही, कविवचन सुधा, संपादक भारतेंदु हरिश्चंद्र, ला॰ प्रेस, बनारस 1880 ई॰
21. वही, भारतेंदु, संपादक राधाचरण गोस्वामी, रामनारायण प्रेस मथुरा, 1885 ई॰
22. वही, वि॰क॰ प्रिंटिंग॰ प्रेस, मथुरा
23. वही, नवभक्तमाल, छंद 20, ब्रजभूषण यंत्रालय, मथुरा, संवत् 1943 वि॰
24. वही, छंद 49
25. वही, छंद 10
26. वही, हिंदू बांधव, कोहिनूर यंत्रालय, लाहौर, मई, 1876 ई॰
27. वही, हरिश्चंद्र चंद्रिका और मोहन चंद्रिका, संपादक मोहनलाल-विष्णुलाल पांड्या, सुदर्शन यंत्रालय, उदयपुर 1881-82 ई॰
28. वही, हिंदू बांधव, कोहिनूर यंत्रालय, लाहौर, मई, 1876 ई॰
29. वही, हिंदी प्रदीप, संपादक, बालकृष्ण भट्ट, ला॰ प्रेस, बनारस, 1879 ई॰

ISSN 0975-735X

30. वही, जुलाई, 1879 ई॰
31. वही, कविवचन सुधा, ग्रीष्मविनोद, अप्रैल, 1878 ई॰ संपादक भारतेंद्र हरिश्चंद्र, ला॰ प्रेस, बनारस
32. वही, 8-45
33. वही, ग्रीष्मविनोद, अप्रैल, 1878 ई॰
34. वही, शिशिर सुषमा, छंद 39, खड्ग विलास प्रेस, बाँकीपुर 1883 ई॰
35. वही, छंद 42,
36. वही, हिंदू बांधव, फरवरी, 1876 ई॰ संपादक, कोहनूर यंत्रालय, लाहौर
37. वही, भारतेंदु, जनवरी 1886 ई॰, संपादक राधाचरण गोस्वामी, रामनारायण प्रेस मथुरा
38. वही, सार सुधानिधि, मार्च 1879 ई॰, संपादक सदानंद मित्र, सरस्वती यंत्रालय, कलकत्ता
39. वही, कविवचन सुधा, सितंबर 1877 ई॰ संपादक भारतेंदु हरिश्चंद्र
40. वही, भारतेंदु, जून 1883 ई॰, संपादक राधाचरण गोस्वामी, रामनारायण प्रेस, मथुरा
41. वही, कविवचन सुधा, अक्तूबर, 1877 ई॰, संपादक भारतेंदु हरिश्चंद्र
42. वही, भारतेंदु, अप्रैल 1883 ई॰, संपादक राधाचरण गोस्वामी, रामनारायण प्रेस, मथुरा

197/199, **डॉक्टर्स कॉलोनी**
सिविल लाइंस, बरेली (उ॰प्र॰)
मो॰ 9927373723

हिंदी व्याकरण के परिष्कारक आचार्य किशोरीदास वाजपेयी

डॉ॰ निर्मला तिवारी
हिंदी प्रवक्ता
स्व॰ नरेंद्रसिंह महाविद्यालय, गजनेर, कानपुर (देहात)

समाज के सुधीजन अपनी भाषा के विकास के लिए सदैव चिंतित रहे हैं। भाषा का सम्यक् विकास तभी संभव है, जब उसका कोई व्याकरण हो। भाषा का विकास तो सहज रूप से होता है, किंतु उसे व्याकरणबद्ध करने का कार्य बड़ा ही श्रमसाध्य है और इसी के साथ बुद्धिमत्ता की अपेक्षा करता है। डॉ॰ परममित्र शास्त्री ने सूत्रशैली में व्याकरण को इस प्रकार परिभाषित किया है, 'व्याकरण शब्द की व्युत्पत्ति–वि + आङ् + कृ + ल्युट से मानी जाती है। पाणिनी व्याकरण के अनुसार इन उपसर्गों और प्रत्ययों सहित शब्द का अर्थ होता है–एक शास्त्र जिसके द्वारा शब्दों का अर्थ-विस्तार समझा जाए।'1

आचार्य किशोरीदास वाजपेयी हिंदी व्याकरण के परिष्कारक के रूप में सुविख्यात हैं। उन्होंने अपने जीवन के तीस-पैंतीस वर्ष हिंदी व्याकरण के परिमार्जक तथा परिष्कार के रूप में व्यतीत किए। सन् 1930 में उन्होंने यह कार्य प्रारंभ किया और लगभग 1960-61 तक लगातार इस दिशा में अनवरत कार्य किया और भाषा की छोटी-छोटी इकाइयों से लेकर उसकी बड़ी-बड़ी समस्याओं पर अपने व्यावहारिक तथा प्रभावपूर्ण विचार दिए। जटिल और विवादास्पद प्रश्नों पर उनके तर्कसम्मत निर्णयों को देखते हुए बहुभाषाविद् पं॰ राहुल सांकृत्यायन ने उन्हें आचार्य की पदवी से विभूषित किया। वाजपेयीजी के प्रति राहुल सांकृत्यायन का यह समादर ही है कि काशी नागरी प्रचारणी सभा ने उन्हें हिंदी का व्याकरण लिखने के लिए आमंत्रित किया। परिणामत: वाजपेयी जी ने संपूर्ण हिंदी जगत और भारतीय वाङ्मय को 'हिंदी शब्दानुशासन तथा भारतीय भाषाविज्ञान' जैसे अमूल्य ग्रंथ प्रदान किए।

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने भी वाजपेयी कृत 'लेखनकला', 'अच्छी हिंदी का नमूना', 'अच्छी हिंदी', 'हिंदी शब्द निर्णय' और 'हिंदी शब्द मीमांसा' आदि ग्रंथ पढ़े थे। इनसे प्रभावित होकर आचार्य द्विवेदी जी ने भी कई लेख सरस्वती में प्रकाशित कराए। द्विवेदी जी और वाजपेयी जी ने दोनों मिलकर अपने आचार्य कार्य की ओर प्रवृत्त हुए, क्योंकि दोनों ही विद्वान यह अनुभव करते थे कि हिंदी के रत्नाकर में उचित-अनुचित अव्यावहारिक और व्यावहारिक बहुत कुछ ऐसा एकत्र हो गया है जिसे छाँटना-सँवारना और निखारना आवश्यक है। मूलत: संस्कृत से प्रादुर्भूत हिंदी भाषा अन्य भारतीय भाषाओं के सन्निकट है फिर भी संस्कृत और हिंदी के नियम और उपनियम अपने-अपने हैं। आचार्य वाजपेयी जी कहते हैं, 'इस समय एक और प्रकार की विकृति हिंदी में

ISSN 0975-735X

आने लगी। शब्द शुद्धि के झोंके में लोग यह भूल बैठे कि हिंदी एक स्वतंत्र भाषा है वह संस्कृत से अनुप्राणित है, जैसे अन्य भारतीय भाषाएँ, परंतु वह अपने क्षेत्र मे सार्वभौम सत्ता रखती है। हिंदी की अपनी चाल है, अपनी प्रकृति है, संस्कृत का सब-कुछ आँखें बंद करके हिंदी न ले लेगी। कहीं से भी कुछ लेने में एक विवेक रखा जाता है।'2

आचार्य वाजपेयी ने 'हिंदी शब्दानुशासन' लिखकर व्याकरणसम्मत धातु, नामधातु क्रियाओं का विवेचन किया और कारण बताकर उचित क्रियाओं का निर्धारण व्यावहारिक बताया। आचार्य वाजपेयी ने हिंदी भाषा साहित्य लिखकर भारतीय भाषाओं में सामंजस्य की स्थापना की। शब्दयात्रा में उन्होंने ब्रज और अवधी भाषा के प्रचलित शब्दों के उद्धरण दिए।

उच्चारण के आधार पर हिंदी का रूप गठन नहीं किया जा सकता है। वाजपेयी जी के अनुसार, 'यदि कोई उच्चारण के अनुसार ही वर्णविन्यास करने का आग्रह करे, तो समस्या सामने यह आएगी कि हिंदी जैसी व्यापक भाषा के लिए मानक उच्चारण कहाँ माना जाए। क्या हिंदी के उद्गम-क्षेत्र (कुरु जनपद) के उच्चारण को आदर्श मान लिया जाए। ऐसा करने पर तो उच्चारण के अनुसार वाक्य-विन्यास कुछ इस तरह के हो जाएँगे—मेरी धोत्ती लेत्ते आना, गिंठी भी लाणी है—तब वह सब साहित्य गड़बड़ी में पड़ जाएगा। जहाँ लिखा है—मेरी धोती लेते आना, अँगीठी भी लानी है। इसी तरह उस जनपद में बोलते हैं—काड़ा स्या साँप निकड़ा। अन्यत्र बोलते हैं—काला स्याह साँप निकला।'3

वाजपेयी जी ने परकीया शब्दों को ग्रहण करने के संबंध में लिखा है कि हमें उन्हें हिंदी की प्रकृति के अनुसार ग्रहण करना चाहिए। इस संबंध में अरबी, फारसी और अँग्रेजी के शब्दों को हिंदी के व्याकरण के अनुसार ग्रहण करना चाहिए। वाजपेयी जी उच्चारण भेद करने के लिए हिंदी शब्दों के नीचे 'बिंदु' लगाने के पक्षधर नहीं थे। अँग्रेजी में उन्होंने 'ट्रेन' जैस शब्दों को स्त्रीलिंग माना है और हिंदी में उनकी क्रियाएँ तदनुरूप ही चलती हैं।

वाजपेयी जी कहते हैं कि हिंदी में पहले 'अंतर्राष्ट्रीय' शब्द चलता था और चलता आ रहा है, परंतु जब काशी के विद्वानों ने 'राष्ट्रिय' गलत बताकर 'राष्ट्रीय' चलाना शुरू किया, तब 'अंतर' के साथ 'राष्ट्रीय' की (संस्कृत व्याकरण के अनुसार) संधि करके 'अंतर्राष्ट्रिय' विशेष चलाया। आचार्य किशोरीदास वाजपेयी ने अपने ग्रंथों में हिंदी व्याकरण का व्यावहारिक रूप प्रचलित कराया है। उन्होंने कामताप्रसाद गुरु, अंबिकाप्रसाद वाजपेयी और रामचंद्र वर्मा आदि की पुस्तकें पढ़कर उनकी समीक्षा की और खंडन-मंडन भी किया। वाजपेयी जी हिंदी को अंतर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहते हैं, अत: उन्होंने हिंदी का समृद्ध व्याकरण देने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

हिंदी की उत्पत्ति एवं विकास विषयक् विचारणा

वेदों की रचना और संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध ग्रंथों की भाषा में अंतर है। हिंदी भाषा का विकास वेदों की भाषा के बहुत सन्निकट है। कालांतर में जो संस्कृत साहित्य के ग्रंथ लिख गए वे प्राकृत जनभाषा से बहुत अलग थे। प्राकृत भाषा से ही अपभ्रंश जनभाषा के विकास की तीन अवस्थाएँ हैं। प्रथम अवस्था में प्राच्य, द्वितीय अवस्था में पश्चिमी प्राकृत भाषा और तृतीय में मध्य प्राकृत भाषा, जिसमें अवधी, महाराष्ट्री, बुंदेली, ब्रजभाषा आदि का उद्भव हुआ। प्राकृत भाषा के ग्रंथों में पाली, मैथिली के ग्रंथ लिखे गए। प्राकृत के द्वितीय उत्थानकाल के रूप में पाली ग्रंथों का

प्रणयन किया गया।

पूर्व ग्रंथों को पढ़कर आचार्य वाजपेयी ने हिंदी की उत्पत्ति ने निम्न सोपानों को उदाहरण सहित अभिव्यक्त किया है–

1. कहने का प्रयोजन यह है कि वैदिक युग की प्राकृत का कुछ आभास हमें 'गाथा' में मिलता है। इसके अनंतर एक बड़े युग के बाद हम उसी प्राकृत को ऐसे रूप में पाते हैं कि देखकर आश्चर्य होता है।4
2. जिन प्राकृतों में साहित्य-रचना होती थी, उनके नाम हैं–मागधी, अर्द्धमागधी, महाराष्ट्री, शौरसेनी आदि, परंतु जिन प्राकृतों में वैसा साहित्य नहीं बना, उनके नामों का निर्देश प्राकृत-व्याख्याताओं ने नहीं किया। बंगाल, उत्कल, पंजाब तथा उत्तर प्रदेश के पश्चिमोत्तर भाग में जो प्राकृत-रूप चल रहे थे, उनके नामों का कोई उल्लेख नहीं है।5
3. देशभर में जो तीसरी प्राकृत के विविध रूप चल रहे थे, उनका आगे विकास हुआ और ये पूर्ण विकसित रूप ही आज की हमारी प्रांतीय या प्रादेशिक भाषाएँ है–बैसवाड़ी, अवधी, ब्रजभाषा, राजस्थानी, बंगला, मराठी, उड़िया, गुजराती आदि। बहुत-से प्रदेशों ने बहुत पहले से हिंदी को ही अपनी साहित्यिक भाषा के रूप में ग्रहण किया और अपनी मातृभाषा साधारण व्यवहार में रखी।6

आचार्य राहुल सांकृत्यायन ने अपनी संपादित पुस्तक 'हिंदी धारा' में नवम् शताब्दी में गोरखवाणी का उल्लेख किया है। गुरु गोरखनाथ की कविता के कुछ अंश यहाँ प्रस्तुत हैं–जड़ी-बूटी का नावं जिनि लेहु, राज-दुआर पाँव जिनि देहु।

यमन मोहन वसीकरण छाँडौ औचार, सुणौ हो जोगे सरौ जोगारम्भ की बाट।7

गुदही जुग च्यारि तैं आई, गुदड़ी सिद्ध संधि वां चलाई।

गुदड़ी में अतीत का बासा, भणंत गोरख मच्छंद्र का दासा।8

साहित्यिक प्राकृत भाषा में संस्कृत शब्द और उसके व्याकरण का प्रभाव प्रतिलक्षित होता है। प्राकृत भाषा की कर्णकटुता साहित्यिक प्राकृत में तिरोहित होने लगी। प्राकृत संस्कृत के विद्वानों में महाकवि पुष्पदंत अत्यंत प्रसिद्ध थे। वे व्याकरण छंदशास्त्र और अलंकारशास्त्र के उद्भट विद्वान थे। पुष्पदंत का समय दसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध का है।

आचार्य पुष्पदंत की भाषा दुरूह और कठिन है उदाहरण के लिए–

णंदण-वाणि किस बीसमई जाम, ताहि विण्णि पुरिस संपत्त ताम।9

गुरु गोरखनाथ की भाषा से ही हिंदी की उत्पत्ति मानी जा सकती है। पुष्पदंत और गुरु गोरखनाथ की प्राकृतभाषा में से हिंदी का उद्भव खोजने पर हमें पता चलता है कि हिंदी का उद्भव नवीं सदी में गुरु गोरखनाथ जैसे कवियों के साहित्य से हुआ। इस विषय में आचार्य किशोरीदास वाजपेयी कहते हैं, 'और, यदि मान लिया जाए कि उपलब्ध प्राकृत-काव्यों में जो भाषा है, वही उस समय की जनभाषा थी, तो कहना पड़ेगा कि वैसी किसी प्राकृत से हिंदी का कोई दूर का भी संबंध नहीं है। उस प्राकृत की अपेक्षा तो संस्कृत ही हिंदी के अधिक समीप है। या फिर ऐसी कोई प्राकृत होगी, जिसमें वर्ण-संहार, वैसा न हुआ होगा। परंतु उसका रूप आज हमारे सामने नहीं है। इसी प्राकृत में साहित्य न रचा गया होगा। परंतु गोरख आदि की वाणी में कुछ झलक जरूर मिल रही है। उसी प्राकृत से हिंदी की उत्पत्ति समझिए। निश्चय ही वह कुरु जनपद

की प्राकृत (या जनभाषा) संस्कृत से बहुत दूर न हटी होगी। उसी का विकसित रूप हिंदी है।'10

प्राकृत की दूसरी और तीसरी अवस्थाओं में प्राकृत की तिङन्त क्रियाएँ मिलती हैं जिनमें पुल्लिग और स्त्रीलिंग में कोई परिवर्तन नहीं होता। जिस बोली का नाम खड़ीबोली है उसका उद्भव कुरु जनपद और ब्रज क्षेत्र से हुआ है। कुरु जनपद मेरठ संभाग में है और इसका क्षेत्र सहारनपुर, मेरठ, मुजफ्फरनगर, बुलंदशहर आदि जिलों में सम्मिलित है। ब्रज क्षेत्र में आगरा, मैनपुरी, इटावा, ग्वालियर, धौलपुर (राजस्थान) आदि जनपदों में ब्रजभाषा बोली जाती है। दोनों के पास-पास होने से एक तीसरा ही रूप प्रकट होता है जिसे खड़ीबोली कहते हैं–'केवल जनपद में ही नहीं यह खड़ी पायी आगे पंजाब तक चली गई है। इस खड़ी पायी के कारण इसका नाम खड़ी बहुत सार्थक है।'11

संस्कृत के आकारांत शब्द स्त्रीलिंग में आते हैं। खड़ीबोली में आकारांत शब्द पुल्लिग में माने जाते हैं, जैसे–लड़का आता है, पत्ता गिरता है' हिंदी में नपुंसकलिंग नहीं होता। वाजपेयीजी लिखते हैं, 'मतलब यह है कि 'आ' को हिंदी ने अपने शब्दों में 'पुं' प्रत्यय के रूप में ग्रहण किया है, जबकि संस्कृत ने 'आ' को स्त्री प्रत्यय के रूप में अपनाया है। हिंदी अपने आकारांत पुल्लिग शब्दों को स्त्रीलिंग में ईकारांत कर लेती है। 'लड़का-लड़की, मीठा-मीठी, आता-आती इत्यादि।'12

वाजपेयी जी के अनुसार अवधी और ब्रजभाषा हिंदी बहने हैं। कुरु जनपद राजस्थानी का साहित्य भी हिंदी है। वाजपेयी जी के अनुसार मराठी देवनागरी लिपि में लिखी जाती है और वह भी हिंदी की निकटतम भाषा है।

ब्रजभाषा और हिंदी खड़ीबोली की समानताओं तथा असमानताओं के विषय में वाजपेयी जी कहते हैं कि ब्रजभाषा का 'हू' खड़ीबोली में 'ही' हो जाता है। खड़ीबोली में बहुत परिष्कार किया गया, तभी वह कच्चे हीरे की अपेक्षा परिष्कृत हीरा बन सकी है। तभी उसे राज्य और राष्ट्र ने अपनाया है। इस प्रकरण के विस्तार में उन्होंने निम्नांकित बिंदु निर्धारित किए हैं–

1. राष्ट्रभाषा हिंदी में संस्कृत या प्राकृत का उपसर्ग मात्र 'आ' लेकर उसे धातु रूप दे दिया है जैसे–आता है, जाता है।
2. कहीं-कहीं हिंदी ने संस्कृत शब्दों का रूपांतर न करके उसी ढंग पर अपनी अलग चीज बनाई है। 'उत' की जगह हिंदी ने अपना उपसर्ग 'उ' रखा और संस्कृत मूल की जगह अपने जड़ शब्द को बैठा दिया। उन्मूलन के जोड़ का 'उजड़ना' शब्द तैयार।13

हिंदी में एक भी धातु व्यंजनांत नहीं है। संस्कृत की सभी धातुएँ प्राकृत पद्धति से हिंदी में आकर स्वरांत हो गई हैं। वाजपेयी जी कहते हैं, 'हिंदी प्राकृत परंपरा की भाषा है और इसका अपना विपुल शब्द भंडार है।'14 हिंदी के शब्द भंडार में परिस्थितियों के अनुसार आयातित शब्द आते गए और हिंदी व्याकरण ने उनको अपने नियमांतर्गत ग्रहण किया। हिंदी विकास के संबंध में आचार्य किशोरीदास वाजपेयी ने अपने-आपको हिंदी भाषा के बाग का माली बताया है, जिसका काम झाड़-झंखाड़ को उखाड़कर बाग को मोहक बनाना है।

संदर्भ

1. आचार्य किशोरीदास वाजपेयी और हिंदी शब्दशास्त्र, पृ॰ 203
2. वही, पृ॰ 206
3. आचार्य किशोरीदास वाजपेयी, हिंदी शब्दानुशासन, पृ॰ 232

4. वही, पृ० 232
5. वही, पृ० 235
6. वही, पृ० 236
7. वही, पृ० 238
8. वही, पृ० 241
9. वही, पृ० 242
10. वही, पृ० 244-45
11. वही, पृ० 248-49
12. आचार्य किशोरीदास वाजपेयी, हिंदी व्याकरण, पृ० 42
13. वही, पृ० 39
14. आचार्य किशोरीदास वाजपेयी, हिंदी शब्दानुशासन, पृ० 174

वीरेंद्रप्रसाद जैन का रचना-संसार

डॉ॰ अलका प्रचंडिया

प्रत्येक युग में कुछ ऐसे विशिष्ट-शिष्ट व्यक्तियों का जन्म होता रहा है, जिन्होंने अपनी महानता, दिव्यता, भव्यता से जन-जन के अंतर्मानस को आलोकित किया है, जो समाज की विकृति को विनष्ट कर उसे संस्कृति की ओर बढ़ने के लिए उत्प्रेरित करते रहे हैं। उनके उत्तम अध्यवसाओं से पथ के शूल भी फूल बनते रहे हैं। अपने युग के जीर्ण-शीर्ण आचार-विचारों में अभिनव क्रांति का संचार करनेवाले युगपुरुषों की कड़ी में 'साहित्य सुधाकर' वीरेंद्रप्रसाद जैन हिनूर हीरे की मानिंद दीप्यमान थे। डॉ॰ महेंद्रसागर प्रचंडिया के शब्दों में–'वीरेंद्रजी अधुनातन समय के श्रद्धान, श्रम और समत्व के अद्‌भुत सामंजस्य थे।[1] शास्त्रों के गंभीर अध्येता, वाणी के नपे-तुले प्रयोक्ता, छंदशास्त्र के मर्मज्ञ और बहुविध सधे रचनाकार वीरेंद्रप्रसाद जेन दिखने में जरूर साधारण थे, पर चर्या और विचार में असाधारण, रहन-सहन में, चाल-चलन में परंपरावादी, पर विचार में घोर प्रगतिशील, नवोन्मेषी तथा ज्ञान की नित्य लालसा रखनेवाले मनीषी थे।[2] स्वर्गीय वीरेंद्रप्रसाद जैन में समयज्ञता, दूरदर्शिता, निर्भीकता, आत्मधर्मिता, संवेदनशीलता, निस्पृहता एक साथ देखने को मिलती थी, क्योंकि आपका जीवन धर्मप्राण था।

'रइधू पुरस्कार' से पुरस्कृत वीरेंद्रप्रसाद जैन एक ओर सन 1964 से सन् 2004 तक अनवरत मासिक 'अहिंसावाणी' एवं 'द वायस ऑफ अहिंसा' के संपादक रहे तो दूसरी ओर वे महाकवि, गीतकार, नाटककार, एकांकीकार, कहानीकार और अनुवादक थे। साथ ही अनेक मौलिक अँग्रेजी कविताओं और कहानियों के आप सर्जक रहे। आपने 'आदि-आदित्य', 'अजित-अभ्युदय', 'संभव सर्वोदय', 'अभिनंदनार्क', 'सुमित-सवितोदय', 'पद्‌म-पद्‌माकर', 'चंद्रप्रभोदय', 'विमलायन', 'तीर्थंकर भगवान महावीर' नामक तेरह महाकाव्य रचे थे।

इस कलिकाल में बढ़ते हुए भौतिकवादी दु:खों-चक्रव्यूहों से बचने के लिए एक सुगम पर अचूक-सार्थक साधन है–धर्माराधना। 'आदि-आदित्य' महाकाव्य के आराध्य जैनधर्म के प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ ऋषभदेव हैं। तीर्थंकर ऋषभदेव का आविर्भाव कर्मभूमि के युगादि में हुआ। 'महापुराण' में इसका उल्लेख है। तीर्थंकर ऋषभदेव अंक-असि-मसि-कृषि आदि के आविष्कर्ता माने गए हैं। भारतीय वाङ्‌मय में वे परमतपस्वी के रूप में समादृत हैं। महाकवि वीरेंद्रप्रसाद जैन ने संस्कृत के जिनसेनाचार्य कृत 'महापुराण' से, संस्कृत के ही महाकवि अर्हतदास के 'पुरुदेव चंपू' से तथा अपभ्रंश भाषा के महाकवि पुष्पदंत के 'महापुराण' से कथा का चयन किया। इक्कीस सर्गों वाले 'आदि-आदित्य' में बयालीस संस्कृत वर्णवृत्तों का प्रयोग हुआ है। प्रत्येक सर्ग में एक सौ एक छंदों में ही कथ्य पूरा किया गया है। कुल दो हजार एक सौ इक्कीस छंदों में यह महाकाव्य पूर्ण हुआ हे। 'आदि-आदित्य' के अन्य सर्गों की भाँति 'वंदना' में भी एक सौ एक छंदों का प्रयोग हुआ है। प्रथम तीन छंदों का प्रथमाक्षर क्रमशः अ, र, व है। प्रथम छंद देखिए–

आएँ आएँ अनौखे, अज अमर अहें, आदि आदित्य आएँ
आरक्षाशा[3] अहिंसा, अनुचर अचरें[4], आद्रता आचमाएँ
आँकें आत्मा अपूठी, अठअरि[5] अथिरें, अन्तरें आपदाएँ
आदीशाप्ता अकामी, अरत अवतरें, आज अर्चें अघाएँ

जैनधर्म में इस अवसर्पिणी काल के द्वितीय तीर्थंकर देवाधिदेव श्री अजितनाथ का परम पावन जीवनवृत्त 'अजित-अभ्युदय' महाकाव्य में उकेरा गया है। गुणभद्राचार्य कृत 'उत्तरपुराण से इस महाकाव्य की कथावस्तु ली गई है तथा ग्यारह सर्गों में यह महाकाव्य निबद्ध है। जब कोई साधक केवली के पादमूल में बैठकर दर्शनविशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओं का चिंतवन-मनन रूप आत्मसात करता है, तब वह तीर्थंकर होने की पात्रता प्राप्त करता है।[6] ग्यारह सर्गों में विभक्त 'संभव सर्वोदय' महाकाव्य तृतीय तीर्थंकर भगवान संभवनाथ पर आधृत है। महाकाव्य की कथावस्तु का स्रोत गुणभद्राचार्य का 'उत्तरपुराण' है। 'अभिनंदनार्क' महाकाव्य में चौथे तीर्थंकर भगवान अभिनंदननाथजी के पूर्वभवों से मोक्षककल्याणक तक को सँजोया गया है। चौदह सर्गों के महाकाव्य 'अभिनंदनार्क' की कथावस्तु गुणभद्राचार्य के 'उत्तरपुराण' से गृहीत है। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' कृत 'प्रियप्रवास' के संस्कृत के अतुकांत वर्णवत्तों की शैली पर 'अभिनंदनार्क' महाकाव्य रचा गया है। जैनधर्म के पाँचवें तीर्थंकर भगवान सुमतिनाथ के पुण्य पावनचरित पर आधृत 'सुमति-सवितोदय' महाकाव्य है। संसार रूपी दु:खालय से निजात पाने के लिए तीर्थंकरों ने सम्यक् दर्शन ज्ञान चरित्र के समवेत मार्ग का प्रतिपादन किया है। छठवें तीर्थंकर पद्म प्रभु के जीवनाख्यान से गुंफित है-'पद्म-पद्माकर' महाकाव्य। बारह सर्गों में यह महाकाव्य प्रणीत है। आठवें तीर्थंकर भगवान चंद्रप्रभ के जीवन पर आधृत महाकाव्य 'चंद्रप्रभोदय' में सोलह रश्मियाँ हैं। गुणभद्राचार्य कृत 'उत्तरपुराण' के 'चंद्रप्रभोदय' में सोलह रश्मियाँ हैं। गुणभद्राचार्य कृत 'उत्तरपुराण' के चंद्रप्रभचरित से इस महाकाव्य की कथावस्तु उद्धृत है। 'चंद्रप्रभोदय' महाकाव्य शब्दालंकारों और अर्थालंकारों से अलंकृत तथा भक्तिरस से पूर्ण है-यथा-

चंद्रमा चंद्रेश की, चारु-चमक चमकाय,
चंद्र-चरण से चय चले, चंद्रोदय छवि छाय।

तेरहवें तीर्थंकर प्रभु विमलनाथ जी के जीवन पर आधारित 'विमलायन' महाकाव्य दोहा-चौपाई में तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' की तरह जन-मन के उपयोगार्थ रचा गया है। 'विमलायन' की कथावस्तु अपभ्रंश के महाकवि पुष्पदंत के 'महापुराण' तथा गुणभद्राचार्य के उत्तरपुराण से ली गई है। तेरह प्रसंगों में बद्ध महाकाव्य 'विमलायन' में विमलचरित को उकेरा गया है। विमलचरित मानस का अंतिम छंद द्रष्टव्य है-

परम पवित्र कंपिला कण-कण
चतुर्थ काल प्रतिभा मन भावन
प्रकटी गंगा से अति पावन
सस्मित मुद्रा वीतराग जिन
धनि वह टाँकी, आँकी, झाँकी, वीतराग-विज्ञान की
आओ सब हिल मिल जय बोलें, विमलनाथ भगवान की।

महाकवि वीरेंद्रप्रसाद जैन ने पंद्रहवें तीर्थंकर धर्मनाथ के जीवनचरित को पंद्रह सर्गों में निबद्ध

कर 'धर्मोदय' महाकाव्य का प्रणयन किया। 'धर्मोदय' महाकाव्य की कथावस्तु हरिचंद्र कृत 'धर्मधर्माभ्युदय' और गुणभद्राचार्य कृत 'उत्तरपुराणं' से ली गई है। 'धर्मोदय' महाकाव्य के दसवें सर्ग 'यात्रावर्णन' का छंद देखिए–

पथ में बहुत-सी धूल
धूल-धूसरित सभी समूल
हुए कुमार न मलिन शरीर
दिपै काय जैसे जल-क्षीर

'शांतिसुधाकर' महाकाव्य सोलहवें तीर्थंकर शांतिनाथ के जीवनचरित पर आधारित है। सोलह सर्गों के इस महाकाव्य के नायक भगवान शांतिनाथ ने षटखंडाधिप दिग्विजयी पंचम चक्रवर्ती का वैभव एवं चौदहवें कामदेव होकर चरमोत्कर्ष काम-भोग रूप भौतिक सुख विभूति पाई, फिर उसे भी तृणवत् तुच्छ समझकर त्याग दिया और तपोलक्ष्मी से विभूषित हुए। गुणभद्राचार्य के 'उत्तरपुराण' तथा असंग के शांतिनाथ पुराण से इस महाकाव्य की कथावस्तु प्रभावित है। 'शांतिसुधाकर' महाकाव्य में हिंदीभाषा के विविध मात्रिक छंदों में काव्यकथा गुम्फित है। बीसवें तीर्थंकर पर रचित महाकाव्य 'मुनिसुव्रतमार्तंड' में दस सर्ग हैं। यह महाकाव्य सरल, सुबोध शैली में रचा गया है, जो जनसाधारण के लिए पठनीय है।

मध्यकालीन भक्त महाकवि भूधरदास के 'पार्श्वपुराण' को वीरेंद्रप्रसाद जैन ने अपनी किशोरावस्था में पढ़ा था। उनकी भावना हुई कि मैं भी खड़ीबोली में काव्य की रचना करूँ। 'पार्श्वप्रभाकर' दस सर्गों में रचा गया महाकाव्य उस भव्य भावना का प्रभावक परिणाम है। इस महाकाव्य की विशेषता है कि 'पार्श्ववंदना' का प्रत्येक शब्द का पहला अक्षर 'प' से आरंभ होता है–यथा–

पार्श्वप्रभाकर प्रबल प्रभासित, पुण्य प्रसून पराग प्रसार
पाप-पयोधि पार पाने को, प्रभु प्रवचन-प्रताप-पतवार
परमानंद-पंथ-प्रतिपादक, पति तोद्धारक पूज्य प्रकाम
परम पुनीत पार्श्व-पद-पंकज, पूजत प्रमुदित प्रणत प्रणाम

चंदाबाई, गणेशप्रसाद वर्णी तथा इतिहासरत्न बाबू कामताप्रसाद जैन ने इस महाकाव्य के प्रति शुभभाव व्यक्त किए थे।

तुलसीदास के 'रामचरितमानस', मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत' और हरिऔध के 'प्रियप्रवास' से प्रभावित होकर वीरेंद्रप्रसाद जैन ने आठ सर्गों में निबद्ध 'तीर्थंकर भगवान महावीर' की रचना की। रचनाकार ने हाईस्कूल की परीक्षा देते-देते बीस छंद लिख लिए थे। इस महाकाव्य के दो संस्करण प्रकाशित हुए थे, तब डॉ॰ माताप्रसाद गुप्त ने लिखा था–'तीर्थंकर भगवान महावीर' कृति मिली। मैं उसे आदि से अंत तक पढ़ गया। विषय का निर्वाह आपने बड़े ही सरस और काव्योचित ढंग से किया है। जीवनी से संबंधित काव्यों में सूचनात्मक विवरणों के कारण प्रायः नीरसता आ जाती है। आपने उनको प्रमुखता नहीं दी है। यह आपने अच्छा किया है।[7]

'वंदना' कविता-संग्रह में काव्यकार ने पुरातन धर्मग्रंथों एवं आचार्यों की वीर वंदना की है। एक सौ एक गीतों का संकलन 'गीतगंगा' में जीवनोन्नयन हेतु शुभभावधारा प्रवहमान है। 'द्वादश अनुप्रेक्षांजलि' कृति बारह भाव गीत-शतक है। किसी भाव का बार-बार चिंतन-भावना अनुप्रेक्षा

है। वस्तुत: इन भावनाओं के अनुचिंतन से इस दु:ख से भरे संसार में दु:खी जीवों को अपूर्व शांति मिलती है। वीरेंद्रप्रसाद जैन ने स्वांत:सुखाय हेतु इन भावनाओं पर लेखनी चलाई है। एक सौ एक मुक्तकों का संग्रह 'मुक्तक मुक्ता' में आज के समय में समाज में बहुत असमानताएँ बढ़ रही हैं, मानवीय पथ शून्य होता जा रहा है, इन्हीं विषयों पर वीरेंद्रप्रसाद जैन का ध्यान गया है। साथ ही आंग्ल कवि गोल्ड स्मिथ के 'फैलोट्रैवलर' का हिंदी पद्यनुवाद, शेक्सपियर के 'मैथबैक' का पद्यानुवाद, हिंदी के 'मृत्यु महोत्सव' का अँग्रेजी में 'हैपीडेय फैस्टीबल' नामक अनुवाद, फ्रैंक आर्मेशल कृत 'डिवाइन पोइम' का हिंदी अनुवाद 'दिव्य कवितांजलि', आचार्य समंतभद्र के 'स्वयंभू स्तोत्र' का अँग्रेजी पद्यानुवाद, मुनिश्री प्रमाणसागर की कृति 'जैनधर्म दर्शन' का अँग्रेजी अनुवाद आपकी प्रकाशित कृतियाँ हैं।

'क्षमापर्व' वीरेंद्रप्रसाद जेन की नाट्यकृति है। इसकी कथावस्तु फ्रांसीसी उपन्यासकार विक्टर ह्यूगो की अमरकृति 'लेशमिजरेविल' पर आधारित है, लेकिन इस पर भारतीय वातावरण की छाप है। इसमें सभी पात्र पुरुष हैं। प्रयाग के जैन छात्रावास में जब वीरेंद्रप्रसाद जैन वहाँ सन् 1952-1953 में छात्र थे, इस नाटक का अभिनय सफलतापूर्वक संपन्न हुआ था। इसके कई मंचन हुए और यह बहुत सराहा गया। वीरेंद्रप्रसाद जैन के 'राग में विराग', 'वीर-बाँकुरे', 'वीर महावीर' तीन एकांकी-संग्रह हैं। 'राग में विराग' में सात एकांकी संकलित हैं। पहले एकांकी 'राग में विराग' में परम बैरागी भगवान ऋषभदेव के वैराग्य-प्रसंग को लिया गया है। दूसरा एकांकी बारहवें तीर्थंकर भगवान वासुपूज्य के वैराग्य-परिणामों से संबंधित आख्यान है। तीसरे एकांकी 'विवाह में विरागी' में बाइसवें तीर्थंकर अरिष्टनेमि के वैराग्य-प्रसंग से संबंधित है। चौथे एकांकी पंद्रहवें तीर्थंकर धर्मनाथ के तीर्थकाल में हुए सौंदर्य-सागर श्री सनतकुमार चक्रवर्ती के रागरंजित जीवन के पश्चात् विराग मय तपस्वी जीवन की झाँकी प्रस्तुत है। पाँचवें एकांकी में बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथ के तीर्थकाल में होनेवाले चक्रवर्ती सम्राट हरिषेण का वर्णन है। छठे एकांकी 'अरुणोदय' में एक आधुनिक तरुण दंपती के द्वारा भगवान अजितनाथ, भगवान संभवनाथ के दीक्षा-कल्याणकों की वैराग्य-घटनाओं का शब्दांकन हुआ है। सातवें एकांकी 'सम्मेदाचल के अंचल' में अभिनंदन-कूट की अभिवंदना है।

'बीर बाँकुरे' नामक दूसरे एकांकी-संग्रह में तीन एकांकियों को संगृहीत किया गया है। वीरवर खारवेल की यशगाथा वीर बाँकुरे के प्रथम एकांकी के रूप में दी गई है। दूसरा एकांकी श्रावस्ती के वीरवर सुहलदेव राय पर है, जिन्होंने सालारजंग को उत्तरभारत को विजय करते हुए चले आने के बाद खदेड़ दिया था। तीसरा एकांकी भामाशाह का स्वर्णाख्यान है। तीसरे एकांकी-संग्रह 'वीर महावीर' में भगवान वीरनाथ के जीवनचरित को आठ भागों में बाँटकर उसके मंचन को सहज करने के लिए वीरेंद्रप्रसाद जैन ने रचा। यह एकांकीकार के लेखन-कौशल का कमाल है। दृश्य काव्य होने के नाते प्रत्येक एकांकी मंच पर खेला जा सकता है।

वीरेंद्रप्रसाद जैन के 'प्रहार पाप-रात पर', 'बारह भावना', 'दीवाली', 'धर्मकल्पतरु' चार कहानी-संग्रह है। 'प्रहार-पाप-रात-पर' संग्रह में जो भी कहानियाँ दी गई हैं, उनके कथानक जिनागम के प्रथमानुयोग के ग्रंथों से गृहीत हैं। आज हिंसा-झूठ-चोरी परिग्रह, कुशील रूप पंच पापों का अंधकार गहरा रहा है। पाप की इस काली रात में सचमुच ही हाथ-हाथ नहीं सूझता, फिर चलते राहियों का पतन-गर्तों में गिरना स्वाभाविक ही है, किंतु मानवता के कुछ प्रज्ञ प्रहरियों ने

पाप की स्याह इस रात पर प्रबल प्रहार किए और इसके विपरीत भद्रहृदयों में पुण्य का पावन आलोक बिखेर दिया। प्रकाश होते ही अंधकार का पलायन हो जाता है, लेकिन यह पुण्य प्रकाश हमें अपने पुरुषार्थ से ही करना है।

'बारहभावना' नामक दूसरे कहानी-संग्रह में आधुनिक शैली में इन बारह भावनाओं पर रोचक कहानियों का प्रणयन हुआ है। 'दीवाली' कहानी-संग्रह में पाँच कहानियाँ हैं—'पुण्य प्रदीप', 'दीवाली', 'कल दिवाली है', 'दीवाली है', 'कैसी दिवाली है?' ये कहानियाँ पाठकों के मनोरंजन के साथ विचारों को परिष्कृत करने और व्यष्टि-समष्टि के नैतिक निर्माण में सहायक सिद्ध होती हैं। 'धर्मकल्पतरु' कहानी-संग्रह में वीरेंद्रप्रसाद जैन ने बताया है कि क्षमा की उर्वराभूमि पर ही धर्म का कल्पवृक्ष उदय को प्राप्त होता है, जिसके सुकोमल पत्ते मानो मान रहित मृदुल मार्दव धर्म की लहराती पताकाओं का प्रसार ही है। सीधी-सादी सरलता-सी शाखा रूप आर्जव धर्म ही मानो लंबायमान है। सत्य, शौच इस धर्मकल्पवृक्ष की मानो जड़े हैं। सत्य और शुचिता के मूल पर ही धर्मकल्पतरु खड़ा रह सकता है। संयम धर्म इसके पल्लव-से प्रतीत होते हैं और तपपुष्पों की पंखुड़ियाँ तथा त्याग मानो इसका पराग है और आकिंचन्य धर्म विशाल एवं घना तना ही है। ब्रह्मचर्य इस धर्म कल्पतरु की सुंदर शीतल छाया है। भव्य पक्षीवृंद इनका सेवन करके आत्मकल्याण करते हुए मोक्ष-फल प्राप्त करते हैं। इससे अधिक महिमा और क्या हो सकती है—इस 'धर्म-कल्पतरु' की।

इस प्रकार वीरेंद्रप्रसाद जैन महाकवि, गीतकार, मुक्तककार, नाटककार, एकांकीकार, कहानीकार अनुवादक और संपादक के रूप में सामने आते हैं। साहित्य सुधाकर वीरेंद्रप्रसाद जैन का रचना-संसार अध्यात्म की इस सचेतन झील में व्यवहार, आचार-संस्कार और विस्तार की रमणीयता परिलक्षित है।

संदर्भ

1. संपादक वृषभप्रसाद जैन, पार्श्व प्रसाद जैन, वीरेंद्रप्रसाद जैन : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, महावीर प्रकाशन, अलीगंज, एटा, सन् 2004, पृ॰ 01
2. वही, पृ॰ 2
3. आरक्षाशा = आरक्षा + आशा = रक्षा की आशा
4. अचरै = आचरण करें
5. अठ अरि = अष्टकर्मशत्रु
6. वीरेंद्रप्रसाद जैन : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ॰ 3
7. वही, पृ॰ 11

क्षण की अनुभूति की गहनता है क्षणिका

रामेश्वर कांबोज 'हिमांशु'

कण से ब्रह्मांड तक, बिंदु से सिंधु तक क्षण से युगों तक चेतना का विस्तार है। स्वनिम से शब्द तक, शब्द से अर्थ तक मानव का चिंतन अभिव्यक्त हो रहा है। इन सभी का महत्त्व जीवन की सार्थकता में ही समाहित है। सही समय पर किसी कण का, किसी क्षण का, किसी स्वनिम का सही प्रयोग किया तो सार्थक रचना का निर्माण होता है, चाहे वह जीवन-जगत् हो या काव्य हो। जीवन-भर कुछ न किया जाए तो जीवन निरर्थक, क्षण-भर में जो सार्थक कर लिया जाए तो यश, जीवन-भर अच्छा करते-करते अंततः कुछ बुरा कर दिया जाए तो सारे शुभकर्मों की परिणति अपयश में हो सकती है। यही सब काव्य के भी साथ है।

क्षण या काल के विस्तार की गहनता, उसकी नब्ज पर पकड़ किसी रचना की प्राणशक्ति बनती है। रचना का महत्त्व उसके स्वरूप दोहा, चौपाई, छंदोबद्ध, छंदमुक्त, क्षणिका, हाइकु आदि से नहीं है, वरन् उसके कथ्य से है, कथ्य की प्रस्तुति से है, उसमें निहित भाव-संवेदना से है। केवल छोटी रचना लिखना या बड़ी रचना लिखना किसी महत्त्व का आधार नहीं बन सकता। आकारगत लघुता के कारण फुलचुही महत्त्वहीन नहीं हो जाती और बड़े आकार के कारण चील का महत्त्व नहीं बढ़ जाता। कारण-रचना में कही बात पाठक की संवेदना को, चिंतन को कितना प्रभावित करती है, वही उस रचना का जीवन है। क्षणिका के संदर्भ में भी मैं यही बात कहना चाहूँगा कि समय के किसी महत्त्वपूर्ण क्षण को आत्मसात् करके संश्लिष्ट (संक्षिप्त नहीं) रूप में किया गया काव्य-सर्जन ही क्षणिका है। क्षणिका किसी लंबी कविता का सारांश नहीं है और न मन बहलाने के लिए गढ़ा गया कोई चुटकुला या चुहुलबाजी-भरा कोई कथन। भाव की अभिकेंद्रिकता, भाषा का वाग्वैदग्ध्यपूर्ण प्रयोग एक दिन का काम नहीं, वरन् गहन चिंतन-मनन, अनुभूत क्षण की सार्थकता और सार्वजनीनता पर निर्भर है।

जिस रचनाकार के चिंतन और अनुभव का फलक जितना व्यापक होगा, भाषा-व्यवहार जितना अर्थ-संपृक्त होगा, क्षणिका उतनी ही प्रभावशाली और मर्मस्पर्शी और मर्मभेदी होगी। आकारगत लघुता को खँगालने के लिए कहीं दूर जाने की आवश्यकता नहीं। भारतीय वाङ्मय ही इसके लिए पर्याप्त है। निम्न उदाहरणों से क्षणिका की प्रगाढ़ता, व्यंजना और घनत्व को समझा जा सकता है–

एक आदमी/ रोटी बेलता है/ एक आदमी रोटी खाता है/ एक तीसरा आदमी भी है
जो न रोटी बेलता है, न रोटी खाता है/ वह सिर्फ रोटी से खेलता है/ मैं पूछता हूँ
'यह तीसरा आदमी कौन है?' मेरे देश की संसद मौन है। (रोटी और संसद, धूमिल)

इस तीसरे आदमी की तलाश कहीं बाहर नहीं करना है। संसद की चुप्पी ही उसकी उपस्थिति दर्ज करा रही है। क्षणिका–एक लक्ष्य (टारगेट) और एक ही गोली, यदि गोली लक्ष्य

 ISSN 0975-735X

से भटकी तो उपलब्धि-शून्य अंक। यह मेले का खेल नहीं कि दस में से नौ टारगेट पा गए तो अच्छे निशानेबाज हो जाएँगे। शत्रु सामने हो, तो कोई भी कुशल सैनिक, जिसके पास एक ही गोली बची हो, अपना लक्ष्य नहीं खोना चाहेगा। क्षणिका की इसी तरह की त्वरा धूमिल की पंक्तियों में नजर आती है। इसमें लंबी कविता की तरह सँभलने का कोई अवसर नहीं। अज्ञेय की 'साँप' कविता में सभ्यता की परिभाषा करते हुए वही तीक्ष्णता गहन लाक्षणिकता लिए नजर आती है–

साँप!/तुम सभ्य तो हुए नहीं/नगर में बसना/भी तुम्हें नहीं आया।

एक बात पूछूँ–(उत्तर दोगे)/तब कैसे सीखा डँसना/विष कहाँ पाया?

क्षणिका में विविध भाषिक प्रयोग का केवल संतुलित अवसर और अवकाश होता है। अगर वह सहजात नहीं हुआ, तो दुर्बोध होने के साथ बेअसर भी हो सकता है। बिंब और प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्ति के समय इसका विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता है। भाषा की सहजता शब्दों के सरल या कठिन होने से नहीं, वरन् भावबोध की स्पष्टता पर आधारित होती है। यदि रचनाकार के भाव और विचार उलझे हुए हैं, तो सरल शब्दों में भी अभिव्यक्ति जटिल हो सकती है। पानी-पत्थर और स्टेच्यू के प्रतीकों का स्वाभाविक समावेश, भाषा का सहज और संतुलित प्रयोग इन क्षणिकाओं में देखा जा सकता है। दोनों रचनाएँ समय के शाश्वत सच की व्याख्या करती हैं–

–बहते हुए पानी ने/पत्थरों पर निशान छोड़े हैं/अजीब बात है–

–पत्थरों ने/पानी पर/कोई निशान नहीं छोड़ा (पानी, नरेश सक्सेना)

–जी चाहता है/उन पलों को/तू स्टैच्यू बोल दे/जिन पलों में/वो साथ हो/और फिर भूल जा–(स्टैच्यू बोल दे, डॉ जेन्नी शबनम)

वृद्धावस्था की उपेक्षा और प्यार की खत्म होती गर्माहट को डॉ॰ सुधा ओम ढींगरा और तुहिना रंजन ने पतझर के माध्यम से बहुत मार्मिक स्वरूप प्रदान किया है। शब्दों का नपा-तुला प्रयोग अभिव्यक्ति को बहुत मार्मिक बना देता है–

–झड़े पत्तों से/ टुंड-मुंड हुए/ वृक्ष,/ बच्चों के/ घर छोड़कर/ जाने के बाद/ बुजुर्ग माँ-बाप से लगे। (अकेलापन, डॉ सुधा ओम ढींगरा)

–तेरे इंतजार में/ जिन आँखों से/ बरसे अनगिन सावन/ कल देखा/ उन्हीं आँखों में/ पतझड़ उतर आया है (तुहिना रंजन)

रात-दिन घर-गिरस्ती में मरती-खटती अत्याचार सहती औरत की हूक-भरी व्यथा को रचना श्रीवास्तव ने बहुत मार्मिक अभिव्यक्ति दी है। दैनंदिन जीवन का यह अभिशाप सांकेतिक रूप से चित्रित हुआ है, जिसमें हल्दी-प्याज का लेप सारी व्यथा-कथा कह जाता है।

–उनके कुछ कहते ही/ एक भारी रोबीली आवाज/ और कुछ कटीले शब्द/ यहाँ वहाँ उछलने लगे/ रात मैंने देखा/ माँ/ अपनी ख्वाहिशों पर/ हल्दी-प्याज का लेप लगा रही थी।

सुदर्शन रत्नाकर-टूटे काँच के टुकड़े से आहत मन की और डॉ॰ भावना कुँअर पर्स की तहों में लिपटी निशानियों से 'रिश्तों की घुटन' का तीव्रता से अहसास कराती हैं।

–टूटे काँच के टुकड़े तो/ तुमने उठा लिए/ उनका क्या जो/मेरे दिल के हुए।

–तुम्हारे पर्स की तहों में/ लिपटी रहती थी यादें बनी/ मेरी नन्ही निशानियाँ/ आज वहाँ

किसी की/ तस्वीर नजर आती है।

रिश्तों की गर्माहट का अस्तित्व बनाए रखने के लिए क्या किया जाए, इसका उपाय है निजता और सामीप्य, जिसे मंजु मिश्रा की इस क्षणिका में देखिए–

–बैठने दो/ दो घड़ी अपने पास/ बस इतना हक दो कि/ पूछ सकूँ-/ तुम क्यों उदास हो?

कोई विधा अपने आकार-प्रकार से या किसी वरिष्ठ की कलम से रची होने के कारण नहीं वरन् प्रभावान्विति होने से ही महत्त्वपूर्ण होती है। क्षणिका का जनमानस से जुड़ना बहुत आवश्यक है। प्रेम की संवेदना को उँगली में चुभा काँटा और उसका चले जाना अधिक तीव्र कर देता है। अभिव्यक्ति-लाघव की सादगी और कौशल प्रसिद्ध हाइकुकार डॉ॰ सुधा गुप्ता के काव्य में अनुस्यूत रहे हैं। अंतिम वाक्य के भी अपनी अनकही उपस्थिति से बहुत कुछ कह जाते हैं–

–गुलाब की नन्ही कली/ तोड़, तुम्हारे बालों में/ सजा दी/ उँगली में चुभा काँटा/ रहा याद दिलाता/ कि तुम चली गई–

प्यार का यही अटूट मिलन-माधुर्य, यही जीवन के प्रति चुंबकीय आकर्षण इन क्षणिकाओं को किसी भी प्रेम-कविता की टक्कर में खड़ा करता है–

–छुओ, छलको /मिलो मुझसे गीत गाकर/ मिले जैसे नदी सागर/ पास आकर। (मिलन, केदारनाथ अग्रवाल)

–मुस्कुराने की/ कोशिशें हजार करता है/ सुना है वो/ अब भी जिंदगी से/ प्यार करता है! (डॉ॰ ज्योत्स्ना शर्मा)

–धूप आशाओं की/ जगमगा कर खिले/ जब वो/ आकर मिले। (डॉ॰ ज्योत्स्ना शर्मा)

केदारनाथ सिंह प्यार की इसी गर्माहट को नपे-तुले शब्दों में अनायास कह जाते हैं। पाठक है कि प्यार की उस गर्माहट को परत-दर-परत महसूस करता है–

–उसका हाथ/ अपने हाथ में लेते हुए/ मैंने सोचा-दुनिया को/ हाथ की तरह/ गर्म और सुंदर होना चाहिए। (केदारनाथ सिंह)

कवि के लिए कोई विषय या क्षण छोटा-बड़ा नहीं है, बड़ा है वह भाव-बिंब जो आत्मीयता के रस से संपृक्त है। अलका सिन्हा ने 'जिंदगी की चादर' क्षणिका में चढ़ती उम्र की लड़की के जीवन की विवशता, को उसकी चौकसी से जोड़कर जिस तीव्रता से अभिव्यक्त किया है, उसमें इनका भाषिक कौशल हर पंक्ति को तान देता है। नींद में होने पर भी सजगता में जैसे लाज के साथ एक अज्ञात भय भी समाहित है–

–जिंदगी को जिया मैंने/ इतना चौकस होकर/ जैसे कि नींद में भी रहती है सजग/ चढ़ती उम्र की लड़की/ कि कहीं उसके पैरों से/ चादर न उघड़ जाए।

अनिता ललित हाथ उठाकर दुआ करने के परिणाम की जो कल्पना करती हैं, वह अपनी अभिव्यक्ति की अन्तरंग नवीनता से पाठक को बाँध लेती है–

–हाथ उठाकर दुआओं में/ तेरी खुशियाँ माँगी थी मैंने/ नहीं जानती थी/ मेरे हाथों की लकीरों से ही निकल जाएगा तू! (अनिता ललित)

काव्य में लौकिक प्रतीकों और जन-जीवन से जुड़े बिंबों की एक अलग खुशबू होती है। उमेश महादोषी ने धोबी और पटा (जिस पर पट पर वह कपड़े धोता/ पछाड़ता है) का निर्वाह बहुत संतुलित रूप में किया है। धोबी की दुर्दशा भी अभिव्यक्त हो रही है, जिससे निकटवर्ती नाता

रखने वाला यदि कोई है, तो सिर्फ वही पटा है। 'छुइयो राम, छुइयो राम' का लौकिक प्रयोग जनसंस्कृति का परिचायक ही नहीं, बल्कि उस पूरे परिवेश को भी वाणी देता है, जीवन-संघर्ष जारी है–

–छुइयो राम, छुइयो राम/ धोबी के पटा/ पत्थर है, पत्थर तू/ पर देख तो जरा/ धोबी तेरा आज/ कितने टुकड़ों में बँटा! (उमेश महादोषी)

लौकिक खेल में 'धप्पा' मीनाक्षी जिजीविषा की इस क्षणिका में परिचय के ब्याज से सुधियों में समाए प्यार की एक भोली-सी अनुगूँज छोड़ जाता है–

–तुमसे परिचय/ जैसे बचपन के खेल-खेल में/ जिंदगी अचानक पीछे से पीठ पर हाथ रखे/ और धीरे से कान में कहे/ धप्पा...!

चाँद के दाग के बहुत सारे मिथक हैं, लेकिन डॉ॰ जेन्नी शबनम ने यहाँ एक नया प्रयोग किया है–शैतान बच्चे के बहाने, भोलेपन के रस में पगा। वह शैतान बच्चा कुछ भी कर सकता है–

ऐ चाँद/ तेरे माथे पर जो दाग है/ क्या मैंने तुम्हें मारा था?/ अम्मा कहती है/ मैं बहुत शैतान थी/ और कुछ भी कर सकती थी।

सारा काव्य मानव-जीवन से जुड़ा है। यदि कवि केवल विचारों का घटाटोप प्रस्तुत करने की अनुभवहीनता का परिचय देता है, तो क्षणिका के लघु कलेवर में जीवन-दर्शन प्रस्तुत करना उबाऊ हो सकता है। खुद लिखें और खुद ही समझें वाले रचनाकार खुश हो सकते हैं कि उन्होंने नाजुक पंखों की इस चिड़िया पर कई किलो बोझ लाद दिया है। इसके विपरीत इमरोज और सर्वेश्वर की क्षणिकाओं में जीवन-दर्शन किसी बोझिल व्याख्या का नहीं वरन् घाटियों में कल-कल करती पतली निर्मल जलधारा का अहसास कराता है।

–जीने लगो/ तो करना/ फूल जिंदगी के हवाले/ जाने लगो/ तो करना/ बीज धरती के हवाले–(जिंदगी-इमरोज)

–घास की एक पत्ती के सम्मुख/ मैं झुक गया/ और मैंने पाया कि/ मैं आकाश छू रहा हूँ। (समर्पण-सर्वेश्वरदयाल सक्सेना)

दूसरों के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण का प्रभाव बहुत व्यापक होता है। केवल अपने सुख की चिंता करनेवाले स्वकेंद्रित लोगों को बलराम अग्रवाल ने सचेत किया है–

–शब्द को/ शूल न बनाओ/ न सुई बनाकर/ हवा में फेंको/ फूट जाएँगी/ सभी ओर हैं...मेरी आँखें!

जीवन आस्था और विश्वास का नाम है। डॉ॰ उमेश महादोषी ने सूरज की किरणों से, माथा चूमने से इसे पुख्ता किया है। कुल मिलाकर आनंद के जिस गत्यात्मक बिंब की सृष्टि की है, वह बहुत मनोहारी होने के साथ सकारात्मक संदेश भी लिए है। कुशल चितेरा इन पंक्तियों को रंगों में समेट सकता है–

–कल सुबह/ जब मैं उठूँगा/ सामने होंगी...मेरा माथा चूमती हुई/ कुछ किरणें-सूरज की/ मैं थोड़ी देर आँखें मूँदूँगा, मुस्कराऊँगा/ और फिर/ दिन-भर के काम पर लग जाऊँगा।

डॉ॰ उमेश महादोषी ने बरसों से क्षणिका के लिए सार्थक कार्य किया है। दूसरी ओर पूर्णिमा वर्मन ने अनुभूति के माध्यम से विश्वभर की चुनी हुई क्षणिकाएँ प्रस्तुत की हैं; जिससे इस शैली

का महत्त्व बढ़ा है। क्षणिका के क्षेत्र में उनका अपना एक अलग अंदाज है, सूरज के आगमन से जीवन को निखारनेवाली आस्था की संश्लिष्ट प्रस्तुति की है, 'उदासी' की सारी धूल झाड़कर जीवन-अनुराग का संदेश दिया है–

–फिर उदासी की दरारों से/ कोई झाँकेगा/ कहेगा-आँख धो लो/ जल्द ही सूरज को आना है।

त्रिभुवन पांडेय भी उसी आस्था और आश्वस्ति को 'घर' के माध्यम से अपनेपन की एक स्फुलिंग जगा जाते हैं–

–तूफान के गुजर जाने के बाद/ हर बार गाती रहती है/ चिड़िया छत पर/ घर।

–जहाँ कुछ भी नहीं/ लेकिन सब कुछ होने का/ आश्वस्ति-भरा स्वर/ घर

कमला निखुर्पा इसी आस्था को 'दीप' क्षणिका के माध्यम से इस प्रकार प्रस्तुत करती हैं–

–दीप भावों के/ महकती चाहों के/ जलाना जरूर/ सूना-सा कोना मन का/ झिलमिलाएगा जरूर

प्रकृति के अनुपम सौंदर्य को इस नन्ही-सी क्षणिका में पिरोना, बिंबों को साधना भाषा की कुशलता के बिना संभव नहीं।

रंजना भाटिया गुलमोहर के फूल के चित्रण में दृश्य और स्पर्श बिंब को अनायास अहसास करा जाती हैं–

–गुलमोहर के फूल/ जैसे हाथ पर कोई/ अंगार है जलता।

डॉ॰ अनीता कपूर ने रात्रि के सौंदर्य का बहुत सुंदर और प्रभावी दृश्य बिंब प्रस्तुत किया है। 'चाँद का गोटा' एक नया ही भाव-बोध उजागर करता है–

–चाँद का गोटा लगा/ किरणों वाली साड़ी पहने/ सजी-सँवरी रात ने/ बंद कर दिया/ दरवाजा आसमान का।

उपर्युक्त बातों से मेरा मन्तव्य इतना-भर है कि काव्य का कोई भी रूप हो, वह यदि भाव-विचार-कल्पना से संवलित नहीं होगा, तो वह कुछ भी हो, पर काव्य नहीं होगा। आदमी का सुख-दुख, हर्ष-विषाद जो शब्द न बाँध सकें, वे माला का हिस्सा नहीं बन सकते। विषयवस्तु और प्रस्तुति दोनों का सार्थक संयोजन, संगुंफन महत्त्वपूर्ण है, तभी रचना निखर सकती है। डॉ॰ सुरेंद्र वर्मा की क्षणिका 'आस्तीन तुम्हारी' इसका खूबसूरत उदाहरण हो सकती है–

–यों तो तुम्हारी आँखों में/ झिलमिलाती चमक थी/ लेकिन मैंने अपना सिर/ जब तुम्हारे/ कंधे पर टिकाया/ आस्तीन तुम्हारी गीली थी।

–और ये आँसू यूँ ही नहीं मिल जाते, इनको पाने के लिए भी सौदा करना पड़ता है। जितेंद्र जौहर ने यह सौदा मिठास चुकाकर इस प्रकार किया है–

–मैंने/ मिठास चुकाई है,/ तब जाकर मिला है मुझे/ तुम्हारा खारापन!/ऐ आँसुओ!/ तुम्हें यूँ न जाने दूँगा/ आँखों की दहलीज छोड़कर!

हरकीरत 'हीर' गहन संवेदना की कवयित्री हैं। इनकी क्षणिकाओं में प्रेम की अनुभूति, अपरिचय का मुखर प्रतिरोध, दोनों ही अपनी पूरी तीव्रता के साथ उपस्थित है। प्रतीकों का भी समुचित निर्वाह किया गया है–

आज की रात/ तुम अक्षर हो जाना/ मैं सफहा हो जाऊँगी/ जी चाहता है आज/ जन्म दूँ इक

 ISSN 0975-735X

नज़्म—

तुमने नहीं पढ़ा/ जब किसी गैर ने उसे पढ़ा/ वह बाजारू हो गई...!!

डॉ॰ कविता भट्ट के अनुभव और संवेदना का फलक बहुत व्यापक है। जीवन के छोटे-छोटे क्षण उनकी रचनाओं में पाठक की संवेदना को झकझोरकर रख देते हैं। अर्थ की सूक्ष्म पकड़ में आपको महारत हासिल है। इन क्षणिकाओं 'प्रेम' और 'प्रेम को प्राप्त करने की आतुरता की अभिव्यक्ति की प्रस्तुति, किसान और आकाश जैसे लोकप्रचलित सहज प्रतीकों के प्रयोग भी देखिए—

—जिस शिद्दत से देखते हो/ तुम मेरा चेहरा/ काश! जिंदगी भी/ उतनी ही कशिश-भरी होती।

—जिस उम्मीद से/ किसान देखता है/ आकाश की ओर/ उसी उम्मीद-सा है, प्रिय!/ तुम्हारा प्रणय-निवेदन।

—प्रेम की पराकाष्ठा/ तुमसे लिपटी हुई/ तुम्हारे पास ही होती हूँ/ तब भी तुम्हारी ही याद में रोती हूँ।

कुछ क्षणिकाएँ रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' की भी, इनमें कुछ है या नहीं, पाठक तय करें—

—पतझर/ ऊपर से आँधी/ पकड़ो न पात/ बचा ठूँठ/ बाहों में भर लो, तो फूटेंगी कोंपल।

—वनखंडों के पार/ पिंजरे में बंद/ प्रतीक्षारत/ व्याकुल सुग्गा/ कहीं वह तुम तो नहीं?

न शूल-सी चुभे न कील-सी खुभे, बस आस्तीन बनकर आँसू पोंछ दे, तो क्षणिका सार्थक हो जाएगी। आस्तीन बनकर आँसू पोंछने का मेरा अपना आशय है—वह जनमानस के सुख-दुःख की प्रतिनिधि बने। किसी दोहे, चौपाई, मुक्तक को तोड़कर क्षणिका बनाने या तुकबंदी का अनावश्यक शिरस्त्राण पहनाने की आवश्यकता नहीं है। सारगर्भित रचनात्मकता के लिए यह क्षेत्र खुला है, इसे रातों-रात प्रसिद्धि पाने का शॉर्टकट मानना भूल होगी। अच्छी रचना, रचनाकार के लिए खुद पथ का निर्माण और ऊँचाई का निर्धारण करती है।

सी 1702, **जे एम अरोमा**
सेक्टर 75, **नोएडा** 201301, **उत्तरप्रदेश**
मो॰ 09313727493

प्रगतिशील आलोचना : एक पुनरावलोकन

डॉ॰ विजयबहादुर त्रिपाठी
असिस्टेंट प्रोफेसर (हिंदी)
एम॰एम॰ (पी॰जी॰) कॉलेज, मोदीनगर

मार्क्सवादी समीक्षा वस्तुत: अपने पूर्ववर्ती समीक्षा में परिवर्तन एवं विकास के बाद आई। यह भारत में प्रगतिशील समीक्षा के रूप में भी प्रचलित है। इस समीक्षा-दृष्टि में केवल विदेशों से आयातित विचारधारा का ही समावेश नहीं है, अपितु भारतीय जनमानस में उबल रही सोच एवं आचार्य शुक्ल, भारतेंदु, हजारीप्रसाद द्विवेदी के लोकधर्म एवं लोकमंगल का समुचित समावेश भी दृष्टिगत होता है। मूल्यवादी समीक्षा में 'सच्चा कवि वही है जिसे लोक हृदय की पहचान हो' वाला सिद्धांत वाक्य ही निहित रहा है। यद्यपि प्रगतिवादी समीक्षा दृष्टि आचार्य शुक्ल की मूल्यवादी समीक्षा दृष्टि से अलग है। समझने की बात यह है कि प्रगतिवादी समीक्षा मार्क्सवादी सिद्धांतशास्त्र से प्रभावित होकर भी अपनी परंपरा की भीतरी माँग की ही देन है।

प्रगतिवादी लेखक संघ की स्थापना (36) के साथ ही मार्क्सवादी आलोचना का आरंभ मानना चाहिए। प्रारंभ में इस तरह की आलोचना की जरूरत तथा उसके सैद्धांतिक मुद्दों पर बहस होती रही। इस बहस में शिवदान सिंह चौहान, रामविलास शर्मा, अमृतसराय ने खुलकर हिस्सा लिया। शुरू-शुरू में कमोवेश सभी लोगों में यांत्रिक भौतिकवाद का जोश था। रामविलास शर्मा में भी यह कम नहीं था, पर यह भी सही है कि इस दलदल से बाहर निकलने और द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के क्षेत्र में लाने का श्रेय भी उन्हीं को है।[1]

हिंदी मार्क्सवादी आलोचना में डा॰ सुरेंद्र चौधरी को मार्तंड प्रगल्भ ने विराट ऐतिहासिक संदर्भो से समृद्ध आलोचक माना है। सच्ची आलोचना किस कदर गंभीर वैचारिक संघर्ष का परिणाम होती है इसे सुरेंद्र चौधरी के लेखन में स्पष्ट देखा जा सकता है। रचना के प्रति जिस संवेदनशीलता और विनम्रता की आवश्यकता होनी चाहिए, इनके यहाँ देखा जा सकता है। सुरेंद्र चौधरी पर बहस एक ऐतिहासिक जरूरत है। हिंदी की प्रगतिशील आलोचना की एक दूसरी परंपरा से संवाद की। समकालीनता और तात्कालिकता से उनकी मुठभेड़ ही उनकी आलोचना बनाती चलती है।

यह कारण नहीं कि इतिहास के प्रश्नों से उलझने वाला यह आलोचक साहित्य के आख्यान रूपों पर अपनी विशेष दृष्टि रखता है।[22]

डा॰ चौधरी की पुस्तक इतिहास संयोग और सार्थकता के कुछ निष्कर्षों स्थापनाओं को प्रगल्भजी ने यहाँ पर उद्धृत किया है।

स्पष्ट है कि हिंदी साहित्य में आधुनिकता दो महायुद्धों के बीच उत्पन्न अवस्था नहीं है

 ISSN 0975-735X

और न वह मात्र मूल्यबोध और विराट विघटन के तनाव के बीच की उपलब्धि है। हिंदी में आधुनिकता की प्रतिष्ठा इस विराट विघे से लगभग 80-90 वर्ष पूर्व हो चुकी थी। हिंदी में आधुनिकताबोध का संस्कार आत्मचेता से हिंदी सत्य चेता है।[3]

(यहाँ पर डा॰ चौधरी ने आधुनिकतवाद को भारतीय परिस्थितियों एवं संदर्भों में देखने का प्रयास किया है।)

भारतीय परिस्थितियों में उदारवादी चेतना चूँकि रोमांटिक दृष्टि विस्तार का परिणाम थी और बौद्धिक उद्‌बोध की परिणति थी इसलिए आधुनिक साहित्य में वह अपने ढंग की अकेली है।

भारतेंदु युग का संपूर्ण सहित्य अपने जनचरित्र के व्याख्यान द्वारा यह स्पष्ट करता है कि इस युग में भारतीय बुद्धिजीवी का स्वार्थ अविकल रूप से भारतीय जनता के साथ जुड़ा हुआ था। इस काल का वर्ग-संघर्ष चरित्रत: उपनिवेश विरोधी और अभिजात्य विरोधी है। यही कारण है कि संपूर्ण युग की विचारधारा पद्धति में उपनिवेश विरोध और अभिजात्य विरोध की चिंता सरणि प्रधान है।[4]

वे आगे लिखे हैं—भारतेंदुयुग की सारी परिस्थितियाँ रोमांटिक धारणा के अनुकूल होकर भी उद्‌बोध में असफल रहीं। इसका एकमात्र कारण राजनीतिक सत्ता का अंतर्विरोध था।[5]

मार्क्स एगल्स ने माना है कि प्रगतिवादी आलोचना मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र की ओर बढ़ती दिखाई देती है। प्रगतिवादी आलोचना मार्क्सवादी सौंदर्य की ओर में कहा गया है कि प्रगतिवादी मार्क्सवादी साहित्य सैद्धांतिकी का हिंदी पर्याय है। मार्क्सवाद क्रांतिकारी दर्शन है। इसकी माँग है जीवन और समाज को बदलने के लिए उसमें सचेत और सक्रिय रूप से हस्तक्षेप किया जाए। अपने दर्शन के विषय में मार्क्स की स्पष्ट उद्‌घोषणा थी कि दार्शनिकों ने विश्व की तरह-तरह से केवल व्याख्या की है, मुख्य बात तो उसे बदलने की है।[6]

'सौंदर्य दृष्टि तो सभी में होती है, लेकिन उस दृष्टि के पीछे सौंदर्यशास्त्र भी हो यह जरूरी नहीं है। आमतौर पर लोगों के पास सौंदर्य दृष्टि तो होती है, पर सौंदर्यशास्त्र नहीं होता। ऐसे लोगों की सौंदर्य दृष्टि को हम सौंदर्यशास्त्रीय दृष्टि नहीं कह सकते। मार्क्स, एगल्स और लेनिन की सौंदर्य दृष्टि के पीछे एक सुव्यवस्थित सौंदर्यशास्त्र छिपा हुआ है जिसका दार्शनिक आधार है द्वंद्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवादी।'[7]

'हिंदी में मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्री चिंतन की शुरूआत 1936 के प्रगतिशील लेखक संघ के प्रथम अधिवेशन में प्रेमचंद द्वारा दिए गए भाषण से माना जाता है। इस भाषण में प्रेमचंद साहित्य को जोड़ते हैं। साहित्य जीवन की आलोचना है चाहे वह निबंध के रूप में चाहे वह कहानियों व काव्य के, उसे हमारे जीवन की आलोचना और व्याख्या करनी चाहिए।'[8]

'प्रेमचंद के बाद हिंदी साहित्य चिंतन के क्षेत्र में मार्क्सवादी विचारकों की एक कतार दिखाई पडती है। डा॰ रामविलास शर्मा, शिवदानसिंह चौहान, राहुल, रांगेय राघव, यशपाल, प्रकाशचंद गुप्त, डा॰ नामवरसिंह, मुक्तिबोध, रमेश कुंतल 'मेघ' आदि मार्क्सवादी विचारकों ने हिंदी में मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्री चिंतन के निरूपण और प्रसार में अपनी-अपनी क्षमता के अनुरूप योग दिया है। डा॰ शर्मा, डा॰ नामवरसिंह और मुक्तिबोध ने विशेष उल्लेखनीय योगदान किया है। डा॰ शर्मा का योगदान सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है।'[9]

डा॰ रामविलास शर्मा के अनुसार, 'सौंदर्यशास्त्र दर्शन का एक अंग है। जिसका उद्देश्य

सौंदर्य तथा उसकी अनुभूति की व्याख्या करना है।'[10]

जगदीश चतुर्वेदी ने अशोक वाजपेयी के संबंध में एक लेख में लिखा है, 'समाजवादी व्यवस्था का जन्म पूँजीवाद विरोधी व्यवस्था के रूप में हुआ था। अशोक वाजपेयी ने बड़ी ही चालाकी के साथ अमेरिकी बर्बरता पर कुछ भी नहीं कहा है। सवाल है कि क्या पूँजीवाद पुण्यात्माओं की व्यवस्था है? इस संसार में दो विश्वयुद्ध किसने थोपे? इन युद्धों में करोड़ो लोग मारे गए है।'[10]

अशोक वाजपेयी अपने टिपिकल मार्क्सवादी विरोध और पूँजीवाद के चरणों की पदावली का प्रयोग करते हुए पूँजीवाद को धर्म बताने का काम कर रहे हैं। पूँजीवाद के जरिये इस दुनिया की मुक्ति संभव नहीं। यह बात सबसे पहले मार्क्स ने ही कही थी और उनकी यही भविष्यवाणी बार-बार सही साबित हुई है। अशोक वाजपेयी भूल गए कि चीन ने बहुत कम समय में ही अपने देश की अर्थव्यवस्था में जो लंबी छलांग लगाई है वैसी छलांग पहले किसी भी पूँजीवादी मुल्क ने नहीं लगाई है। पूँजीवाद से मुक्ति का आज भी एक ही विज्ञान है और वह है मार्क्सवाद।

मार्क्स ने कभी नहीं कहा कि जो लिख रहे हैं वह पत्थर की लकीर है और उनके अनुयायियों को उनकी बातों का आँखें बंद करके मानना चाहिए। मार्क्सवाद का नाम अनुकरण नहीं है। यह जीवन का विज्ञान है, विश्व दृष्टिकोण है। दुनिया के परिवर्तन का सबसे प्रभावशाली दर्शन है और करोड़ो लोग आज भी अपनी मुक्ति के संघर्ष में मार्क्सवाद से प्रेरणा ले रहे हैं।[11]

प्रवक्ता कॉम ब्यूरों में एक लेख पोस्ट किया गया है जिसका शीर्षक है–हिंदी के मार्क्सवादी आलोचक और बुद्धिजीवी। इस लेख में पांडेय शशिभूषण शीतांशु लिखते हैं कि हिंदी में मार्क्सवादी आलोचकों ने पिछले 50 वर्षों में साहित्य की भावक्षमता और पाठकीय संवेदनशीलता को कुंठित अवरोधित ही किया है। इन सबने साहित्य को वाद-विवाद और संवाद के नाम पर बहस का विषय तो बना दिया है, पर साहित्य में डूबकर गहरे पैठकर प्राप्त की जानेवाली पाठकीय सर्जनात्मकता और उसके दायित्व को बिल्कुल दरकिनार कर दिया है। इनके लिए साहित्य का मूल्यांकन निकष केवल वर्ग-भेद पर आधारित समाज और युग है और वह भी राजनीतिक सक्रियता से आंदोलित है।

आज हिंदी में ऐसा कोई मार्क्सवादी जनवादी आलोचक नहीं है, जो सर्वहारा और श्रमिकों की लड़ाई साहित्य में तो लड़ने चला है, पर जिसका अपना जीवन किसी बुजुर्आ और पूँजीपति से कम है।[12]

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के बाद डा॰ रामविलास शर्मा ही एक ऐसे आलोचक के रूप में स्थापित होते हैं जो भाषा साहित्य और समाज को एक साथ रखकर मूल्यांकन करते हैं। उनकी आलोचना प्रक्रिया में केवल साहित्य ही नहीं होता, बल्कि वे समाज, अर्थ, राजनीति, इतिहास को एक साथ लेकर साहित्य का मूल्यांकन करते हैं। अन्य आलोचकों की तरह उन्होंने किसी रचनाकार का मूल्यांकन केवल लेखकीय कौशल को जाँचने के लिए नहीं किया, बल्कि अपने समय के साथ न्याय किया है।

आचार्य शुक्ल का युगांतकारी योगदान यह था कि उन्होंने साहित्य के साथ समाज और इतिहास के घनिष्ठ संबंध को पहचाना और इस तरह उन्होंने पहली बार हिंदी आलोचना को वैज्ञानिकता, प्रामाणिकता और शास्त्रीय गंभीरता का स्पर्श दिया। दूसरे उन्होंने हिंदी भाषी समूह के

 ISSN 0975-735X

लिए एक विवेकसम्मत विशद विश्वसनीय सांस्कृतिक परंपरा यानि एक पूरा इतिहास ढूँढ निकाला। इस इतिहास के बिना एक जातीय भाषा के रूप में हिंदी की पहचान नहीं बन सकती थी।[13]

शुक्लजी की दृष्टि बेहद जनवादी थी। 'हिंदी शब्दसागर' की भूमिका जो बाद में हिंदी साहित्य का इतिहास के रूप में आई, में उन्होंने अपनी आलोचनात्मक धारणा को स्पष्ट रूप से व्याख्यायित किया है। जिसमें जनता और साहित्य की पारस्परिक रिश्तों को स्वीकार किया गया है। उनकी आलोचना दृष्टि की सबसे बड़ी उपलब्धि लोकमंगलवाद का मानक है जिसके लट्ठे से किसी भी साहित्य की सुंदरता आदर्शपूर्ण सामाजिक कल्याणपरक स्थिति की उत्पत्ति की जा सकती है। यह कसौटी उनकी हिंदी आलोचना को दी गई सबसे बड़ी उपलब्धि है।[14]

डा॰ नगेंद्र की आलोचना दृष्टि—अपने पहले आलोचनात्मक निबंध छायावाद (1937 ई॰) से लेकर मृत्युपर्यंत लगभग 62 वर्षों तक वे इस क्षेत्र में छाए रहे। उनकी पहली आलोचनात्मक कृति सुमित्रानंदन पंत (1938 ई॰) शुक्लजी के जीवनकाल में ही निकल चुकी थी। शुक्लजी ने अपने हिंदी साहित्य के इतिहास में इस पुस्तक की प्रशंसा करते हुए लिखा है, 'काव्य की छायावाद कही जाने वाली शाखा चले काफी दिन हुए, पर ऐसी कोई समीक्षा पुस्तक देखने को न आई जिसमें उक्त शाखा की रचना-प्रक्रिया प्रसार की भिन्न-भिन्न भूमियाँ सोच-समझकर निर्दिष्ट की गई हों।[15]

अत: संक्षेप में कहा जा सकता है कि समीक्षा समसामयिक हिंदी आलोचना का अनेक स्तरों पर विस्तार व विकास हो रहा है। नए आलोचक नए मूल्यमानों के प्रति बौद्धिक रूप से सतर्क एवं सजग हैं। देश-विदेश की नवीन आलोचना पद्धतियों को समझते और समझाते हुए हिंदी का नया आलोचक आगे बढ़ रहा है, जिसकी उर्वराशक्ति हमें पूर्ववर्ती आलोचकों से प्राप्त होती रही है।

संदर्भ

1. आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास मार्क्सवादी आलोचना, बच्चनसिंह, पृ॰ 387-88
2. मार्तंड प्रगल्भ (लेख) सुरेंद्र चौधरी, विराट ऐतिहासिक संदर्भों से समृद्ध आलोचक से।
3. इतिहास संयोग और सार्थकता, डा॰ सुरेंद्र चौधरी
4. इतिहास संयोग और सार्थकता (खंड 1), डा॰ सुरेंद्र चौधरी, पृ॰ 219-20-21
5. वही, पृ॰ 226
6. संदर्भ, मार्क्स एगल्स जर्मन विचारधारा, 1568 मास्को
7. रामकृपाल पांडेय, पहली परंपरा का विकास, पृ॰17
8. प्रेमचंद, कुछ विचार, पृ॰ 6
9. रामकृपाल पांडेय, पहली परंपरा का विकास, पृ॰17
10. आस्था और सौंदर्य, पृ॰ 19
11. प्रो॰ जगदीश्वर चतुर्वेदी का लेख (21 अप्रैल 2012), आलोचना राजनीति
12. हिंदी के मार्क्सवादी आलोचक और बुद्धिजीवी, पांडेय शशीभूषण शीतांशु, चिंतन सृजन (त्रैमासिक) से
13. डा॰ रामविलास शर्मा और भारत का इतिहास
14. मार्क्सवादी आलोचना और इतिहास दृष्टि, संघर्ष और आत्मसंघर्ष, आशुतोषकुमार, पृ॰ 2
15. विश्वनाथ त्रिपाठी, हिंदी आलोचना, पृ॰ 55
16. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ॰ 564

मो॰ 9415289273

भोजपुरी लोकगीतों में रामकथा का स्वरूप

डॉ० सतीशकुमार श्रीवास्तव
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
मारवाड़ इंटर कॉलेज, गोरखपुर (उ०प्र०)

रामकथा अपने रंग-रूप, भाव-भाषा, वेश-विन्यास और आकार-प्रकार में विशाल, विविध एवं विलक्षण है। इसमें न केवल किसी देशकाल विशेष की मानवीय संवेदनाओं, कामनाओं तथा अनुभूतियों को उभारकर उसके पारिवारिक एवं सांस्कृतिक जीवन की करुण कथा को उद्धृत किया है, अपितु जीव-जंतुओं के साथ प्रकृति को भी उसका भागीदार बनाया है। राजा से लेकर रंक तक ही नहीं, गगनचारी पक्षियों से लेकर पातालवासी प्राणियों तक को प्रभावित किया है। नगर निवासियों से लेकर वनवासियों तक को आत्मसात् कर लिया है। नर-नारी से लेकर बालवृद्ध तक को भावविह्वल कर दिया है। देव-दैत्यों से लेकर सिद्ध-साधकों तक को मंत्र-मुग्ध बना दिया है।

मूक पाषाण से लेकर वाचाल सागर तक को भाव-विभोर कर दिया है। इसकी भाव-प्रवणता ने लोकमानस को ही नहीं, प्रबुद्ध पंडितों तक को आकर्षित एवं आंदोलित किया है।

हमारे लिए 'रामकथा' भारतीय गृहिणी की मर्मव्यवस्था ही नहीं, राष्ट्रकथा भी बन गई है। इस करुण कथा ने न केवल देशकाल का ही सीमोल्लंघन किया है, अपितु लिपि-भाषा भेद संबंधी बाध्यता एवं व्यवधान को भी अस्वीकार कर दिया है। फलत: यह मार्मिक कथा न केवल देश-विदेश तक फैल गई है, अपितु वहाँ के कला, साहित्य और संस्कृति को भी समृद्ध बनाने में इसने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।[1]

लोककवि अब भी रामकथा के लोकरंजनकारी प्रसंगों द्वारा लोकमानस को उच्छ्वसित एवं आह्लादित कर नवजीवन का संचार किया करते हैं। लोकगीतों में उपलब्ध कथा-प्रसंग प्राय: इसी कोटि के हैं। अज्ञात लोककवियों ने अपनी मार्मिक उद्भावनाओं द्वारा न केवल रामकथा के स्वरूप को निखारा है, अपितु लोकमानस में अंतर्निहित उसके प्रभाव को भी संवारा है।

अवध भगवान श्रीराम की जन्मभूमि है, जिसकी धूल में लोट-पोटकर उन्होंने अपने स्वरूप का निर्माण किया है। भोजपुरी प्रदेश उनकी जीवन-यात्रा का प्रथम चरण है, वहाँ पहुँचकर रामकथा की भूमिका तैयार हुई है।

लोकगीतों में वर्णित कथाएँ बहुधा कोरे तथ्य 'मिथक' का रूप धारण कर लेती हैं। यही 'रामकथा' के क्रम में भी हुआ है। 'रामकथा' घटना-प्रधान होकर भी लोकभावना के माध्यम से व्यक्त हुई है। इसी कारण से उसमें एकसूत्रता न होने पर भी क्रमबद्धता पाई जाती है। एक सूत्रता के अभाव का एक बहुत बड़ा कारण यह है कि यह वाचिक कथा-परंपरा न होकर लोककंठ में

निवास करती है। यदि ध्यानपूर्वक विचार किया जाय, तो लोकमानस में उसका एक कथा-क्रम रहता है, जिसकी क्रमबद्धता विस्तृत न होने पर आगे चलकर उसमें क्रमबद्धता आ जाती है।

रामजन्म

भोजपुरी लोकगीतों में उपलब्ध रामजन्म-कथा भाग का विभाजन पौराणिक तथा लोकप्रवाह दो वर्गों में किया जा सकता है। ब्रह्मपुराण[2] में अंधमुनि के पुत्र-वध श्रवण का वृत्तांत मिला है। जिसके अनुसार अंधमुनि ने राजा दशरथ को पुत्रशोक में मरने का शाप दिया था। भोजपुरी लोकगीतों में भी पुत्रजन्म का पौराणिक कारण प्राप्त है। इन लोकगीतों में पुत्रशोक शाप के साथ-साथ अयोध्या में रामजन्म होने का भी वर्णन मिलता है।[3] पद्मपुराण[4] में राजा दशरथ शृंगी ऋषि द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ कराने का संकल्प करते हैं। परंतु कृतिवास रामायण[5] में लोमपाद के यहाँ से शृंगी-ऋषि को अयोध्या ले आकर पुत्रेष्टि यज्ञ करवाते हैं।

यज्ञ से प्रसन्न होकर अग्निदेवता राजा दशरथ को आहुति 'पायस' देते हैं। इसी 'हव्य' के सेवन से तीनों रानियाँ गर्भवती होती हैं।

भोजपुरी लोकगीतों में यह वर्णन मिलता है कि राजा दशरथ भगवान शंकर की तपस्या करते हैं और भगवान शंकर उन्हें पुत्र-प्राप्ति होने का वरदान देते हैं।[6]

लोकमानस में पुत्ररत्न-प्राप्ति का विशेष महत्त्व है। भारतीय संस्कृति में पितृ-ऋण से 'उऋण' होने के लिए पुत्र का होना जरूरी है तथा वंश-परंपरा को आगे बढ़ाने के लिए मानव-जीवन में संतानोत्पत्ति एक आवश्यक धर्म माना जाता है।

जिस व्यक्ति को पुत्र नहीं है, उसे लोकमानस तिरस्कृत भावना से देखता है तथा पति-पत्नी दोनों को लोग निरवंशी और बांझिनी कहकर ताना मारते हैं। वह स्थिति कितनी हृदयविदारक और कारुणिक हो जाती है, जब लोग उस दंपती का मुँह तक देखना पाप मानने लगते हैं।

भोजपुरी लोकगीतों में रामकथा से संबद्ध हृदय को झकझोर देनेवाले वर्णन मिलते हैं। उनके अनुसार निम्नवर्ण वाली 'हेलिन' राजा दशरथ को निरवंशी कहकर उनका तिरस्कार करती है और प्रातःकाल उनका मुँह देखना अशुभ मानती है। कौशल्या रानी के लिए सोना, राखी और चाँदी मिट्टी अयोध्या के बारहों महल उनके लिए जल गए हैं।

अतः राजा दशरथ पत्नी के साथ गाँठ जोड़कर गंगा में स्नान और पुत्रप्राप्ति के लिए सूर्योपासना करते हैं।[7] भोजपुरी लोकगीतों में एक स्थान पर, राजा दशरथ के निरवंशी होने पर 'लता' का व्यंग्य मिलता है[8]–

> सोने के खड़ऊवाँ राजा दशरथ,
> बेइलि तर ठार भइने।
> बेइली पतवा कंचन अस तोर,
> त फल काहे निष्फल हो।

और लता राजा दशरथ को दू टूक उत्तर देती है–

> राजा तोहरे घरे रनियाँ कोसिला देई,
> ओनहीं से पूछा हो।

एक अन्य भोजपुरी लोकगीत में रामजन्म के एक अन्य हेतु का वर्णन किया गया है, जिसके

अनुसार कौशिल्या स्वयं कहती हैं कि गंगास्नान करके, सूर्य-अराधना करने रविवार का व्रत रखने, भूखे ब्राह्मणों को भोजन कराने वस्त्रहीन लोगों को वस्त्र दान देने और तुलसी के पास नित्य दीपक जलाने के फलस्वरूप मैंने श्रीराम को पुत्र रूप में पाया है।'[9]

भोजपुरी लोकगीतों में रामजन्म का एक अन्य कारण रानी कौशल्या द्वारा 'ओखद' (औषधि)[10] सेवन करना भी माना गया है। एक-दूसरे भोजपुरी लोकगीत में महारानी कौशल्या के पुत्रप्राप्ति के निमित्त माहर औषधि औषी 'माहर ओखद' (विषय औषधि) का सेवन का भी वर्णन मिलता। इसके अनुसार रानी कौशल्या बढ़ई को बुलाते हुए उससे कहती है कि मेरे घर के पिछवाड़े माहुर नाम की औषधि है, तुम मुझे उसे लाकर दो, पुत्रप्राप्ति के निमित्त मैं उसका सेवन करूँगी।[11]

धीरे-धीरे समय व्यतीत होने लगता है, अंततः रानी कौशल्या का प्रसवकाल निकट आ जाता है। वे यह सोंचकर बहुत चिंतित और बेचैन हो जाती हैं कि कहीं ज्येष्ठा मूल[12] (अभुक्त मूल) में ही बालक का जन्म न हो जाय, क्योंकि ज्योतिषाचार्यों के मतानुसार ऐसा माना जाता है कि 'ज्येष्ठा' का फल बुरा होता है। इसका कारण यह है कि 'ज्येष्ठा' का स्वामी देवराज इंद्र तथा मूल का स्वामी दैत्य होते हैं। इन दोनों के संबंध का काल अशुभ तथा अमंगलकारी होता है, इसके अनुसार देव और दैत्य के बीच शत्रु-भाव बना रहता है। इसलिए ज्येष्ठा मूल में उत्पन्न होने वाली संतान हर तरह के विघ्न-बाधाओं के बीच आजीवन संघर्ष करती रहती है। माता की यह बेचैनी अंतर्यामी भगवान श्रीराम से छिपी नहीं रह पाती। वे गर्भ के अंदर से ही आश्वासन-भरे शब्दों में बोलते हैं कि मैं शुभ मुहूर्त में ही जन्म लूँगा।[13]

संगृहीत भोजपुरी लोकगीतों में अलौकिक ज्योति से युक्त[14] नवजात शिशु राम शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी विष्णु हैं, जो राजा दशरथ के यहाँ पुत्र रूप में जन्म लेते हैं।[15] एक दिन चिर-प्रतीक्षित शुभ घड़ी आ ही गई, जिसकी राह देखते-देखते आँखें पथरा गई थीं।[16]

एक अन्य भोजपुरी लोकगीत में गंगा मैया 'श्रीराम' के अवतार के बारे में राजा दशरथ को बताती हैं तथा उनका चरण छूने के लिए आतुर हैं।[17]

संगृहीत भोजपुरी लोकगीतों में कौआ से सगुन विचार का वर्णन मिलता है। प्राचीनकाल में पशु-पक्षियों द्वारा सकुन विचार तथा पत्र-व्यवहार किया जाता था। इसमें शकुन विचार के लिए कौआ तथा पत्र-व्यवहार का माध्यम कबूतर हुआ करते थे।

महारानी कौशिल्या के महल के पीछे बेइली की डाली पर कौआ बैठकर 'श्रीराम जन्म' का पूर्वाभास कराता है और कौशल्या रानी उस कौए की सुंदर वाणी सुनकर, उसके चोंच, पंख में सोना जड़वाने तथा सोने के कटोरे में दूध-भात जेवाने का वचन देती हैं।[18] कितना मार्मिक वातावरण हो जाता है और पुत्रप्राप्ति की बात सुनकर मातृ-ममता छलक उठती है।

भोजपुरी लोकगीतों में श्रीराम त्रेतायुग[19] और चढ़ते चैत[20] में जन्म लेते हैं। एक अन्य भोजपुरी लोकगीत में तिथि[21] और नक्षत्र के साथ-साथ यह भी वर्णन मिलता है कि राजा दशरथ ने राम-जन्म के बाद पंडित से पोथी बँचवाई और पंडित ने बताया कि राम ने शुभ नक्षत्र 'रोहिणी' में जन्म लिया है, लेकिन जब राम बारह वर्ष के होंगे, तो वन-गमन करेंगे।[22]

निःसंतान राजा दशरथ और उनकी तीनों रानियाँ पुत्ररत्न पाकर आनंद-विभोर होकर अन्न-धन, गो-धन, स्वर्ण-धन आदि 'नेवछावर' करती हैं।[23] एक अन्य भोजपुरी लोकगीत में चारों भाइयों, यथा—राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न का नाम मिलता है।[24]

एक अन्य भोजपुरी लोकगीत में राजा दशरथ पुत्र-रत्न की प्राप्ति की समाचार पाते ही भाव-विभोर होकर, मोहर, अशर्फी और वस्त्र इत्यादि लुटाते हैं, इसी प्रकार उनकी तीनों रानियाँ, अन्न, सोना और पुखराज लुटाती हैं। एक पुरानी कहावत है कि 'पत्थर पर दूब जमना' तो निरवंशी राजा को तो कठिन तपस्या के पश्चात् 'पुत्र-रत्न' की प्राप्ति हुई थी, भला हीरे और जवाहरात लुटाने से मन कैसे अघाता? जितना लुटाया जाय, वह राजा के लिए थोड़ा ही था।

राजा दशरथ को लता का व्यंग्य भूला न था। उन्होंने उसे कटा देने का प्रस्ताव किया, किंतु कौशिल्या रानी तो माँ बन चुकी थीं। उन्होंने राजा से कहा–

मोरे राजा दुधवन बेइली सिंचइबइ त,
जे न मोहे बुधि देयेउ हो।

पुरुष की कठोरता को यदि नारी की क्षमा की छाँह न मिले, तो वह रसातल को चला जाय। राजा दशरथ ने पंडित से पोथी बँचवाई और पंडित ने कहा–

बहुत सुघरी रामम जनमें त, रोहिनी नखत में।
राजा बारहे बरिस के होइहें, त वनन के सिधरिहें।

रानी कौशिल्या तो पुत्रजन्म की प्रसन्नता में हीरे, मोती लुटा रही थीं। राजा ने राम के वन-गमन का अप्रिय समाचार सुनाया, इस पर रानी कौशिल्या दो टूक उत्तर देती हैं–

राजा छुवल बझिनियाँ के नाँव,
भलेही राम वन जइहें।

एक अन्य भोजपुरी लोकगीत में राम के वन-गमन का वर्णन मिलता है। इस लोकगीत के अनुसार–बालक 'राम' के जन्म लेने के पश्चात् पूरे अवध में हर्षोल्लास का वातावरण छाया हुआ है। सभी प्रसन्न हैं। बालक 'राम' के रूप-सौंदर्य का वर्णन जितना किया जाय, वह कम ही है। वह अद्‌भुत सौंदर्य के लिए हुए हैं। उस बालक को देखने के लिए माताएँ (सुमित्रा, कौशल्या, कैकेयी) सुंदर पालकी पर चढ़कर आती हैं और राजा दशरथ लाल घोड़े पर चढ़कर आते हैं।

आँगन को चेरी साफ करती है और पीला वस्त्र बिछाती है। बालक राम की माता रानी कौशिल्या अपने गोतिनी (रानी सुमित्रा और कैकेयी) से बैठने का अनुरोध करती हैं। माताएँ राम को देखने के लिए लालायित हो उठती है, रानी कौशल्या कहती हैं कि अभी तो मेरा बेटा राम कुछ दिन का ही हुआ है, जब बारह दिन का हो जाएगा, तब आँगन में निकालूँगी।

ऐसा लोकविश्वास है कि 'नवजात शिशु' को बारह दिन (बरही) पर ही आँगन में निकालना चाहिए। बालक राम को न देख पाने पर माताओं (सुमित्रा और कैकेयी) को कष्ट होता है, वे कहती हैं कि जब राम बारह वर्ष के होंगे, तो वन को चले जाएँगे।

संदर्भ

1. डॉ॰ किरन मराली, अवधी और भोजपुरी लोकगीतों में रामकाव्य भूमिका से।
2. ब्रह्मपुराण, अध्याय-23
3. हे दशरथ जीवन सोगवा हमके सुनावला,
   तवन सोगवा तोहके परोजी।
   तोहरा जे रामा जमि है,
   अजोधा मा सोर हो हयं।, उपाध्याय, डॉ॰ कृष्णदेव, 'भो॰लो॰, सं॰ 1/24-25

4. पद्मपुराण, गौड़ीय पाताल खंड, अध्याय-14
5. कृत्तिवास रामायण, अध्याय-39
6. सिव जी हमरे संततिया के साथ,
   संततिया हमें चाहिं ल रे।
   जाइ ए राजा जाइ लवटि घरवा चलि जाइ हो।
   राजा आजू कय ननव महिनवाँ,
   संततितया तोहे होय हो। लोक प्रचलित परंपरा
7. गाँठी ही जोरी नहइली, सूरुज माथे लागेली
   सूरुज जतिया के पातर हेलिन, हेलिनियाँ कहेले निरबंसिया, आठ महीना , नव लागत, होरिला जनम लिहले। भोजपुरी लोकगीत सं॰ 2/17 से 19
8. डॉ॰ हीरालाल तिवारी, 'गंगाघाटी के गीत', भाग-1, पृ॰ 186-187
9. गंगा पिछुववाराया बढ़इया भइया,
   बेगे चलि आवसु हो।
   ए भइया जरि से नना काटहु ओखदवा,
   बेगे से लावहु हो।
   ओर रगरि-रगरि जरिया पिसलो,
   कोसिला रानी पीयुसु हो। भा॰लो॰ सं॰ 5/4-5
10. हमरे पिछुवरवा बढ़इया भइया, बेगे चलि आवा रे।
    भइया बन बढ़े लावना महूरवा, कोसिला जी का ओखद हो। 'भो॰लो॰, सं॰ 4/11/12
11. अश्विनीमय भूलानां तिस्त्रोगण्डाध नाडिकः।
    अन्त्या पौष्णीगेंद्राणां पाश्चैव यवना जगुः।।
    मूलेंद्रयोद्रिदवा गंडो निशाचपितृ सर्पयोः।
    सान्ध्यसाराजि दिवाभागे गण्डयोगोद्रमः शिशुः।
    आत्मानं मातरं तातं विनिहन्ति यथाक्रमम्।
    सर्वेषां गंड जातानां परित्यागो विधीयते।
    तातेनादर्शनंवापि यावत् शाण्मासिको भवेत्।।
    ज्योतिष तत्वम् श्लोक, 39-41
12. डॉ॰ किरन मराली, अवधी और भोजपुरी लोकगीतों में रामकाव्य।
13. अवध में रामजी जनमलें, जनमि भुइया लोटले।
    रे उनकी हथवा में दुई दुई लाल, त लिलार में मानिक जड़ल हो। भो॰लो॰, सं॰ 9/11-2
14. जनमेले रघुकुलनंदन निकंदन हो।
    ललना शंख, चक्र, गदा, पद्म हाथ, जग में मुनिरंजन हो।
    धनि हो कोसिला तोहार गोद, खेलवो जगवंदन हो। भो॰लो॰, सं॰ 8/3-5
15. डॉ॰ हीरालाल तिवारी, गंगा घाटी के गीत, पृ॰ 186-187
16. कहवाँ से गंगा उतरेली, कहवां से पसरेली हो
    आरे केकरी दुअरिया भइली ठाड़, लहरिया लेई दउरेली हो।
    शिव जी के जटा से गंगा उतरेली, धरती पर पसरेली हो।

आरे दशरथ दुअरिया भइली ठाढ़, लहरिया लेई दउरेली हो।

–लोकप्रचलित परंपरा

17. मोरे पिछुअरवाँ बेइलिया, बेइलिया डरिया पसरेले हो।
आरे ताहि पर बइठेला कगवा, त बोलिया सोहावन हो।
घर में से निकलेली कोसिला रानी, त कगवा से बात करे।

–लोकप्रचलित परंपरा

18. त्रेतायुग नगर अजोधा में, राम अवतारेले हो।। भो॰लो॰, सं॰ 8/1
19. आहो रामा चढ़ते चइतवा, राम जनमने हो राम, भो॰लो॰, सं॰ 10/1
20. डॉ॰ हीरालाल तिवारी, गंगा घाटी के गीत, पृ॰ 186-187
21. वही।
22. मिलहू न सखिया सलेहरि, मिलि जुलि आवहु हो।
जहाँ राजा के जनमे हैं राम, करिय नैछावर हो।
केहू नाचै बाजूबंद, केउ नावै कजरावट हो, केउ नाचे कजरावट हो।

–लोकप्रचलित परंपरा।

23. कोसिला के भइले राजा रामचंदर,
सुमित्रा के लछुमन हो।
कैकइया के भइले भरत-भुवाल, तीनों घर मंगल बाजेला हो। भो॰लो॰, सं॰ 5/11-12
24. पावै राजा दशरथ खबरिया त, मोहर, बसनवा लुटावैले हो।
ललना मुठिया में लेई असरफिया, बसनवा लुटावेले हो।।
कोसिला लुटावेली अनधन, सोनधन हो, सुमितरा कैकेयी हीरवा नू हो। भो॰लो॰, सं॰ 8/11 से 14

शोषक व्यवस्था के खिलाफ आदिवासियों की बुलंद आवाज : ऑपरेशन जोनाकी

डॉ॰ संजय गडपायले

वर्तमान में प्रेमचंद की परंपरा को आगे बढ़ानेवाला कोई कथाकार है तो वह संजीव ही है। संजीव के अधिकतर कहानी-संग्रह और उपन्यासों में आदिवासियों के जीवन का संत्रास है। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि आदिवासी विमर्ष की अभिव्यक्ति उनके कथासाहित्य में हुई है। गाँव के मनुवादी सामंती मूल्य और उसके आतंक से संघर्ष करते आदिवासी, जाति संघर्ष, कोयला खदानों का संघर्ष, नक्सलवाद से प्रभावित राजनीतिक जुझारूपन आदि उनके कथासाहित्य के विषय रहे हैं। रमणिका गुप्ता ने आदिवासियों की वास्तविकता को स्पष्ट करते हुए कहा है कि 'वे विस्थापित हो रहे हैं, पलायन कर रहे हैं, जड़ों से कट रहे हैं उनकी भाषाएँ खत्म हो रही हैं, संस्कृति खत्म हो रही है।'[1] संजीव का कथासाहित्य इस बात को ही उद्‌घाटित करता है। संजीव यह जानते हैं कि वर्तमान में आम आदमी साम्राज्यवाद और बाजारवाद से अनछुआ नहीं है और उसके दुष्परिणाम व्यक्ति भोग रहा है। संजीव शोषितों के हितैषी और शोषकों के विरोधी हैं। वे एकस्थान पर स्पष्ट कहते हैं कि 'विज्ञान और टेक्नॉलॉजी, संसाधन, उत्पादन और वितरण पूरी तरह अमेरिकी साम्राज्यवाद और बाजारवाद के शिकंजे में है और राजनीति, धर्म, कला और संस्कृति भी उसकी दाढ़ में समाती जा रही है। इसलिए आज जनधर्मी साहित्य की चुनौतियाँ कठिन हैं और बहुआयामी भी। इस मायावी दैत्य को जनधर्मी आंदोलन ही तोड़ सकता है।'[2]

संजीव की कहानियों में और उपन्यासों में समकालीन यथार्थ के खौफनाक चित्र दिखाई देते हैं, जो सही मायने में वास्तविकताओं को बया करते हैं। सामंती मूल्यों की विद्रूपताओं को परत-दर-परत उघाड़ती उनकी कहानियाँ नक्सलबाड़ी आंदोलन की विचारधारा और समाज के लहू-लुहान यथार्थ से जुड़ी हैं। सरकार, साहुकार और जमींदारों के अत्याचारों के विरुद्ध आगाज है नक्सलवाद। और इसी आवाज ने हिंदी कहानी को एक नया स्वर देकर उसकी दिशा मोड़ दी। बेचैन कथाकार संजीव की अनेक कहानियों में यही चित्र अधिकतर रूप में दिखाई देते हैं। यह मानना पड़ेगा कि संजीव की कहानियों में आरंभ से लेकर आज तक समाज में व्याप्त गतिरोध को तोड़ने का प्रयत्न है और इसी कारण आलोचकों ने उन्हें बेचैन कथाकार कहा है।

संजीव ने आदिवासी समुदाय के जीवन-यथार्थ, उनके रीतिरिवाज, जीवन-संघर्ष को अपनी कथाओं में प्रस्तुत किया है। ऑपरेशन जोनाकी कहानी नक्सलवादी आंदोलन से जुड़ी कहानी है जिसमें नक्सलवादियों की वास्तविकता को उद्‌घाटित कर शासन के उनके प्रति रवैये को भी चित्रित किया गया है। इस कहानी में संजीव ने षड्‌यंत्र रचनेवाली पुलिस यंत्रणा और भ्रष्ट

 ISSN 0975-735X

राजनीतिक दावपेंच का भांडाफोड़ किया है। इस कहानी में मानवीय संवेदनाओं से जुड़े अनिमेष दा एक ईमानदार सरकारी अफसर हैं, जो अपनी ईमानदारी और वफादारी के कारण अनेक बार सस्पेंड हुए और उनके तबादले भी होते रहे। अनिमेष दा को जोना की ऑपरेशन की जिम्मेदारी सौंपकर प्रशासन ने उनके साथ धोखा किया था।

कहानी में मजूमदार नामक पात्र है। वह काँग्रेस की विचारधारा के हैं, जो स्वभाव से अत्यंत सीधे-साधे ईमानदार व्यक्ति हैं। अनिमेष दा के घर के पास ही उनका घर है, पर एक दिन उनकी हत्या हो जाती है, जिससे खुद अमिनेष दा परेशान हो जाते हैं। अनिमेश दा ही इस मर्डर केस की तहकीकात करते हैं, पर कुछ ठोस सबूत न मिलने पर उनकी कार्यपद्धति को दोष दिया जाता है। एक दिन मंत्रीजी अनिमेष दा को इस विषय में बातचीत करने के लिए बुलाते हैं। तब वे अपने बेटे सौरभ के साथ वहाँ पहुँच जाते हैं। पहुँचने पर सौरभ देखता है कि मंत्रीजी के साथ दो व्यक्ति चाय पीते हुए बातें कर रहे हैं। सौरभ उन दोनों व्यक्तियों को पहचान लेता है, क्योंकि सौरभ चश्मदीत गवाह था। उसने तुरंत उनके सामने अपने पिता से कहा कि 'बाबा, एराई मजूमदार काकू के छूरी मेरे छोलो'[3] यह सुनकर सभी गंभीर हो गए। अमिनेष दा ने खूनियों को पहचान लिया था पर वे विवश थे, कुछ भी न कर सके। जिस तहकीकात के लिए उन्हें जिसने दोषी ठहराया था, वही खून का सूत्रधार था। और इसका परिणाम बहुत क्रूर हुआ। दूसरे दिन अमिनेश दा के बेटे सौरभ का स्कूल से लौटते समय अपहरण हुआ, जो फिर कभी नहीं मिला। परिणामस्वरूप अमिनेष दा की पत्नी बेटे की याद में पागल होकर मर गई। भ्रष्ट और घिनौनी राजनीति ने अनिमेष दा का सब-कुछ लूटकर उन्हें तबाह कर दिया था। फिर भी वे कर्तव्यदक्ष अधिकारी के रूप में जाने गए।

इस कहानी का एक पात्र सत्येन है, जो शिक्षित है। जोना की गाँव की सामंतवादी रूढ़ि-व्यवस्था, जमीदार, साहुकार तथा प्रस्थापित वर्ग, भूमिहीन, चासा एवं दलित आदिवासियों पर अन्याय-अत्याचार कर उनका शोषण करते हैं। साथ ही दलित और आदिवासी स्त्रियों का यौन-शोषण भी इनके द्वारा होता है। सत्येन इन चासा, दलित-आदिवासियों के आत्मसम्मान को जाग्रत करते हुए उनमें चेतना निर्माण कर अपने अधिकारों के लिए लड़ने की प्रेरणा देकर उन्हें प्रतिरोध के काबिल बनाता है। इसलिए पुलिस और स्वार्थी राजनीतिक व्यवस्था सत्येन को देशद्रोही करार देती है। अर्थात् अन्याय और अत्याचार के खिलाफ लड़नेवाले सत्येन को प्रजातंत्र में दोषी ठहराया जाता है। पुलिस और राजनीतिक व्यवस्था अनिमेष दा को जोनाकी ऑपरेशन का प्रमुख बनाते हैं, जिसमें सत्येन को पकड़ने की जिम्मेदारी उन पर सौंपी जाती है। सत्येन शोषित-पीड़ित चासा, दलित और आदिवासियों को उनके अधिकार और आत्मसम्मान को बचाए रखने के लिए उनमें जागृति लाने का प्रयास करता है, पर सरकार इस बात को विद्रोह मानती है। और इन्हीं गतिविधियों को रोकने के लिए सरकार अमिनेष दा की नियुक्ति करती है। कहानी में इस बात का भी उल्लेख है कि किस तरह से आदिवासियों की स्त्रियों का व्यवस्था द्वारा यौन-शोषण होता है। जिसका विरोध सत्येन और आदिवासी करना चाहते हैं, पर इसे सरकार और प्रस्थापित व्यवस्था दबा देना चाहती है। अमिनेष दा भी अक्सर आदिवासियों, चासा और दलितों के पक्ष में सोचते हैं। यहाँ तक कि उनको आदिवासियों की माँग सही ही लगती है।

कहानी का एक प्रमुख पात्र चिन्मय भी है, जो अमिनेष दा की सोच में परिवर्तन लाता है। पर सरकार ने चिन्मय को नक्सलवादी घोषित किया है। चिन्मय वही कार्य करता है, जो सत्येन करता

है। चिन्मय को अनिमेष दा गिरफ्तार करते हैं। उस पर वे आरोप लगाए जाते हैं, जिसका उसके साथ कोई संबंध ही नहीं होता। उस पर जोर जबरदस्ती कर कबूल करवाने की कोशिश खोखले प्रजातंत्र में की जाती है। अमिनेष दा उससे कहते हैं–'संवैधानिक सरकार के खिलाफ तख्ता पलटने का षड्‌यंत्र तुम लोगों ने किया है। देशद्रोही नहीं हो तुम?'[4] तब चिन्मय का जवाब बड़ा मार्मिक है। वह कहता है कि 'जब गरीब किसानों, भूमिहीनों पर महाजन, सूदखोर, जोतदार और जमींदार हिंसा करते हैं तब आपका आदर्श कहाँ रहता है? सत्ता केंद्रित हर लड़ाई में बलात्कार, लूट, गुंडागर्दी, खड़ी फसलों को रौंदने से लेकर हत्याएँ तक आपकी इस हिंसा की सूची में नहीं आतीं। विजेता के लिए जो देशभक्ति है, पराजित के लिए वही देशद्रोह है।'[5] यहाँ भारतीय खोखले प्रजातंत्र को संजीव ने बेनकाब किया है। अमिनेष दा चिन्मय को अपने घर लेकर आते हैं। पति-पत्नी मिलकर उसका ध्यान रखते हैं। दोनों उसे अपने बेटे सौरभ के रूप में देखते हैं। पर एक दिन आर्मी चिन्मय को उठाकार ले जाती है, जिसे अमिनेष दा रोक नहीं पाते।

अनिमेष दा सोचते हैं कि जो सचमुच अपराधी है, वह सरकार और राजनीति के कारण सुरक्षित है और चिन्मय, सत्येन, मजूमदार जैसे न्याय माँगनेवालों के खिलाफ षड्‌यंत्र रचे जाते हैं। कहानीकार बताते हैं कि प्रजातंत्र में न्याय माँगनेवालों को सरकार ताकत से दबोचने का प्रयास करती है, जो प्रजातंत्र के लिए घातक है। जब अनिमेष दा को पता चलता है कि न्याय माँगनेवालों की आवाज दबाने के लिए ही वे नियुक्त हैं, तब उनका हृदय परिवर्तन होता है और वे दलित, शोषित, आदिवासियों के पक्षधर बनकर उसके साथ उनकी सच्ची न्याय की लड़ाई में शामिल हो जाते हैं। अनिमेष दा जैसे काबिल, सख्त और ईमानदार अफसर का मत-परिवर्तन ही ऑपरेशन जोना की कहानी की चरमसीमा है। कहानीकार यह चाहता है कि आदिवासियों पर जमींदारों, प्रशासन, महाजन, सूदखोरों द्वारा होनेवाले अत्याचारों को रोककर सरकार उनका शैक्षिक, आर्थिक विकास कर उन्हें सुरक्षा प्रदान करें। साथ ही विकास की विविध योजनाएँ सही मायने में उन तक पहुँचाई जाएँ।

इस कहानी से निम्न निष्कर्ष निकलते हैं–

1. यह कहानी भारतीय खोखले प्रजातंत्र को बेनकाब कर व्यवस्था की पोल खोलती है।
2. पुलिस-यंत्रणा पर गहरी चोट करती यह कहानी पुलिस-यंत्रणा को ही कटघरे में खड़ा करती है।
3. आदिवासियों की जमीन, जल, जंगल और संस्कृति की सुरक्षा की बात को संजीव ने उठाया है।
4. यह कहानी आदिवासियों की अस्मिता को प्रतिष्ठित करती है।
5. शहरीकरण एवं विकास के नाम पर प्रस्थापित व्यवस्था आदिवासियों की संस्कृति को ही उखाड़कर फेकने के पक्ष में है, जिसका नग्न यथार्थ कहानीकार ने प्रस्तुत कर उसके समाधान ढूँढ़ने के प्रयास किए हैं।
6. कहानी यह स्पष्ट करती है कि जबतक आदिवासियों को उनके मूलभूत अधिकार प्राप्त नही होंगे, तब तक यह संघर्ष चलता ही रहेगा।
7. ऑपरेशन जोना की यह कहानी व्यवस्था के खिलाफ दलित आदिवासियों की बुलंद आवाज है।

संदर्भ

1. रमणिका गुप्ता, कथाक्रम पत्रिका, अक्टूबर-दिसंबर, 2011, पृ॰ 18
2. संपादक गिरीश काशिद संजीव, पृ॰ 22
3. संजीव, दुनिया की सबसे हसीन औरत, ऑपरेशन जोना की किताब घर, पृ॰ 65
4. वही पृ॰ 66
5. वही पृ॰ 67

माधवराव पाटील महाविद्यालय, पालम
जि॰ परभणी
मो॰ 9421391833
drsanjay1335@gmail.com

मानवीय संवेदनाओं को व्याख्यायित करती बच्चन की कहानियाँ

डॉ॰ मंजू शुक्ला
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी
राजकीय स्नात॰ महा॰, नौएडा

विश्व में घटनेवाली घटनाओं का दर्शन सामान्य व्यक्ति ही करता है जैसे सूर्योदय का होना, पक्षियों का चहचहाना, नदी का बहना आदि, किंतु कवि विशेष होने के कारण, वह इन दृश्यों की अनुभूति अपने व्यक्तिगत बोध के धरातल पर करता है। साहित्यकार अपनी रचना में कहीं-न-कहीं उपस्थित अवश्य होता है। कृति में कृतिकार की यही उपस्थिति आत्माभिव्यक्ति कही जाती है। कथासाहित्य में कथ्य और शिल्प को समाकलित करते हुए बच्चनजी ने आत्माभिव्यक्ति पर प्रकाश डाला है। उनकी कहानियाँ उनके जीवन के इर्द-गिर्द मानवीय संवेदनाओं को सशक्त व्याख्यायित करती हैं।

यूँ तो कहानी का सामान्य अर्थ कहना होता है और कहने-सुनने की यह प्रथा अत्यंत प्राचीन है। कहानी हिंदी में गद्य-लेखन की अत्यंत प्राचीन विधा है। बंगला में इसे 'गल्प' कहा जाता है। मनुष्य के जन्म के साथ ही कहानी का भी जन्म हुआ और कहानी कहना-सुनना मानव का आदिम स्वभाव बन गया। इसी कारण प्रत्येक सभ्य और असभ्य समाज में कहानियाँ पाई जाती हैं। हमारे देश में कहानियों की बड़ी लंबी और समृद्ध परंपरा रही है। वेदों, उपनिषदों और ब्राह्मणों में वर्णित 'यम-यमी', 'पुरुरवा-उर्वशी', 'गंगावतरण', 'नल-दमयंती', 'दुष्यंत-शकुंतला' जैसे आख्यान कहानी के ही प्राचीन रूप हैं।

प्राचीनकाल में सदियों तक प्रचलित वीरों तथा राजाओं के शौर्य, प्रेम, न्याय, वैराग्य, साहस आदि की कथाएँ भी, जिनका कथानक घटना-प्रधान हुआ करता था, कहानी के ही रूप हैं। 'वृहत्कथा' का प्रभाव दंडी के 'दशकुमारचरित', 'बाणभट्ट की 'कादंबरी', धनपाल की 'तिलक मंजरी' जैसे अन्य काव्यग्रंथों पर साफ-साफ परिलक्षित होता है। इसके पश्चात् छोटे आकार वाली पंचतंत्र, हितोपदेश, बेताल पच्चीसी, कथासरितसागर जैसी साहित्यिक एवं कलात्मक कहानियों का युग आया। इन कहानियों से श्रोताओं को मनोरंजन के साथ-साथ नीति का उपदेश भी प्राप्त होता है। प्रायः कहानियों में असत्य पर सत्य की, पाप पर पुण्य की, अधर्म पर धर्म की विजय दिखाई गई है।

कहानी के स्वरूप को ध्यान में रखते हुए हिंदी के प्राचीन कथाकार प्रेमचंद ने कहा है कि 'कहानी वह ध्रुपद की तान है, जिसमें गायक महफिल शुरू होते ही अपनी संपूर्ण प्रतिभा दिखा

 ISSN 0975-735X

देता है। एक क्षण में चित्त को इतने माधुर्य से भर देता है, जितना रात-भर गाना सुनने से भी नहीं हो सकता।' एक अन्य स्थान पर वह लिखते हैं कि 'कहानी गल्प एक रचना है, जिसमें जीवन के किसी एक अंग या मनोभाव को प्रदर्शित करना ही लेखक का उद्‌देश्य रहता है। उसके चरित्र, उसकी शैली, उसका कथा-विन्यास सब उसी एक भाव को पुष्ट करते हैं।...वह एक-सा रमणीय उद्यान नहीं, जिसमें भाँति-भाँति के पुष्प, बेल-बूटे सजे हुए हैं, बल्कि एक गमला है, जिसमें एक ही पौधे का माधुर्य अपने समुन्नत रूप मे दृष्टिगोचर होता है।'

आधुनिक साहित्य में कहानी का सर्वोच्च स्थान निश्चित हो चुका है। यह एक अत्यंत लोकप्रिय विधा के रूप में स्वीकृत हो चुकी है। कहानी में मानवीय संबंधों, प्रवृत्तियों, भावनाओं, अनुभूतियों, समस्यायों और यथार्थता को जितने सहज ढंग से अभिव्यक्त किया जा सकता है, साहित्य की किसी भी अन्य विधा के माध्यम से नहीं किया जा सकता।

हरिवंशराय बच्चन जी विशेषतया कई रूपों में जाने जाते हैं यद्यपि उन्होंने साहित्य की विभिन्न विधाओं को अपने लेखनकार्य से पुष्ट किया, किंतु एक कहानीकार के रूप में उन्होंने जिस प्रकार सहज रूप से मानवीय भावनाओं को प्रकट किया, वह निश्चित ही उन्हें सच्चे कथाकार के रूप में प्रतिष्ठित करता है। माना जाता है कि उनके साहित्यिक जीवन का आरंभ कहानीकार के रूप में हुआ था। सन् 1930 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय में आयोजित कहानी लेखन प्रतियोगिता में उनकी कहानी प्रथम रही। बच्चनजी की प्रथम कहानी को प्रेमचंद ने 'हंस' पत्रिका में प्रकाशित किया। बच्चनजी लगभग चार वर्षों तक कहानी और कविताएँ दोनों ही लिखते रहे। कहानियों का प्रथम संग्रह हिंदुस्तानी अकादमी से प्रकाशित कराने के लिए लेखक ने प्रयास किया, किंतु सफलता प्राप्त नहीं हो सकी, जिसे बाद में प्रारंभिक रचनाएँ भाग 3 में सँजोकर पुनः प्रकाशित कराया गया।

बच्चनजी का कहानी-संसार विस्तृत न होकर भी अत्यंत मार्मिक है, उसमें निजी जीवन से प्रभावित कथ्य, चरित्र, दृश्य एवं पात्रों का सुंदर एवं मार्मिक वर्णन है, जो सहज ही मानवीय संवेदनाओं को अभिव्यक्त करता हुआ प्रतीत होता है। कृत्रिमता एवं बनावट से दूर इन कहानियों में जीवन जैसे स्वतःस्फूर्त हो उठा है। उन्होंने जो देखा, सुना और अनुभव किया, वही अपनी स्वाभाविकता में कहानी बन गया।

बच्चनजी लगभग सात से आठ वर्षों तक कहानियाँ लिखते रहे। उनकी कुछ कहानियों के शीर्षक हैं 'माता और मातृभूमि', 'संकोच त्याग', 'चिड़ियों की जान जाए लड़कों का खिलौना, 'अंचल का बंदी, धर्म-परीक्षा खिलौनेवाला, ठाकुरजी, स्वार्थ, चुन्नी-मुन्नी, दुःखनी इत्यादि। इन कहानियों को तत्कालीन पत्रिकाओं हंस, सरस्वती, माधुरी में ससम्मान स्थान मिलता रहा। देश की गुलामी के समय में लिखी गई इन कहानियों में देशभक्ति, स्वतंत्रता एवं गुलामी से आजादी की भावनाएँ गूँजती रहीं, किंतु कहीं भी इसका स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं मिलता। अविभाजित भारतवर्ष में पाकिस्तान और बाँग्लादेश भी शामिल था, किंतु कहानीकार द्वारा अफगानिस्तान के कथ्य का सहारा लेकर देशप्रेम को उजागर किया गया है, इसके पीछे बच्चनजी की क्या मंशा रही होगी इसे समझना होगा 'प्यारे बेटा उमर सलामत रहो। मैंने खुदकुशी कर ली है। मुझे मरने में बड़ी खुशी हुई। रंज सिर्फ इस बात का था कि तुम्हें अब न देखूँगी। जब मादरे-अफगानिस्तान को उसके बच्चे की जरूरत है, मैं तुम्हें अपने पास नहीं रोकना चाहती। क्या अफगानिस्तान मेरी माँ

नहीं है? प्यारे उमर, तुम मेरे मरने का अफसोस मत करना। तुम्हें अब मैं एक बड़ी माँ की गोद में सौंप रही हूँ। तुम अब उस माँ की खिदमत करना।'[1]

माँ की कैसी सहज प्रेममयी भावना का प्रस्तुतीकरण है। माँ जिस बच्चे को जन्म से ही जीने का आधार मानती है, उसे स्वयं ही देशरक्षा हेतु भेजकर स्वयं को उसके मार्ग का अवरोध नहीं बनाती। कहानी वास्तव में रोमांचित करती है। आखिर देशभक्ति मातृभक्ति से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है।

बच्चनजी का युवामन मानवीय प्रवृत्तियों का बखूबी प्रतिपादन करता है। अपनी प्रसिद्ध कहानी 'संकोच-त्याग' में वह मानवीय स्वाभाविकता का बखूबी चित्रण करते हैं। युवाप्रेम बड़ा आशावादी होता है। वह किसी भी स्थिति में निराशा को फटकने नहीं देता। प्रभा और बसंत ऐसे युगल प्रेमी हैं, जो अनायास प्रेम के सोपानों पर चढ़ते गए। कहानी में बच्चनजी की आत्म अभिव्यंजना प्रणय-संबंधों को निरूपित करने के लिए उक्त कहानी में चित्रित हो गई है। कहानीकार लिखता है कि...'प्रभा और बसंत कोई असाधारण प्रेमी न थे। उनके पत्रों में भी वही बातें रहा करती थीं, जिनसे प्राय: सभी प्रेमीगण पेज के पेज रंगा करते हैं। पहले तो पत्रों में हेर-फेर कर वही बातें रहा करती थीं कि किसने पहले प्रेम करना प्रारंभ किया और कौन किसको ज्यादा प्रेम करता है। लोग प्रेम क्यूँ करते हैं, क्या प्रेम कभी टूट सकता है और वे एक-दूसरे को सदा ऐसे ही प्रेम करते रहेंगे। बाद के पत्रों में वे एक-दूसरे के वियोग में दुखी होते, एक-दूसरे को याद करते और एक दूसरे को स्वप्न में देखते।'[2]

कहानी का प्रस्तुत प्रेम-वर्णन सहज मानवीय प्रवृत्ति के आधार पर किया गया है। प्रेम का यह सहज प्रस्फुटन है, क्योंकि प्रेम अनेक बार स्वीकृति के पश्चात् भी आशंकित हो उठता है। प्रेम में विश्वास हो तो भी वह एकाधिकार की चेष्टा में बारंबार कसक, बैचेनी का अनुभव करता है। प्रेमियों का पत्र-व्यवहार लगभग इसी प्रकार का होता है। बच्चनजी स्वयं मौज-मस्ती में व्यस्त, प्रणय-भाव से युक्त और दीवाने रहे हैं फिर कथापात्रों के प्रेम में स्वयं की अभिव्यक्ति क्यूँ न झलक उठे। बच्चनजी का निजी जीवन प्रणयात्मक सूत्रों से जुड़ा रहा है। वही व्यक्ति प्रणय का तादात्म्य कर सकता है, जिसने उसका कुछ अनुभव किया हो।

स्वार्थ कहानी का कथ्य मन की और सिपाही मोहनसिंह के बीच प्रणय-वासना की कथा है। कहानीकार मोहनसिंह के हाव-भाव पर कहानी के प्रारंभ में ही टिप्पणी करता हुआ कहता है, 'संध्या का समय था बरसात के दिन। उसने अपनी वर्दी पेटी कसी, अपनी कोठरी में एक कोने में ताक पर रखे हुए टूटे शीशे के टुकड़े में अपना मुँह देखा। मूँछें उपर को चढ़ाईं और ननकू तमोली की दुकान की ओर अपने कदम बढ़ाए। रास्ते में कुछ ऐसी मौज में आ गई की कजली गुनगुनाने लगा...सजनी प्रिया घर न आए बरसन लागे नैना...। पच्चीस-छब्बीस की उसकी उम्र थी, कसरती शरीर था, अंग-अंग में मस्ती थी झूमता चला आता था।[3]

यह तो रोजमर्रा की साधारण बातें हैं, किंतु इस कहानी का अभीष्ट तो कुछ ओर ही है। मनकी का बूढ़ा अंधा पिता बेटी को पान की दुकान पर बैठाकर जीविकोपार्जन का साधन बनाए हुए है और इसके पीछे सिर्फ उसका स्वार्थ है और कोई दूसरा कुछ नहीं। ननकू चाहता है कि उसकी बेटी पान बेचकर उसका और अपना पेट भरती रहे। हमारी भारतीय संस्कृति एक पिता की ऐसी सोच को घृणित मानती है, पर समाज के बदलते मानवीय मूल्यों के कारण ऐसे लोग भी

मिलते हैं, जो सिर्फ अपने बारे में ही सोचते हैं। धीरे-धीरे मनकी जवान हो जाती है और ननकू के पड़ोसी और रिश्तेदार उस पर मनकी की शादी का दबाव बनाते हैं, लेकिन ननकू स्वार्थ में अंधा होकर सबकी बातों को नजरअंदाज कर देता है। इस बीच मनकी और मोहनसिंह की प्रणय-साधना सफल होती है और अपने प्रेम को प्राथमिकता देते हुए जब मनकी बूढ़े बाप को याद करके रोती है, तब मोहनसिंह कथा के मूल तत्त्व की बात कहता है...'जीवन का नियम परोपकार नहीं, स्वार्थ-साधना है। परोपकार को जीवन का नियम बनाओ तो आज इसी समय हमारी टूटी हाड़ी से लेकर लाख रुपए की जान तक की दूसरों को आवश्यकता है। तेरे दादा के रोने की आवाज मेरे कानों में आ रही है। वह रो रहा है तेरी सहायता के लिए, तेरे पैसा पैदा करने के लिए, अपने सुख के लिए।'[4]

कहानीकार ने व्यक्ति-व्यक्ति के बीच मानवीय संबंधों की व्याख्या करते हुए कहा है कि समाज बदल रहा है। व्यक्ति स्वार्थवश संबंध स्थापित करने में विश्वास करने लगा है, जबकि पहले रिश्तों के बीच स्वार्थ कहीं नहीं आता था। बच्चनजी कहानी के माध्यम से बदलती मानवीय मनोवृत्तियों का जिस तरह वर्णन करते हैं, वह निश्चित ही मन को छू जाता है।

मानवीयता और चारित्रिक उन्नयन बच्चनजी की कहानियों के विभिन्न परिदृश्यों में दृष्टिगत होता है। बच्चनजी की दार्शनिकता, उनके विचार कई बार एक सामाजिक सोच से विपरीत नजर आते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि जीवन के जिस रूप को वह देख रहे हैं, वह नितांत नूतन है और वही नूतनता मानवीय संवेदनाओं में मुखर हो उठी है। वह लिखते हैं कि 'मैं अक्सर सोचता—वह सुंदर है, बड़ी सुंदर है। उसका मन सुंदर होगा, उसके विचार सुंदर होंगे। मैं ईश्वर को धन्यवाद देता हूँ कि उसने मेरी यह इच्छा पूरी कर दी। जैस-जैसे विवाह के दिन समीप आने लगे, वैसे-वैसे मेरी इच्छा इस सुंदरता को छूने की होने लगी...चंचलता भी तो सौंदर्य का एक अंग है, पर इससे क्या, उड़ती तितली अच्छी लगती है तो क्या बैठने पर उसके पंख सुंदर नहीं लगते।'[5]

मानवीयता चरित्र की वह विशेषता है, जो उसे अन्य पात्रों से अलग करती है। बच्चनजी की कहानी 'धर्म-परीक्षा' का ब्राह्मण पात्र इसी उदात्त धर्म का है। वह घर से बाजार को जा रहा है। घर-गृहस्थी का सामान खरीदने को उसके पास मात्र 10 रुपए हैं, जिसमें महीने-भर का राशन-पानी खरीदना है, लेकिन रास्ते में एक गाय को कसाई लोग खरीदकर उसकी हत्या करना चाहते हैं, ब्राह्मण के मन में दयाभाव उपजता है और वह 10 रुपयों से गाय की रक्षा कर लेता है। ब्राह्मणी इस परमार्थ से आक्रोशित हो उठती है—'अरे तुम पागल हो गए हो, बड़ा धर्म सूझा है। आदमी अपने घर में चिराग जलाकर मस्जिद में चिराग जलाता है। पहले आत्मा फिर परमात्मा। खूब चले धर्म करने खुद तो दाने-दाने को तरसते हैं और चले हैं गौरक्षक बनने। कुछ अपने लिए सोचा, इन बेमुँह बच्चों के लिए सोचा, अरे गाय क्या पत्थर की है, उसे क्या खिलाओगे।'[6]

संवेदनाओं का प्रस्फुटीकरण अनेक स्थानों पर अपने गांभीर्य के साथ प्रस्तुत है। बच्चनजी जहाँ एक ओर पात्र की संवेदनाओं को मानव हितार्थ दर्शाते हैं, तो वहीं दूसरे पात्र की क्रूरता से दूसरे पक्ष को भी मजबूती से प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं। उनकी कहानी का ब्राह्मण पात्र जब घर से बाहर जाना चाहता है, तो तोला-भर आटा अपने साथ ले जाना चाहता है, जिससे वह रास्ते में चीटियों को खिला सके, वहीं दूसरी ओर उसकी पत्नी उस आटे से अपने बच्चों का पेट भरना चाहती है। एक सामान्य गृहस्थ की सोच क्या गलत है, किंतु बच्चनजी की संवेदना ब्राह्मण से मेल

खाती प्रतीत होती है।

छोटे से कथ्य में बड़ी सी बात कह देना लघुकथा की विशेषता है। बच्चनजी की प्रारंभिक लघुकथा 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित हुई। इस लघुकथा के माध्यम से बच्चों की संवेदनाओं और सोच का जिस प्रकार प्रस्तुतिकरण मिलता है निश्चित ही वह धर्म के बड़े-से-बड़े ठेकेदारों की सोच को बदलने हेतु पर्याप्त है। बच्चनजी की चुन्नी-मुन्नी लघुकथा इसका सशक्त उदाहरण है–'मुन्नी और चुन्नी में लॉग-डॉट रहती है। मुन्नी छः वर्ष की है और चुन्नी पाँच वर्ष की। दोनों सगी बहनें हैं। जैसी धोती चुन्नी को आए, वैसे ही मुन्नी को। जैसा गहना मुन्नी को बने, वैसा ही चुन्नी को। मुन्नी ब में पढ़ती थी चुन्नी अ में। मुन्नी पास हो गई, चुन्नी फेल। मुन्नी ने माना था कि मैं पास हो जाऊँगी तो महावीर स्वामी को प्रसाद चढ़ाऊगी। माँ ने उसके लिए मिठाई मँगा दी। चुन्नी ने उदास होकर धीमे से पूछा, अम्मा क्या जो फेल हो जाता है वह मिठाई नहीं चढ़ाता?[7] इस भोले प्रश्न से माँ का मन भर आया। 'चढ़ाता क्यूँ नहीं बेटी 'माँ ने यह कहकर उसे गले से लगा लिया। माँ ने चुन्नी के चढ़ाने के लिए भी मिठाई मँगा दी। जिस समय वह मिठाई चढ़ा रही थी, उस समय उसके मुँह पर संतोष के चिह्न थे, मुन्नी के मुँह पर ईर्ष्या के, माता के मुँह पर विनोद के और देवता के मुँह पर झेंप के।'[8] वैसे तो इस कथ्य में कोई नई बात नहीं है, परंतु जिस प्रकार मानवीय संवेदनाओं का सुंदर प्रस्तुतीकरण हुआ है, वह निश्चित ही नया है।

बच्चनजी ने अपनी कहानियों में कथा-शैली को सहजता प्रदान की है। पाठक कहानी से ऊबता नहीं है। आम आदमी की भाषा में, आम आदमी के विचारों को लेखक ने सुंदरता एवं सहजता के साथ व्यक्त किया है। वह कहानी के मर्म को पाठकों तक पहुँचाना जानते हैं, अत: कहानी समस्याप्रधान होने के बावजूद अंतिम चरण तक समाधानपरक बन जाती है। भाषा और भाव की संवेदना ने कथा की शैली को भी मधुर एवं कोमल बना दिया है। लेखक ने पात्रों की मानसिकता का भरपूर अध्ययन किया है। कथाकार स्वयं में भी आम आदमी की प्रवृत्ति को लेकर जन-जन के भाव-संवेदन को आत्मसात् करता रहता है, इसीलिए मानवीय संबंधों को व्याख्यायित करने में सफल रहा है। कहानियों के कथ्य मूलत: जीवनमूल्यों के निदर्शन के लिए उपयोगी हैं। यह बात निश्चय के साथ कही जा सकती है कि कहानीकार युग-परिवेश के साथ बदलते चारित्रिक मूल्यों की स्थापना करता है। कथाकार बच्चन ने कहानियों के माध्यम से सरल मुग्ध प्रणय की भावनाओं को मूर्त रूप प्रदान किया है। अत: कहा जा सकता है कि बच्चनजी की कहानियाँ स्वयं को अभिव्यक्त करती हुई पाठकों तक संदेश पहुँचाने में सफल हैं।

संदर्भ

1. बच्चन रचनावली, खंड 6, माता और मातृभूमि
2. बच्चन रचनावली, खंड 6, संकोच त्याग
3. बच्चन रचनावली, खंड 6, स्वार्थ
4. बच्चन रचनावली, खंड 6, स्वार्थ
5. बच्चन रचनावली, खंड 6, हदय की आँखें
6. बच्चन रचनावली, खंड 6, धर्मपरीक्षा
7. बच्चन रचनावली, खंड 6, चुन्नी मुन्नी
8. बच्चन रचनावली, खंड 6, चुन्नी मुन्नी

स्वाधीनता-आंदोलन में हिंदीपत्र-पत्रिकाओं की भूमिका

प्रा॰ डॉ॰ योगेश गोकुल पाटील
सहयोगी प्राध्यापक, विभाग अध्यक्ष स्नातकोत्तर हिंदी विभाग
विद्यावर्धिनी सभा का कला, वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय, धुले (महा॰)

राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन में हिंदी पत्र-पत्रिकाओं का योगदान विशेष महत्त्वपूर्ण रहा है। भारत में पत्रकारिता के जन्मदाता जेम्स आगस्टस हिक्की हैं। हिक्की भारत के प्रथम पत्रकार थे, जिन्होंने प्रेस की स्वतंत्रता के लिए ब्रिटिश सरकार से संघर्ष किया। 'अपने मन और आत्मा की स्वतंत्रता के लिए अपने शरीर को बंधन में डालने में मुझे आनंद आता है।' हिक्की का यह कथन भारतीय पत्रकारों के लिए आज भी प्रेरणास्पद है। पत्र के पहले ही अंक में हिक्की ने मन और आत्मा की स्वतंत्रता का आग्रह प्रकट किया था। अपने पत्र की नीति के संदर्भ में उन्होंने लिखा था, 'यह राजनीतिक और व्यापारिक पत्र खुला तो सबके लिए है, पर प्रभावित किसी से नहीं है।' इस प्रकार आधुनिक पत्रकारिता का श्रीगणेश यहीं से होता है।

हिंदी पत्रकारिता का श्रीगणेश युगलकिशोर शुक्ल ने किया, उन्होंने 30 मई 1826 में कलकत्ता से 'उदंत मार्तंड' प्रकाशित किया। 'उदंत मार्तंड' का अर्थ है समाचार सूर्य। यह हिंदी का सर्वप्रथम साप्ताहिक समाचारपत्र था। हिंदी-पत्रकारिता के उद्भव के साथ ही इस समाचारपत्र ने विकास का कार्य प्रशंसनीय ढंग से किया है। समाचारपत्र के प्रथम अंक में लिखा था 'यह उदंत मार्तंड अब पहले पहल हिंदुस्तानियों के हित के हेतु आज तक किसी ने नहीं चलाया पर अँग्रेजी और फारसी औ बंगले में जो समाचार का कागज छपता है, उसका सुख उन बोलियों के जाने ओ पढ़नेवाले को ही होता है। ऐसी बातों के विचार से नाना देश के सत्य समाचार हिंदुस्तानी लोग देखकर आप पढ़ ओ समझ लेय ओ पराई उपेक्षा न करे ओ अपनी भाषा की उपज न छोड़े।' लगभग डेढ़ वर्ष तक चलनेवाले इस साप्ताहिक पत्र ने 4 दिसंबर 1827 को अपना दम तोड़ दिया।

'पयामे आजादी' क्रांति का अग्रदूत : हिंदी पत्रकारिता का उद्भव और विकास का इतिहास भाषा के साथ-साथ संघर्षों का इतिहास है। आग उगलती लेखनी ने जनमानस में राष्ट्रीयता की ऐसी भावना भर दी कि 1857 ई॰ का स्वतंत्रता-संग्राम इतिहास में एक युगांतकारी घटना बन गया।

'स्वतंत्रता-आंदोलन के मूर्धन्य नेता अजीमुल्लाखाँ ने 8 फरवरी 1857 ई॰ में 'पयामे आजादी' का प्रकाशन किया। यह एक ऐसा शोला था, जिसने अपनी अपनी प्रखर एवं तेजस्वी वाणी से जनता में स्वतंत्रता का प्रदीप्त स्वर फूँका। अल्प समय तक निकलेवाले इस पत्र ने तत्कालीन वातावरण में ऐसी जलन पैदा कर दी, जिससे ब्रिटिश सरकार घबरा उठी तथा उसने पत्र को बंद कराने के लिए कोई कोर-कसर न छोड़ी।'[1] पहले यह समाचारपत्र उर्दू में प्रकाशित होता था, लेकिन बाद में हिंदी में निकलने लगा। यह पत्र अँग्रेजों के विरुद्ध क्रांति का प्रचारक था और

जिसको जब्त कर लिया गया था। जिस किसी के पास उसकी प्रति पाई जाती थी, उसे राजद्रोही माना जाता था और उसे कड़ी-से-कड़ी सजा दी जाती थी। इस पत्र ने स्वाधीनता-आंदोलन के कार्य में अपना विशेष योग दिया। उस समय जो राष्ट्रगीत इसमें छपा था, उसकी पंक्तियाँ इस प्रकार हैं–

हम है इसके मालिक, हिंदुस्तान हमारा
पाक वतन है कौम का, जन्नत से भी प्यारा ये है
हमारी मिल्कियत, हिंदुस्तान हमारा
इसकी अहमियत से, रोशन है जग सारा
आज शहीदों ने तुमको, पहले वतन ललकारा
तोड़ो गुलामी की जंजीरें, बरसाओ अंगारा
हिंदु-मुसलमा सिक्ख हमारा, भाई-भाई प्यारा
ये है आजादी का झंडा, इसे सलाम हमारा।

'पयामे आजादी' के प्रवर्तक अजीमुल्ला खाँ स्वयं स्वतंत्रता-सेनानी थे। इस पत्र ने देश की जनता में स्वतंत्रता-प्रेम की आग फूँक दी। आज भारत में इसकी एक भी प्रति उपलब्ध नहीं है। लंदन के म्युजियम में इसकी एक प्रति सुरक्षित है।

भारत में अँग्रेजों के विरुद्ध स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए जिन समाचारपत्रों ने संघर्ष किया है, उनमें कलकत्ता का 'हिंदू पेट्रियट' मुख्य है। इसकी स्थापना 1853 में गिरीशचंद्र घोष ने की थी और हरिश्चंद्र मुखर्जी के नेतृत्व में असाधारण लोकप्रियता प्राप्त की। 'अमृत बाजार पत्रिका' भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम का प्रबल समर्थक रहा। इस पत्र के संपादक शिशिरकुमार घोष ने 'वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट' 1878 से बचने के लिए 'अमृत बाजार पत्रिका' को रातों रात अँग्रेजी साप्ताहिक में बदल दिया। 19 फरवरी 1881 से इस पत्र को दैनिक कर दिया गया।

सन् 1868 में प्रसिद्ध पत्रकार गिरीशचंद्र घोष ने 'बंगाली' नाम से एक साप्ताहिक पत्र प्रकाशित किया। कुछ दिनों बाद सुरेंद्रनाथ बनर्जी ने इस पत्र को खरीद लिया और इसके बाद यह पत्र केवल बंगाल में नहीं, सारे भारत में स्वाधीनता संग्राम का प्रबल पक्षधर हो गया। 1885 में ए॰ओ॰ह्यूम ने अखिल भारतीय काँग्रेस की स्थापना की। काँग्रेस के अध्यक्षों में से अनेक ऐसे थे, जो किसी पत्र के संपादक थे या उन्होंने किसी बड़े पत्र की स्थापना की। फिरोजशाह मेहता ने 'बांबे क्रॉनिकल की स्थापना की। पं॰ मदनमोहन मालवीय ने 'दैनिक हिंदुस्थान' का संपादन किया और कालांतर में साप्ताहिक और दैनिक 'अभ्युदय' निकला। लाला लाजपतराय की प्रेरणा से 'पंजाबी', 'वंदेमातरम' और पीपुल नामक तीन पत्र लाहौर से निकले। महात्मा गांधी ने 'इंडियन ओपीनियन' अफ्रीका से प्रकाशित किया और भारत में आकर उन्होंने 'यंग इंडिया', 'नवजीवन', 'हरिजन', 'हरिजन सेवक' और 'हरिजन बंधु' पत्र निकाले। 'वास्तव में हिंदी-पत्रकारिता अनेक अवसरों पर जनता को धैर्य, साहस और संयम का पाठ पढ़ाती भी नजर आई थी। न्याय के मुकाबले अन्याय के मुँह पर हिंदी-पत्रकारिता कालिख पोतती दृष्टिगत हुई। काँग्रेस को हिंदी-पत्रकारिता ने समय-समय पर सावधान भी किया। हिंदी प्रदेश से दैनिक समाचारपत्र और काँग्रेस का उद्‌भव एक ही वर्ष सन् 1885 ई॰ में हुआ। यह हिंदी-पत्रकारिता और कांग्रेस के अटूट रिश्ते का एक उदाहरण है।'[2]

बंग-भंग आंदोलन की प्रेरणा से अनेक समाचार पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं। बंग-भंग पर हिंदी-पत्रकारिता ने जनता को उकसाने में कोई कसर बाकी न रखी। उसने जनमानस को बंगभूमि की विवशता, महानता, पावनता और दैवशक्ति का अहसास करवाया। संपूर्ण देश में बंगाल विभाजन के विरुद्ध आक्रोश दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगा। इसे कर्जन के काले कारनामे का नाम दिया गया। बंग-भंग आंदोलन के गर्भ से स्वदेशी की भावना फलीभूत हुई। 'युगांतर', 'वंदेमातरम्', 'संध्या' और 'नवशक्ति' आदि पत्र-पत्रिकाएँ अपनी उग्र राष्ट्रीयता के कारण विशेष लोकप्रिय हुईं। जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी ने लिखा है, 'जहाँ तक क्रांतिकारी आंदोलन का संबंध है, भारत का क्रांतिकारी आंदोलन बंदूक और बम के साथ नहीं, समाचारपत्रों से शुरू हुआ।'[3] 'युगातंर' वास्तव में युगातंगकारी समाचारपत्र था। यह कोई जान नहीं पाता था कि इस पत्र का संपादक कौन है। अनेक व्यक्तियों ने समय-समय पर अपने-आपको इस पत्र का संपादक घोषित किया और वे जेल गए। सरकार को दमनकारी कानून बनाने पड़े और इस पत्र को बंद करना पड़ा। चीफ जस्टिस सर लारेंस जैकिनसन ने इस पत्र की विचारधारा के बारे में लिखा था, 'इसकी हर एक पंक्ति से अँग्रेजों के विरुद्ध द्वेष टपकता है। प्रत्येक शब्द में क्रांति के लिए उत्तेजना झलकती है।'

गदर-क्रांतिकारियों का मार्गदर्शक

सन 1912 में लाला हरदयाल की गदर पार्टी ने 'गदर' नामक पत्र प्रकाशित किया। यह विभिन्न भाषाओं में छपता था और भारतीय क्रांतिकारियों का मार्गदर्शन करता था। सरदार करतारसिंह 'गदर' का संपादन करते थे।

विपिनचंद्र पाल ने अपने मित्र हरिदास के सहयोग से 'वंदेमातरम दैनिक समाचारपत्र का प्रकाशन किया। पूर्ण स्वराज, स्वदेशी प्रचार, विदेशी बहिष्कार तथा राष्ट्रीय शिक्षा इस पत्र की प्रमुख माँग थी। राष्ट्रीय आंदोलन में इस समाचार पत्र का महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। इसके अलावा 'संध्या', 'बिजली', 'नवशक्ति' 'बंगवाणी' और 'बंगदर्शन' जैसे समाचारपत्रों का योगदान महत्त्वपूर्ण है।

भारतेंदुयुग : भारतेंदु हरिश्चंद्र ने हिंदी-पत्रकारिता को नई दिशा प्रदान की। 'कविवचन सुधा', 'काशी 1867, 'हरिश्चंद्र मैगजीन', 'हिंदी प्रदीप', 'प्रयाग 1878', 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका आदि उनकी मित्र मंडली के वरिष्ठ पत्रकार और निबंधकार थे। स्वदेशी आंदोलन को प्रारंभ करने का श्रेय भारतेंदुजी को जाता है।

तिलक युग–स्वतंत्रता का शंखनाद

तिलकयुग में प्रकाशित समाचारपत्रों ने स्वतंत्रता का शंखनाद किया और पूरी शक्ति के साथ क्रांति और विद्रोह की वकालत की। ब्रिटिश सरकार ने अनेक समाचारपत्रों के संपादकों तथा पत्रकारों को यातनाएँ दीं। यह युग हिंसा और आतंक का युग था। इस युग के प्रमुख समाचारपत्र थे 'देवनागर' कलकत्ता 1907, 'विश्वमित्र' कलकत्ता 1910 और 'स्वदेश' गोरखपुर 1919 लोकमान्य तिलक का यह नारा 'स्वाधीनता मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है और उसे मैं लेकर ही रहूँगा।' विष्णु शास्त्री चिपलूनकर और तिलक ने मिलकर 1 जनवरी 1881 में मराठी में 'केसरी' और अँग्रेजी में 'मराठा' नामक साप्ताहिक पत्र निकाले। राष्ट्रीय जागरण को व्यापकता देने हेतु 'केसरी' का हिंदी संस्करण 1903 से नागपुर से प्रारंभ किया गया। 'हिंद केसरी' ने स्वाधीनता-आंदोलन में जो

भूमिका निभाई है, वह चिरस्मरणीय है।

इलाहाबाद से 1907 में 'स्वराज' साप्ताहिक शांतिनारायण भटनागर के संपादन में प्रकाशित हुआ। कुल नौ संपादकों ने 'स्वराज' के संपादन का भार सँभाला और पत्र की राष्ट्रीय विचारधारा के कारण गिरफ्तार हुए और कुछ संपादकों को काले पानी तथा राजद्रोह की सजा हुई। 'स्वराज' समाचारपत्र को कैसा संपादक चाहिए, इस संदर्भ में जो विज्ञापन निकला था, वह इस प्रकार है–'चाहिए स्वराज्य के लिए एक संपादक। वेतन दो सूखी रोटियाँ, एक ग्लास ठंडा पानी और संपादकीय के लिए दस साल जेल।'

गणेशशंकर विद्यार्थी

सन 1913 में कानपुर से गणेशशंकर विद्यार्थी ने 'प्रताप' साप्ताहिक का प्रकाशन किया। गणेशशंकर विद्यार्थी जन-मन के प्रवक्ता थे। अत: 'प्रताप' जन-आंदोलन का पर्याय बन चुका था। वे समर्पण, झुकना, रुकना, निराशा आदि से परिचित थे। 24 मार्च 1931 को 'प्रताप' के प्रधान संपादक गणेशशंकर विद्यार्थी को हिंदू-मुस्लिम एकता के महान यज्ञ में अपने प्राणों की आहुति देनी पड़ी।

गांधी युग

भारतीय स्वतंत्रता-आंदोलन में महात्मा गांधी एक ऐसे नेता है, जिन्होंने भारत की राजनीति, साहित्य, कला तथा संस्कृति को प्रभावित किया। गांधीजी पत्रकार थे और पत्रकारिता उनके रग रग में समाई थी। उन्होंने पत्रकारिता को सत्य की विजय के लिए महत्त्वपूर्ण और अनिवार्य साधन माना है। 'यंग इंडिया', 'नवजीवन' और 'हिंदी नवजीवन' समाचारपत्रों के माध्यम से गांधीजी ने अपने विचारों को जनमानस तक पहुँचाया। उनकी एक आवाज पर लोग मर-मिटने के लिए तैयार थे। गांधी के नेतृत्व में हिंदी को राष्ट्रभाषा माना गया। जैस-जैसे राष्ट्रीय आंदोलन तीव्र हुआ, हिंदी-पत्रकारिता सशक्त हुई। इस युग के प्रमुख पत्र थे–'आज' बनारस 1920, 'स्वतंत्र' कलकत्ता 1920, 'कर्मवीर' जबलपुर 1920, 'सैनिक' आगरा 1925, 'विप्लव' लखनऊ 1938 आदि। इन पत्रों ने स्वतंत्रता-आंदोलन के अंतिम चरण में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

सन 1930 के प्रारंभ में स्वतंत्रता-आंदोलन को कुचलने के लिए प्रेस कानून लगाए गए। जिसके कारण अनेक समाचापत्रों के प्रकाशन बंद हो गए। ऐसी स्थिति में पत्रकारों ने भूमिगत क्रांतिकारी पत्रों को निकाला, जिसका नेतृत्व काशी ने किया। बाबूराव विष्णु पराडकर, रामचंद्र वर्मा इन्होंने विप्लवकारी पत्र निकाले। 'रणभेरी', 'शंखनाद', 'चिनगारी' और 'तूफान' जैसे पत्रों ने स्वतंत्रता-आंदोलन को आगे बढ़ाया।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि भारतीय स्वतंत्रता-आंदोलन में हिंदी पत्र-पत्रिकाओं ने जनता को जाग्रत करने में, उनमें क्रांति की ज्वाला निर्माण करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। देश के हर कोने से हिंदी समाचारपत्रों ने राष्ट्रीयता की भावना जाग्रत की, जिनमें मुख्य रूप से पश्चिम बंगाल से 'उदंत मार्तंड', उत्तर प्रदेश से 'बनारस अखबार', हिमाचल प्रदेश से 'शिमला अखबार', मध्य प्रदेश इंदौर से 'मालवा अखबार' राजस्थान भरतपुर से 'मजहरुल सरुर', दिल्ली से 'पयामे आजादी', गुजरात अहमदाबाद से 'धर्मप्रकाश', पंजाब लाहोर से 'ज्ञान प्रदायिनी', जम्मू कश्मीर से 'वृतांत विलास', उत्तरांचल से 'अल्मोड़ा अखबार', बिहार पटना से 'बिहार बंधु', हरियाणा

गुड़गाँव से 'जीयालाल प्रकाश' आदि प्रादेशिक स्तर के महत्त्वपूर्ण प्रकाशित प्रथम हिंदी समाचारपत्र हैं।

भारतीय स्वतंत्रता-आंदोलन में हिंदी-पत्रकारिता के संबंध में डॉ॰ धर्मवीर भरती कहते हैं, 'स्वतंत्रता संग्राम में पत्रकारिता की परंपरा और भी परवान चढ़ती गई। वह चाहे क्रांतिकारियों का सशस्त्र आंदोलन हो या गांधीजी का सत्याग्रह, ये अखबार उनके माध्यम थे, जनजागरण के अग्रदूत थे। रोज जमानत माँगी जाती थी, रोज-रोज पुलिस छापे मारती थी, संपादक का एक पाँव जेल मे रहता था। संपादक और पत्रकार जनता का आदमी था। अपनी मातृभाषा के गौरव से उदीप्त थी वह पत्रकारिता।'

संदर्भ

1. अर्जुन तिवारी, हिंदी-पत्रकारिता का वृहद इतिहास, पृ॰ 95
2. हरपालसिंह पवार, हिंदी-पत्रकारिता और राष्ट्रीय आंदोलन, पृ॰ 184
3. वही, पृ॰ 77
4. हिंदी-पत्रकारिता, इतिहास एवं संरचना, पृ॰ 81

मो॰ 09403341652 /9860286711

dryogeshgpatil@gmail.com

देवी-तत्त्व एवं 'सिंह' का मिथकीय संबंध : एक अनुशीलन

ध्यानेंद्रनारायण दूबे (सहायक आचार्य)
प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग
दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर (उ०प्र०)

ब्राह्मण धर्म विशेषत: वैष्णव धर्म में कण-कण में देवत्व की अनुभूति की धारणा मान्य है। यह देव-तत्त्व दृश्य, अर्द्धदृश्य या अदृश्य क्यों न हो, प्रतीकात्मक, प्रस्तुतीकरण मानवीय चेतना की एक अपरिहार्य क्रिया है और भाषा, इतिहास, विज्ञान, कला, मिथक और धर्म के क्रियाकलापों की समझ के लिए वह आधार का काम करता है। मिथकान्वेषण के क्षेत्र में तो प्रतीकानुसंधान उनकी पहली और आखिरी शर्त है। इसमें भी संदेह नहीं कि मिथक बनते-बनते ही बनते हैं और उनका प्रतीकों से गहरा संबंध है। मनुष्य के भीतर चिति (Psyche) और चेतन (Conscious) है, जो कि निस्संदेह है, तब हमारी चिति को अवचेतन से उठाकर चेतन के यथार्थ धरातल पर लाने के लिए मिथक को प्रतीक और रूपक के माध्यम से अनिवार्य है। मिथक की एक भाषा पूर्व अनिर्वचनीय भाषा तथा अनुभूति है, वह मनुष्य निर्विकल्प मनुष्य, शाश्वत मनुष्य का आर्कीटाइप (प्राक्चेतन) एवं सामूहिक अवचेतन है। मिथकीय चेतना आज भी हमारे संपूर्ण क्रिया-कलापों, चिंतन एवं संस्कारों के मूल में जीवित हैं।[1]

पुरातन प्रतीकों में पशु-पक्षी प्रतीक हों या वानस्पतिक अथवा संयुक्त मानव-पशु प्रतीक, उनकी अपनी विलक्षण अर्थवत्ता रही है। इनमें आदिम मानव का संपूर्ण प्रकृति-दर्शन निहित है। इन प्रतीकों में कहीं देव-कल्पना अभिव्यक्त है, तो कहीं मानव-जीवन का कोई अन्य सामाजिक-सांस्कृतिक पक्ष। जहाँ तक संयुक्त मानव पशु प्रतीकों का प्रश्न है, इसकी परंपरा अति प्राचीन है, जो न केवल पुरा-ऐतिहासिक भारत अपितु प्राचीन विश्व की मिस्र, मेसोपोटामिया एवं अन्य भारतेतर सभ्यताओं में भी उपलब्ध है, यथा-सैंधव सभ्यता के नर-वृषभ एवं नर-व्याघ्र का उदाहरण दिया जा सकता है।[2] इसी तरह सुमेरिया सभ्यता में गिलगामेस कथानक के एर्नाकेडू तथा बेबिलोनिया सभ्यता के वीर इअबानी का स्मरण भी किया जा सकता है। ये दोनों ही आकृति में आधार नर और वृषभ के रूप में प्रदर्शित है। यह नर-वृषभ यूनानी भाषा में 'मिनोतौर' कहलाता है, जो प्रजनन-शक्ति के देवस्वरूप का प्रतीक रहा है।[3] इस तरह के प्रतीक असीरिया, ईरान, ईजियन, यूनानी तथा रोमन आदि अनेक सभ्यताओं में देखे जा सकते हैं।[4]

जहाँ तक सिंह प्रतीक विशेषत: नराकार सिंह-मुख अर्थात् नरसिंह का प्रश्न है, इसकी विलक्षण परंपरा केवल भारत में उपलब्ध है। ज्ञातव्य है कि वृषभ, अश्व, गज, मृग, आदि की भाँति मृगेंद्र, 'सिंह-प्रतीक' का भी भारतीय कला में खुलकर अंकन किया गया है, जो मौर्य युग

 ISSN 0975-735X

में ही अत्यधिक लोकप्रिय हो चुका था। सम्राट अशोक द्वारा निर्मित चतुसिंह शीर्षक युक्त सारनाथ का स्तंभ विख्यात है। इसके अतिरिक्त साँची, भरहुत आदि विभिन्न स्थानों से ज्ञात इस प्रतीक की लोकप्रियता समझी जा सकती है। इस संदर्भ में शुंगकालीन कला में अंकित मानव-मुख-सिंह और सिंह-मच्छ जैसे विलक्षण संयुक्त प्रतीकों का स्मरण किया जा सकता है।[5]

भारतीय पुरा-ऐतिहासिक काल में सिंह प्रजाति के बजाय व्याघ्र प्रजाति अस्तित्व में रही है। संभवतः इसलिए भारतीय कला के आरंभिक अंकन में यह प्रतीक नहीं है।

सिंह प्रजाति के अस्तित्व का परिचय सर्वप्रथम उत्तर प्रति नूतनकाल में होता है। विज्ञान की भाषा में साधारणतया इस प्रजाति को Big Cat कहा जाता है। लियोपार्ड और लॉयन अर्थात् व्याघ्र और सिंह इसी का जाना-पहचाना आधुनिक रूप है। इनमें सिंह इस पूरी प्रजाति में सर्वाधिक शक्तिशाली और श्रेष्ठ माना जाता है। यूरोप में यह पहली बार हिमयुग में देखा गया, लेकिन गुहावासी सिंह भी आधुनिककाल में ही सामने आया, जबकि व्याघ्र सर्वाधिक एशिया में सीमित रहा है। सिंह अपनी शक्तिमान और अपने भयावह रूप के कारण देवताओं के प्रतीक, संरक्षक, सहयोगी अथवा प्रतिनिधि रूप में सुदूर अतीतकाल से ही जुड़ा रहा है।[6] ऐतिहासिक युगों में सिंह उत्तरी अफ्रीकी पश्चिमी एशिया और संभवतः यूनानी क्षेत्रों में दिखाई पड़ते रहे हैं और अब यह प्रजाति अफ्रीका के अधिकांश भागों में सहारा रेगिस्तान के दक्षिणी हिस्सों में और पश्चिमोत्तर भारतीय क्षेत्र विशेषकर काठियावाड़, गुजरात में पाए जाते हैं। ईरान और इराक में अब इनका अस्तित्व नहीं है।[7] सिंह यद्यपि आधुनिक ईरान का राष्ट्रीय प्रतीक रहा है तथापि यह उस भू-खंड के लिए अतीत की स्मृति-मात्र है। कैस्पियन क्षेत्र के जंगल में कुछ व्याघ्र अवश्य ही पाए जाते हैं।[8]

जहाँ तक इस प्रजाति के प्राचीन विश्व में अस्तित्व और महत्त्व का प्रश्न है, उसके विविध स्वरूप प्रचलित थे। प्राचीन विश्व सभ्यताओं में विशेषकर भारतीय उपमहाद्वीप, मध्य एशिया, मिस्र और ईजियन सागरतटीय प्राचीन यूनानी क्षेत्रों में इस पशु-प्रजाति के विविध स्वरूप को कला में किसी न किसी प्रकार अंकित किया गया है। पुरातात्त्विक दृश्य-साक्ष्य के रूप में पुरावशेष आज भी एक तरफ इसे एक विशिष्ट पशु के रूप में प्रस्तुत करते हैं, तो अधिकांशतः इसकी महत्ता एक प्रतीक के रूप में प्रस्तुत करते हैं। इस तरह इसका प्रतीकत्व प्राचीन विश्व के परिवेश में तत्कालीन संस्कृति की मूल्यवत्ता के साथ विचारणीय हो जाता है, रोचक बात यह है कि तत्कालीन सचेतन मानव की परिकल्पना में यह संयुक्त मानव-पशु-प्रतीक के रूप में भी यत्र-तत्र अंकित हैं।

ब्रिटिश संग्रहालय, लंदन में सुरक्षित प्राचीन मिस्र के सम्राट अमेन होतेप तृतीय (1412-13776 ई०पू०) के काल की एक विलक्षण प्रतिमा हमारा ध्यान साम्राज्यवादी मिस्रयुगीन दुर्द्धर्ष शक्ति की ओर ले जाती है। उक्त प्रतिमा को 'स्फिंक्स' कहा जाता है, जिसकी मुखाकृति मानव की तथा शेष आकृति सिंह समान दिखाई देती है। यह प्रतिकृति निश्चय ही सिंह की श्रेष्ठता को व्यक्त करती है। आधुनिक अमरीकी विद्वान विल्डूरां इस स्मारक से इतना चमत्कृत हुए कि उन्होंने इसके लिए लिखा—यह पाषाण पर मोनालिसा सदृश है।[9] मिस्र के देवशास्त्र में सिंह को सूर्य देवता रों से संबद्ध माना गया है। मिस्र में राज-प्रासादों तथा समाधियों के सम्मुख सिंहद्वार का निर्माण इस आशय से किया जाता था कि इसके कारण दुष्ट आत्माएँ दूर भाग जाएँ।[10]

मिस्र में सिंह शीर्षयुता एक देवी का भी ज्ञान होता है। इसे सखमेत अथवा सखेत कहा गया

है।[11] इस संदर्भ में विचारणीय पक्ष है सिंह और मातृदेवी का संबंध, क्योंकि मातृत्व और उर्वरता के लक्षणों से जुड़ा हुआ सिंह का प्रतीकत्व अन्य अनेक संदर्भों से भी पुष्ट होता है। असीरियाई कला में देवताओं और देवियों को सिंह के ऊपर खड़े हुए अथवा बैठे हुए दिखाया गया है। प्रसिद्ध विद्वान फ्रेजर की धारण है कि फोनीसियावासियों और हित्तियों ने असीरिया से ही इस कला-परंपरा को प्राप्त किया है।[12] इस प्रतीक के माध्यम से जो सांस्कृतिक अंतरावलंबन दिखाई देता है, वह इसी प्रतीक के कारण है। असीरिया के पूर्व की बेबिलोनिया सभ्यता पर ध्यान दें तो देखेंगे कि वहाँ सिंह को सौंदर्य तथा श्री की देवी इश्तर का प्रेमी बताया गया है। इस देवी के बारे में कहा जाता है कि वह अपने सौंदर्य और प्रेम से पशुओं को वशीभूत कर लेती थी और उनको अपना अनुचर बना लेती थी। इश्तर के अलावा बेबिलोनिया के युद्ध-देवता 'नर्गल' को इसी मिथक में एक शक्तिमान सिंह के रूप में वर्णित किया गया है। ऐसे ही सिंह के रूप में, जो मानव-रक्त का प्यासा हो इस देवता को इरेस-कि-गल का पति कहा गया है। यह देवी अपने भयावह रूप के लिए तथा हेड्स की रानी के रूप में प्रख्यात रही है।[14] यहाँ मातृदेवी के भयावह रूप के साथ शक्तिमान सिंह स्वरूप युद्धदेवता नर्गल का तादात्म्य अपने आप ही एक विशिष्ट प्रतीकत्व की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करता है।

स्मरणीय है कि बेबीलोन के देवता नर्गल की तरह भारत में साहित्य तथा कला दोनों ही स्तर पर बुद्ध को शाक्य सिंह कहा गया है। वह उनकी श्रेष्ठता को उपलक्षित करता है। कुछ विद्वानों के विचार से प्राचीन ईरान, मेसोपोटामिया और मिस्र देश में बुद्ध के आविर्भाव के शताब्दियों पूर्व सिंह एक सौर प्रतीक के रूप में प्रतिष्ठित रहा है।[15]

सिंह प्रजाति ईजियन सागर की तटवर्ती मिनोअन सभ्यता में भी ज्ञात है और इस सभ्यता के उत्कर्षकाल में विविध रूपों में यहाँ की कला-परंपरा में प्रस्तुत किया गया है। ईसवी पूर्व की दूसरी सहस्राब्दि के मध्य ऐसे विविध साक्ष्य विवेच्य प्रसंग में उल्लेखनीय हैं। हेराक्लिओन संग्रहालय में सुरक्षित सोने का एक मनका (Bead) उल्लेखनीय है। यह सुवर्ण निर्मित हार का मनका है, जिसे एक छोटी-सी सिंह आकृति के रूप में निर्मित किया गया है।[16] इसी कालखंड की एक सुवर्ण-जटित वर्तुलाकार पाषाणमुद्रा पर सिंह को एक देवता अथवा वीर के साथ दिखाया गया है। ये दोनों ही कलाकृतियाँ हेराक्लियोन संग्रहालय में सुरक्षित हैं।[17] उल्लेखनीय है कि आरंभिक माईसीनियन कालखंड की राजकीय समाधियों में कुछ विलक्षण अवशेष प्राप्त हुए हैं। एक ऐसी ही सुवर्ण-जटित पाषाणमुद्रा एथेंस के नेशनल पुरातत्त्व संग्रहालय में सुरक्षित है। जहाँ एक वीर को खड्ग लिए सिंह से लड़ते हुए दिखाया गया है।[18] एक अन्य वर्तुलाकार पाषाण मुद्रा पर वृषभ को विदीर्ण करते हुए सिंह का अंकन हुआ है। ये दोनों ही मुद्राएँ 16वीं-15वीं शताब्दी ई॰पू॰ की मानी जाती हैं।[19] इस कालखंड के आयुधों पर भी सिंह का अंकन होता था। एक खड्ग पर शिकारियों को धनुष-बाण एवं बरछों के साथ सिंह का शिकार करते हुए अंकित किया गया है।[20] तथा एक अन्य खड्ग पर सिंहों को तीव्र गति से भागते हुए अंकन किया गया है।[21]

उक्त अंकन निश्चय ही प्रतीक रूप में किसी-न-किसी उद्देश्य से किए गए है। बाद में तो मिथकीय अंकन स्पष्ट रूप से किए जाते रहे हैं। उत्कृष्ट उदाहरण है एक तत्कालीन आभूषण का, जो जैस्पर से निर्मित एक अँगूठी का नग है। इस नग में एक दाढ़ीवाला व्यक्ति अपने दोनों हाथों से दो सिंहों को पकड़े हुए हैं। एक सिंह सीधा विवश खड़ा है और दूसरा उल्टा है। व्यक्ति पूरी तरह

 ISSN 0975-735X

तना हुआ है और उसके दोनों हाथ पूरी ताकत से फैले हुए हैं।[22]

ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त सभ्यता में शौर्य, पराक्रम अथवा अपने भयावह रूप के कारण सिंह राजकीय परंपरा का प्रतीक बन चुका था। यही कारण है कि सिंहासन-कक्ष में सिंह की भीषण आकृति बनी होती थी।[23] राजप्रासादों का द्वार सिंहद्वार के रूप में निर्मित किया जाता था।[24]

प्राचीन विश्व की सभ्यताओं में सिंह के विविध रूपांकनों के संदर्भ में उसके प्रतीकत्व भी विविध हों, यह आवश्यक नहीं है, क्योंकि यह पशु-प्रजाति एक विशिष्ट गुण का वाहक है। यह मूलतः हिंस्र मांसभक्षी जीव है, जिसकी अपरिमित शक्ति और जिसकी भयावह गर्जना से सचेत प्राणी परिचित अवश्य थे। इस जीव के पौरुष या पराक्रम का एक अंकन वह है, जो इसके पशु-रूप की छवि प्रस्तुत करता है, तो इस मातृदेवी से संबद्ध होना प्रतीकवाद की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। कोई पुरुष, देवता, सम्राट अथवा विशिष्ट व्यक्ति यदि सिंह के समान या सिंह कहे गए तो वह उसके सर्वश्रेष्ठ होने का संकेत है। लेकिन यदि प्रतीक देवी से जुड़ाकर उसे पशु जगत् की अधिष्ठात्री बनाता है तो यह तत्कालीन सामाजिक चेतना का एक विलक्षण संकेत कहा जाएगा। वृषभ की भाँति भी संबद्ध रहा है, मातृ-शक्तियों से। इसमें रोचक यह है कि सिंह से संबद्ध देवियाँ अनेक संहारक या रौद्र रूप के लिए भी प्रसिद्ध रही हैं। वह बेबिलोन की इश्तर हो या भारत की सिंहवाहिनी महिषमर्दिनी दुर्गा भारत में महाशक्ति की उपासना में सिंहवाहिनी देवी का महत्त्व शाक्त धर्म की पूर्ण प्रतिष्ठा और उसके सुविकसित पक्ष का द्योतक है।

प्रतीक विद्या के कतिपय नृतत्वशास्त्रियों व प्रतीक विद्या के इतिहासकारों ने इस अवधारणा के मूल में पुरुष-स्त्री के संयोग का परिणाम देखा है। मात्र सिंह ही नहीं अपितु वृषभ, अश्व, गज आदि अन्य अनेक पशु-प्रतीकों के इतिवृत्त पर विमर्श करते हुए एक पूरा शोध-प्रबंध ही इस अवधारणा को प्रस्तुत करता है। डॉ॰ आशीष सेन कृत 'प्राचीन भारतीय कला में पशु-प्रतीकों का अध्ययन' वस्तुतः इस ओर प्राक्चरित (आर्की टाइप) को महत्त्व दिया है तथा भारतेतर व भारतीय कला में उपलब्ध सिंह और मातृदेवी संबंधी पुरातात्त्विक साक्ष्यों को आधार बनाया है। उनका निष्कर्ष सर्वथा स्पष्ट न होते हुए भी इस प्रतीक पर हमें सोचने को बाध्य करता है। वैष्णवधर्म के अवतारवाद में प्रतिष्ठित नृ-सिंह की अवधारणा के मूल बीज-सूत्र भी स्पष्ट नहीं हैं। पौराणिक प्रहलाद आख्यान यद्यपि इसी गुत्थी को सुलझाने का प्रयत्न अवश्य प्रतीत होता है, पर वह एक पक्ष मात्र है। यदि इसे ऐतिहासिक युगों के सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया का परिणाम मान लिया जाए, तो इसे आदिम मातृसत्तात्मक समाज पर ऐतिहासिक पुरुष-सत्तात्मक समाज का वर्चस्व कहा जा सकता है।

आद्या मातृशक्ति सिंह और प्रतीक का संबंध भी अति पुरातन है। कम-से-कम उत्तर पाषाणकाल अर्थात् लगभग छठी शताब्दी ई॰पू॰ तक एक ऐसा महत्त्वपूर्ण उदाहरण है कि जहाँ विवस्त्रा देवी (नग्निका) या तो सिंह पर खड़ी प्रदर्शित है अथवा Flanked by Lions Rampant ये दोनों ही अभिप्राय इस कालखंड में भूमध्यसागरीय तटवर्ती परिक्षेत्र में बहुतायत से उपलब्ध हैं।[25]

यथापूर्व निर्दिष्ट इस संदर्भ में फ्रेजर का विचार ध्यान देने योग्य है कि असीरियाई कला में सिंह पर आरूढ़ देवता या देवियों का मिथक बाद में फेनीसियन और हित्तियों ने परिगृहीत किया। यह स्वाभाविक है कि इन दोनों प्रतीकों का तात्पर्य था, प्रेमियों के संबंध से।[26] फ्रेजर ने एक असीरियाई देवी की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है, जो सिंहिनी देवी अर्थात् पशु रूप में पूजी जाती थीं और पुरुष देवता को जिसके यौनाचार का सहयोगी बताया गया है।[27] यह लोकविश्वास

बेबीलोनिया में भी प्रचलित रहा है, जिसका महत्त्वपूर्ण उदाहरण है देवी इश्तर का[28] सिंह-प्रेम और नर्गल तथा इरेस-कि-गल के तादात्म्य के उदाहरण बेबीलोन में उक्त विश्वास की ही झलक देता है।[29] मातृदेवी के प्राक्चरित के संबंध में एरिच निउमन के विचार उल्लेखनीय महत्त्व के हैं। निउमन का कथन है कि देवीस्वरूपा स्त्री की भयावह प्रकृति के दो रूप दिखाई पड़ते हैं। वह या तो स्वयमेव भयावह पशुरूपा हो जाती है अथवा उसका भयावह रूप पशु प्रतीक बन जाता है, जो उसका अनुगमन करता है और पराभूत करता है। इस प्रकार वह एक सिंहिनी है–मिस्र की सिंह-देवी की तरह अथवा वह सिंह पर खड़ी या आरूढ़ है।[30]

उपर्युक्त विवेचन से यह परिणाम सामने आते हैं कि पुरुष और स्त्री जो मूलत: भिन्न प्रकृति के हैं, एकत्व का प्रतिपादन करते हैं। उनका यह नैसर्गिक एकत्व प्रतीकों के सहारे की अभिव्यक्ति हैं, किंतु पुरुष-देवताओं की प्रतिमाओं के निर्माणारंभ के साथ ही नर-पशु प्रतीकों को आद्या मातृ-देवियों के सहचर के रूप में प्रस्तुत किया जाने लगा।[31] यह भी मनोरंजक बात है कि वृषभ, महिष और अज जैसे शाकाहारी नर-पशु जहाँ पुरुष देवशक्तियों से संबद्ध दिखाई देते हैं, वहीं सिंह, व्याघ्र आदि मांसभोजी पशु संबद्ध रहे हैं, स्त्री देवताओं से।[32]

मातृदेवी और सिंह प्रतीक के संबद्ध रूप के पुरातात्त्विक प्रमाण, नि:संदेह विश्व की प्राय: सभी सभ्यताओं में उपलब्ध हैं। मेसोपोटामिया की पक्षियों के पैर वाली पंखयुक्त मृत्यु और पाप की रात्रि देवी लिलिथ उलूक पक्षियों के साथ एक सिंह पर खड़ी हुई प्रदर्शित है, तो सिंहारूढ़ा हित्ती देवी अपने बच्चे को अपनी छाती से चिपकाए है। माइसीनिया के द्वार पर दो सिंहों के बीच देवी को एक वृक्ष अथवा स्तंभ के प्रतीक रूप में रूपांकित किया गया है। क्रीट में देवी एक जोड़ी सिंहों से खेलती हुई अथवा पहाड़ उठाए सिंह-युगल के बीच खड़ी है तथा एक तरुण उसकी उपासना कर रहा है। फीजिया सभ्यता में भी यही देवी अत्तिस के साथ एक सिंह-युगल के मध्य उपस्थित है। यह विलक्षण प्रतीक, लीसिया, लीडिया, सीरिया, फोनिसिया तथ अन्य स्थानों में भी उपलब्ध है।[33]

विवेच्य प्रतीक परंपरा के संबंध में एक बात और ध्यान देने योग्य है। तदनुसार मांसभक्षी पशु और मातृ-देवी का संबद्ध होना नैसर्गिक यौनाचार की अवधारणा भी अभिव्यक्त करता है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक सी॰जी॰ जुंग के विचार से यौन-कर्म और हत्या समान है तथा मृत्यु का प्रतिनिधित्व करती है।[34] सिंह हो या व्याघ्र, यदि उसे आदमी को चबाते हुए रूपांकित किया गया है, तो उसका अभिप्राय इस दृष्टि से यौन-कर्म की अभिव्यक्ति है।[35] जहाँ पुरातन लोकविश्वास प्रतिबिंबित हैं, ऐसे रेखांकन (फलक, चित्र) में, जहाँ शीर्ष-भाग भयावह सिंह का है तथा ग्रीवा सहित शरीर का शेष भाग नारी का है, जो पूर्ण नग्न है।[36]

संदर्भ

1. डॉ॰ जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव, मिथकीय कल्पना और आधुनिक काव्य, 1985, पृ॰ 1-2
2. मार्शल, मोहनजोदड़ो एंड दि इंड्स सिविलाइजेशन, पृ॰ 50
3. ब्री फॉल्ट, 'दि मदर्स', भाग-3, पृ॰192, संयुक्त प्रतीक नर वृषभ की परंपरा के लिए विस्तार में द्र॰ त्रिपाठी, डॉ॰ माताप्रसाद त्रिपाठी, भारतीय संस्कृति में वृषभ का प्रतीकत्व, पृ॰ 17-18
4. माताप्रसाद त्रिपाठी, भारतीय संस्कृति में वृषभ का प्रतीकत्व, पृ॰ 17-18
5. वासुदेवशरण अग्रवाल, भारतीय कला, चित्र 247, 250, पृ॰ 165

6. बर्नहार्ड, एच॰सी॰ ग्रेजीयक, एंसाइक्लोपीडिया ऑफ इवोल्यूशन, न्यूयार्क, पृ॰ 146
7. एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, 126 ए॰ सिंह, आजकल अफ्रीका में दिखाई देते हैं। इस महाद्वीप के सभी हिस्सों में दक्षिण अफ्रीका से लेकर उत्तर में अविसीनियाँ तक और पश्चिम में सूडान के आगे अल्जीरिया तक देखे जा सकते हैं। विस्तार के लिए देखें–'दी स्टैंडर्ड नेचुरल हिस्ट्री', सं॰ डब्ल्यू॰पी॰ क्राफ्ट, पृ॰ 865-866
8. एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, वही, पृ॰126
9. विल्डूरा, दि स्टोरी ऑफ सिविलाइजेशन, भाग-1, अवर ओरियंटल हेरिटेज, पृ॰ 166
10. एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रेलिजन एंड एथिक्स, भाग-1, पृ॰ 52
11. एस॰के॰ दीक्षित, मद्री गॉडेस, पृ॰ 168
12. जे॰जे॰ फ्रेजर, गोल्डेन बाऊ लंदन, 1914, भाग-5, पृ॰ 137-138
13. वही, भाग-9, पृ॰ 37
14. डी॰ए॰ मैकेंजी, मिथ्स ऑफ बेबीलोनिया एंड असीरिया, लंदन, पृ॰ 53
15. ए॰के॰ रश्न, पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ ऑर्टस, 1953
16. एच॰डी॰ सकालिया, प्री हिस्ट्री ऑफ इंडिया पाकिस्तान, 1974, पृ॰ 213
17. वही, पृ॰ 214
18. वही, पृ॰ 215
19. वही, पृ॰ 252
20. वही, पृ॰ 60-261
21. वही, पृ॰ 275
22. वही, पृ॰278
23. वही, पृ॰ 308
24. वही, पृ॰ 310, राजप्रासाद की पुनर्रचना में दिखाया गया सिंह।
25. यह सिंहद्वार सुदूर अतीत यूनान का एक अप्रतिम स्मारक माना जाता है। विद्वानों ने स्थानक के रूप में भित्ति शिल्पांकित दो सिंहों के साथ तीन मीटर ऊँचे इस सिंहद्वार को माइसीनिया के शक्तिशाली सम्राटों के शौर्य का प्रतीक बतलाया है। पी॰ एंड प्रोटोहिस्ट्र, वही, पृ॰ 264, 66, जे॰ कैंपबेल, 'दि मॉस्क ऑफ गॉड, प्रिमिटिव माइथोलॉजी', लंदन 1960, पृ॰140
26. आशीष सेन, एनिमल मोटिव इन ऐसियंड इंडियन आर्ट, पृ॰ 67
27. वही, भाग-5, पृ॰137-138
28. वही, भाग-9, पृ॰ 371
29. ध्यानेंद्र नारायण दूबे, नृसिंहोपासना अभ्युदय 1998, पृ॰ 15-16
30. वही।
31. एनिरिच, न्यूमन 'दि ग्रेट मदर' न्यूयार्क, पृ॰ 67
32. आशीष सेन, एनिमल मोटिव इन ऐसियंड इंडियन आर्ट, पृ॰ 67
33. एनिरिच, न्यूमन, 'दि ग्रेट मदर', पृ॰ 272
34. हिंफिल, बी॰एम॰, 'साइकोलॉजी ऑफ अनकांशस', लंदन, 1922, पृ॰ 67
35. आशीष सेन, एनिमल मोटिव इन ऐसियंड इंडियन आर्ट, पृ॰ 68-96
36. वही, पृ॰ 69

उषा राजे सक्सेना कृत 'प्रवास में' कथासंग्रह में व्यक्त संवेदना

प्रो॰ शर्मिला सक्सेना (अध्यक्ष, हिंदी विभाग)
कला-संकाय, डी॰ई॰आई॰
दयालबाग, आगरा

'प्रवास में' कहानी-संग्रह प्रवासी साहित्यकार उषा राजे सक्सेना का प्रथम कहानी-संग्रह है। उषा राजे सक्सेना सन् 1967 में ब्रिटेन गईं, जहाँ वह अपने घर-परिवार, देश और मिट्टी से अलग होकर एक नवीन देश-काल और परिवेश को स्वीकार करती हैं। कहानीकार का संवेदनशील मन नए माहौल में नवीन संस्कारों व दृष्टिकोणों को ग्रहण करता है। परिणामत: उसकी मान्यताएँ बदलने लगती हैं और दोनों देशों की सभ्यता व संस्कृति का द्वंद्व उसकी रचनाशीलता को और धारदार बना देता है—'एक कथाकार की संवेदनाएँ समय की धड़कन को अपने में समो लेती हैं। यह समोना कोई सचेत प्रक्रिया नहीं होती है, जिसमें लेखक सचेत रूप से अपने समय के काल-बोध को पाठक तक पहुँचाने के लिए कहानी के माध्यम का उपयोग करे।'[1] वास्तव में नवीन माहौल जिंदगी में नवीन पेचीदगियों को लानेवाला सिद्ध होता है और कथाकार का संवेदन, संस्कार के रूप में अपने परिवेश से प्रभावित होता है, जीता है और उसकी नवीनताओं को ग्रहण कर जीवन की उलझी हुई गुत्थियों और पेचीदगियों को सुलझाता है। बदला हुआ परिवेश व्यक्ति की मानसिकता में भी यथोचित बदलाव लाता है, और वहाँ रहनेवाले भारतीयों के 'भारतीय मूल्य' दरकने लगते हैं। टूटने व दरकने की यही प्रक्रिया कुछ नवीन कथानकों, मानकों व मूल्यों के जन्म का पाथेय बनती है। कहा जा सकता है कि आपके पात्र तो भारतीय हैं, पर उनके मूल्य व मान्यताएँ भारतीय नहीं हैं वे स्थान और परिवेश के अनुकूल ही हैं। लेखिका स्वयं स्वीकार करती है—'ये कहानियाँ भारतीय मूल्यों और मान्यताओं के चौखटे में संभवत: सही नहीं बैठेंगी, परंतु इन मूल्यों और मान्यताओं के कारण ही एक परिवेश का साहित्य दूसरे परिवेश के साहित्य से अलग नहीं हो जाता। इन कहानियों के भीतर रिसी हुई गहरी मानवीय संवेदना उन्हें एक-दूसरे से जोड़े रखती हैं। सात समुंदर पार होने पर भी यही मानवीयता इन कहानियों को समयातीत, कालेतर और समय-सापेक्ष बनाती है।'[2] 'प्रवास में' संग्रह की कहानियाँ लेखिका की रचनात्मक एवं साहसपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए जानी जाती हैं। प्रस्तुत कहानियाँ उनके रचनाकर्म में निर्भीकता, खुलापन और भाषागत प्रयोगशीलता को उकेरने में पूर्णत: समर्थ हैं। आपने समय और समाज को केंद्र में रखकर अपनी रचनाओं में आधुनिकयुग को जिया है। प्रस्तुत संग्रह में लेखिका की दस कहानियाँ संकलित हैं, जो इस प्रकार हैं—प्रवास में, शुकराना, यात्रा में, अभिशप्त, दायरे, वह कौन थी? सफर में समर्पिता, शन्नो और तान्या दीवान। आपकी ये कहानियाँ सात समंदर पार बसे भारतीय जीवन की

 ISSN 0975-735X

मर्मस्पर्शी गाथाएँ हैं। कहानियाँ पढ़ने पर किस्सागोई-सा आनंद प्राप्त होता है। लेखिका की यायावरी वृत्ति से पाठक इन कहानियों के द्वारा सहज में ही परिचित हो जाता है। आपकी यात्रावृत्त शैली में लिखी कहानियाँ वास्तव में संवेदनात्मक ऊर्जा से ओतप्रोत हैं। उषा जी एक सजग शिल्पी हैं, जिन्हें पार्क में, ट्रेन में, बस में, हवाई जहाज में हर स्थान पर, हर परिस्थिति में अपनी कहानी दिखाई पड़ती है। कमलेश्वर आपकी कहानियों के विषय में कहते हैं–'उषा राजे सक्सेना की इन कहानियों की सबसे बड़ी खासियत यह है कि वह कहानियों में खुद किसी तरह के घटनाक्रम या चरित्र उद्‌घाटन का ताना-बाना नहीं बुनतीं, उनके पात्र स्वयं उनके पास चलकर अपना रहस्योद्‌घाटन करते हैं, जो अक्सर सफर में घटित होते हैं।'[3]

'प्रवास में' कहानी मूलरूप से प्रच्छन्न रंगभेद पर आधारित है। प्रत्येक प्रवासी भारतीय गोरे मुल्कों में 'रंगभेद' का दंश झेलता है, जिसे वह कभी-कभी आसानी से समझ नहीं पाता। ब्रिटेन जैसे देश में लोग प्रकटत: विनम्र, उदार और योग्यता की कद्र करनेवाले हैं। वहाँ की व्यवस्था भी रोजगारी भत्ता, रोगियों की सहायता, बच्चों के प्रति सदाशयता आदि के कारण उदार प्रतीत होती है, लेकिन यह उदारता तभी तक रहती है, जब तक कोई एशियाई या अफ्रीकी अपनी योग्यता से उन पर भारी नहीं पड़ता। जैसे ही ऐसा होता है, उनकी प्रकट उदारता ऐसा प्रच्छन्न वार करती है कि योग्यतम व्यक्ति अयोग्य सिद्ध हो जाता है। प्रस्तुत कहानी का नायक शशांक एक जहीन और योग्य व्यक्ति है जो बीस-बाईस वर्ष की उम्र में 'लंदन नौकरी की खोज में आया है। ब्रिटिश सिविल सर्विस कमीशन में भी उसने आवेदन-पत्र दिया है।'[4] वह इंटरव्यू में ही नहीं, बल्कि इस विदेशी धरती पर सफल जीवन-यापन करने हेतु ब्रिटिश समाज के अदब-कायदे, रीति-रिवाज तथा मनोभावों के बारे में गहराई से जानना चाहता है। उसने अँग्रेजी शब्दों के उच्चारण, बोलने के सही तरीके तथा भाषा को सुधारने एवं भाँजने के लिए 'ओरिएंटल स्कूल ऑफ लैंग्वेजेज' का सहारा लिया। इतना ही नहीं 'वह अँग्रेज मित्रों के उच्चारण, हास्य और बातचीत के विषय को ध्यान से सुनता और उनसे उन्हीं की तर्ज पर, उन्हीं के विषयों पर साधिकार व सहज ढंग से बातें करने का सफल प्रयास करता।'[5] वह अँग्रेजों को बहुत ही सहृदय मानता था। उसे भारतीयों का अँग्रेजों को रसिस्ट कहकर घृणा करना, समझ नहीं आता। उसे प्रतीत होता था कि सभी अँग्रेज साथी उसके साथ मृदुल व्यवहार करते थे। वे सभी आपस में बातचीत तर्क-वितर्क करते थे–'मतभेद होने पर एक-दूसरे का मजाक उड़ाते हुए उत्तेजित भी हो लेते हैं, पर दूसरे दिन फिर अच्छे दोस्त हो जाते हैं। कई बार रंग और नस्ल पर भी करारे व्यंग्य और तानेबाजी हो जाती है (किंतु ऐसा तो भारत में भी होता है। हम लोग गुज्जू, बिहारी, बंगाली और दक्षिणियों का भी तो मजाक उड़ाते हैं।'[6] अँग्रेज भी हमारी तरह इंसान हैं, उनमें भी वही सब प्रवृतियाँ हैं, जो हममे हैं। ऑफिस में लंच में यदि वह कभी बातों में रम गया तो बॉस उसका झूठा बर्तन तक धो देता है। कई बार उसके मित्र बचा हुआ झूठा भोजन तक खा लेते हैं–'मैंने अँग्रेजों में सदा मानवता, सहृदयता और उदारता को ही पाया है। एक्चुअली वी सफर फ्राम इनफीरियारिटी कॉम्प्लैक्स, स्लेव मेंटेलटी एंड एन एटरनल इनसिक्यूरिटी।'[7] शशांक ने ब्रिटेन में थोड़े ही समय में दोनों समाजों में अपना विशेष स्थान बना लिया था। ऑफिस में सभी उसकी याद्‌दाश्त, तत्कालबुद्धि, हाजिरजवाबी तथा समकालीन राजनीति के प्रति उसके मौलिक दृष्टिकोण और ज्ञान के कायल हो गए थे। विभाग के कोड बुक के नियम, अधिनियम और उनकी व्याख्याएँ तो जैसे उसे जबानी रटी हुई

थीं। लिहाजा उसकी पदोन्नति हर तीसरे साल होती रही। अभी हाल ही में उसकी ब्रिटिश सिविल सर्विस के एक ऐसे महत्त्वपूर्ण विभाग में नियुक्ति हुई थी, जिसमें अब तक कोई प्रवासी प्रवेश नहीं पा सका था। वहाँ के समाज में उसे विशेष सम्मान प्राप्त हो रहा था। थोड़े दिन में उसमें दंभ और अहंकारयुक्त हठ के लक्षण भी परिलक्षित होने लगे थे। शशांक उस शिखर तक पहुँच गया था, जहाँ आज तक कोई प्रवासी नहीं पहुँच सका था, किंतु अचानक शशांक पर इनक्वायरी सेट अप हो गई। लोग यहाँ तक कहते हैं, 'कि शशांक ने 'ऑयल बैरन' से मिलकर 'मिलियन' बनाया है।'[8] किंतु शशांक इन बातों का कोई जवाब नहीं दे रहा था। वह पता नहीं कहाँ चला गया है, दिखाई नहीं देता। उसकी पत्नी से पूछने पर उसने बताया, 'दीदी, उनके साथ बहुत अन्याय हुआ। उन्होंने सदा सबका भला चाहा। ...जो पहले उनके गुण थे, बाद में वही उनके अँग्रेज साथियों और अधिकारियों की आँख की किरकिरी बन गई।'[9] संभवत: वे लोग उसकी बुद्धि और जानकारियों से भयभीत हो उठे। शशांक पर चुपचाप नजर रखी जाने लगी। ऑफिसवालों ने कोई चाल चली, क्या हुआ, कैसे हुआ नहीं मालूम। 'उनकी प्रतिष्ठा, विश्वास और मान्यताओं को ऐसी ठोकर लगी कि वह अस्थिर हो उठे और उन्हें नींद आनी बंद हो गई। वह अत्यंत दु:खी हताश और अशांत हो गए। सारा आत्मविश्वास एक झटके में खंड-खंड हो गया।'[10] बहुत दिन तक शशांक ने अपनी पत्नी को भी इस दु:ख से परिचित नहीं कराया। अंतर्मुखी हो स्वयं से लड़ते-लड़ते हार गया। स्टैब्लिशमैंट ने उस पर अविश्वसनीयता का आरोप लगाकर अनंत काल के लिए वेतन सहित निलंबित कर दिया। ऐसे में शशांक सब-कुछ त्यागकर बौद्ध भिक्षुओं के पास मन की शांति के लिए चला गया है।

'शुकराना' इस संग्रह की दूसरी कहानी है, जिसमें लेखिका ने शब्दों के महत्त्व को बताया है। उनका मानना है कि यदि शब्द की महिमा पकड़ में आ जाए तो जीवन का सार मिल जाता है, ईश-दर्शन हो जाता है और शायद निर्वाण भी मिल जाता है। शब्द हमारे साथ किसी देवदूत की तरह रहते हैं, जो हर मुसीबत में रास्ता दिखाते हैं। शब्द कभी-कभी किसी के जीवन में आमूल परिवर्तन भी ले आते हैं। 'शुकराना' औरे उसका परिवार बोसनिया से लंदन आता है। शुकराना को थोड़ी-बहुत अँग्रेजी आती है। ये गरीब लोग हैं, स्कूल जाकर पढ़ना चाहते हैं, 'पर वहाँ उसे (भाई) कुछ समझ में नहीं आता। उसे अँग्रेजी नहीं आती और वहाँ कोई बोसनियन नहीं जानता। लोग उसे गूँगा, बेवकूफ और पागल समझते हैं (लड़के उसे मारते हैं। 'बुली' (दादागिरी) करते हैं इसलिए वह स्कूल से भाग आता है। टीचर्स सहृदय हैं, पर उससे संप्रेषण नहीं कर पाती है। ...खेल के मैदान में बच्चे इसकी मारकुटाई करते हैं। हर रोज यह बदन पर नीले दाग लेकर आता है। सच हमारी जिंदगी ही एक दाग बनकर रह गई है।'[11] इसी प्रकार शुकराना भी लगभग साल-भर पहले स्कूल जाती थी। वहीं उसने अँग्रेजी सीखी। पर फिर उसे माँ को अस्पताल ले जाना पड़ता था, जो कि पेट से थी। घरेलू सामान की खरीद-फरोख्त व किसी भी सरकारी काम के लिए उसे ही घरवालों के साथ जाना पड़ता था, क्योंकि शुकराना के अतिरिक्त और लोग टूटी-फूटी अँग्रेजी भी नहीं जानते थे अतैव उसकी शिक्षा रुक गई। उसके पिता कैब ड्राइवर हैं, पर माँ को उस पर यकीन नहीं–'उसे कार चलानी ही नहीं आती। कैब ड्राइवर कैसे बन सकता है। फिर वह माँ से ही पैसे माँगता है।'[12] फिर अपनी माँ के बारे में बेझिझक बताती है, 'वह मर्दों के साथ सोती है और उनसे पैसे लेती है। मुझे भी शायद यही काम करना पड़े। पर मेरी माँ कहती है कि अगर यही काम मैंने किया तो वह मेरा मुँह

कभी नहीं देखेगी और खुदकुशी कर लेगी।'[13] तब लेखिका उसे समझाती है कि उसकी माँ ठीक कहती है, क्योंकि उसके लिए यह बहुत बड़ी मजबूरी की बात है। एक माँ अपने बच्चों को भूखा नहीं रख सकती। लेखिका स्पष्ट कहती है कि तुम्हें अभी स्कूल जाना चाहिए और पढ़-लिखकर कोई नौकरी करनी चाहिए–'तुम सफाई कर्मचारी बन सकती हो, गार्डनिंग कर सकती हो, बस कंडक्टर बन सकती हो। इन कामों के लिए किसी खास योग्यता की जरूरत नहीं होती।'[14] इस मुल्क में 16 वर्ष तक हर बच्चे को कानूनन स्कूल जाना होता है। बच्चों के साथ बदसलूकी करने की बहुत कड़ी सजा होती है। छुट्टी के दिनों में भी बच्चों को लाइब्रेरी में बिना किसी खर्चे के दस्तकारी सिखाई जाती है। वह आगे कहती हैं, 'आत्मसम्मान से जीने के लिए मेहनत करनी पड़ती है, बेटी। मेहनत से मत घबड़ाना। ईश्वर भी उसकी मदद करता है, जो अपनी मदद खुद करने को तैयार होते हैं।'[15] संभवत: इन्हीं शब्दों के प्रभाव से आज शुकराना डस्ट कार्ट ड्राइवर है और उसका जीवन नवीन संभावनाओं से भर गया है।

'यात्रा में' कहानी इस संग्रह की महत्त्वपूर्ण कड़ी है। यह एक ऐसे पिता की कहानी है, जिसमें वह बिना विवाह और बिना पत्नी के, अपने प्रेम के सुकुमार पुष्प 'ऋचा' की परवरिश बड़े ही मनोयोग से कर रहा है। वह एक श्यामवर्णी मोहक युवक है और उसकी पुत्री, 'ऋचा! कितनी प्यारी बच्ची है–गोरी चिट्टी, बिल्कुल मेम सी।...छुट्टी मनाने दो सप्ताह के लिए रोमानिया जा रहे हैं।'[16] यह बच्ची उसके अबोध, प्रथम प्रेम का प्रतीक है, जो उसे अचानक ही अठारह वर्ष की उम्र में हुआ था। बच्ची की माँ अप्रतिम रूपसी थी। वह एक सर्कस में 'ट्रपीज' करती थी। ग्यारह वर्ष की साधना के पश्चात् उसका प्रथम प्रदर्शन ट्रपीज पर था, जिसमें वह प्रात:काल पार्क में मिले युवक को आमंत्रित करती है। वहाँ सर्कस में, 'वह एकाग्रचित उस तनी हुई रस्सी पर चल रही थी, उसके हाथ में संतुलन के लिए कोई उपकरण नहीं था।... मेरे मुख से तो तब चीख निकल गई, जब वह ट्रपीज पर तेजी से झूलती हुई हवा में कलाबाजियाँ लगाती, नीचे तनी हुई रस्सी पर खड़ी हो चक्राकर घूमने लगी।...लोग जोर-जोर से तालियाँ बजा रहे थे। और वह नटनी सबके प्रणाम झुक-झुककर बटोर रही थी।'[17] ऐसी प्रेयसी के साथ वह संसार के समस्त बंधनों से मुक्त एक-दूसरे के आंतरिक संसार में प्रवेश कर गए थे। इसके पश्चात् वह उस रात सर्कस के अंतिम प्रदर्शन के बाद वहाँ से चली गई। कोई उसका पता नहीं बता सका। दो वर्ष के बाद वह अचानक 'कैंब्रिज विश्वविद्यालय' के ऑफिस में मिली। वह विदेशी बाला शिक्षा को एक तपस्या की तरह मानती है, 'शिक्षा एक तपस्या है, पूजा है, आराधना है, उसको कभी भी खंडित नहीं करना, मुझे वचन दो।'[18] नृत्य व योगाभ्यास की शिक्षा उसने भारतीय गुरुओं से प्राप्त की है, इसीलिए भारतीय मूल्य व मानदंड उसकी रग-रग में बस गए। वह बताती है, 'नृत्य व योगाभ्यास की शिक्षा मैंने शंभु महाराज से ली थी तथा ट्रपीजियम नंदलाल नटवर जी के संरक्षण में।'[19] उस दिन संध्या समय वह उसे बताती है, 'उस दिन मैंने तुम्हारा वरण अपनी इच्छा से किया था। मैंने तुम्हारी कामना की थी। संभवत: वह स्वाति नक्षत्र था। तुम्हारी पुत्री एक वर्ष की हो चुकी है।... नहीं, मैं विवाह नहीं कर सकती। मैं मुक्त रहना चाहती हूँ। मेरी अपनी महत्त्वाकांक्षाएँ हैं। मैं नटनी हूँ। पक्षी की तरह खुले आकाश में उड़ना चाहती हूँ।'[20] इसके पश्चात् वह उसे समझाती है कि चार वर्ष तक जब तक तुम्हारी शिक्षा पूर्ण न हो जाए मैं बच्ची को संभालूँगी, पर उसके पश्चात् अपनी पुत्री की शिक्षा-दीक्षा व संस्कार का भार तुम्हें स्वयं उठाना होगा। इस विचित्र परिस्थिति के

विषय में वह अपनी उदार माँ को बताना चाहकर भी नहीं बता पाता। जबकि उसकी माँ बुद्धिमती होने के साथ समाजसेविका भी है। वह सोचता है, 'माँ भी भला कैसे अपने एकमात्र अविवाहित पुत्र की अवैध पुत्री को स्वीकार कर सकती थी। समाज में उसका आदर-सम्मान था। उनके लिए यह आत्महत्या सा था।'[21] काफी समय तक वह चुप रहा फिर उसकी माँ जब उसके पास रहने कैंब्रिज आईं तो उन्हें पता चलता है। उन्हें तेज झटका लगता है। वह अपने पुत्र से बहुत कुछ कहती हैं, समझाती हैं। पर समाजसुधारक माँ, मानवता के नाते अपनी पौत्री को संरक्षण व ममता देने के लिए तैयार नहीं होतीं। भारतीय परिवेश से जुड़ी एक माँ विदेश में रहने के बाद भी समाज की संकीर्ण मनोवृत्ति को त्याग नहीं पाती और अपने पुत्र की अवैध संतान को अस्वीकार कर देती है।

इस संग्रह की कहानी 'अभिशप्त' एक ऐसी अनूठी कहानी है, जो एक कलाप्रिय बाला के अभिशप्त जीवन की करुण कथा को स्पष्ट करती है। अभिशप्त बाला की माँ, जो एडिनबरा की इनफर्मरी अस्पताल में छात्र नर्स थी, चिकित्सा के लिए आए, 'एक श्यामवर्ण महाराष्ट्रियन ब्राह्मण ने उनके मन को ऐसा मोहा कि वह उससे मित्रता करने के लिए, उससे हिंदी एवं भारतीय संस्कृति की शिक्षा ग्रहण करने लगी।'[22] उस सुदर्शन युवक की ओर आकर्षित हो वह अपना प्रेम-प्रस्ताव उसके समक्ष रखती है। तब वह उसे बताता है कि बचपन में उसका विवाह हो चुका है, पर अभी पत्नी की वय छोटी होने के कारण गौना नहीं हुआ है। वह अपनी पत्नी से वचनबद्ध है। किंतु वह फिर भी उसकी ओर खिंचती चली गई—'अंत में वही हुआ। वह उनका प्रणय अस्वीकार नहीं कर सके। उन्होंने आपसी सहमति से गंधर्व विवाह किया।'[23] वह केवल दो वर्ष के लिए छात्रवृत्ति पर स्कॉटलैंड आए थे। वह (माँ) गर्भवती हो जाती है। युवक निश्चित समय पर भारत लौट जाता है, पर उसे इस विषय में कुछ नहीं पता होता। माँ के इस दुस्साहस से समाज ने उनका बहिष्कार कर दिया। फिर वह बिना किसी को बताए लंदन आ गई—'लंदन, अत्यंत विशाल, बहुरंगी, बहुभाषीय और बहुसंस्कृति का केंद्र था। वहाँ अवैध संतान को फैशनेबुल लोगों के बीच 'विशेष प्रेम से उत्पन्न संतान' की संज्ञा दी जाती थी।'[24] अविवाहित माँ को मिलनेवाली सभी सुविधाएँ उसे 'वेलफेयर स्टेट' से मिल गईं। यहाँ उसका जन्म होता है। पिता की भाँति श्यामवर्णा व खूबसूरत थी। उसकी माँ ने अपनी इस बिटिया को भारतीय मूल्यों के अनुसार पंडित विवेकानंद से शिक्षा दिलवाई—'मुझे भारतीय संगीत, संस्कृति, भाषा एवं नृत्य की शिक्षा मिलने लगी। पंडितजी ने माँ को पिता का व मुझे पितामह का वात्सल्य दिया। मैं उन दस वर्षों में कब कुरूप कीड़े से तितली बन गई, मुझे पता ही न चला।'[25] विदेश में इलाज के लिए आए एक भारतीय पिता की आसन्न मृत्यु से पूर्व अपने पुत्र रत्नमणि के विवाह की इच्छा ही उनके विवाह का कारण बनी। रत्नमणि एक स्वर्णकार होने के साथ हीरे पन्ने के व्यापारी व कलाविद् थे। तभी उनके आनंद को स्वर्णकिरीट लगाने आई उनकी पुत्री। वास्तव में अब जीवन खुशियों व आनंद से परिपूर्ण हो गया था। पति के प्यार से जीवन आह्लादित हो उठा था। तभी एक काले दिन, बाबरी-ध्वंस में उसके पति की मौत हो जाती है। वह संज्ञाशून्य हो अपनी छह वर्षीय पुत्री व माँ समान सास के पास अचेतावस्था में न जाने कितने दिन रही। फिर सास उसकी कम उम्र, अप्रतिम सौंदर्य व जीवन से पलायनवादी वृत्ति से सहम गई और उसका पुनर्विवाह अपनी बहन के दुहाजू देवर से करा दिया—'युवती कुछ कम उम्र की शायद चौबीस-पच्चीस साल की और वह पुरुष हर हाल में पैंतीस चालीस या उससे कुछ अधिक ही रहा होगा।'[26] उस पुरुष के बच्चे लगभग उसके बराबर

होंगे। यह बेमेल जोड़ी मन व कलाप्रियता में भी बेमेल थी। जहाँ वह कोमल मसृण भावनाओं से युक्त थी तो वह इनसे नितांत शून्य केवल व्यापारी कठोरहृदय पुरुष था। वह अपनी माँ (सास) व बिटिया को नार्वे कुछ दिनों के लिए बुलाना चाहती थी। तभी उसे पता चला कि, 'विवाह से पहले ही मौसी से अनुबंध हो चुका था कि तुम्हारी सास और लड़की कभी भी नार्वे नहीं आएँगी।'[27] वह स्तब्ध हो जाती है, तभी उसके द्वितीय पति की संतानें छुट्टियों में घर आती हैं। उनकी पुत्री उसे देखकर क्रुद्ध हो जाती है और माता के रूप में अस्वीकार कर देती है–'तुम मेरी माँ नहीं हो। तुम मेरी माँ का मंगलसूत्र नहीं पहन सकती हो। ...तुम उनकी रखैल हो रखैल। मेरे विलासी पिता के खेलने के लिए एक देह।'[28] और फिर उसे उस घर से निकाल देती है। अभिशप्त जीवन का एक और दुर्भाग्यपूर्ण पक्का खुल जाता है। तदुपरांत वह किसी प्रकार अपनी सास व बेटी के पास पहुँचती है और प्रथम पति के व्यापार को सँभालकर अपना नवीन जीवन आरंभ करती है। अब 'रत्नमणि ज्वैलर्स' लंदन में खुला शोरूम ही उसके जीवन का आधार है। वास्तव में जीवन एक ऐसा चित्तवृत्त है, जो कभी पूरा नहीं होता। हाँ उसे पूर्ण करने का प्रयास हम जीवन-भर करते हैं, और करना चाहिए, यही कर्म है, यही संसार है।

'दायरे' कहानी में लेखिका ने एक ऐसी लड़की को उकेरा है, जो बहुत ही सादी और बेफिक्र किस्म की है, जिसे मर्दों में कोई दिलचस्पी नहीं है, जिसके सपने आम लड़कियों से बिल्कुल अलग हैं। वह जहनी तौर पर बिल्कुल अकेली है। उसके माता-पिता ने उसका विवाह कर दिया। अपने पति के साथ वह सात समंदर पार बरतानिया के शहर बैडफोर्ड आ गई है, जहाँ उसकी कौम के और लोग भी रहते हैं। आमतौर पर वह, 'या तो अपने घर का काम करती या अपने शौहर का ख्याल रखती। हाँ, कभी-कभी खिड़कियों पर सफेद जालीदार पर्दों को हटाकर. ..स्कूल जाते उछलते-कूदते बच्चों को देखकर, अपने आनेवाले दिनों के सपने बुनती।'[29] उसका पति उसे बहुत चाहता था। उसे घरेलू तूफान पसंद नहीं थे, इसलिए उसने अपना एक दायरा बना लिया था। उसके पति को भी उसका दायरे में रहना अच्छा लगता था। धीरे-धीरे वह पति, बच्चों व अपने परिवार की जिम्मेदारियों में लीन हो गई। उसका शौहर काम के सिलसिले में मिडिल ईस्ट चला गया, तब उसके पास काफी खाली समय रहने लगा। ऐसे में वह नज्में लिखने लगी, जो बैडफोर्ड से निकलने वाले कई मादरे जुबान के अखबारों और रिसालों में निकलने लगीं। उनकी नज्मों के कोरे दर्द, ख्याल, मौसीकी की खूब चर्चा की गई। जल्द ही लोग उसकी नज्मों को पहचानने लगे और वह एक उभरती शायरा बन गई–'इसी बीच अखबारनवीसों ने उससे टेलीफोन पर इसरार किया कि वह उसके नज्मों की किताब छापना चाहते हैं।'[30] इसके पश्चात् वह एक मशहूर पब्लिशर से मुलाकात करने गई, जहाँ उसने अपना परिचय देकर अपनी नज्म की पुस्तक छापने की बात की। वह पब्लिशर उसकी खूबसूरती को निहारता रहा और उसकी नज्मों को भी धीरे-धीरे पढ़ता रहा। इसी प्रकार काफी समय बीत गया। दफ्तर के काफी लोग घर चले गए। फिर वह उसे छूने लगा और उसके जिस्म के अंदर सोई हुई स्त्री को जगाने की कोशिश करने लगा, किंतु वह निश्चेष्ट बैठी रही। वह धीरे-धीरे उसे कहने लगा कि पब्लिशर और शायरा के बीच में प्रेम के जिस्मानी संबंध हो जाते हैं। लेकिन वह स्त्री अपने दायरे में बँधी किसी प्रकार के समझौते के लिए तैयार नहीं हुई। वह मर्द धीरे-धीरे उस पर डोरे डाल रहा था। जब वह बोली–'मेरा जिस्म तो मेरे शौहर के लिए है। मैं अपना जिस्म देने के लिए तैयार नहीं।'[31] और वह स्पष्ट रूप से

अनैतिक संबंध बनाने के लिए मना कर देती है। उसकी स्पष्टता को जानकर वह पब्लिशर हैरान रह जाता है कि आज के समाज में भी कोई दायरे में बँधी इतनी पाकीजा स्त्री हो सकती है? मर्द को भूख थी जिस्म की और औरत को भूख थी एक अच्छे दोस्त की। दोनों की जरूरतों में व्यक्तिगत फर्क था। मर्द उसकी पाकीजगी को नमन करते हुए उसके माथे पर मोहब्बत का बोसा धर देता है। निश्चित रूप से स्त्री देश में रहे अथवा विदेश में यदि वह अपनी जड़ों, अपने संस्कारों और अपने दायरे से परिचित है तो उसे उसकी इच्छा के बिना कोई भी मर्द नीचे नहीं गिरा सकता।

इस संग्रह की 'वह कौन थी' कहानी एक सामान्य कहानी है, जोकि विदेशी सर-जमीन पर लिखी गई है। इस कहानी में एक रहस्य छुपा हुआ है, जोकि कहानी को पूर्णत: बाँधने में समर्थ नहीं हैं। एक खूबसूरत महिला जिसके वजूद में कशिश है, हल्के कदमों से चलती हुई लेखिका के सामने कटे दरख्त पर बैठ जाती है और वह बताती है कि जब वह 12 वर्ष की लड़की थी उस समय उसने एक शायर को गाते हुए सुना और वह उसके गाने पर विभोर हो गई। उसकी नस-नस में उस दिलकश शायर की आवाज उतरती चली गई, जिसे वह भुला नहीं पाती। धीरे-धीरे वह बड़ी हो जाती है और उसका विवाह हो जाता है। विवाह के बाद वह पति के साथ विलायत चली आती है। उसका पति उसकी मासूमियत पर फिदा रहता है। वह भी अपने खाली समय में लेखन का कार्य करने लगती है। इसके पश्चात् बच्चे बड़े हो जाते हैं। बच्चों का विवाह हो जाता है, लेकिन उसका मन उसी शायर को महसूस करता है, जिसका तसव्वुर उसने 12 वर्ष की उम्र में किया था। वह अपनी कहानी सुनाते-सुनाते अधूरी कहानी छोड़कर चली जाती है। लेखिका रात-भर उसके बारे में सोचती रहती है फिर अचानक 'तमाम जरूरी और गैरजरूरी खतों के साथ एक मोटा सा रजिस्टर्ड लिफाफा भी था। कौतूहलवश सबसे पहले मैंने उस मोटे लिफाफे को खोला, खोलते ही एक पत्र मेरी चाय की प्याली में गिरते-गिरते बचा।'[32] उस खत के साथ एक फोटो और नज्मों का मसौदा भी था। वह व्यक्ति उस पत्र में लेखिका से गुजारिश करता है कि कुछ दिनों पहले उसकी बीवी की, जो नेक और पाक ख्यालों की थी, एक दुर्घटना के कारण जन्नतनशी हो गयी, नज्में किसी पब्लिशर से बात करके एक किताब के रूप में छपवा दें। पत्र पढ़ने के उपरांत जैसे ही लेखिका उस फोटो को देखती है, वह सकते में आ जाती है, क्योंकि यह वही खातून थी–'जो मुझे कल पार्क में अपनी अधूरी कहानी सुना गई थी...और जिसके लिए मैं रातभर बैचेन रही। वह कौन थी?'[33] यह कहानी किसी भी प्रकार का रहस्य, रोमांच उत्पन्न नहीं करती, बेहद सादी-सी विदेशी धरातल पर लिखी हुई, विदेश में बिखरे प्रकृति सौंदर्य को उकेरनेवाली कथा है।

इस संग्रह की 'सफर में' कहानी भी एक सामान्य कहानी है, जिसमें लेखिका किसी कार्य से भारत आती है और उन्हें अनारक्षित सामान्य रेल के डिब्बे में गरीब लोगों के बीच यात्रा करनी पड़ती है। कथा में लेखिका बताती है कि उन्होंने गरीबी को इससे पहले कभी महसूस नहीं किया। साथ बैठे लोग उन्हें गंदे, अनपढ़, गँवार लगे। उन्हें हिंदुस्तान की गंदगी भी बहुत घिनौनी लगी–'वे लोग मुझे गंदे, अनपढ़ और गँवार लगे। मुझे उनकी सफाई की आदतों पर शक था। यो बहुत कोशिशों के बावजूद मुझे हिंदुस्तान की गंदगी और फूहड़पन पर मितली सी आती थी।'[34] सामने सीट पर एक मासूम सी 22 वर्षीय महिला बैठी थी, जिसके एक बच्ची गोद में थी दूसरी 14 महीने की थी तीसरी पेट में। वह स्त्री अपने बच्चों के साथ-साथ उसका भी ध्यान रख रही थी। उसके बैठने की चिंता कर रही थी, उसके खाने की चिंता कर रही थी और उसके सोने की

चिंता कर रही थी। अब वे गंदे लोग भी उसे अच्छे लगने लगे थे और वह उनके मोम से कोमल दिल को महसूस करने लगी थी–'मुझे लगा कि इन गंदे लोगों में भी एक तरह की सफाई है। भीड़ उनकी मजबूरी है, पर उसमें भी एक अदब है, एक तरतीब है, जिसमें भाईचारे और इंसानियत की महक है।'[35] वह सो जाती है तो उन्हें एक सपना आता है, जिसमें वह औरत डूब रही है और समुंदर के सैलाब में वह उसे बचा नहीं पाती। उनकी आँख खुल जाती है अब लेखिका को वह औरत अच्छी लगने लगती है। जब वह औरत उतरनेवाली होती है तो उसकी मुट्ठी में अपना पता थमा देती है और कहती है मुश्किलों में मुझे याद करना। कुछ समय के पश्चात् वह लंदन वापस आ जाती है। एक दिन मथुरा से उन्हें पोस्ट आती है जिसे किसी शबनम ने लिखा था। उस पत्र में उसने लिखा था कि जब आपको यह पत्र मिलेगा, वह खुदकुशी कर चुकी होगी। उसकी गोद की बच्ची को उसके पति ने गला घोंटकर मार दिया था। वह अपनी बड़ी बेटी को मुमानी के पास भेज चुकी थी। उसका आग्रह था कि किसी प्रकार उस बच्ची को मुमानी के पास से लेकर किसी यतीमखाने में पहुँचा दे, जहाँ कि उसका पिता उसे खोज न सके। बस कहानी यहीं समाप्त हो जाती है। लेखिका उस बच्ची को अपनी माँ के पास भिजवा देती है और बस वह वहीं पलने लगती है। लेखिका की सदाशयता व परदु:खकातरता इसमें झलकती है।

इसी प्रकार 'समर्पिता' और 'तान्या दीवान' भी इस कथा संग्रह की दो कहानियाँ हैं, जोकि पाठकों पर कोई विशेष प्रभाव नहीं छोड़तीं। 'तान्या दीवान' एक ऐसी लड़की है जो दस वर्ष पूर्व डिग्री पूरी करने लंदन आती है। उसके माता-पिता अपनी हैसियत के अनुसार उसे फ्लैट और शेयर सर्टिफिकेट दे देते हैं। यहाँ रहकर तान्या बहुत तरक्की करती है और अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व का निर्माण करती है। वह व्यवहारकुशल होने के साथ-साथ खुशमिजाज लड़की भी है जो अपने माता-पिता को प्यार करती है। माता-पिता भारतीय मूल्यों के पोषक हैं। वह उससे विवाह करने को कहते हैं। वह नहीं चाहते कि विदेशी पुरुष मित्रों के साथ अपने संबंधों को इतना आगे बढ़ा ले कि वहाँ से लौटना उसके लिए मुश्किल हो। उसके पिता गोरे पुरुष को उसका पति नहीं देखना चाहते। तान्या स्वच्छंद जीवन जीना चाहती है। वह विवाह नहीं करना चाहती। वस्तुत: भारतीय और विदेशी मूल्यों की टकराहट इस कहानी में साफ सुनाई देती है।

इस कथा-संग्रह की कहानी 'शन्नो' बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। 'अभिशप्त' और 'शन्नो' की नायिकाएँ अपने परपीड़क तथा गैरजिम्मेदार पतियों के साथ झेली यातना के दौर को लाँघकर, अपने लिए आश्वस्तिपूर्ण और सुखद जीवन का विकल्प चुन लेती हैं। वही 'सफर में' की नायिका अपने पति के जुल्मों के कारण आत्महत्या पर मजबूर हो जाती है। शन्नो का पति सुभाष विवाह के कुछ समय बाद ही चुपचाप 'शन्नो', विधवा बीमार माँ और अपने बच्चों को छोड़कर कहीं चला जाता है। सास अपने बेटे को कोई दोष नहीं देती, बल्कि शन्नो को ही कोसती है, 'मरी उसे खुश रखती तो भला वो घर छोड़कर क्या जाता? दान-दहेज का मोह छोड़ खूबसूरत देख सिर्फ दो जोड़ों में ब्याह लायी थी'[36] कुछ वर्षों के पश्चात् उसकी सास की मृत्यु हो जाती है। उसके पास रुपए-पैसा कुछ नहीं रहता। फिर वह आर्यसमाज कन्या पाठशाला में संस्थापक आनंद बाबू के घर काम माँगने जाती है और वह वहाँ काम करने लगती है। आनंद बाबू का उसके घर आना-जाना आरंभ हो जाता है। तभी अचानक न जाने कहाँ से उसका पति सुभाष वापस घर आ जाता है। अब बच्चे तेरह वर्ष के हो गए हैं। सुभाष मीठी-मीठी बातों में फँसाकर शन्नो से नौकरी छुड़वाकर सब-कुछ बेचकर उन्हें अपने

साथ ले जाना चाहता है। लंदन की तारीफ में वह जमीन-आसमान एक करने लगा था। लंदन के जीवन के सुहाने सपने उन्हें दिखा रहा था–'बच्चों की पढ़ाई फोकट में, मकान फोकट में, दवा फोकट में नौकरी नहीं तो सरकार पैसे देगी। वहाँ तो भिखमंगे भी कोट पैंट पहनते हैं।'[37] इसके पश्चात् वह उन्हें लंदन ले जाता है। चार-पाँच महीने में सब व्यवस्थित हो जाता है। बच्चे लंदन की रंगीनियों में लिप्त हो जाते हैं। पति और बेटे गोरी मेमों के पीछे चक्कर लगाने लगते हैं। बेटी लड़कों के साथ घूमने लगती है। यदि वह उन्हें मारना चाहती है या रोकना चाहती है तो बच्चे उसका हाथ पकड़ लेते हैं–'देख मम्मी, आज तो मार लिया, दुबारा कभी हाथ मत उठाना। यहाँ अठारह साल की लड़की बालिग होती है। कई लड़के मेरे दोस्त हैं। चाहूँ तो अभी घर छोड़ दूँ या पुलिस को बुला लूँ। रोकना चाहती हो तो पापा को रोको, जो तुम्हें घर बैठाकर खुद दिन-रात गोरियों के साथ घूमते हैं। मोनू को रोको, जो लड़कियों से यारी करता है। जब तब मेरे कपड़े पहन 'गे' पार्टीज में जाता है। मैंने कोई ऐसा वैसा काम नहीं किया है। फैशन करना कोई क्राइम नहीं है...हाँ।'[38]

शन्नो चिल्लाने लगी और जोर-जोर से रोने लगी। यह देखकर उसकी बेटी उसको और दो बातें सुनाने लगती है–'ओह शिट! ये इंडियन औरतें सच्चाई तो फेस ही नहीं कर सकतीं। न जाने किस डुडोलैंड में रहती हैं।'[39] वास्तव में पाश्चात्य सभ्यता भारतीय संस्कारों पर भारी पड़ने लगती है। बच्चे पिता की तरह ही स्वतंत्र जीवन जीने लगते हैं। फिर शन्नो का मानसिक संतुलन बिगड़ने लगता है। उसे समझ नहीं आता कि उसके लालन-पालन में क्या कमी रह गई कि वह बच्चा बेटा होमोसेक्सुअल हो गया। मोनू शांत प्रकृति का 'गे' था। वही उसके कष्टों को थोड़ा बहुत समझता था। थोड़े दिनों बाद उसे पैनिक अटैक होने लगे। मानसिक बीमारी का इलाज केवल दवाइयों से नहीं हो सकता था। इस बीच उसे आनंद बाबू और भारत बहुत याद आने लगा। फिर वह अस्पताल में रहने लगी। फिर वहीं एक अन्य पेशेंट रॉबर्ट के साथ उसकी घनिष्ठता हो जाती है। वह रॉबर्ट के साथ जीवन में आगे बढ़ जाती है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि प्रस्तुत संग्रह की कहानियों में समकालीन राजनीति, ग्लोबलाइजेशन, इकनॉमी के कारण बदली जीवन-पद्धति और उससे उत्पन्न जटिल समस्याओं को उकेरने की कोशिश की गई है। 'प्रवास में' की कहानियाँ शिल्प में सहज हैं। अधिकांश कहानियों में नेरेटर का काम स्वयं लेखिका करती है। लेखिका यात्राशील है, जिन्हें यात्रा में ऐसा सहयात्री मिलता है, जो अपने जीवन की कहानी उनसे कहता है। इस प्रकार आपकी कहानियाँ 'किस्सागोई' की शैली लिए हुए प्रतीत होती हैं। कहा जा सकता है कि आपकी कहानियाँ रोचक और संप्रेषणीय हैं, जो पाठक को अपने साथ लेकर चलती हैं। आपकी भाषा पूर्णत: पात्रानुकूल है। प्रवासी जीवन में हिंदी के साथ घुल-मिल गए अँग्रेजी शब्द भी कहानी को नई गति देते हैं। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि प्रस्तुत संग्रह में प्रवासी भारतीय मन के प्रश्नों और दुविधाओं को सामने रखने की रोचक चेष्टा की गई है। यह कहानी-संग्रह भारतीय मूल्यों पर आधारित नहीं है, किंतु इन कहानियों के भीतर रिसी हुई गहरी मानवीय संवेदनाएँ इसे अद्‌भुत बनाती हैं।

संदर्भ

1. प्रवास में, उषा राजे सक्सेना, ज्ञान गंगा, दिल्ली, अपनी बात से उद्‌धृत, पृ॰ 11
2. प्रवास में, उषा राजे सक्सेना, अपनी बात से उद्‌धृत, पृ॰ 11
3. प्रवास में, उषा राजे सक्सेना, भूमिका से उद्‌धृत, पृ॰ 8

4. प्रवास में, उषा राजे सक्सेना, प्रवास में, पृ॰ 16
5. वही, प्रवास में, पृ॰ 17
6. वही, प्रवास में, पृ॰ 17
7. वही, प्रवास में, पृ॰ 19
8. वही, प्रवास में, पृ॰ 23
9. वही, प्रवास में, पृ॰ 23
10. वही, प्रवास में, पृ॰ 23
11. वही, प्रवास में, उषा राजे सक्सेना, शुकराना, पृ॰ 31-32
12. वही, शुकराना, पृ॰ 32
13. वही, शुकराना, पृ॰ 33
14. वही, शुकराना, पृ॰ 33
15. वही, शुकराना, पृ॰ 33
16. वही, प्रवास में, उषा राजे सक्सेना, यात्रा में, पृ॰ 37
17. वही, यात्रा में, पृ॰ 47
18. वही, यात्रा में, पृ॰ 46
19. वही, यात्रा में, पृ॰ 46
20. वही, यात्रा में, पृ॰ 47
21. वही, यात्रा में, पृ॰ 49
22. प्रवास में, उषा राजे सक्सेना, अभिशप्त, पृ॰ 65
23. वही, अभिशप्त, पृ॰ 66
24. वही, अभिशप्त, पृ॰ 66
25. वही, अभिशप्त, पृ॰ 68
26. वही, अभिशप्त, पृ॰ 57
27. वही, अभिशप्त, पृ॰ 76
28. वही, अभिशप्त, पृ॰ 76
29. प्रवास में, उषा राजे सक्सेना, दायरे, पृ॰ 80
30. वही, दायरे, पृ॰ 82
31. वही, दायरे, पृ॰ 86
32. प्रवास में, उषा राजे सक्सेना, वह कौन थी, पृ॰ 96
33. वही, वह कौन थी, पृ॰ 96
34. प्रवास में, उषा राजे सक्सेना, सफर में, पृ॰ 99
35. वही, सफर में, पृ॰ 100
36. प्रवास में, उषा राजे सक्सेना, शन्नो, पृ॰ 118
37. वही, शन्नो, पृ॰ 121
38. वही, शन्नो, पृ॰ 123
39. वही, शन्नो, पृ॰ 124

मो॰ 9410005843

संतसाहित्य के प्रतिनिधि कवि कबीर

सुशीलकुमार (शोध छात्र)
हिंदी विभाग
म०गाँ०का०वि०, वाराणसी (उ०प्र०)

मध्यकाल में सांस्कृतिक समन्वय का कार्य स्वामी रामानंद ने किया था। उन्होंने भक्ति का मार्ग सबके लिए समान रूप से खोल दिया था। उनकी दृष्टि में हिंदू-मुसलमान, ब्राह्मण-शूद्र, यहाँ तक कि स्त्रियाँ भी समान थीं। यही कारण था कि उन्होंने विभिन्न जातियों के लोगों को दीक्षित किया, परंतु समाज में व्याप्त कट्टरवादी संस्कारों के कारण उनके सामने कठिनाइयाँ भी थीं। इसका उत्तरदायित्व कबीर जैसे निडर और स्पष्ट वक्ता ने सँभाला। 'सम्मिलन की भूमि का मूल आधार हिंदुओं के वेदांत और मुसलमानों के सूफीमत ने प्रस्तुत किया। सूफीमत भी वेदांत का ही रूप है, जिसमें उसने गहरे रंग का भावुक बाना पहना दिया था और इस्लाम की भावना पर इस प्रकार व्याप्त हो गया कि उसमें अजनबीपन जरा भी न रहा और उसे वहाँ भी मूल तत्त्व का रूप प्राप्त हो गया।...सूफीमत और उपासनापरक वेदांत, दोनों ने मिलकर कबीर के मुख से घोषित किया कि परमात्मा अमूर्त है। वह बाहरी कर्मकांड के द्वारा अप्राप्य है, उसकी केवल प्रेमानुभूति हो सकती है। कर्मकांड तो वस्तुत: परमात्मा को हमारी आँखों से छिपाने का काम करता है। सर्वत्र उसकी सत्ता व्याप्त रही है। मनुष्य का हृदय ही उसका मंदिर है अतएव उसे वहीं ढूढ़ना चाहिए।'[1]

पिंजर प्रेम प्रकासिया, जाग्या जोग अनंत।
संसा खूटा सुख गया, मिल्या पियारा कंत।
आया था संसार में, देषण कौ बहु रूप।
कहै कबीर संत ही, पड़ि गया नजरि अनूप।
अंक भरे भेंटिया, मन मैं नाँही धीर।
कहै कबीर ते क्यूँ मिलैं, जब लग दोई सरीर।[2]

संतों ने मनुष्य में आवश्यक सुधार करने का जो संदेश दिया, उससे सामान्य जनता के जड़ीभूत जीवन में एक नयी चेतना जाग्रत हुयी। संतों के उपदेशों से समाज में जो एक नई जागृति पैदा हुयी उसके संबंध में परशुराम चतुर्वेदी ने लिखा है कि 'उनकी एकेश्वरवादी भावना, सामाजिक भेदभाव विहीनता तथा धार्मिक समानता के वैशिष्ठ ने यहाँ की दलित, परिगणित एवं पिछड़ी हुई जातियों में एक नवीन आशा का संचार कर दिया, जिससे उनमें नवजागरण और स्वालंबन का भाव उठने लगा और उसकी प्रतिक्रिया में यहाँ के उच्चवर्गीय लोगों को भी अपने नियंत्रण के नियम बहुत कुछ ढीले करने पड़ गए। फलत: भारतीय समाज की सामूहिक मनोवृत्ति का झुकाव क्रमश: लोकोन्मुख होता गया।'[3] चूँकि संतों के समय धार्मिक जीवन को ही अधिक

महत्त्व दिया जाता था और उनके मुख्यत: व्यक्तिगत होने के कारण, उस समय वास्तविक सामाजिकता का भी अभाव था। उस समय प्रत्येक व्यक्ति इसी धुन में था कि किस प्रकार परमतत्त्व के साथ संपर्क स्थापित करके अपना उद्धार करे और इस संसार में बार-बार आने की आवश्यकता न पड़े। ऐसी सोच के वातावरण में सामाजिक श्रेय का प्रश्न ही नहीं उठता। ऐसी स्थिति में आदर्श समाज की कल्पना कैसे की जा सकती थी। सांसारिक मोह-माया के जाल से परे संतों के लिए समाज की इस दुर्व्यवस्था की ओर ध्यान देना और दु:खी जनों के कष्ट मिटाने के लिए, उनकी दशा सुधारने के लिए ध्यान देना स्वाभाविक था। अत: संतों ने अपने जीवन का यह लक्ष्य बना रखा था कि अपने अनुभवों से दूसरों को लाभान्वित करने के लिए उन्हें भी आमंत्रित किया जाय। संतों की यह सोच बिना किसी स्वार्थ भावना के उत्पन्न हुई थी। संतों के अनुसार किसी व्यक्ति का अपकार नहीं करना चाहिए। कबीरदास ने स्पष्ट कहा है कि–

करता था तो क्यूँ रह्या, अब करि क्यूँ पछताइ।
बोया पेड़ बबूल का, अंब कहाँ तै खाइ।।
मनह मनोरथ छाँड़ि दे, तेरा किया न होई।
पाँणी मैं घीव नीकसै, तो रूखा खाइ न कोई।[4]

पंच विकारों से घिरा हुआ मनुष्य कभी सद्-विचार नहीं कर पाता, क्योंकि ये पाँचों शत्रु उसे अच्छे कर्मों की ओर से विमुख रखते हैं। ऐसे में मनुष्य स्वार्थी बन जाता है और समाज के लिए कुछ भी नहीं करना चाहता। उसकी यह विकृत प्रवृत्ति समाज में तनाव और संघर्ष की स्थिति पैदा करती है। अपनी मनोकामनाओं की पूर्ति के लिए व्यक्ति अनेक प्रकार के अनैतिक कर्मों में लीन हो जाता है, जिससे औरों को कष्ट होता है। इससे सामाजिक वैमनस्य बढ़ता है और समाज में एकता नहीं हो पाती। चूँकि मध्यकालीन समाज में ये प्रवृत्तियाँ मानव के चरित्र को गिरा रही थीं। लोगों की मानसिक शुद्धि करना बहुत जरूरी था, परंतु मानसिक शुद्धीकरण के लिए कोई कारगर उपाय नहीं था, ऐसे में संतों ने अपनी वाणियों के माध्यम से उपदेश, निर्देश देकर सत् मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी। कबीर ने कहा है–

परनारी राता फिरै, चोरी बिढ़ता खाँहि।
दिवस चारि सरसा रहैं, अंति समूला जाँहि।
पर नारी पर सुंदरी, बिरला बंचै कोइ।
खाँताँ मीठी खाँड़ सी, अंति कालि विष होइ।[5]

सभी संतों का दृष्टिकोण मानवतावादी था, इसलिए मानव के भौतिक और आध्यात्मिक जीवन को सुखी बनाने के लिए उन लोगों ने सर्वदा जनता का ध्यान अच्छे कर्मों की ओर आकृष्ट किया है तथा परमार्थिक सत्ता की एकता के लिए केवल मानव में ही नहीं, बल्कि संपूर्ण जीव-मात्र में अभेद-भावना की कामना की है। संतों की वाणियों में यह स्वर निरंतर गूँजता रहता है कि सद्‌भावना, सदाचार और सहृदयता से केवल व्यक्ति ही नहीं, बल्कि पूरा समाज लाभान्वित होता है। प्रेम, परोपकार, त्याग, अहिंसा, क्षमा, सहनशीलता एवं सत्य के अनुपालन से समाज का कल्याण और उत्थान संभव है। अत: व्यक्ति के सुधार से समष्टि का सुधार स्वयं हो जाता है।

योगिराज अरविंद ने लिखा है कि 'आत्मा की एकता के आधार पर ही मानवता अपने वास्तविक एकता के आदर्श को पूरा कर सकती है। विश्व प्रकृति इसी ओर मानवता को ले जा

रही है। सामुदायिक प्रगति के साथ ही हम व्यक्तिगत स्वतंत्रता अक्षुण्ण रखते हुए आगे बढ़ें, यही प्रकृति की इच्छा है। मानवधर्म के इस सत्-स्वरूप का, जो आत्मा और ईश्वर के उपादानों से निर्मित है, मानव-जीवन में प्रवेश हो रहा है। मानवता इसी ओर विचारों की एकता, धर्मों के सामंजस्य और साधारण समृद्धि में समानता से बढ़ रही है। यह मानव-मन की आंतरिक चेतना की अभिव्यक्ति है, जो आत्मा का आत्मा से मेल होने के कारण प्रारंभ हुई है। केवल वाह्य नहीं, अंतर एवं प्रकृति की विचित्रताओं में भी स्नेहमय सामंजस्य और एकता की अभिव्यक्ति मानव-धर्म की अभिव्यक्ति होगी।'[6] इस प्रकार हम देखते हैं कि संतों ने मानवता की रक्षा के लिए, सामाजिक एकता के लिए और धार्मिक सद्भाव के लिए जो संदेश दिए थे, उनका पालन करने से व्यक्ति की आत्मा का शुद्धीकरण, आत्मा से आत्मा का मेल, सामाजिक सामंजस्य और एकता स्थापित करना संभव है। संतों ने सबको समदृष्टि से देखने की एक प्रेरणा समाज को प्रदान की थी। इसीलिए कबीरदास ने कहा है कि इस नश्वर संसार और शरीर के प्रति माया-मोह छोड़ देना चाहिए-

उपजै निपजै निपजि समाई, नैनह देखत इहु जगु जाई।
लाजन मरहु कहहु घर मेरा, अंत की बार नहीं कछु तेरा।
अनिक जतन करि काइआ पाली, मरती बार अगनि संगि जाली।
चोआ चंदनु मरदन अंगा, सो तनु जलै काठ के गंगा।
कहु कबीर सुनहु रे गुनीआ, बिनसैगो रूप देखे सब दुनिया।'[7]

इस प्रकार मानसिक शुचिता के फलस्वरूप जब व्यक्ति की आत्मा और मन साफ हो जाएँगें, तब उनमें किसी प्रकार का भेदभाव नहीं दिखाई देगा। वे समाज में समानता और एकता की व्यवस्था स्थापित करने में सहयोग करेंगे। संतों की इस भावना और उपदेश के कारण तत्कालीन समाज में जो क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ था, वह मानव-जाति और मानवता के लिए शुभ संकेत था।

आज संपूर्ण देश अराजकता, हिंसा, भ्रष्टाचार, आर्थिक घोटाला, आतंकवाद, नक्सलवाद, जातिवाद की समस्याओं से जूझ रहा है। इसकी तह तक जाने पर यही तथ्य सामने आता है कि आज हमारे भीतर मानसिक शुचिता, सदाचार, परोपकार, परदुःखकातरता और मानवता का अभाव हो गया है। मध्यकालीन संतों के समय इस प्रकार की समस्याएँ नहीं थी, बल्कि उन समस्याओं का रूप दूसरा था, जिनका समाधान करने के लिए संतों ने मानसिक शुचिता आदि का उपदेश दिया था। यदि आज उन संतों के उपदेशों का पालन किया जाय, तो समाज में फैली कटुता, अलगाववाद, जातिवाद, आतंकवाद, नक्सलवाद आदि जैसी समस्याएँ नहीं रहेंगी। मानसिक और चारित्रिक शुचिता आ जाने पर समाज और देश में अमन-चैन रहेगा। यदि इसे चरितार्थ करना है तो समूह और संघ में एकता और संगठन बनाना आवश्यक है, क्योंकि विराट और व्यक्ति दोनों एक ही परात्पर पुरुष के आविर्भाव के तत्त्व हैं। विराट के परे जो परात्पर पुरुषोत्तम की सत्ता है, वही व्यक्ति और संघ के रूप में अभिव्यक्त होती है।

वर्ण-व्यवस्था के कारण हिंदुओं में जो ऊँच-नीच, छूत-अछूत की भावना समाज में व्याप्त थी, उसका सामाजिक एकता और संगठन पर बहुत बुरा असर पड़ रहा था। ब्राह्मण शूद्रों को अस्पृश्य समझते थे और उनका स्पर्श भी पाप समझते थे। दूसरी ओर हिंदू-मुसलमान एक-दूसरे से

खान-पान आदि में दूरी बनाए हुए थे। इसके कारण समाज में अव्यवस्था फैली हुई थी। संतों ने इस भेद-भाव को दूर करने का पूरा प्रयास किया तथा लोगों को समझाया कि सभी लोग एक ही परमात्मा की संतान हैं। कुल और जाति-विशेष में जन्म लेने के कारण कोई ब्राह्मण, शूद्र और मुसलमान नहीं हो सकता। यह भेद तो मनुष्य की मानसिक अशुचिता की उपज है–

हिंदू तुरक कहाँ से आए किन एह राह चलाई।
दिल महि सोच विचार कवादे, भिस्त दोजक कित पाई।[8]
ऊँचे कुल का जनमियाँ, जो करनीं ऊँच न होय।
सोन कलस सुरा भरया, साधु निंदा सोई।[9]
पड़ोसी सू रूसजां, तिल-तल सुख की हाँणि।
पंडित भए सरावगी, पाँणी पीवें छाँणि।[10]

सामाजिक समरसता और सद्भाव स्थापित करने के लिए संतों ने अनेक उपदेश दिए थे। कबीर ने कहा है कि 'जाति-पाँति पूछे नहिं कोई, हरि को भजे सो हरि का होइ।' कबीर की यह उक्ति साम्यवाद की ओर संकेत करती है कि इस संसार में जाति-पाँति के आधार पर श्रेष्ठ और अधम कहना सर्वथा भ्रम है। सभी लोग उसी परमात्मा की संतान हैं और जो सच्चे मन से उसका भजन करता है वह उसी का हो जाता है, वहाँ जाति-पाँति के भेद नहीं रह जाते। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं–'समन्वय से तात्पर्य दो या उससे अधिक बातों के बीच एक ऐसी समानता का प्रतिपादन करना होता है, जिसके कारण उनमें पारस्परिक विरोध का अभाव सूचित होने लगे और वास्तविक एकता भी सिद्ध की जा सके।[11]हिंदू और मुलसमान, ब्राह्मण और शूद्र सभी उसी परमात्मा द्वारा बनाए गए प्राणी हैं, फिर दोनों में भेद करना उचित नहीं है। किसी का जन्म उच्च कुल में होने मात्र से वह श्रेष्ठ नहीं बन जाता, बल्कि उसे महान या श्रेष्ठ बनाने के पीछे उसके कार्य और आचार-विचार है। किसी गरीब या पड़ोसी को सताना नहीं चाहिए, ऐसा करनेवालों को सुख की अपेक्षा हानि मिलती है। कबीरदास का यह दृढ़ विश्वास था कि जब हम अपने और दूसरों के बीच भेदभाव नहीं रखेंगे, तब हमारा और दूसरों का संबंध अच्छा बनेगा। इस प्रकार संतों ने हिंदुओं और मुसलमानों के बीच पड़ी हुई खाई को पाटने का सराहनीय कार्य किया है। हिंदुओं में वर्ण-व्यवस्था, जाति-पाँति, ऊँच-नीच, छूत-अछूत के आधार पर जो विषमता समाज में फैली हुई थी, उसका विरोध और खंडन किया था। यदि आधुनिक भारत में सतों के संदेश का पालन किया जाय तो सामाजिक समन्वय स्थापित किया जा सकता है। चूँकि सतों ने विशृंखलित समाज को संगठित करने का प्रयास किया था और काफी हद तक उनको सफलता भी मिली थी, इसलिए समाज को संगठित करने और उसमें सामंजस्य बनाए रखने के लिए उनके उपदेश आज भी प्रासंगिक है।

कबीरदास ने स्पष्ट कहा है कि इस जगत में जन्म लेने और मरने का कोई महत्त्व नहीं है, जब तक मनुष्य सत्य मार्ग पर चलकर उस सत्य को जान नहीं लेता–

कबीर इस संसार में, घणै मनिश मति हींण।
राम नाम जाँणौ नहीं, आये टाणी दीन।
कहा कियौ हम आइ करि, कहाँ करेंगे जाइ।
हत के भये नउत के, चले मूल गँवाई।[12]

गुरुनानक ने कहा कि 'आई पंथी सगल जमाति मनि जीते जगु जीत। आदि अनीतु अनादि अनाहति जुगु-जुगु एको बेसु।'[13] अर्थात् तुम सबको अपनी ही जमात का समझो, मानो सारे मनुष्य मेरे तेरे 'आई पंथ' के ही हैं और यह मान लो कि यदि मन को जीत लिया तो सारे संसार को जीत लिया। कबीरदास ने किसी एक धार्मिक सिद्धांत का अनुसरण नहीं किया है, उनके मतानुसार धर्म का मूल तत्त्व किसी एक की व्यक्तिगत चिंता और उसके विश्वास के अनुरूप स्वरूप ग्रहण करता है और इसी के बल पर अपने विशुद्ध हृदय से उसमें प्रेम और संतोष की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार हृदय के विशुद्ध होने पर सामंजस्य स्थापित करना आसान हो जाता है। कबीर ने इस आधार पर हिंदुओं के विभिन्न संप्रदायों और पंथों तथा हिंदुओं और मुलसमानों को लक्ष्य करके कहा कि परमात्मा एक है, और उसी को प्राप्त करने का मार्ग सभी धर्म प्रशस्त करते हैं, परंतु भ्रम के कारण मनुष्य उसमें भेद-भाव करके वैमनस्य स्थापित करता है। अतः सभी को बाह्याडंबर, अंधविश्वास, पत्थर-पूजा, विभिन्न वेशभूषा त्यागकर समभाव से उस परमात्मा को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए–

पाँहण केरा पूतला, करि पूजै करतार।
इही भरोसै जे रहे, ते बूड़े काली धार।
हम भी पाहन पूजते, होते रन के रोझ।
सतगुर की कृपा भई, डार्‌या सिर थैं बोझ।
कबीर दुनियाँ देहुरै, सीस नवाँवण जाइ।
हिरदा भीतर हरि बसै, तूँ ताही सौंल्यौ लाइ।[14]

इस प्रकार कबीर ने हिंदुओं और मुसलमानों को समझाते हुए कहा है कि 'सत्तरि काबा घर ही भीतर जे करि जानै कोइ', 'हज्ज हमारी गोमती नीर, जहाँ बसहिं पीतंबर पीर', 'जो सबमें एकु खुदा कहत हौ तौ क्यों मुरगी मारै', 'हिंदू तुरक दुइ महि एके कहै कबीर पुकारी', 'हिंदू तुरका साहिब एक', 'जप तप दीखै थोथरा। अर्थात् परमात्मा को प्राप्त करने के जितने भी उपक्रम तुम कर रहे हो, सब बेकार हैं।

इस प्रकार संतों ने अपने उपदेशों के माध्यम से सभी धर्मों के लोगों में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने इसी संदर्भ में लिखा है कि 'कबीर साहब ने यदि स्वातंत्र्य एवं निर्भीकता को अधिक प्रधानता दी, तो गुरुनानक ने समन्वय तथा एकता पर विशेष बल दिया और दादूदयाल ने उसी प्रकार सद्भाव और सेवा को श्रेष्ठ माना, परंतु इन बातों का यह अर्थ नहीं कि इनमें से किसी की मनोवृत्ति एकांगी थी। साधनाएँ सभी की पूर्णांक थीं, विशेषताओं का कारण केवल अवस्था-भेद हो सकता है।'[15]

सदियों बाद आज भारत जहाँ पहुँचा है, वहाँ सामाजिक सद्भाव की चर्चा आवश्यक जान पड़ती है। इस वैज्ञानिक युग में जहाँ आशातीत प्रगति एवं परिवर्तन हुआ है, वहीं समाज में विभिन्न कुरीतियों ने जड़ जमा ली हैं। संतों द्वारा निर्देशित मार्ग से आज का मानव भटक गया है। इसलिए समाज में शांति और सुख का अभाव स्पष्ट दिखाई दे रहा है। धार्मिक अंधविश्वासों, बाह्याडंबरों, छल, भ्रष्टाचार, चोरी-ठगी, आर्थिक घोटालों से समाज बुरी तरह पीड़ित है। वर्तमान समाज में नैतिक मूल्यों का क्षरण जिस तीव्रता से हो रहा है तथा मानवीय मूल्यों का जो विघटन समाज में दिखाई दे रहा है, उसके विषाक्त प्रभाव को कम करने के लिए कबीर की अमृतवाणी की

आवश्यकता बराबर अनुभव की जा रही है। ऐसी स्थिति में संतसाहित्य के प्रतिनिधि कवि कबीर की उक्तियाँ ही एक समन्वयकारी समाज की स्थापना का विश्वास दिलाती हैं।

संदर्भ

1. हिंदी काव्य में निर्गुण संप्रदाय, डॉ॰ बड़थ्वाल, पृ॰ 28
2. कबीर ग्रंथावली, परचा कौ अंग, पृ॰ 24
3. भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक रेखाएँ, परशुराम चतुर्वेदी, पृ॰ 34
4. कबीर ग्रंथावली, मन कौ अंग, पृ॰ 24
5. वही, कामी नर कौ अंग, 2,4
6. कल्याण, मानवता अंक, श्री अरविंद प्रतिपादित मानवधर्म, श्री वेंकटरमण, पृ॰ 347
7. संत कबीर, सं॰ रामकुमार वर्मा, राम गउड़ी, 11
8. कबीर ग्रंथावली, पद 219
9. कबीर साहित्य की परख, परशुराम चतुर्वेदी, पृ॰ 103
10. वही, चाँण काकौ अंग, 12
11. कबीर साहित्य की परख, परशुराम चतुर्वेदी, पृ॰ 34
12. वही, चितावणी कौ अंग, 24-25
13. श्री गुरु ग्रंथ साहिब, महला 2, पृ॰ 469
14. कबीर ग्रंथावली, भ्रम विधौंसण कौ अंग, 1, 4, 11
15. उत्तरी भारत की संत-परंपरा, परशुराम चतुर्वेदी, पृ॰ 450

स्त्री का युगीन परिदृश्य व उसका बदलता दृष्टिकोण

सुरेंद्रसिंह, पीएच॰डी॰ शोधार्थी
हिंदी विभाग, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला

वैदिककाल में स्त्री को बहुत ही सम्मानीय स्थान प्राप्त था। उसकी यशोगाथा धर्मशास्त्रों में वर्णित है 'गृहिणी से घर है' तथा संसार में भार्या के समान कोई बंधु, आश्रय या सहायक नहीं है, ऐसा कहा गया है। वैदिककाल में मान्यता थी कि 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता।' जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है, वहाँ देवता रमण करते हैं।

'वैदिककाल में स्वतंत्रता नर-नारी-संबंध अत्यंत मधुर थे तथा नारियों को उच्चशिक्षा प्राप्त करने की पूर्ण स्वतंत्रता थी। इस काल में विवाह-प्रथा प्रचलित हो चुकी थी। समाज पितृसत्तात्मक होते हुए भी नारी के प्रति उदार था। मातृपद अत्यंत गौरवमय समझा जाता था। पत्नी के रूप में नारी पति की अधीश्वरी मानी गई है। इस काल में नारियाँ पुरुषों के साथ रणभूमि में भी जाती थीं। दांपत्य संबधों का स्वर्णिम रूप इस काल में देखने को मिलता है, जिससे स्पष्ट होता है कि नारी की सामाजिक स्थिति अत्यंत उच्च थी। वह सम्मानीय एवं पूजा-योग्य मानी जाती थी।'[1]

वैदिककाल में स्त्री का स्थान सर्वोत्तम माना जाता था। जैसे पितृसत्ता होते हुए भी समाज में नारी को बराबर का दर्जा प्राप्त था। लेकिन उत्तर वैदिककाल में नारी की स्थिति में परिवर्तन परिलक्षित होने लगे।

'उसका समाज में आदर कम होने लगा। स्वतंत्रता एवं शिक्षा के क्षेत्र में कमी आई। इतना ही नहीं, कन्या का जन्म होते ही उसे भार स्वरूप समझा जाने लगा। इस काल में कन्या जन्म शूद्र से भी नीचा तथा कृपण माना जाता था।'[2]

'इस काल में बहुविवाह की प्रथा का प्रचलन आरंभ हुआ, जिसमें दासप्रथा ने स्थान लिया। युद्धों में स्त्रियों का हरण कर उसे दासी बनाया जाता था। इस युग के परिदृश्य को देखा जाए तो पुरुष विलासी और निहायत ही स्वार्थी प्रवृत्ति का हो गया था, जिससे स्त्री-पुरुष के नैतिक नियम निम्नतर होते चले गए, उनको निभा पाना कठिन हो गया।'[3]

इस काल को स्त्रियों के पतन का काल कहा गया है, क्योंकि स्त्रियों के ह्रास की प्रथम कड़ी की शुरुआत यहीं से शुरू होती है। वहीं रामायणकाल में स्त्रियों की यदि सर्वस्तरीय महत्ता थी, तो कहीं पर समाज का पितृसत्तात्मक रवैया भी दर्शाया गया है।

वाल्मीकि रामायण में स्त्री की सर्वस्तरीय महत्ता थी। 'उत्तररामचरित' में महाकवि भवभूति ने अपनी वाणी से जनक के द्वारा ब्रह्मविद् कर्मयोगी से वनवासिनी स्वदुहिता सीता के प्रति ये वाक्य कहलाए हैं–'तुम मेरी कन्या हो या शिष्य, यह ध्यान देने की बात नहीं, तुम्हारा आचरण अपनी पूर्ण परिणति को पहुँचा हुआ है, जिससे मुझमें तुम्हारे प्रति विशेष श्रद्धा है। स्त्रीरूपिणी अथवा

 ISSN 0975-735X

अवस्था में कम होने पर भी तू जगद्बंघ है, क्योंकि गुणियों का आदर उनके गुणों से होता है न कि जाति (लिंग) या अवस्था-भेद से।'[4] समाज में स्त्रियों के यथार्थ रूप को दर्शाया गया है। रामायण युग में, कन्याएँ जो विवाह योग्य हो जाती थी, माता-पिता के लिए चिंता का विषय बन जाती थीं–'कन्या पितृत्व दुख हि सर्वेषा मानकाक्षिणाम।'[5]

इसमें पुत्री के विवाह पर धन देने की प्रथा मिलती है। कन्यादान पिता के लिए पूज्य काम था, जिसमें पिता कन्यादान को अपना सौभाग्य समझता था। इस काल में सीता, कौशल्या, तारा ये शिक्षित स्त्रियाँ थीं, जो कर्मकांड और शास्त्रज्ञान को प्राप्त करने में सक्षम थीं। गृहस्थी की व्यवस्था पर पत्नियों का अधिकार था।

इसी के समान महाभारत में भी पुत्रियों को अनेक प्रकार की शिक्षा-दीक्षा प्राप्त थी। इसमें स्त्री का प्रधान गुण उसका चरित्र और व्यवहार माना जाता था। ये पुरुषों की वास्तविक संगिनी थीं। मत्स्यगंधा (सत्यवति) कुंती आदि स्त्रियों को विवाह से पूर्व संतान उत्पन्न करने का उल्लेख मिलता है, तो दूसरी और अहल्या, सावित्री जैसी पतिव्रता स्त्रियों का भी उल्लेख मिलता है।

'इस प्रकार रामायण, महाभारत में स्त्रियों का वर्णन विदूषियों के रूप में कर्म, तप, त्याग, नम्रता, पतिसेवापरायण आदि वशीभूत गृहस्वामिनी के रूप में अधिक किया गया है। इस युग में पतिसेवा और आज्ञापालन ही स्त्रियों का प्रमुख गुण हो गया। महाभारत में पांडवों द्वारा द्रौपदी को जुए के दाँव पर लगा देना और राम का सीता को वनवास देना व एक धोबी द्वारा संदेह व्यक्त करने पर अग्निपरीक्षा करवाना, पत्नी पर पति के मनमाने अधिकारों की पुष्टि करता है।'[6]

'महाभारत में स्त्रियों के सम्मान में और गिरावट दिखाई पड़ती है। इस काल में स्त्रीविषयक हीन दुर्विचारों का प्रादुर्भाव होने लगा था। संस्कृत साहित्य से ज्ञात होता है कि उस काल में स्त्री केवल विलासिता का साधन-मात्र बन गई थी, उसकी स्थिति अत्यंत शोचनीय हो गई थी।'[7]

मध्यकाल में स्त्री की स्थिति अधिक निकृष्ट होती गई। भारत पर मुसलमानों के आक्रमण के साथ ही नारी की रक्षा के दृष्टिकोण से उसके ऊपर कई प्रतिबंध लगाए गए। पर्दा-पद्धति, बाल-विवाह, सती-प्रथा जैसी गलत परंपराएँ इसी युग में विकसित हुईं। नारी शिक्षा से पूरी तरह से वंचित हो गई। 'मध्यकाल के साहित्य को भी यदि देखा जाए तो यह दिखाई देता है कि कबीर, तुलसी जैसे कवियों ने नारी को मोहमाया तथा साधना में बाधक समझकर उसकी उपेक्षा की है।'[8] वहीं भक्तिकाल में भी नारी की दशा अच्छी नहीं थी। संतसाहित्य के महान संत कबीर भी नारी को माया के रूप में मानते थे और उसे साधना में बाधा डालने वाली कहते थे–

नारी की झाईं परत, अंधा होत भुजंग।
कबिरा तिन की कौन गति, नित नारी के संग।'[9]

इसी प्रकार भक्तिकाल की सगुण काव्यधारा के अन्य प्रखर कवि तुलसीदास जी व सूरदास जी भी नारी को नागिन, माया व साधना में रुकावट डालने वाली कहते थे–

ढोल, गँवार, शूद्र, पशु, नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी।[10]

–तुलसीदास

नारी नागिन एक सुभाई, नागिन के कारे विष होई।
नारी चिंतन नर रहे सोइ, नारी सो नर प्रीति लगावै।
वै नारी तिहि भनाहि न लावै।

नारी संग प्रीति जो करै, नारी ताहि तुरत परि हरै।[11]

–सूरदास

मध्ययुगीन नारी की स्थिति अत्यंत दयनीय थी व उसे साधना में बाधा डालनेवाली, मायारूपी व नागिन इत्यादि नामों से जाना जाता रहा है।

ब्रिटिश शासन के दौरान भारत की संस्कृति एवं धर्म का अँग्रेजी के साथ निरंतर संपर्क रहा है। कभी-कभी इन दो भिन्न धर्म एवं संस्कृति में संघर्ष की स्थितियाँ भी उत्पन्न हुई हैं। अँग्रेजों ने अपने धर्म एवं संस्कृति का प्रचार यहाँ आरंभ कर दिया था। उनके इसी प्रयास के कारण यहाँ के धर्म एवं संस्कृति पर कई आघात हुए, लेकिन भारतीय जनजीवन में कुछ सुधार भी हुए, जिससे स्त्रियों के जीवन में कई दृश्य-अदृश्य सुधार हुए। शिक्षा, रोजगार, सामाजिक अधिकार आदि को लेकर स्त्री-पुरुषों के बीच असमानताओं में कमी आई। 'महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण है, औद्योगिकरण की प्रकिया, जिसके परिणामस्वरूप देश की आर्थिक स्थिति में भी परिवर्तन आया। जिस कारण स्त्री और पुरुष के लिए रोजगार के नए मार्ग खुले। स्त्री अब घर छोड़कर बाहर काम करने के लिए जाने लगी तो बाहर के व्यापक विश्व के साथ उसके निरंतर संबंध बनने लगे। काम की जगह उसे विभिन्न अनुभव आने लगे। जिस कारण स्त्री स्वतंत्रा रूप से विचरण करने लगी और विभिन्न क्षेत्रों जैसे शैक्षिक क्षेत्र व सामाजिक आंदोलनों में भाग लेने लगी और इसी काल में सती-प्रथा, बाल-विवाह-प्रथा को सामाजिक आंदोलनों के अथक् प्रयासों से समाप्त किया गया।'[12]

ब्रिटिश शासन के तुरंत पश्चात् भारतीय सविधान का निर्माण हुआ और 'स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद नारी-मुक्ति से जुड़े कई तरह के सवाल उठने लगे। पितृसत्तात्मक परिवार में नारी के उत्तराधिकार का प्रश्न भी उठाया गया। परिवार की संरचना में नारी की भूमिका का महत्त्व, विवाह-संस्था से संबंधित रूढ़ियों के खिलाफ स्वर और पुराने संस्कारों की जकड़न से बाहर आने की बेचैनी साफ-साफ महसूस की जाने लगी। विभिन्न प्रकार के अंधविश्वासों और नैतिकता के अलग-अलग मानदंडों का विरोध भी स्त्रियों ने शुरू किया।'[13]

संविधान बनने के पश्चात् भारतीय सरकार ने स्त्रियों को समाज में समानता व उनकी वैध भूमिका निश्चित करने के लिए अनेक कार्यक्रम, पंचवर्षीय योजनाएँ व अनेक प्रकार की सेवाएँ उपलब्ध करवाईं। 'पंचवर्षीय योजनाओं में महिलाओं के हितों (1952-75) पर यदि हम गौर करें तो मोटे तौर पर तीन क्षेत्रों की बात की शिक्षा, स्वास्थ्य और महिला-कल्याण। योजनाओं में महिलाओं के लिए तय किए गए विभिन्न स्वास्थय कार्यक्रमों और गतिविधियों का केंद्र मुख्यत: कल्याणकारी सेवाएँ और शिक्षा, स्वास्थ्य, मातृत्व तथा बाल-कल्याण, परिवार-नियोजन, पोषण व हस्तकला प्रशिक्षण के अवसर रहे हैं।'[14]

समकालीन दौर में यदि हम स्त्रियों का दृष्टिकोण देखें तो उत्तर-आधुनिकता का स्पष्ट प्रभाव स्त्रियों पर दिखलाई पड़ता है। उत्तर-आधुनिकता के सहायक तत्त्व उदारीकरण, निजीकरण और भूमंडलीकरण ने समाज के साथ स्त्रियों पर भी बहुत प्रभाव डाला। भूमंडलीकरण (1991) के आगमन से देश की आर्थिक नीतियों में बदलाव हुए, जिससे कि बहुराष्ट्रीय कंपनियों का उदय, बाजार का निर्माण हुआ। जिस कारण उत्पादन में वृद्धि करने के लिए मजदूरों की आवश्यकता महसूस होने लगी और जिसमें पुरुषों के साथ स्त्रियों ने भी भाग लिया। मजदूरी पेशे

 ISSN 0975-735X

में आने के उपरांत स्त्रियों ने स्वयं को आर्थिक तौर पर सशक्त किया व समाज में अपनी अलग पहचान बनाई। भूमंडलीकरण और इसके नित नए उपकरण, जैसे मीडिया इलैक्ट्रानिक, मुद्रण एवं इंटरनेट व टेली-कम्युनिकेशन के जाल ने स्त्रियों को नई छवि दिलाने में महत्त्वपूर्ण योग किया और सुदूर गाँवों की महिलाओं एवं बालाओं को नई दृष्टि एवं समझ दी। इन परिवर्तनों ने भारतीय नारी की पूर्व स्थापित तस्वीरों को इस प्रकार बदला है–

1. आज भारतीय महिलाएँ अपने जीवनसाथी के चयन में अपनी राय ही नहीं देतीं बल्कि स्वयं उनका चयन भी कर रही हैं।
2. परिवार के आकार का निर्धारण एवं स्थिति का निर्णय स्वयं करने में संकोच नहीं करतीं।
3. समाजिक जिम्मेवारियों का चयन एवं दवाबों से इनकार कर रही हैं।
4. पूर्वस्थापित मूल्यों के निर्वहन के संदर्भ में चयन तथा त्याग का निर्णय साहस से ले रही हैं।
5. परंपरागत धार्मिक एवं रूढ़िवादी मूल्यों के स्वीकार्य एवं त्याग में साहस और उदारता बरत रही हैं।
6. वैयक्तिकता एवं निजत्व के प्रभाव में स्वीकार, त्याग निर्णय में शीघ्रता करना इनकी विशेषता हो रही है।'[15]

हम यदि उत्तर-आधुनिकता के सकारात्मक परिवर्तनों पर नजर रखें तो नारी की उन्नति एवं तरक्की साथ-साथ कुछ नकारात्मक प्रभाव भी भूमंडलीकरण ने भारतीय महिलाओं पर डाला है। संयुक्त परिवार तेजी से टूटने लगे है। विवाहेतर संबंधों की नई लहर के मध्य एवं उच्चवर्ग की महिलाओं को स्थापित भारतीय मर्यादाओं से डिगा दिया है। शीघ्र ही अपनी मर्जी से विवाह तथा उतनी ही शीघ्रता से तलाक हो रहा है। भूमंडलीकरण ने जहाँ भारतीय महिलाओं को आत्मनिर्भरता और स्वतंत्र स्वायत्ता की खुशियों से लवरेज किया है, वहीं स्वच्छदंता के प्रदूषण ने इन्हें तनाव एवं एकाकीपन का अभिशाप भी दिया है। इसने दोहरे बोझ (घर एवं व्यवसाय के) से भारतीय महिलाओं को दबाया है। व्यक्तिगत फिजूलखर्ची और फैशनपरस्ती में दिगभ्रमित, दिवास्वपन में डूबी महिलाओं के संदर्भ में 'सच्चे विकास' का अर्थ कहीं खोता जा रहा है। बाजारवाद और उदारीकरण की नीतियों ने महिलाओं को असुरक्षा के दलदल में ढकेल दिया है। बलात्कार और हत्या जैसी समाजिक घटनाएँ तथा देहव्यापार की बेबसी इन्हीं नीतियों का परिणाम हैं।'[16]

इस प्रकार समाकालीन युग ने महिलाओं के समक्ष अवसर और चुनौती, दोनों प्रस्तुत किए हैं। इन अवसरों में ज्यादा चुनौतियाँ हैं। उनके लिए जरूरी हो गया है कि पूर्व के उत्पीड़न के खिलाफ संघर्ष तो करें ही, आधुनिकीकरण के नाम पर थोपी जानेवाली उच्छृंखलता, अराजकता और सेक्स व्यापार की प्रवृत्ति के खिलाफ भी संघर्ष करें। नारीमुक्ति का रास्ता न तो पितृसत्तात्मक व्यवस्था में है, और न ही उदारीकरण से उत्पन्न नीतियों से है। उदारीकरण की नीतियों ने भारतीय समाज को जिस नागपाश में जकड़ लिया है, उसको काटे बगैर न तो नारी को उचित प्रतिष्ठा मिल सकती है, और न ही समस्त समाज की मुक्ति संभव है। आशा है, भारतीय नारियाँ आधुनिकीकरण की नवीन उर्जा से भारतीय संस्कृति की उर्वरा भूमि पर सच्चे अर्थ में नए एवं सुंदर जीवन का संचार कर सकेगी।

संदर्भ

1. महिला साहित्यकारों का नारी-चित्रण, हिंदी कहानियों के संदर्भ में, डॉ॰ रतनकुमारी वर्मा, अध्ययन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, पृ॰ 4
2. वही, पृ॰ 5
3. समकालीन हिंदी-उपन्यासों में स्त्री-विमर्श, डॉ॰ स्नेहलता, राज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृ॰ 52
4. वही, पृ॰ 52
5. वही, पृ॰ 53
6. वही, पृ॰ 54
7. आधुनिक एवं हिंदी कथासाहित्य में नारी का बदलता स्वरूप, डॉ॰ मुदिता चंद्रा, डॉ॰ सुलक्षणा टोप्पो, भावना प्रकाशन, दिल्ली, पृ॰ 137, 138
8. स्त्रीवाद और महिला उपन्यासकार डॉ॰ वैशाली देशपांडे, विकास प्रकाशन, कानपुर, पृ॰ 32
9. नारी जीवन : वैदिककाल से आजतक, कमलेश कटारिया, युनिक ट्रेडर्स, जयपुर, पृ॰ 32
10. वही, पृ॰ 33
11. वही, पृ॰ 33
12. अप्रकाशित शोधप्रबंध 'स्त्रीवाद और हिंदी महिला उपन्यासकार' (विशिष्ट महिला उपन्यासकार के संदर्भ में) कु॰ वैशाली वि॰ देशपांडे, डॉ॰ भीमराव आंबेडकर मराठवाड़ा वि॰वि॰, औरंगाबाद, पृ॰ 42
13. आधुनिक एवं हिंदी कथासाहित्य में नारी का बदलता स्वरूप, डॉ॰ मुदिता चंद्रा, डॉ॰ सुलक्षणा टोप्पो, भावना प्रकाशन, दिल्ली, पृ॰ 520
14. नारीवादी राजनीति संघर्ष एवं मुद्दे, (साधना आर्य, निवेदिता मेनन, जिनी लोकनीता), हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली, पृ॰ 206
15. आधुनिक एवं हिंदी कथासाहित्य में नारी का बदलता स्वरूप, डॉ॰ मुदिता चंद्रा, डॉ॰ सुलक्षणा टोप्पो, भावना प्रकाशन, दिल्ली, पृ॰ 511, 512
16. वही, पृ॰ 512, 513, 514

Surender singh s/o malkit singh
Vill. Tatiana, distt. Kaithal, teh. Guhla
P.o. badsui 136034
Mo. 9355371803
7009399857

साहित्य में चित्रित वृद्धों के प्रवासी जीवन की त्रासदी

डॉ॰ सीमा चंद्रन (शोध निर्देशिका)
सीमा दास (शोधार्थी)
केरल केंद्रीय विश्वविद्यालय
हिंदी व तुलनात्मक साहित्य विभाग
केरल केंद्रीय विश्वविद्यालय
कासरगोड, केरल।

व्यक्ति से परिवार और परिवार से समाज बनता है और इस परिवार को संरचनात्मक रूप प्रदान करनेवाला व्यक्ति घर के बड़े बुजुर्ग ही हुआ करते हैं, जिससे परिवार की उत्पत्ति हुई है। परिवार के बिना समाज की निरंतरता संभव नहीं है। वास्तव में परिवार का आधार सुनिश्चित यौन-संबंध है, जो कि संतान उत्पन्न करने से लेकर उनके पालन-पोषण तक अवस्थित रहता है। डॉ॰ सुखविंदर बाढ के अनुसार–'व्यक्ति सदैव ही परिवार का सदस्य रहता है और अनेक परिवारों के समूह से समाज बनता है। परिवार के लिए सबसे अति आवश्यक मूल बात है–पति-पत्नी द्वारा संतान की उत्पत्ति।'[1] परंतु वर्तमान समय में विडंबना यह है कि जिस नींव की वजह से परिवार की संकल्पना की जाती है, उसी से आज का युवावर्ग हेय यानी नफरत करने लगा है। उनसे बात करने से कतराते हैं। यहाँ तक कि उन्हें अपना बोझ समझकर या तो अपने से हमेशा के लिए अलग कर देते हैं या स्वयं ही बेगाना बनाकर अकेला छोड़कर निकल पड़ते हैं, जिसके परिणामस्वरूप इन वृद्ध माता-पिता को प्रवासी जीवन जीने को मजबूर हो जाते हैं। केवल देश के बाहर जाकर बस जानेवाले व्यक्ति को प्रवासी नहीं कहा जाता बल्कि देश में रहकर भी अपने मूल स्थान से हटकर या स्वयं जाकर निवास करने की प्रक्रिया को प्रवास कहा जा सकता है।

प्रवास शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है–प्र+वास। 'प्र' का अर्थ–अलग होना या अलग हो जाना। जबकि 'वास' का अर्थ–बसना या बस जाना या निवास करना। इस प्रकार प्रवास का मूल अर्थ हुआ–अपने मूल निवास-स्थान से दूर जाकर किसी प्रांत या देश या विदेश में निवास करना। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो 'प्रवास' शब्द में 'प्र' शब्द का अर्थ है–अलग या दूसरे जबकि 'वास' का अर्थ है–निवास करना अर्थात् 'प्रवास' का शाब्दिक अर्थ हुआ–अपने मूल स्थान से जा किसी अन्य स्थान पर जाकर बस जाना। यहाँ वृद्धों के प्रवासी जीवन से तात्पर्य है–अपने परिवार से अलग होकर प्रवास में जीवन-यापन करना। जैसे–वृद्ध आश्रम या अस्पताल में जाकर बस जाना या बसा दिया जाना। अपनों के होते हुए भी उनसे अलग होकर रहना अर्थात् अपनों से दूर हटकर प्रवास करना। वास्तव में देखा जाए तो अपनों के अमानवीय व्यवहार के कारण आज वृद्धों की यह स्थिति है कि वे प्रवास में जीवन-यापन करने को विवश है।

वैश्वीकरण ने हमें इस कदर प्रभावित किया है कि पाश्चात्य जीवन-प्रणाली और एकल परिवार को ही सब-कुछ मान बैठे हैं। सच्चाई यह है कि जिन बुजुर्गों ने हमें अपनी उँगली पकड़कर हमारे नन्हे-से हाथों को थामकर हमें चलाना सिखाया, उन्हीं को आज दुत्कार और नकार रहे हैं। यहाँ तक कि उनके बुढ़ापे में लाठी बनने की अपेक्षा हम उन्हें बोझ समझने लगे हैं। वृद्धों की स्थिति पर ध्यानाकर्षित करते हुए डॉ॰ मधुकर पांडवी ने 'कला का जोखिम' में सच्चाई प्रकट की है कि 'आज की जड़ित, पीड़ित, पराधीन होती हुई सभ्यता संपूर्ण रूप से स्वतंत्र रह सके और स्वत्रंत रहकर ही अपने अलगाव का अतिक्रमण कर सके।'[2] यही कारण है कि यह सोच हमारी मानसिकता के साथ-साथ हमारी स्वार्थी जीवन-प्रणाली को दर्शाने लगा है, जिसके चलते सयुंक्त परिवार विघटित होने लगा है। इसके साथ ही साथ गाँवों से शहर की ओर पलायन बढ़ा, खेत-खलियान का स्थान पर सीमेंट-बालू ने धारण कर लिया और रेत की फसलें आज लहलहाने लगीं। आज सबसे अधिक यह पाया जा रहा है कि खेत की कमी आ गई और खेत का स्थान आज कल-कारखानों ने ले लिया है।

आज एक ओर जहाँ स्त्री, दलित, आदिवासी विमर्श आदि की गूँज चारों ओर सुनाई पड़ रही है, वहीं वृद्धों की समस्याओं की गूँज उस रूप में उभरती हुई नहीं दिखाई दे रही है, जिस रूप में होनी चाहिए। जबकि एक माता-पिता अपने बच्चों से बस यही चाह रखता है कि बुढ़ापे में उसका बच्चा उसके साथ रहे। प्राचीनकाल से ही यह माना जाता रहा है कि

यद्यपि पोष मातरं पुत्रः प्रमुदितो ध्यान।
इतदगे अन्तणो भवाम्यहतौ पितरौ ममा।'[3]

अर्थात् 'जिन माता-पिता ने अपने अथक् प्रयत्नों से पाल-पोस कर मुझे बड़ा किया है, अब मेरे बड़े होने पर जब वे अशक्त हो गए हैं, तो वे 'जनक-जननी' किसी भी प्रकार से पीड़ित न हों, इस हेतु मैं सेवा, सत्कार से उन्हें संतुष्ट कर ऋण के भार से मुक्ति प्राप्त कर रहा हूँ।' यजुर्वेद में दिया गया श्लोक हमें अपने माता-पिता और अपने बुजुर्गों के प्रति अपने कर्तव्यों को पूरा करने की शिक्षा देता है और बुजुर्गों का सम्मान करने का मार्ग प्रशस्त करता है।

आज हमारे समाज में वृद्ध लोगों को दोयम दर्जे के व्यवहार का सामना करना पड़ रहा है। देश में तेजी से सामाजिक परिवर्तनों का यह दौर चालू है और इस कारण वृद्धों की समस्याएँ विकराल रूप धारण कर रही हैं। इसका मुख्य कारण है देश में उत्पादन एवं मृत्युदर में कमी आना या मृत्युदर का घटना, जबकि राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर जनसंख्या की गतिशीलता। विगत दशकों में स्वास्थ्य सुविधाओं के विस्तार के कारण गंभीर बीमारियों की मृत्युदर में गिरावट आई है। साथ ही वृद्धों की जनसंख्या में वृद्धि हुई है। 'विश्वस्तर पर 7.1 प्रतिशत वृद्धों की जनसंख्या में वृद्धि हो रही है, जबकि 55 वर्ष आयुवाले वृद्धों की जनसंख्या में 2.2 प्रतिशत की दर से वृद्धि हो रही है।'[4] देश में बहुत ही जल्द यह विषमता आनेवाली है कि वृद्धजन, जो कि जनसंख्या का अनुत्पादक वर्ग है, शीघ्र ही उत्पादनवर्ग से बड़ा होनेवाला है।

विगत पाँच दशकों में वृद्धों को बेगानापन, अकेलापन आदि की समस्याओं से होकर गुजरना पड़ रहा है। यहाँ तक कि बुजुर्गों को हाशिए पर धकेलने का काम भी हो रहा है। वर्तमान समय में युवा और वृद्धों के बीच संवेदनशीलता की खाई इतनी गहरी हो गई है कि वृद्धों को अनावश्यक तनाव का दंश सहना पड़ रहा है। 'वृद्धावस्था प्रायः थकान, कार्यशीलता में कमी, रोगों की

प्रतिरोधक क्षमता की कमी से संबंधित होता है।'[5] यही कारण है कि अक्षमताएँ दैनिक जीवन के कार्य-कलापों को दुर्बल बनाती है।

व्यक्ति का यह अकेलापन शारीरिक एवं मानसिक रूप से उसे कमजोर बना देता है, जिसके परिणामस्वरूप उसमें चिड़चिड़ापन उत्पन्न हो जाता है, जिसके कारण परिवार में अच्छे संबंध नहीं बने रह पाते। 'वृद्धावस्था में मानसिक स्थिति को भावनात्मक ग्रंथि प्रभावित करने लगती है, जिसके कारण हीनता की भावना एवं असहायता जैसे अलग-अलग लक्षण देखे जा सकते हैं, जिसमें व्यक्ति को किसी न किसी मनोग्रंथि का शिकार हो सकने का खतरा रहता है। इस तरह से कई मनोवैज्ञानिक समस्याएँ हो सकती हैं—विचारधारा, पसंद, दृष्टिकोण इत्यादि में स्थिरता आ जाने से भी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं।'[6] ये समस्याएँ एवं तनाव की स्थिति तब उभरकर सामने आती हैं, जब नैतिकता, जीवनमूल्य, आकांक्षाएँ, उपेक्षाएँ मेल नहीं खातीं, तभी यह अलगाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

सच्चाई यह है कि वृद्धावस्था जीवन की संध्या है यानी डूबता हुए सूर्य के समान है और यही जीवन का सबसे अनिवार्य क्रम है। क्योंकि धरती पर जिसने भी जन्म लिया है, उसे एक न एक दिन वृद्ध होना ही है। निराला के अनुसार–

मैं अकेला हूँ,
देखता हूँ आ रही मेरे दिवस की सांध्य बेला।[7]

मुख्य रूप से वृद्धों की तीन विशेषताएँ हैं, वे हैं—अनुभव, धैर्य, प्रदाय। इन सभी विशेषताओं में से सबसे उत्तम और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता है—प्रदाय या प्रदायनी। बुजुर्ग अपनी संतान को अपना सब-कुछ देना चाहते हैं, परंतु अब यह उस युवापीढ़ी पर निर्भर करता है कि वह संतान के रूप में कितना ग्रहण करता है। इन सबके बीच ढलती उम्र चिंता का विषय बन गई है। अत: 60 के पार जीवन के बाद की यह ढलती उम्र चाहे आम मानव हो या लेखक सभी के लिए चिंता का विषय बन जाती है। इस संदर्भ में मैथिलीशरण गुप्त ने बहुत ही दु:ख के साथ लिखा है—

अब वे वासर बीत गए,
मन तो भरा-भरा है लेकिन, तन के सब रस रीत गए,
चमक छोड़ चौमासे बीत, कंवल छोड़कर शीत गए,
लेकर मधु की ऊष्मा सारी, मेरे मन के पीट गए,
अब तो कावल गूँज बची है, जीवन के सब गीत गए,
इस राम जाने जीवन में, हम हारे या जीत गए।[8]

समाज में वृद्धों के समक्ष उभरकर जो समस्याएँ आ रही हैं, वे हैं—शारीरिक एवं मानसिक तनाव, परिवार से अलगाव, बेगानापन का भाव, आर्थिक असमर्थता, दो पीढ़ियों के बीच मानसिक टकराहट इत्यादि। यद्यपि यह समस्या उतनी ही गंभीर है, जितनी वृद्धों के समाज में समन्वय की समस्या है। वृद्धों के समाज में समन्वय न होने के मुख्य दो कारण हैं—पहला यह कि उम्र बढ़ने से व्यक्तिगत परिवर्तन एवं दूसरा यह कि वर्तमान औद्योगिक समाज का अपने वृद्धों से व्यवहार का तरीका। जैसे-जैसे व्यक्ति वृद्ध होता जाता है, समाज में उसका स्थान एवं रोल या यूँ कहे कि उसकी भूमिका बदलने लगती है।

इस प्रकार, यदि हम साहित्य की बात करें तो अनेक ऐसे लेखक, कहानीकार एवं उपन्यासकार है, जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से वृद्धजीवन की विडंबनाओं को पाठकों के समक्ष रख दिया है। साथ ही वृद्धों के प्रति दृष्टि एवं अपने परिवार में रहकर भी उनकी क्या स्थिति है आदि बातों से रू-ब-रू करवाया है। साथ ही परिवारिक एवं सामाजिक विषमताओं से भी अवगत करवाया है। अतः वृद्धजीवन के यथार्थ से अवगत करवानेवाली अनेक कहानियाँ हैं। जैसे–'बीच बहस में' (निर्मल वर्मा), 'कोई दूसरा नहीं' (जाया जादवानी), 'सोने की चिड़िया' (हरी प्रकाश राठी), जबकि 'बूढ़ी काकी' (प्रेमचंद), 'बुढ़वा मंगल' (रवींद्र कालिया), 'दादी अम्मा', (कृष्णा सोबती), 'वापसी' (उषा प्रियंबदा) 'एक बूढ़े की मौत' (शशिभूषण द्विवेदी) आदि कहानियों में वृद्धों की स्थिति को दर्शाया गया है। साथ-ही-साथ 'चीफ की दावत' (भीष्म साहनी) आदि के माध्यम से वृद्धों की समस्याओं को बड़ी ही गंभीरतापूर्वक दर्शाया गया है।

'बुढ़वा मंगल' कहानी में रवींद्र कालिया ने एकाकीपन और अलगावपन का ताना-बाना बुना है। इसमें अपने बेटे के बुलाने पर जब वृद्ध पिता ट्रेन के ए॰सी॰ डब्बे से बैंगलौर जा रहा होता है तब उस वृद्ध को अपनी जीवनसाथी की याद आती है–'उसे अब लगा कि अब वह कोल्हू के बैल की तरह जीवन बिता रहा है। इस आरामदेह गाड़ी में उसे अपनी बुढ़िया की बड़ी तेज याद आई। वह साथ में होती तो कितना खुश होती।'[9] वृद्धमन की यह अकुलाहट अकेलेपन में अपनी जीवनसंगिनी के साथ अपनी मनोदशा को अभिव्यक्त करने के लिए खोजती फिरती है, ताकि अपनी मन की बात बता सके, परंतु अपने सुख-दु:ख आदि की भरपाई अपनी संगिनी के साथ न कर पाने के कारण यह एकांत मन व्याकुल हो उठता है।

'एक बूढ़े की मौत' कहानी में शशिभूषण शर्मा ने वृद्ध व्यक्ति की अकुलाहट को अभिव्यक्ति प्रदान करने का प्रयास किया है। इस कहानी का मुख्य पात्र जानकीबाबू अपने आपको जब भी अकेला महसूस करता तब वह अपने इस सूनापन को मिटाने के लिए बाहर घूमने चला जाया करता। कहानीकार उसके माध्यम से उनके विचारों को सहज ही ढंग से बताने का प्रयास किया है–'जानते हो जिंदगी में मृत्यु का आना कितना जरूरी है...उस फूल को देखो और मेरी बातों को ध्यान से सुनो...।'[10] दरअसल, यह उनकी मन:स्थिति है, जो कि एकांकीपन की अकुलाहट को उभार रहा है। अकेलापन का यह उग्र रूप ही उनके जीवन का कारण बन जाता है।

हिंदी उपन्यास विधा भी इस क्षेत्र में पीछे नहीं हैं। अनेक उपन्यासकारों ने अपनी लेखनी के माध्यम से वृद्धों की समस्याओं को केंद्र में रखकर रचना की है। 'अंतिम अरण्य' (निर्मल वर्मा), 'गिलीगड्डू' (चित्रा मुद्‌गल), 'दौड़' (ममता कालिया), 'रेहन पर रग्घू' (काशीनाथ सिंह), 'जीने की राह' (विजयशंकर राही), 'अपने अपने अजनवी' (अज्ञेय), 'समय-सरगम' (कृष्णा सोबती) आदि उपन्यास वृद्धजीवन पर केंद्रित उपन्यास है। इन सभी रचनाओं के सहारे वृद्धजीवन और आज की पीढ़ी के बदलते संबंधों के सहारे सांस्कृतिक परिवर्तन को आसानी से दर्शाया गया है। साथ ही इसी अलगाववादी प्रवृत्ति के कारण वृद्ध माता-पिता आज प्रवास में जीवन बिताने के लिए विवश हैं।

'अंतिम अरण्य' उपन्यास वृद्धों की स्थिति एवं उसकी नियति से संबंधित है। साथ-ही-साथ व्यक्ति की असीम कल्पनाओं एवं अपेक्षाओं से युक्त है, क्योंकि उम्र का यह पड़ाव अपनों से, अपनी अगली पीढ़ी से अपेक्षाएँ कर बैठता है, परंतु जब उनकी अपेक्षाओं की कसौटी पर नई पीढ़ी

सही नहीं उतर पाती है, तभी यह मानसिक टकराहट की स्थिति उत्पन्न होती है। इसमें ऐसे चरित्र भी हैं, जो अँधेरे की यातना से घिरे इस धरती के अधूरे आत्मखंडित व्यक्तित्व हैं, जिसकी पूर्णता को कलाकृति अपने सत्य से निर्मित करती है। मेहरा साहब एक ऐसे ही पात्र हैं, जो कि द्वंद्वात्मक परिस्थितियों से घिरे हुए हैं। वे औरों की तरह कमजोर, खाँसते हुए चरित्रवाले व्यक्ति नहीं हैं, बल्कि उस सघन यात्री के सामान हैं, जिनके जीवन में स्मृतियाँ उनका पीछा नहीं छोड़तीं। इसके बावजूद अनकही यातनाएँ उन्हें स्पर्श कर ही जाती हैं। अत: मूल रूप से इसमें वृद्धजीवन की स्मृति, इतिहास, प्रकृति, जीवन, प्रतीक, मिथक आदि जैसे भाव हैं।

'लालटीन की छत' उपन्यास की पात्रा काया अकेलेपन के कारण डरती भी है और अकेले बड़बड़ाती भी रहती है–'दिनभर का अकेलापन, गुस्सा, हताशा आपस में गूँथकर एक धुंध का गोला–सा बन जाते, जो न इतना कोमल होता कि आँसुओं में पिघलकर बाहर आ सके, और न इतना सख्त कि वह उसकी पकड़ में आकर किसी सूझ, किसी समझदारी की सांत्वना में बदल सकें।'[11] इसके अतिरिक्त यह टकराहट ही अलगाव एवं बेगानापन जैसी मन:स्थतियों का कारण बनती है, जिसके चलते अंतर्द्वंद्व उत्पन्न होता है और एक समय के पश्चात् यह वृद्धा अपनी वृद्धावस्था से तंग आकर मृत्यु की राह जोहती-फिरती है।

'गिलीगड्डू' उपन्यास में वृद्ध जसवंतसिंह अपने पोते के जन्मदिन पर पार्टी देना चाहते हैं और भावनात्मक तौर से बच्चे से जुड़ने की कोशिश करते हैं, परंतु मलय (पुत्र) द्वारा दिया गया अपने पिता को करारा जवाब उनके दिल को ठेस पहुँचाता है, 'उसका यह कार्यक्रम उसके दोस्तों के साथ है। घरवाले इसमें शामिल नहीं होंगे। मम्मी को वैसे भी जन्मदिन मनाने में झंझट होता है। न, न दादू। हम अपने से बड़े किसी को भी नहीं ले जाएँगे वरना पार्टी बोरिंग हो जाएगी।'[12] वृद्धजीवन की एकमात्र यही आशा होती है कि वृद्धावस्था में उसके अपने उसके साथ हों, परंतु वहीं नई पीढ़ी उन्हें वृद्ध जानकर अपने किसी भी कार्य में शामिल करने से हिचकिचाती है, जिसके चलते आज समस्त वृद्धजनों को प्रवास में रहकर अकेलेपन का शिकार होना पड़ता है।

'रात का रिपोर्टर' उपन्यास में निर्मल वर्मा ने वृद्धजीवन के आतंकित मन से परिचित करवाया है। भय, आतंक के कारण ही 'रात का रिपोर्टर' के नायक रिशी स्वयं को असुरक्षित महसूस करने लगता है। जीवन का यह अकेलापन भय का कारण होता है। इसी मनोदशा को उजागर करते हुए भय का चित्रण किया है–'वह लाइब्रेरी की तरफ चलने लगा। कोई उसका पीछा नहीं कर रहा था, सिवाय उसके डर के, जो वह सज्जन व्यक्ति उसके पास छोड़ गए थे। सैंतीस साल की उम्र में उसने तरह-तरह के डर भोगे थे, लेकिन वे उसके भीतर थे, उसे टोहने के लिए उसी नंगी सड़क पर पीछे मुड़-मुड़कर देखना नहीं पड़ता था। किंतु यह एक नए किस्म का डर था।'[13] वृद्धों के समक्ष सबसे बड़ी त्रासदी है–अकेले जीवन-यापन करना।

'दौड़' उपन्यास में ममता कालिया ने उपभोक्तावादी संस्कृति को दर्शाया है, जिसमें आज का युवावर्ग पूरी तरह से ग्रसित होता चला जा रहा है, जिसके चलते वे माँ-बाप को भी भूल बैठते हैं। यही कारण है कि आज मानवीय मूल्यों की क्षति होती जा रही है और व्यक्ति काल के गाल में धँसता हुआ चला जा रहा है। ममता कालिया ने पवन, स्टेला और सघन के जरिए एक ओर जहाँ पारिवारिक संबंधों में आई विवशता को दर्शाया है तो वहीं दूसरी ओर एक ऐसे कटु सत्य के भी दर्शन कराए हैं, जिसका परिणाम प्राय: वे सभी परिवार भुगत रहे हैं, जिनके बच्चे प्रवासियों की

तरह हो गए हैं, जिनके लिए पराया देश और वहाँ की सुख-सुविधाएँ महत्त्वपूर्ण हैं। मिस्टर और मिसेज सोनी ऐसे ही दो मजबूर माता-पिता हैं। उनका बेटा सिद्धार्थ विदेश में जाकर बसा है। मिस्टर सोनी को अचानक दिल का दौरा पड़ता है और वे गुजर जाते हैं। जब सिद्धार्थ को फर्ज की विधि के लिए बुलाया जाता है तो बहाने बनाता है कि उसके घर तक आने में हफ्ते भर से अधिक समय लगेगा। अत: वह अपनी माँ को समझाते हुए कहता है–'हम सब तो आज लुट गए ममा। लोग बता रहे हैं मेरे आने तक डैडी को रखा नहीं जा सकता। आप ऐसा कीजिए। इस काम के लिए किसी को बेटा बनाकर दाह-संस्कार (क्रिया-कर्म) करवाइए। मेरे लिए तेरह दिन रुकना मुश्किल होगा।'[14] यह है आज के युवावर्ग की सोच एवं अपने माता-पिता के प्रति कर्तव्य-बोध, जिसे देख सोचने पर विवश होना स्वाभाविक है।

भूमंडलीकरण के जंजाल में पड़नेवाले आदमियों में अधिकांश हर प्रकार की सामाजिक संबंधों को अनावश्यक और अनर्थ समझने वाले रिश्ते हैं, जो कि पश्चिम देशों के व्यापार ने लोगों के मन-मस्तिष्क से उपजकर आया है। भूमंडलीकरण के पीछे यहाँ के युवा आँखें मूँदकर, तन-मन-धन देकर एवं अपनी संस्कृतियों को भूलकर यहाँ तक कि अपने माता-पिता की भी परवाह किए बिना आज का युवावर्ग 'दौड़' लगा रहा है।

'हमारा शहर उस बरस' उपन्यास में गीतांजलिश्री ने युवापीढ़ी के खोखलेपन को बखूबी उभारा है। दद्दू धड़ल्ले से युवावर्ग की कमजोरियों पर कटाक्ष करते हैं। जब श्रुति दद्दू से समाज और संस्कृति के नाम पर गोष्ठी की बात करती है, तो दद्दू नि:संकोच युवावर्ग के खोखलेपन का उपहास करते हैं–'बंडल होगा...पैसा बहेगा, दारू बहेगी, कागज पर लिखा जाएगा, धड़ाधड़ लेख छपेंगे, नाम होगा।'[15] समकालीन युवापीढ़ी आज पूरी तरह से बाजार में तब्दील होती प्रतीत हो रही है।

'समय सरगम' उपन्यास में कृष्णा सोबती ने कामिनी और दयमंती जैसी स्त्रियों के माध्यम से यह दर्शाया है कि उनके पास सब होते हुए भी परिवार से दूरी हो गई है। दयमंती अकेली रहती है और अरण्या से अपने मनोभाव को व्यक्त करते हुए कहती है–'बच्चे साथ रह रहे हैं। मेरा घर मेरा किचन चल रहा है। खर्चा मैं कर रही हूँ और मैं अकेली पड़ी हूँ। बिना इजाजत के मेरा सामान इधर से उधर करते रहते हैं। पीछे आश्रम गई तो माधव को धमकाते रहते हैं। बताओ ममा, लॉकर की चाबी कहाँ है...कुछ कहो अरण्या। बच्चों की ऐसी हरकत से मेरा धीरज खत्म हो रह है।'[16] निश्चित ही अकेलापन तब बोझ बन जाता है, जब व्यक्ति अपनों से दूर रहता है, तभी निरंतर अजीबो-गरीब ख्यालात मन-मस्तिष्क पर हावी होने लगते हैं। ईशान और अरण्या के माध्यम से लेखिका ने कुछ और वृद्धजीवन की समस्याओं से परिचित कराया है। अरण्या का यह जीवन उनके वृद्धजीवन का भोगा हुआ यथार्थ है। वह कहती भी है–'परिवार की साँझी श्री संपदा और संपन्नता में निहित है। आप इस साझेपन के हिस्सेदार हैं तो स्नेह, ममता भी प्रचुर होगी।'[17]

समकालीन दौर में बच्चे भी इस प्रवृत्ति से बच नहीं पाए हैं। पहले एक समय ऐसा था, जो आर्थिक तंगी के कारण लोग कमाने-खाने के उद्देश्य से विदेश में जाकर बस जाते थे, परंतु आज के दौर में कमाने-खाने के लिए अकेले ही जाते हैं और वृद्धों, पत्नी और बच्चों को छोड़ जाते हैं। वृद्ध को दर-दर भटकने के लिए छोड़ देते हैं–'यू॰एन॰पी॰एफ॰ के आकलन के मुताबित देश के ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में कुल मिलकर 20 फीसदी बुजुर्ग अकेले या फिर अपने जीवनसाथी के सहारे अपना जीवन काटने को विवश हैं। तमिलनाडु में यह स्थिति 50 फीसदी से अधिक आ

 ISSN 0975-735X

चुकी है, जबकि गोवा, हिमाचल प्रदेश, महाराष्ट्र, केरल में यह दर काफी ज्यादा है।'[18]

भारतीय कहावत है—पूत कपूत हो सकता है, पर माता कभी कुमाता नहीं होती अर्थात् पुत्र भले ही कुपात्र हो जाए, पर माँ-बाप कभी कुपात्र नहीं होते। मुख्य तौर से देखा गया है कि आज के समय में वृद्ध की समस्या एक सामाजिक समस्या बन गई है। इसके समाधान के लिए परिवार, समाज और सरकार को साझेदारी से काम करने की आवश्यकता है। अत: वृद्धों को वृद्धाश्रम में रख देने मात्र से इसका समाधान नहीं हो सकता।

संदर्भ

1. डॉ॰ सुखविंदर बाढ, पंजाबी लोकसाहित्य, संस्कृत का आईना, पृ॰ 82
2. डॉ॰ मधुकर पांडवी, कहानी निर्मल वर्मा और माधुरी का तुलनात्मक अध्ययन, पृ॰ 45
3. http://.hindis.m.y.com
4. डेमोग्राफी इंडिया, अंक-23, पृ॰ 108
5. चौधरी डी॰ पाल, ऐजिंग एंड द एजेंड, 1992, नई दिल्ली, पृ॰ 10
6. प्रियदर्शन, संपादक, बड़े बुजुर्ग, पृ॰ 30
7. k.vit.kosh.org/kk/मैं; अकेला; सूर्यकांत; त्रिपाठी; 'निराला'
8. k.vit.kosh.org/kk/अब; वे; वासर; बीत; गए; (कविता); 'मैथिलीशरण गुप्त'
9. प्रियदर्शन, संपादक, बड़े बुजुर्ग, कहानी, पृ॰ 34
10. शशिभूषण शर्मा, एक बूढ़े की मौत, कहानी, पृ॰ 57-58
11. डॉ॰ निमल वर्मा, लालटीन की छत, उपन्यास, पृ॰35
12. चित्रा मुद्गल, गिलिगडु, उपन्यास, पृ॰ 33
13. डॉ॰ निर्मल वर्मा, रात का रिपोर्टर, उपन्यास, पृ॰ 58
14. ममता कालिया, दौड़, उपन्यास, पृ॰ 65
15. गीतांजलिश्री, हमारा शहर उस बरस, उपन्यास, पृ॰ 145-146
16. कृष्णा सोबती, समय सरगम, उपन्यास, पृ॰ 74
17. वहीं, पृ॰ 74
18. हर्षमंदर, बोझ नहीं जिम्मेदारी हैं बुजुर्ग, डॉ॰ कमलेश सिंह, दैनिक भास्कर, हिंदी समाचार पत्र, पृ॰ 4

PALAKKIL KALIYATH HOUSE
ODAYAMMADAM, CHERUKUNNU (P-O)
KANNUR (DISTRICT), KERALA 670301
Mo. : 09447720229
drseem-ch-ndr-ncukhindi@gm-il-com

समकालीन हिंदी कथासाहित्य में निम्नवर्गीय नारी

डॉ॰ बळीराम संभाजी भुक्तरे

भारत की संवैधानिक स्वतंत्रता के बाद नारी को समान अधिकार दिए गए परिणामस्वरूप नारी की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति में काफी सुधार हुआ है। इतिहास साक्षी है, भारत में नारी को जो अधिकार मिले हैं। वे किसी विद्रोह के फलस्वरूप नहीं, बल्कि डेढ़ सौ वर्षों की सामाजिक क्रांति के परिणामस्वरूप मिले। देश के स्वाधीनता-संग्राम में पुरुषों के कंधे से कंधा मिलाकर जूझने के परिणामस्वरूप मिले। केवल भावुकता या स्त्रियों के प्रति किसी प्रकार की संवेदना के फलस्वरूप ये अधिकार महिलाओं को नहीं दिए गए, बल्कि भारतीय नारी ने अपनी योग्यता एवं कार्यकुशलता की स्वीकृति के आधार पर ही प्राप्त किए हैं। नारी की वास्तविक परिवर्तन की एक लंबी भूमिका है। एक ओर समाज-सुधार आंदोलनों की प्रक्रिया में नारी-चेतना को बल मिला, वहीं दूसरी ओर राष्ट्रीय आंदोलनों में अपने आत्मविश्वास को पहचानकर उन्होंने अपने हक की माँग की। समता, रोजगार, शिक्षा, संपत्ति, परिवार के लिए उन्होंने जमकर आवाज उठाई। राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर नारी-चेतना और नारी के अधिकारों के लिए अनेक संगठन बने। उन सारी नारी-विकास की गतिविधियों के कारण आज नारी विभिन्न क्षेत्रों में अपनी निजी पहचान बना रही है। साहित्य, समाज, शिक्षा, विज्ञान, कला, राजनीति आदि क्षेत्रों में वह सक्रिय है। आज सारी दुनिया मे नारी प्रश्नों को लेकर ही गर्मा-गर्मी हो रही है। एक समय था कि साहित्य की परिधि में पुरुष ही था, वहाँ आज नारी है।

आज का युग नारी का है। नारी के अलावा पुरुषों ने भी। नारी-जीवन को स्वायतता प्रदान करने हेतु प्रयास-प्रारंभ किए हैं। 'बेटी बचाओ' का नारा दिया जाने लगा। इन कार्यों का सीधा प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा है। स्वयं नारी अपनी जाति की विडंबनाओं, खामियों एवं खूबियों को अनूठी अभिव्यंजनात्मक एवं अधिकार की भाषा में पेश कर रही है। आज नारी-सृजन नारी-चेतना का नया इतिहास बन रहा है। 'समकालीन हिंदी कथासाहित्य में भी महिला उपन्यासकारों में नारी-चेतना के विचार जोर पकड़े हुए है। निरुपमा सेवती, मृदुला गर्ग, मालती जोशी, मंजुल-भगत, कृष्णा सोबती, ममता कालिया, मैत्रेयी पुष्पा, चित्रा मृद्‌गल, प्रभा खेतान आदि के उपन्यास साहित्य में नारी चेतना का स्वर प्रखर हुआ है। समकालीन हिंदी साहित्य में जिन महिला उपन्यासकारों ने नारी-जीवन की गतिविधियों को अपने उपन्यासों मे स्थान दिया है, उनमें मंजुल भगत का नाम शीर्षस्थ है। उन्होंने बदलते संदर्भ में नारी की बदली हुई मानसिकता एवं समस्याओं को केंद्र में रखकर अपने औपन्यासिक संसार का सृजन किया है।'[1]

मंजुल भगत समकालीन हिंदी उपन्यास की प्रमुख लेखिका हैं। सन 1970 से छुट-पुट लेखों द्वारा हिंदी साहित्य लेखन में प्रवेश करनेवाली मंजुल भगत ने छह उपन्यासों का सृजन किया है। इनके उपन्यासों के नारी-पात्र विशिष्ट व्यक्तित्त्व को लिए हुए प्रकट होते हैं। यही इनके उपन्यासों

 ISSN 0975-735X

को विविधता प्रदान करता है। इनके नारी-पात्र वर्ग-विशेष का प्रतिनिधित्व करते हैं। निम्नतम वर्ग से लेकर उच्चतम वर्ग के दु:ख एवं संवेदनाओं से ये पाठकों का तादात्म्य कराने में सिद्धहस्त हैं। मंजुल भगत के उपन्यासों में 'अनारो' प्रतिनिधि उपन्यास माना जाता है। महानगरीय बोध का यथार्थ चित्र अनारों में अंकित हुआ है। यह लेखिका की प्रौढ़तम रचना है। 'इसके माध्यम से लेखिका ने निम्नवर्ग की समस्त भयावह सच्चाइयों को उघाड़ने का प्रयास किया है।'[2] प्रस्तुत उपन्यास यशपाल प्रतिष्ठान व उत्तर-प्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा पुरस्कृत हुआ है। इस उपन्यास का रूसी, जर्मन, अँग्रेजी और कन्नड़ भाषा में भी अनुवाद हुआ है। 'सन 1977 में लिखे गए 'अनारो' उपन्यास में लेखिका मंजुल भगत ने देश की राजधानी दिल्ली में जो झुग्गी-झोंपड़ियाँ हैं, उनमें रहनेवालों के ग्रहणीय जीवन का चित्रण किया है।'[3]

महानगरीय पृष्ठभूमि पर लिखे गए उपन्यासों में पहली बार अनारो में ही नारी को व्यापक संवेदना प्राप्त हुई है। इसमें नारी की जिजीविषा को पहचाना गया है। इस परिवर्तित समाज में नारी की समर्थता को चित्रित किया गया है। वस्तुत: अनारो नारी-विमर्श का एक नमूना है। अनारो एक संघर्षशील नारी की संघर्ष-गाथा है। उसका संघर्ष जीवन के विरुद्ध है। वह निम्नवर्ग में रहकर मध्यवर्ग की तरह अपना जीवनयापन करना चाहती है। लड़की की सगाई में काफी कर्जा लेती है और चुकाते-चुकाते एकदम टूट जाती है, बीमार हो जाती है। तब भी वह अपने सारे रिश्तेदारों तथा मुहल्ले के लोगों को बुलाकर दावत देती है। इससे उस पर अधिक कर्जा चढ़ जाता है और उसमें वह जिंदगी-भर पिसती रहती है। उसका मानना है कि अपनी बिरादरी में नाम न चला जाए। 'मध्यवर्गियों के बंगलों में बर्तन माँजने का काम करते-करते अनारो भी अपने-आपको मध्यवर्गीय समझती है। अपनी बेटी की शादी किसी विवाह-संस्था में करना अनारो को बिलकुल स्वीकार नहीं है। उसको अपनी श्रमशक्ति पर विश्वास है। वह कहती है, गंजी अनारो की बेटी कोई अनाथ नहीं है, कोई कानी लूली नहीं है, चौबारे की ईंट नहीं, तो नालों का पत्थर भी नहीं है, अनारो की बेटी है। समाज बिरादरी में झुकना नहीं चाहती। यह उसका जीवनसंघर्ष सराहनीय है।'[4]

अनारो प्रस्तुत उपन्यास की नायिका है जो एक इमानदार आत्मनिर्भर, स्वाभिमानी, रूढ़िप्रिय तथा समाजभीरु नारी है। 'महानगरीय झुग्गी कॉलोनी में रहकर मध्यवर्गियों की कोठियों में काम करनेवाली अनारो का पति नंदलाल एक आलसी, कामचोर, चरित्रहीन तथा कर्तव्य से मुख मोड़नेवाला पुरुष है। घर-गृहस्थी की पूरी जिम्मेदारी अनारो पर थोप-थोपकर वह हर एक दो महीने पर भाग जाता है। जब भी वह लोटता है शराब में अपने को डुबोकर आता है और अनारो की पिटाई करता है। नंदलाल की एक प्रेमिका है, जिसका नाम छबीली है।'[5] उसे वह अनारो की सौत बनाकर लाना चाहता है, परंतु अनारो के तीव्र विरोध के कारण वह यह कार्य कर नहीं पाता। लेकिन छबीली से अपने संबध अवश्य कायम रखता है। कठोर जुबानवाली अनारो हृदय की अति कोमल व संवेदनशील है। वह नंदलाल से छबीली की संतान को अपने घर लाने के लिए कहती है, क्योंकि उसके अनुसार अपनी चीज औरों के घर रखना पाप है। अनारो नंदलाल से कहती है–'जब वह तेरा है तो पराये घर की कमाई क्यों खाएगा, ले आ उसे यहीं। खिला-पिलाकर बड़ा कर लेंगे। कमाके हमीं को खिलाएँगे। फिर दो-दो बेटोंवालों को काहे की कमी रह जाएगी।'[6] कामचोर नंदलाल पर अनारो कभी रुष्ट नहीं होती। उसके घर छोड़ भाग जाने पर अनारो उतनी ही तत्परता से उसकी बाट जोहती है।

'अनारो' उपन्यास द्वारा मंजुल भगत ने निम्नवर्ग की नारी के संघर्षपूर्ण जीवन का परिचय दिया है। महानगरीय झुग्गियों में रहकर कोठियों में खटनेवाली नारियों का यथार्थ चित्र इस उपन्यास में देखने को मिलता है। निम्नवर्ग की इन नारियों को गरीबी, सौत तथा बच्चों के सिवा और कुछ प्राप्त नहीं है। अनारो भी निम्नवर्ग के इसी स्वाभाविक जीवन का प्रतिनिधित्व करती है। पति नंदलाल गृहस्थी तथा पारिवारिक दायित्व का भार अनारो पर सौंपकर एक दो महीनों के अंतराल में घर से भाग जाता है।

इसी कारण अनारो आत्मनिर्भर तथा स्वाभिमानी बनती है। पति की लापरवाही पर नाराज न होते हुए जब भी वह लौट आता है, तब अनारो आदर्श पत्नी बनकर उसका स्वागत करती है। नंदलाल शराब पीकर अनारो की पिटाई करता है। कर्ज-व्यापार में वह पत्नी का साथ नहीं देता। अनारो समझती है कि पति की दृष्टि में उसका मान बना रहे, पुत्री के विवाह का खर्च अनारो अकेली सँभाल लेती है। दिनभर श्रम करने के कारण आहार का कुपोषण मानसिक तनाव, आर्थिक अभाव और उपर से तीसरी बार गर्भवती रहने पर किए गर्भपात के कारण अनारो का स्वास्थ पूर्णत: बिगड़ जाता है।

संक्षेप में निम्नवर्ग में नारी का यह संघर्षपूर्ण जीवन मात्र अनारो का ही नहीं बल्कि इसमें हर उस नारी की त्रासदी छुपी है, जो आर्थिक अभावों, सामाजिक रूढ़ियों तथा पुरुष-अत्याचार को सहते हुए भी सम्मानपूर्ण जीने के लिए संघर्ष करती है। निम्नवर्ग की नारियाँ का संघर्ष परिक्षेत्र मानसिक तथा शारीरिक तनावों से युक्त है। सामाजिक रूढ़ियों से ग्रस्त होने के कारण ये नारियाँ विरादरी के रीति-रिवाज सँभालते-सँभालते कर्ज में डूब जाती हैं। ऐसे त्रस्त जीवन से वह भले ही बाहर से कठोर दिखाई दें, किंतु हृदय से वे उतनी ही कोमल तथा संवेदनशील हैं। पति द्वारा दुर्व्यवहार, निम्न वर्गगत सामाजिक, आर्थिक शोषण, संतान की भूख तथा निजी आवश्यकताओं की चीख पुकार तथा भयानक तनाव का सामना ये नारियाँ करती है। प्रस्तुत उपन्यास की निम्नवर्गीय नारी पात्र अनारो अपने वर्ग की कामकाजी नारी की दयनीय स्थिति व समस्या का परिचय देती है। अनारो की यह अवस्था भारतीय समाज की नारी जाति पर हो रहे अन्यायों का प्रतिबिंब है।

संदर्भ

1. समकालीन हिंदी उपन्यास, डॉ॰ जालिंधर इंगले
2. हिंदी उपन्यास साहित्य में स्त्री-विमर्श, डॉ॰ बी॰के॰ कलासवा
3. दलित-चेतना और समकालीन हिंदी उपन्यास, डॉ॰ मुन्ना तिवारी
4. हिंदी उपन्यास साहित्य के विकास में साठोत्तरी उपन्यास, डॉ॰ पारुकांत देसाई
5. हिंदी के समकालीन महिला उपन्यासकार, डॉ॰ एम॰ वेंकटेश्वर
6. अनारो मंजुल भगत

स्नातकोत्तर हिंदी विभागध्यक्ष एवं शोध निदेशक
भाषा एवं साहित्य संशोधन केंद्र
महाराष्ट्र उदयगिरी महाविद्यालय, उदयगीर
लातूर 413517 **महाराष्ट्र**
मो॰ 09421909343
baliram94@gmail.com

साहित्यकारों की नजर में बालश्रम

साधना यादव

श्रम से जीवन को अर्थ मिलता है और मानव जीवन की उन्नति का द्वार श्रम के द्वारा ही खुलता है। श्रम का अर्थ है–शारीरिक व मानसिक रूप से किसी कार्य के लिए तत्पर होना। मनुष्य के लिए श्रम बहुत ही जरूरी है। लेकिन वही श्रम जब उचित व्यक्ति द्वारा व उचित स्थान पर न हो तो ठीक नही रहता है ऐसा ही श्रम है बालश्रम।

बालश्रम का अर्थ ऐसे कार्य से है, जिसमें कार्य करनेवाला व्यक्ति कानून द्वारा निर्धारित आयु-सीमा से छोटा होता है। बालश्रम शोषण करने वाली प्रथा है। इसमें भारत में 17 वर्ष से कम आयु का बालक स्कूल की पढ़ाई छोड़कर काम करता है, वह अनुचित है। ऐसे बच्चों के काम करने के घंटों का निर्धारण होना चाहिए। अंतर्राष्ट्रीय संगठन (आई॰एल॰ओ॰) के अनुसार दुनिया भर में 21 करोड़ से अधिक बच्चों से मजदूरी करवाई जाती है, भारत में सबसे ज्यादा बाल मजदूर हैं। बाल मजदूरी एक बड़ी समस्या है, जिसकी तरफ सभी का ध्यान है। सरकार के भी ध्यान में हैं लेकिन इसके लिए उचित दिशा में काम नहीं हो पा रहा है। कहीं न कहीं इसकी वजह ज्यादा आबादी है। भारत दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा देश है और इसमें सबसे ज्यादा बालश्रम पाया जाता है। बालश्रम एक ऐसा सामाजिक अभिशाप है, जो शहरों, गाँवों में एवं चारों ओर मकड़जाल की तरह बचपन को अपने आगोश में लिए हुए हैं। हमारे समाज की इससे बड़ी विडंबना भला और क्या हो सकती है। जब कोई बच्चा खेलने-कूदने की उम्र में श्रम करने पर मजबूर हो जाए। बालकों को स्नेह, खेल, स्कूल, आत्मीयता, देखभाल व उचित पालन व संस्कारों की आवश्कता होती है। परंतु ऐसा न हो पाए, इससे ज्यादा दुखद और क्या होगा।

सीधी सी बात है जो काम बच्चों के शारीरिक व मानसिक विकास के लिए नुकसानदायक है, वह बाल-मजदूरी है। आज दुनिया में हर दस में से एक बच्चा बाल-मजदूर है। हमारी सरकार ने, देश के बुद्धिजीवियों ने समाज के प्रबुद्ध वर्ग ने अपनी-अपनी तरह से बालश्रम की स्थिति को समझा है व व्याख्यायित किया है। हमारे समाज का सबसे मजबूत स्तंभ माने जानेवाले हिंदी साहित्यकारों की लेखनी ने भी बालश्रम की समस्या को बखूबी इंगित किया है–

नोबेल पुस्कार विजेता श्री कैलाश सत्यार्थी के शब्दों में 'इससे बड़ी त्रासदी और भला क्या होगी, देश में आज भी 17 करोड़ बालश्रमिक और 20 करोड़ वयस्क बेरोजगार हैं। ये वयस्क कोई और नहीं बल्कि बालश्रमिकों के माता-पिता ही हैं। वास्तव में यह विरोधाभास बालश्रम के खत्म होने से ही समाप्त हो पाएगा।'

विलियम वड्सवर्थ ने कहा था 'The Child is the Father of the Man' मतलब बच्चा ही व्यक्ति का पिता है।

–बालश्रम का प्रारंभ औद्योगिक क्रांति की शुरुआत से ही माना जाता है। कार्लमार्क्स ने कम्युनिस्ट घोषणा–पत्र में कारखानों में मौजूदा स्वरूप में बालश्रम के त्याग की बात कही है।

बाल्यकाल में श्रम या मजदूरी करने या करवाने के खिलाफ पूरे विश्व में 12 जून को विश्व बालश्रम निषेध दिवस मनाया जाता है।

–एक प्रभावशाली समाचार पत्र में 'बालश्रम के अर्थशास्त्र' पर अमेरिकी आर्थिक समीक्षा (1998) में कौशिक वसु और हुआंग वान का तर्क है कि बालश्रम का मूल कारण माता–पिता की गरीबी है और इसके लिए उन्होंने बालश्रम के वैधानिक प्रतिबंध के लिए आगाह किया है।

आज का इंसान महत्त्वाकांक्षी हो रहा है और यह नहीं समझ पा रहा है कि बालक देश का भविष्य है और कल के भारत की बागडोर इन्हीं के हाथों में है। आज हम बालकों को जैसा बनाएँगे, जैसा उनका शारीरिक, मानसिक, नैतिक, सामाजिक विकास होगा, जैसी उनकी सोचने–समझने की निपुणता होगी, जैसी कार्य–शैली में हम उन्हें ढालेंगे, जैसा वातावरण उन्हें उपलब्ध होगा, जैसी संगति उन्हें मिलेगी, जैसा भोजन उन्हें खाने को मिलेगा, जितने स्नेह, मानवीयता, आदर्श, आत्मीयता से उनका पालन–पोषण होगा, वैसा ही वे आगे चलकर देश को बनाएँगे, उसकी दिशा निर्धारित करेंगे।

लेकिन जब वही भारत का भाविष्य मजदूरी करे, अच्छे काम न करे, पढ़ाई–लिखाई न करे, उसे खेलने–कूदने, हँसने–मुस्कराने के अवसर न मिलें तो देश का भाविष्य स्वत: अंधकारमय हो जाएगा।

आज हमारे साहित्यकार इस स्थिति का देखकर छटपटाते रहे हैं और बार–बार सरकार, समाज, माता–पिता, परिवार को अपने साहित्य द्वारा आईना दिखाने का प्रयास करते रहे हैं। ऐसी ही 'बालश्रम' कविता 'दीपावली' पत्रिका में प्रकाशित हुई है। कर्णिका पाठक ने लिखा है–

बाल मजदूर मजबूर है
कंधों पर किताबों का बोझ
किताबों की जगह रद्‌दी का बोझ
जिस मैदान पर खेलना था
उसको साफ करना की जीवन बना
जिस जीवन में हँसना था
वो आँसू पीकर मजबूत बना
बचपन कहाँ खो गया
वो मासूम क्या बताएगा
जीवन सड़क पर गुजर जाएगा
वो यादें क्या सुनाएगा
कभी तरस भरी आँखों से
वो दो वक्त की रोटी खाता है
कभी धिक्कार के धक्के से
वो भूखा सो जाता है
अगर देश का भविष्य बनाना है

 ISSN 0975-735X

तो इस मजदूरी को हटाना है।[1]

क्या कोई नियम या कानून वास्तव में इनकी वह सहायता कर पाएँगे, जिसकी उन्हें जरूरत है। जब तक हम आगे नहीं आएँगे, तब-तक कुछ नहीं हो पाएगा। मंदिरों की दान-पेटियाँ भरने की बजाय सबको बाल-मजदूरों की सहायता करनी चाहिए, क्योंकि ईश्वर का सच्चा रूप तो बालक ही होते हैं। उनकी निश्छलता, ईमादारी, भोलापन, अबोधपन की रक्षा हर कीमत पर होनी चाहिए। बच्चे को बच्चा बनाए रखना है, सच्चा बनाए रखना है। इसके लिए साहित्य से बेहतर कोई माध्यम नहीं है, क्योंकि इसकी सीख सरस होती है। 'पढ़ने की उम्र थी' कविता बाल-मजदूरी की मजबूरी पर प्रकाश डालती है–

पढ़ने की जब उम्र थी उसकी, पढ़ नहीं पाया
माता-पिता निज स्वार्थ ने उसको काम लगाया
रह गया अँगूठाछाप आज करता मजदूरी
नहीं पढ़ाया उसको क्यों थी क्या मजबूरी।[2]

बच्चे फूल की तरह नाजुक, खूबसूरत व कोमल होते हैं। वे ईश्वर की अनुपम कृति हैं, जिनके देखने-मात्र से ही मन का कलेश-चिंता सब सुख में बदल जाते हैं। मनुष्य पलभर के लिए सही, लेकिन उन्हें देखकर स्वर्ग में पहुँच जाता है। हम अभागे भारतवासी इस बात को क्यों नहीं समझना चाहते कि बच्चों को श्रमिक बनाने से मानवता का हनन होता है। इन बाल-श्रमिकों के प्रति अपना दर्द, सहानभूति व अपनी भावनाओं को प्रकट किया है कवियत्री कर्णिका पाठक ने इस कविता में कौन बाल-श्रमिक होते हैं–

किस गुमनाम अँधेरे में
ऐ भारत तू पनप रहा
जहाँ युवा बल ही शक्ति
जहाँ कैसा अँधेरा गहरा रहा
जिन नन्हों के जीवन में
कोई अक्षर ज्ञान भी न छाए
जिनके कोमल बचपन पर
बस मजबूरी ही लहराए
ऐसे अभागे बचपन ही
बाल-श्रमिक कहलाए।[3]

बलश्रम का एक दबावपूर्ण व्यवहार है, जो अभिभावकों व मालिकों का द्वारा करवाया जाता है। ये गैर-कानूनी कृत्य बच्चों को बड़ों की तरह जीने को मजबूर करता है। इसके कारण बच्चों के जीवन में कई सारी जरूरी चीजों की कमी हो जाती है जैसे उचित शारीरिक वृद्धि, दिमाग का विकास अनुपयुक्त विकास, सामाजिक व वौद्धिक रूप से अस्वास्थ्य कर आदि।

बच्चा जीवन के उन यादगार लम्हों से दूर हो जाते हैं, जो हर एक के जीवन का यादगार व खुशनुमा पल होते हैं। सायरा कुरैशी की कविता 'बालश्रमिक' का जिक्र यहाँ बहुत जरूरी है, जो बताती हैं कि किस तरह बालश्रम जैसे दुखद कृत्य से बच्चों के मीठे सपनों व सुखद कल्पनाओं पर कुठाराघात होता है–

वो कृष्णा
थक जाता होगा सारा दिन
सर पे बोझ उठाता होगा, मेरा घर कब आएगा?
ऐसा ख्वाव सजाता है
चंदू
चाय की दुकान से घर जाता होगा
यकीनन खुद को सबसे बड़ा पाता होगा
जब दो जून की रोटी कमा के लाता होगा।
बेला
का बचपन जल जाता होगा
जब कोई खिलौना छीन लिया जाता होगा।
वर्तन क्यों साफ नहीं हैं
कह के कोई मालिक जब चिल्लाता होगा।[4]

बालश्रम का मुख्य कारण गरीबी है, जो विकासशील देशों में अधिक है।

माता-पिता जब खुद बेरोजगार हैं और उनके पास रोजगार का कोई निश्चित साधन नहीं है, तो ऐसे में माता-पिता कम उम्र में ही बच्चों से काम करवाने लगते हैं। ऐसे में बालश्रम को बढ़ावा मिलता है। एक उन्नत एवं जागरूक समाज के निर्माण में बच्चों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। बाल साहित्यकारों ने अपने साहित्य द्वारा समय-समय पर बच्चों से संबंधित समस्याओं को उठाया है और लोगों का ध्यान आकर्षित किया है।

12 जून को विश्व बालश्रम रोको दिवस होता है। इसी उपलक्ष्य में यह 'बाल-कविता' कहती है, चलो हम भी ऐसे नन्हे-मुन्ने प्यारे-प्यारे बचपन को सवारने में अपनी आवाज उठाएँ और बालश्रम जैसी भयानक सामाजिक बीमारी को जड़ से मिटाने में अपना सहयोग दें–

बच्चे जग की बड़ी नियामत
ऐसी भी क्या कयामत
इनके नन्हे-नन्हे हाथ
करते रहें काम दिन-रात
जूठन माँजें, जूठन खाएँ
खेलकूद मस्ती को भुलाएँ
कभी करें जूते साफ
ये कैसा इन संग इंसाफ?[5]

दुनिया में बालश्रम की 12 प्रतिशत हिस्सेदारी भारत की है। भारत सरकार ने एक अच्छा कदम उठाते हुए एक अच्छी कोशिश की है।

1986 का जो पुराना 'बालश्रम कानून' था, उसमें संशोधन करके और एक तरफ से बालश्रम को पूरी तरह से संशोधित करने की बात कही है। इसमें 14 साल से कम के बच्चे मजदूरी करेंगे तो उसे अपराध माना जाएगा। पुराने कानून में 83 उद्योग प्रक्रियाएँ हैं, जो बच्चे के स्वास्थ्य व उसके लिए खतरनाक हैं, लेकिन नए कानून में बताया गया कि 14 साल के बच्चे

 ISSN 0975-735X

फेमिली इंटरप्राइजेज में काम कर सकते हैं, बशर्ते उनका ध्यान रखा जाए एक विकसित समाज के हर एक नागरिक को और सभी नागरिकों को एक अच्छी शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार होता है। उसको अच्छी स्वास्थ्य सेवाएँ और अपने स्वास्थ्य पर देखभाल करने का अधिकार होता है। सरकार को इन्ही बातों को ध्यान में रखना है।

सरकारी आँकड़ों के अनुसार भारत में 2 करोड़ बाल-श्रमिक हैं, जो कालीन बुनना, हीरा उद्योग, कोयलों की खानों में पत्थर की खदानों में, काँच उद्योग, पीतल उद्योग, सीमेंट उद्योग, दवा उद्योग में लगे हैं। कई बार बच्चों को काम करते-करते यौन-शोषण तक शिकार होना पढ़ता है, उन्हें कई खतरनाक बीमारियों जैसे—टी०वी०, कैंसर आदि का भी सामना करना पढ़ता है। इन्हीं सब परिस्थितियों को वर्तमान कवि अशोक ने अपनी कविता 'अश्कों में खोता बचपन' में वर्णित किया है–

> भूखे पेट तरसती आँखें फिर भी मुस्कराती जिंदगी चमकती आँखें
> कभी किताबों कभी फूलों को बेचने की जुगत में खोता बचपन
> तो कभी लाचारी और अपंगता में खोता बचपन
> क्यों रोती बिलखती जिंदगी, क्यों सड़कों पर खोता बचपन
> धुएँ और शोर के बीच क्यों अश्कों में खोता बचपन![6]

इसी तरह बालश्रम पर अपने विचार सबसे साझा करती उनके दर्द को महसूस करती उनकी मजबूरी को बयाँ करती ये दिल छू लेनेवाली व वास्तविकता प्रकट करनेवाली 'बाल मजदूर' कविता जिसे कवियत्री स्मिता कांबले ने लिखा है–

> होटलों पर काम करते
> सड़कों पर गाड़ी धोते
> भीख माँगते, बोझ ढोते
> कचरा बीनते, कपड़ा बुनते
> गंदे मटमेले चीथड़ों में
> कभी घृणा से, कभी करुणा से
> देखा होगा तुमने मुझे अनजाने में
> पिता की मदद कैसे करूँ?
> माँ की पीड़ा कैसे दूर करूँ?
> बहन को कैसे विदा करूँ?
> भाई को कैसे सक्षम करूँ?
> है यही जीवन का लक्ष्य
> बनूँ परिवार का आधार
> करने अपने सपनों का साकार
> बनना ही होगा मुझे बाल-मजदूर[7]

बाल-मजदूरी या बालश्रम वह घातक रोग है, जिसके पहले अच्छे से समझना होगा, फिर सरकार व समाज का ध्यान इधर खींचना होगा। उनके अनमोल जीवन के अनमोल सपनों को तोड़ने का अधिकार तो स्वयं उनके माता-पिता के पास भी नहीं है। जब तक बालकों के

शारीरिक, मानसिक, नैतिक, सामाजिक व शैक्षिक विकास की जिम्मेदारी माता-पिता व उसका परिवार, हमारी सरकार नहीं उठाएगी, तब तक कुछ नहीं हो सकता। कानून या नियम भी ऐसे बनने चाहिए जो ठीक प्रकार से क्रियान्वित हो सकें और उससे उन्हें लाभ हो सके। इसके लिए सर्वप्रथम शिक्षा पर जोर होना चाहिए। उचित शैक्षिक वातावरण की उपलब्ध कराना पड़ेगा, केवल स्कूल में दाखिला दिलाने से भी काम नहीं चलेगा। बच्चे को नियमित स्कूल भेजने की जिम्मेदारी अभिभावकों को निभानी पड़ेगी। देश से बेरोजगारी को खत्म करने के लिए उचित प्रयास भी बालश्रम पर रोक लगा पाएँगे।

बाल-मजदूरी को रोकने के लिए सबसे अहम व महत्त्वपूर्ण उपाय है, बालश्रम के खिलाफ जागरूकता फैलाना। प्रत्येक व्यक्ति को इस बात के लिए दृढ़निश्चयी होना पड़ेगा कि बच्चा चाहे स्वयं का हो या दूसरे का, उसे समान भाव से देखना होगा। बच्चे नाजुक फूल हैं, ईश्वर का रूप हैं। सच्चाई और ईमानदारी का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हैं। मन के उज्ज्वल बच्चों को निर्मल रखना सभी का दायित्व है। उनकी जिंदगी में अनचीन्हा संघर्ष जन्म न ले सके, इसके लिए उनकी उचित देखभाल बहुत जरूरी है। कभी-कभी माता पिता अपनी लापरवाही के कारण भी उनके लिए जटिल मार्ग का चयन अनजाने में कर बैठते हैं। उनके लिए उन्हें स्वयं भी शिक्षित व जागरूक होना पड़ेगा ।

संदर्भ

1. श्रम का महत्त्व ऐसे हिंदी डाट कॉम
2. कविता संख्या 1 कार्णिका पाठक : दीपावली हिंदी वेबसाइट
3. कविता संख्या 1 हिंद पत्रिका डाट कॉम
4. कविता संख्या 3 कर्णिका पाठक हिंदी वेबसाइट
5. कविता संख्या 4 सायरा कुरैशी : 4 जव 40 किड्स पोर्टल फोर पैरेंट्स
6. कविता संख्या 5 अशोककुमार हिंदी वन इंडिया डाट कॉम
7. कविता संख्या 6 स्मिता कांबले : कन्टेंट राइटर डाट इन

पत्नी श्री अनुराग सिंह
द्वारा श्री डी॰पी॰ त्रिपाठी
तालग्राम तिराहा के निकट
(जयप्रकाश त्रिपाठी हॉस्पिटल)
छिबरामऊ, कन्नौज 209721 **(उ॰प्र॰)**
7007165591

समाज और राजनीति का बहुरंगी आईना 'चरैवेति-चरैवेति'

डॉ॰ वंदना श्रीवास्तव
एसो॰ प्रोफेसर, हिंदी विभाग
श्री जे॰एन॰पी॰जी॰ कॉलेज, लखनऊ (उ॰प्र॰)

स्मृति एक सुरंग-सी दिखती है
जिसमें करते हैं, प्रवेश तो
घनीभूत अँधेरे से होती है मुठभेड़।[1]

स्मृतियों की अँधेरी सुरंग में अपने को ढूँढना साहस और क्षमता की माँग करता है। प्रख्यात आलोचक बलीसिंह के शब्दों को यदि उधार लेकर कहें तो हम कहेंगे कि 'स्मृति मनुष्य को मिला हुआ एक नायाब तोहफा है। उसके बिना 'सब सून' है।' ये स्मृतियाँ या संस्मरणात्मक अनुभव रोचक तो होते ही हैं, किंतु आज के दौर में इनका महत्त्व अकारण नहीं है। जिसे हम अनुभव या अनुभूत सत्य कहते हैं, वह वास्तव में एक संस्मरण ही है। किसी भी विधा में लिखी गई संस्मरणात्मक रचना में महत्त्वपूर्ण यह होता है कि लेखक उसमें महत्त्व किसे देता है—व्यक्ति अस्मिता को या अन्य अस्मिताओं को या फिर दोनों को अर्थात् निजता और सार्वजनिक निजता दोनों ही उसके रचनाक्रम में संतुलन साधकर चलती हैं। संतुलन साधने का यही प्रयास हमें दिखाई देता है—'चरैवेति-चरैवेति' पुस्तक में। इस प्रयास की महत्ता इसलिए भी बढ़ जाती है, क्योंकि इसका लेखन एक स्वनामधन्य सफल राजनेता और वर्तमान में देश के सबसे बड़े राज्य उ॰प्र॰ के राज्यपाल के पद पर आसीन एक ऐसे व्यक्ति का प्रयास है, जो सीधे तौर पर जनता से जुड़ा हुआ है।

मराठी दैनिक 'सकाल' के लिए मराठी भाषा में 8 फरवरी 2014 से लेकर 14 फरवरी 2016 के मध्य लिखे गए 27 संस्मरणात्मक लेखों का पुस्तकाकार रूप है 'चरैवेति-चरैवेति'। इसका हिंदी अनुवाद नवभारत टाइम्स मुंबई की पूर्व राजनीतिक संपादक श्री कुमुद संघवी चावरे ने अत्यंत कुशलतापूर्वक किया है। इस रचना में श्री राम नाईक जी के जीवन के विभिन्न पड़ाव हैं और हर पड़ाव उनके जीवन की विकासयात्रा को ही नहीं उनकी प्रकृति को भी द्योतित करता है। पुस्तक की भूमिका के रूप में लिखे गए 'मन की बात' में राम नाईक जी अपने रचनात्मक लक्ष्य की ओर संकेत करते हैं कि 'अतीत की यादें ताजा करूँगा। हो सके तो भविष्य की ओर निगाहें टिकाने की कोशिश करूँगा। किस्सा-दर-किस्सा पाठकों के समक्ष जीवन की परतें खोलता जाऊँगा।'[2] अतीत पर दृष्टि डालकर भविष्य के निर्माण के लिए उत्सुक इस निरहंकारी निरभिमानी सरलहृदय लेखक की यह शंका कि 'मेरा लिखा क्या लोग पढ़ना पसंद करेंगे' छह महीने में ही पुस्तक के पुनर्मुद्रण के निर्मूल सिद्ध कर दी।

'चरैवेति' जिसके जीवन का मूल मंत्र रहा, उसने यदि अपनी पुस्तक के लिए इस नाम में सार्थकता देखी तो यह स्वाभाविक ही है। यह पुस्तक मेरे समक्ष है और जब मैं इस पुस्तक पर शोध पत्र लिखने का प्रयास कर रही हूँ, तो एक बड़ा प्रश्न मेरे सामने आ खड़ा हुआ है कि मैं किस पर लिखूँ इस 'सक्रिय राज्यपाल' के कार्यों पर, व्यक्तित्व या चरित्र पर, राजनीति या विचारधारा पर, चिंतन या प्रेरणा पर, रचना-विधान या शिल्प पर अथवा इस पुस्तक से आनेवाली पीढ़ी को मिलनेवाले दिशा-निर्देश एवं मार्गदर्शन पर। आखिर इस अद्‌भुत रूप से संतुलित व्यक्तित्व की इस संतुलित रचना की समीक्षा भी उतना ही संतुलित होनी चाहिए।

अपनी अथक् व अनवरत जनसेवा और संवेदनशीलता के बूते पर संगठन, विधानसभा व संसद में अपनी सामर्थ्य सिद्ध करनेवाले राम नाईक जी के विचारों में व्यापकता व गहराई है। उनकी सामाजिक प्रतिबद्धता और विशेष रचनात्मक तेवर (यह रचनात्मकता इस पुस्तक के संबंध में तो है ही, जनजीवन की समस्याओं के हल में भी है) उन्हें एक खास अंदाज देते हैं। यह बात उनके इन संस्मरणात्मक लेखों से जानी जा सकती है। इन लेखों में विचारों की गहनता, जीवन की गंभीरता, चिंतन की व्यापकता के साथ-साथ जीवन का कटु यथार्थ भी है, जो हमारे दिल के अंतर्भावों को कुरेदता है, तो दूसरी तरफ जीवन के वे मुधर क्षण भी है, जो घायल, पीड़ित मन को शीतल रुई के फाहों-सा सुकून देते हैं।

श्री राम नाईक जी में एक प्रकार की वैचारिक ऊर्जा है। उनमें जहाँ प्रतिरोध का स्वर है, वहीं आशा की एक नई किरण भी है। वे स्पष्ट रूप से आम जनता से जुड़े हैं, उनके संघर्षों में उनके साथ हैं। अपने समय और समाज के लगभग हर छोटे-बड़े प्रश्नों, संघर्षों और पीड़ा को वे सही कोण से एवं व्यापक संवेदन के स्तर पर देखते-समझते हैं। यही कारण है कि उन्होंने निम्न, मध्यम वर्ग, मछुआरों, कुष्ठ रोगियों स्त्रियों, दैनिक यात्रियों आदि की समस्याओं को अच्छी तरह जानकर परस्पर उन्हें सुलझाने का प्रयास किया और उसमें सफल भी हुए। खाड़ी में स्थित मनोरी-गोराई गाँव में 'बेस्ट' की लाँच की सेवा शुरू कर आवागमन को सुरक्षित व सुगम बनाना हो या 'गोराई जल योजना' के माध्यम से समुद्र में पाइप डालकर गाँव में पानी की आपूर्ति करवाना, ओएनजीसी से समुद्र में टावर बनवाकर अर्नाला किले को बिजली पहुँचाना हो या भारत पेट्रोलियम से सातपाटी में बाँध बनवाकर मछुआरों को सुरक्षा देना, लोकल ट्रेन में सामान का डिब्बा महिलाओं के लिए आरक्षित करवाने से लेकर स्वच्छ ईंधन के लिए रसोई गैस की प्रतीक्षा-सूची समाप्त करने में सफलता प्राप्त करना, दहिसर, शांतिनगर में पहला मोबाइल शौचालय बनवाना आदि उदाहरण मात्र हैं। ऐसा करना उनके लिए इसीलिए संभव हो पाता है, क्योंकि उन्हें अपने अधिकारों का ज्ञान, कर्त्तव्यों की समझ और जिम्मेदारियों का भान है। वे यह सिद्ध करते हैं कि चाहे जितना ही संघर्ष क्यों न करना पड़े, अंततः विजय सत्य की ही होती है।

श्री राम नाईक के लिए राष्ट्रभक्ति ही भगवान की भक्ति है। राष्ट्रवाद ही उनका धर्म है। पं॰ दीनदयाल उपाध्याय मानते थे कि अगर राष्ट्रीयता की भावना कमजोर पड़ गई तो प्रजातंत्र नहीं चल सकता। यदि राष्ट्रीयता ठीक है तो चल सकता है। पूँजीवाद चल सकता है हरेक वाद चल सकता है। सभी गड़बड़ियाँ राष्ट्र-भावना के अभाव के कारण होती हैं। राष्ट्र-भावना रहेगी तो पूँजीवादी भी देशहित में निर्णय लेगा। इसी विचारधारा के समर्थक श्री राम नाईक भी हैं। उनका देशप्रेम ही देश पर मर मिटनेवाले शहीदों के प्रति ऋण को सदैव स्मरण रखता है और श्रद्धांजलि

स्वरूप वे अंडमान की सेल्युलर जेल में अखंड स्वतंत्रता ज्योति, अमृतसर के जलियाँवाला बाग में अखंड ज्योति, लखनऊ में भारतीय सेना के मध्यकमान के परमवीर चक्र प्राप्त तीन वीरों के भित्ति चित्र स्मारक बनवाने में प्राणपण से जुट जाते हैं और सफल भी होते हैं। संसद सत्र में राष्ट्रगान व राष्ट्रगीत का गायन आरंभ करवाना उनकी देशभक्ति का ही तो परिचायक है। देश उनके लिए सबसे ऊपर है। यही कारण है कि वे मुस्लिम समाज के आयोजन में उनकी दी हुई टोपी पहनते हैं तो गुरुद्वारे में सिर पर रूमाल से ढक लेते हैं, तो कभी भाईंदर से आगे के उत्तान क्षेत्र में हिंदू-ईसाई तनाव को समाप्त कर भाईचारा कायम करते हैं। श्री राम नाईक यह भली प्रकार जानते हैं कि जाति-धर्म के झगड़ों में फँसकर हम देश को नुकसान पहँचा रहे हैं। सौमनस्य, सहिष्णुता के लिए प्रयासरत अपने निजी हित की बलि देकर देश व समाज का हित करनेवाले रहनुमा के रूप में वे सामने आते हैं।

श्री राम नाईक की इस पुस्तक में उनकी जीवन-यात्रा में आए अनेक व्यक्तियों के बारे में सहेजे गए उनके अनुभव हैं। इसमें सूर्य नमस्कार की शिक्षा व जीवन में अनुशासन का पाठ पढ़ाने वाले उनके पिता श्री राम नाईक मास्टर, गदिमा, राजाभाऊ चितले, हशु आडवाड़ी, श्री कनिटकर, श्री राम कापसे आदि की स्मृति वास्तव में अनेक संघर्षरत अस्मिताओं की स्मृति है, जिनकी सजीव उपस्थिति इस रचना में है। इस रचना में कई ऐसे प्रसंग हैं, जो पाठक को भिन्न-भिन्न भावभूमियों में ले जाते हैं। उत्तम पाचारण जैसे सुयोग्य, कुशल मूर्तिकार को फुटपाथ से उठाकर उसे उसका योग्य स्थान दिलाना हो या उनके रा॰स्व॰सं॰ में काम करने के अनुभव या फिर संगठन में कार्यकर्ता, फिर अध्यक्ष, तत्पश्चात् विधायक या सांसद के रूप में कार्य करने के प्रसंग। ये प्रसंग रामनाइक जी के अनुशासित, लगनशील, तेजस्वी व्यक्तित्व को तो दर्शाते ही हैं, पाठकों को कम जाने हुए सामाजिक और सांस्थानिक सत्य की ओर ले जाते हैं। वे जीवन, समाज और राजनीति के तमाम मुद्दों पर, उसके उजले-स्याह पक्षों पर बहुत बेबाकी से अपनी बात रखते हैं। उनके संस्मरण राजनीतिक सड़ांधा पर खुलकर प्रहार करते हैं और अपना वैचारिक पक्ष सँजोये रहते हैं। अपने समय के महत्त्वपूर्ण नेताओं मणिशंकर अय्यर, मनमोहन सिंह आदि की भूमिका का निष्पक्ष व तटस्थ विश्लेषण श्री रामनाईक जी के साहस का परिचायक है। श्री रामनाईक के ये संस्मरण समाज और राजनीति के वास्तविक चेहरे को पाठक के समक्ष रखते हुए उसकी संवदेना को आंदोलित करते हैं। इस पुस्तक के माध्यम से वे वास्तव में यह बता रहे हैं कि एक राजनेता की समाज और देशहित में क्या भूमिका होनी चाहिए। सुशासन वास्तव में कैसे आ सकता है! इसका चित्रण हमें इस पुस्तक में मिलता है।

यह पुस्तक एक परिपक्व, अनुभवी राजनेता की ऐसी अभिव्यक्ति है, जिसमें जीवन तो है ही जीवन-दर्शन भी है। जीवन एक निरंतर चलनेवाली यात्रा है, जिसमें समय-समय पर यात्री मिलते रहते हैं और व्यक्तित्व में कुछ अपना दाय जोड़कर चले जाते हैं। अर्थात् किसी का भी व्यक्तित्व उसे मिले जीवनानुभवों का ही समुच्चय होता है। श्री रामनाईक जी भी इसे स्वीकार करते हैं कि 'किसी एक चीज या बात से थोड़ी न इंसान का व्यक्तित्व या जीवन बनता बिगड़ता है। कभी पिता समान बुजुर्गों ने, कभी सहयोगियों ने तो कभी एकाध अपरिचित आम चेहरे ने मुझे सबक दिए।'[3] सहज, सरल, विनम्र श्री रामनाईक अपने जीवन की किसी भी उपलब्धि या सफलता का श्रेय स्वयं नहीं लेते। उनके स्वस्थ व क्रियाशील रहने, कैंसर तक से लड़कर विजयी होने का श्रेय

यदि उनके पिता का है, जिन्होंने उन्हें 'सूर्य नमस्कार' एवं अनुशासन का पाठ पढ़ाया तो समाज व देश का ऋण दोनों हाथों से चुकाने की प्रेरणा उनके मित्रों ने दी। यदि वे निश्चिंत भाव से समाज व देश की सेवा कर सके तो इसका श्रेय वे अपनी पत्नी श्रीमती कुंदा नाईक को देने से नहीं हिचकिचाते, जिन्होंने परिवार के समस्त उत्तरदायित्व का वहन कर उन्हें मुक्त रखा और आर्थिक स्थिरता के लिए स्वयं नौकरी की। वे स्वीकार करते हैं कि 'परिवार का प्रमुख मैं था, पर घर-संसार चलाने की पूरी जिम्मेदारी बड़ी खुशी से उसने अपने सिर पर लेकर सामाजिक कार्य करने के लिए मुझे मुक्त किया और ताकत भी प्रदान की।[4] उनकी पुत्रियों, मित्रों एवं लोकल ट्रेन के सहयात्रियों ने उन्हें समाज की समस्याओं की जानकारी देने के साथ ही उसे समझने और उनका निराकरण करने में सहायता दी। यहाँ तक कि निरंतर बदलनेवाले आशियानों ने (80 वर्ष के जीवन में 20 आशियाने) उन्हें कुछ नया सिखाया, नए लोगों से जोड़ा और मिट्टी से भी सोना निकालने की सलाहियत उन्हें दी। पानी परिषद् जैसे अधिवेशनों ने उन्हें समान ध्येय के लिए सबको, यहाँ तक कि विरोधियों को भी साथ लेकर काम करने की शक्ति एवं कला को आत्मसात करना सिखाया।

श्री रामनाईक ने अपने जीवन-अनुभवों से कुछ निष्कर्ष निकाले हैं, जिनका वह सूत्र वाक्य या आदर्श वाक्य की तरह अपने जीवन में प्रयोग करते हैं और दूसरों को भी अपनाने की सलाह देते हैं। कुछ महत्त्वपूर्ण सूत्र हैं—जीवन के कोष में असंभव का शब्द नहीं है, समयसूचकता, कल्पनाशीलता और सब-कुछ संभव होने की सोच सफलता का आधार है, बिना घबराए शांत रहकर सोचते हैं तो राह मिल जाती है, हर बार किस्मत साथ नहीं देगी, हमें स्वयं मेहनत से प्रयत्न करते रहना होगा, यश प्राप्ति के लिए श्रम के अलावा कोई विकल्प नहीं, राजनीति में आपको आलोचना एवं प्रशंसा दोनों के लिए तैयार रहना पड़ता है, आदि।

श्री रामनाईक की जीवन-यात्रा के साथ ही पाठक भी सहयात्री बन उनके साथ ही हँसता है, रोता है, खुशी से चिल्लाता है, तो कभी नारे लगाता है। वहीं दूसरी ओर यह जीवन-यात्रा हमें राजनीतिक इतिहास की भी यात्रा करवाती है, जिसका संकेत गोवा की राज्यपाल महामहिम मृदुला सिन्हा जी ने पुस्तक की भूमिका में ही दिया है कि 'इस पुस्तक को पाठक इतिहास की पुस्तक के रूप में भी पढ़ सकते हैं। अधिकांश पाठकों को न केवल मुंबई, महाराष्ट्र अपितु पिछले पचास वर्षों के भारतीय सामाजिक, राजनीतिक इतिहास को पढ़ने और जानने का अवसर मिलेगा।[5] पुस्तक का यह पक्ष इस रचना को एक नई ऊँचाई देता है।

'चरैवेति-चरैवेति' से गुजरते हुए एहसास होता है कि इसमें शिल्प-तत्त्व का कोई विशेष बंधन नहीं है, बल्कि मन की बात कहने की व्याकुलता ही शिल्प को नवीनता प्रदान करती है। मूलत: साहित्यकार न होना ही श्री रामनाईक जी की खासियत बन जाती है। लेखक न होने के कारण उनके पास शिल्प का बंधन नहीं है और वे स्वतंत्र सहजभाव से अपने हृदय के भाव व्यक्त करने की छूट लेते हैं। उनकी संवेदना की तलस्पर्शी धार पाठक के मन को छू लेने की असीम शक्ति रखती है। सामाजिक परिवर्तन में कारगर भूमिका निभानेवाले श्री रामनाईक की तकनीक में संवेदना, आस्था, विश्वास, मूल्यधर्मिता और सामाजिक सरोकारों को स्पर्श करने की क्षमता है। लेखक ने अपने जीवनानुभवों से उभरती संवेदना को कुरेदने की यथासंभव सफल कोशिश की है। उनमें गहराई तो है, पर फैलाव नहीं है और यही संभवत: इस पुस्तक की सबसे बड़ी खासियत है।

ISSN 0975-735X

लेखक बड़ी स्पष्टता, तटस्थता और ईमानदारी के साथ अपनी बात कहता है। इस रचना में मर्मस्पर्शी संवेदनाओं का रंग विचारों के तेवर और एक नई भाषा-शैली मिलती है। उनकी भाषा में सहजता और संप्रेषणीयता है। अपनी सादगी के कारण यह पुस्तक बिल्कुल अलग नजर आती है।

राजनेता या पार्टी की विचारधारा से सहमति या असहमति, प्रशंसा या विरोध, तर्क-वितर्क किसी रचना के मूल्यांकन के आधार नहीं हो सकते। स्नेह, सद्भव, समता और विश्वबधुंत्व की अवधारणाओं को पुष्ट करनेवाली रचना ही वास्तव में साहित्य कहलाने की अधिकारिणी है। जीवन की अवधारणा में रचनात्मक हस्तक्षेप करने की क्षमता सिर्फ और सिर्फ उन्हीं व्यक्तियों में होती है, जो 'स्व' के घेरे को तोड़कर 'सर्व' के लिए समर्पित हो जाते हैं। ऐसे ही 'सर्व' के लिए समर्पित व्यक्तित्व हैं श्री रामनाईक और यह पुस्तक अपने संस्मरणात्मक लेखों से श्री रामनाईक के सघंर्षशील जीवन, उनके देश व समाज के लिए किए गए प्रयासों को मार्गदर्शक रूप में हमारे सामने लेकर आती है। इसीलिए इस पुस्तक की अनुवादक श्रीमती कुमुद संघवी चावरे की दृष्टि में लेखक की 'आधी सदी की जीवनयात्रा सकारात्मकता एवं साफ-सुथरी राजनीति का आईना है।'[6] वास्तव में उनकी यह रचना प्रतिरोध और संघर्ष के माध्यम से सकारात्मक परिवर्तन लाने की अथक् कोशिशों को समर्पित है, जो उनकी निष्ठा और प्रतिबद्धता के साथ ही समन्वयात्मक सोच को भी रूपायित करती है। वे समय के साथ चलते हुए समय से टकराने का साहस रखते हैं। राजनेता होते हुए भी उनके पास लेखक के लिए आवश्यक अनुभव, संवेदन दृष्टि और भाषा है। उनमें सलाहियत है कि उन्हें कब किसी चीज का प्रयोग कब और कहाँ करना है।

राजनेता श्री रामनाईक की लेखक के रूप में अपनी सीमाएँ हैं, जो मलूत: एक राजनीतिक व्यक्ति होने के कारण स्वाभाविक भी है। अपनी इन सीमाओं के साथ ही यह पुस्तक अपने समय, समाज और राजनीति का बहुरंगी आईना है। इसमें जीवन और जगत् के खूबसूरत और मनोहारी रूप भी हैं, प्रेम, विश्वास, सद्भाव और भाईचारा भी है तो द्वेष, घृणा, कटुता भी है। इनमें क्षुद्र नेताओं और भ्रष्टाचार तथा बेईमानी के दलदल में डूबे वर्ग की कुटिलताएँ और मक्कारियाँ भी हैं और इन सबके साथ एक सार्थक आक्रोश और छटपटाहट भी है। इनमें रोशनी की तलाश भी है, सुबह की स्वर्णिम किरणों का गुणगान और उनका स्वागत भी है और मशाल जलाने का संकल्प भी। विस्तार-भय से लेखनी को विराम देने से पहले बस इतना ही कहना चाहूँगी कि युगीन चेतना को प्रबुद्ध करने के लिए एवं राजनीति को सकारात्मक दिशा देने के लिए ऐसा लेखन आवश्यक ही नहीं, अपरिहार्य भी है।

संदर्भ

1. नवलगढ़-देवदारू-सी लंबी, गहरी सागर सी, काव्य-संग्रह, कवि उद्भ्रांत
2. चरैवेति चरैवेति, भूमिका, श्री रामनाईक
3. चरैवेति चरैवेति, श्री रामनाईक, पृ॰ 12
4. चरैवेति चरैवेति, श्री रामनाईक, पृ॰ 33
5. चरैवेति चरैवेति, श्री रामनाईक, पृ॰ 09
6. चरैवेति चरैवेति, श्री रामनाईक, पृ॰ 16

रवींद्र कालिया के उन्यास 'ए॰बी॰सी॰डी॰' में आधुनिक बोध

अमनजोत कौर, शोधार्थी (हिंदी विभाग)
पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला

आज साहित्य जीवन के समान ही बहुमुखी और जटिल हो गया है, क्योंकि मानव-जीवन की अभिव्यक्ति ही इसका लक्ष्य है। साहित्य समाज का दर्पण होता है, जिसमें समाज की सच्ची झलक मिलती है। इसलिए यह स्वाभाविक है कि साहित्यकार अपने समय में हो रहे परिवर्तनों के प्रति सचेत रहे। जैसे-जैसे अपने युग से प्रभावित होकर मनुष्य के चिंतन में परिवर्तन आया, वैसे-वैसे ही साहित्य का स्वरूप भी परिवर्तित होता गया। इस तरह आधुनिकता का साहित्य से सीधा और घनिष्ठ संबंध है। हिंदी साहित्य में आधुकिनता, आधुनिक-बोध, समकालीनता आदि की चर्चा बीसवीं शताब्दी के छठे और सातवें दशक में होने लगी। आधुनिककाल में पुरानी परंपराएँ टूटती गईं और धर्म, दर्शन, साहित्य आदि सभी के प्रति नए दृष्टिकोण का आविर्भाव हुआ।

आधुनिकता का आरंभ 18वीं शताब्दी में औद्योगीकरण, पूँजीवादी व्यवस्था, अस्तित्ववादी दर्शन, विकासवाद, मनोविश्लेषणवाद इत्यादि के परिणामस्वरूप पश्चिम में हुआ और भारत में बीसवीं शताब्दी के आरंभ में हुआ। आधुनिकता क्या है और इसके प्रमुख लक्ष्ण क्या हैं, इसे जाने-समझे बिना यह जानना असंभव है कि आधुनिकता ने आज साहित्य को किस तरह प्रभावित किया है। आधुनिकता का सामान्य अर्थ है—प्रत्येक विषयवस्तु में नयापन। वास्तव में यह नयापन विचारों के नएपन का द्योतक है, जो बदलते हुए परिवेश के अनुरूप निरंतर हमारे विचारों में गतिशील प्रक्रिया के रूप में अग्रसर होता है। विभिन्न साहित्य चिंतकों ने अपने-अपने ढंग से इसे परिभाषित करने का प्रयास किया। रामधारीसिंह दिनकर के अनुसार, 'जिसे हम आधुनिकता कहते हैं, वह एक प्रक्रिया का नाम है। यह प्रक्रिया अंधविश्वास से बाहर निकलने की प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया नैतिकता में उदारता बरतने की प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया बुद्धिवादी बनने की प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया धर्म के सही रूप पर पहुँचने की प्रक्रिया है।' (आधुनिक बोध, पृ॰ 37) डॉ॰ गंगाप्रसाद विमल आधुनिकता को विकासशील दृष्टिकोण मानते हुए लिखते हैं—'आधुनिकता आपने आपमें कोई मनगढ़ंत मूल्य या एक स्थिर बिंदु पर टिका मानदंड नहीं है। यह तो एक विकासशील दृष्टिकोण है, एक गतिशील सांस्कृतिक सत्यता है। एक लोचदार जीवन-दृष्टि है या युगबोध से निर्मित एक सशक्त प्रवृत्ति है।' (आधुनिकता : साहित्य के संदर्भ में, पृ॰ 46)

अत: आधुनिकता मनुष्य की मानसिकता में परिवेश के अनुरूप होनेवाला सतत् क्रियाशील परिवर्तन है। यह जीवंत गत्यात्मक प्रक्रिया है, जो हमें उन्मुक्तता की ओर अग्रसर करती है। इसका संबंध किसी समय-विशेष से न होकर वर्तमान से है। यह एक ऐसी जीवन-दृष्टि है, जो पुरातन रूढ़ियों, मूल्यों व विचारों को अंतर्विवेक से समझते हुए तर्क की कसौटी पर परखती है और नवीन मूल्यों को ग्रहण करती है। 'ए॰बी॰सी॰डी॰' रवींद्र कालिया का एक बेहतरीन लघु उपन्यास

 ISSN 0975-735X

है। यह पश्चिम में रह रहे प्रवासी भारतीयों के सांस्कृतिक संकट से हमारा परिचय कराता है। उपन्यास में उद्घाटित पुरानी और नई पीढ़ी का द्वंद्व आधुनिकता की परिणतियों को खोलकर रख देता है। उपन्यासकार ने इस नितांत नए कथ्य को तर्क की तुला पर तौलते हुए रचनात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है। जीवन की बदलती हुई संकल्पनाओं के प्रति नवीन दृष्टिकोण अपनाना आधुनिकता का प्रमुख लक्षण है। आज शैक्षिक विकास के कारण नई पीढ़ी अपनी प्राचीन मान्यताओं, परंपराओं और मूल्यों पर आँख मूँदकर विश्वास नहीं करती, बल्कि प्रत्येक बात को तर्क की कसौटी पर कसकर ही उसका परित्याग या ग्रहण करती है। यह प्रस्तुत उपन्यास का केंद्रीय विषय है। उपन्यास में केनेडा में रह रहे भारतीय मूल के हरदयाल और शील की दो बेटियाँ शीनी और नेहा वर्तमान युवापीढ़ी की नई सोच का प्रतिनिधित्व करती है। उनकी प्रश्नाकूल मानसिकता अभिभावकों की परंपरावादी सोच को नकारती है और उनके सांस्कृतिक दृष्टिकोण से वह तालमेल नहीं बिठा पाती। शीनी के बुआयफ्रेंड निक के उनके घर आने पर हरदयाल क्रोधपूर्वक कहता है–'मैं इस हरामजादे गोरे के हाथ का बना खाना नहीं खाऊँगा। मेरी नजर में तमाम गोरे कोढ़ी हैं। मैं इनसे नफरत करता हूँ।' 'ओ गॉड!' नेहा ने अपना सिर पीट लिया, 'आपको इस मुल्क में रहने का कोई हक्क नहीं है। आप इसी क्षण वहीं लौट जाएँ जहाँ से आए थे।' (ए॰बी॰सी॰डी॰, पृ॰ 77) इस तरह आज पुरानी और नई पीढ़ी में सोच की टकराहट के कारण द्वंद्व की स्थिति बनी हुई है।

भारतीय संस्कृति के अनुरूप मुक्त-यौनाचार व विवाहपूर्व यौन-संबंधों को हेय दृष्टि से देखा जाता है। इसके विपरीत पश्चिम में इसे मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति माना जाता है। वह यौनगत नैतिकता में विश्वास नहीं रखते। परंतु आज पाश्चात्यकरण के प्रभाववश प्रवासी भारतीय युवावर्ग के साथ-साथ भारतीय शिक्षित युवावर्ग की दृष्टि में ऐसे परंपरागत मूल्यों व नैतिकताओं की अवधारणाएँ परिवर्तित हो रही हैं। ऐसे उत्पन्न नई दृष्टि ने श्लीलता-अश्लीलता के प्रश्न को नया रूप दे दिया है। यह उपन्यास का विवादित विषय है। शीनी अपनी माँ से कहती है–'माँ मेरी समझ में नहीं आता कि हिंदुस्तानी लोग अपनी बेटियों के यौन-जीवन के प्रति इतना क्रूर क्यों हो जाते हैं। अपनी बेटी की उम्र तक छह बच्चे पैदा करने वाले माँ-बाप भी बेटी को दिमागी तौर पर चेस्टिटी बेल्ट पहनाते हैं।' (ए॰बी॰सी॰डी॰, पृ॰ 14) स्पष्टत: आधुनिक प्रभाव ने मनुष्य के यौन-संबंधी दृष्टिकोण में व्यापक परिवर्तन ला दिया है।

आधुनिकता के इस दौर में पारिवारिक बिखराव व तलाक की बढ़ रही प्रवृत्ति को भी उपन्यासकार ने उद्घाटित किया है। भारतीय संस्कृति में विवाह को जन्म-जन्मांतर का संबंध माना जाता है। तलाक को आज भी हमारे यहाँ अच्छा नहीं समझा जाता, जबकि पश्चिम में छोटी-छोटी बातों को लेकर तलाक हो जाना एक साधारण बात है। परंतु आज आधुनिक बौद्धिकता व वैचारिकता के परिणामस्वरूप भारत में विवाह-संबंधी रूढ़ हो चुकी धारणा में कुछ परिवर्तन आया है। आज का शिक्षित मनुष्य अगर दांपत्य जीवन में खुश नहीं है तो तलाक लेकर अपने जीवन को एक नया मौका देने का पूर्ण अधिकार समझता है। उपन्यास में शीनी अपनी महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति व स्वेच्छा से जीवन जीने के कारण अपने पति निक से अलग हो जाने का निर्णय करती है। नेहा इस आधुनिकतावादी सोच का समर्थन करते हुए अपनी माँ से कहती है–'आप नाहक ही इतनी पीड़ा पा रहे हैं।' नेहा ने कार स्टार्ट की 'अव्वल तो शीनी कोई गैरकानूनी काम करने नहीं जा रही है। अगर उसे लगता है कि उसकी बेमेल शादी हो गई थी तो उसे भूल सुधार का पूरा हक

है।' (ए॰बी॰सी॰डी॰, पृ॰ 41)

आधुनिक चिंतन ने नारी की मानसिकता को प्रभावित किया है। आज की शिक्षित नारी घर की चारदीवारी में बंद होकर अपनी स्वतंत्र पहचान बनाने के प्रति सजग है। स्वतंत्र अस्तित्व की स्थापना आधुनिकता का प्रमुख लक्षण है। उपन्यास में शीनी और नेहा का व्यक्तित्व ऐसा ही है। जब स्वामी अपूर्वानंद शीनी के भावी जीवन-संबंधी भविष्यवाणी करते हैं, तो वह सुनकर शीनी कहती है–'स्वामी जी, मुझे डराइए नहीं। मैं अपनी तरह से जिंदा रहना चाहती हूँ।' (ए॰बी॰सी॰डी॰, पृ॰ 77) स्पष्ट है कि आधुनिक चिंतन ने नारी को वस्तु से व्यक्ति बना दिया है।

आधुनिक परिवेश में आर्थिक समृद्धि को महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। मनुष्य का मूल्यांकन इसी मानदंड पर होने लगा है। आज मनुष्य आर्थिक रूप से समृद्ध होने के लिए हरसंभव प्रयत्न करता है। इस दौड़ में उससे कई बार सामाजिक व नैतिक मूल्यों की अवहेलना हो जाती है। उपन्यास में शीनी और शील के वार्तालाप में इसी तथ्य का संकेत मिलता है। शीनी कहती है–'माँ तुम जैसे जानती नहीं कि ऋषि-मुनियों की धरती से छल-छद्म से कितने लोग यहाँ आते हैं। कोई सगी बहन से फर्जी शादी रचाकर चला आता है, तो कोई बहू से। जितनी झूठी शादियाँ और झूठे तालाक यहाँ के हिंदुस्तानियों के बीच होते हैं, किसी और मुल्क के लोगों के न होते होंगे।' (ए॰बी॰सी॰डी॰, पृ॰ 12) इस तरह आर्थिक समृद्धि हेतु मूल्यों का ह्रास होना एक चिंतनीय विषय है, जिस ओर उपन्यासकार ने संकेत किया है।

समाज में प्रचलित रूढ़ियों के विरुद्ध विद्रोह करते हुए जीवन के विकास के लिए नवीन दृष्टिकोण अपनाना आधुनिकता का लक्षण है। उपन्यास में पुरानी व नई पीढ़ी के द्वंद्व से यह तथ्य प्रत्यक्ष रूप से उभरकर सामने आता है। जब हरदयाल और शील अपनी बेटी शीनी के दांपत्य जीवन को बचाने के लिए विविध प्रकार के कर्मकांडों का सहारा लेते हैं तो नेहा उनसे कहती है–'आपका मन रखने के लिए आपके साथ चल रही हूँ वर्ना मैं यह मानने को कतई तैयार नहीं कि बंदर और कौए शीनी का दांपत्य बचा लेंगे।' (ए॰बी॰सी॰डी॰, पृ॰ 37)

अत: रचनाकार ने 'जेनरेशन गैप' व पुरानी-नई पीढ़ी में उत्पन्न हो रहे सांस्कृतिक संकट को आधार बनाते हुए कथा का ताना-बाना इस प्रकार बुना है, जिसमें आधुनिकता के लक्षण स्वत: उभर आते हैं। उपन्यास में पीढ़ीगत अंतराल, आत्मकेंद्रीयता, अजनबीपन, मूल्य संकट और जीवनमूल्यों में आए बदलाव तथा अस्तित्वबोध इत्यादि आधुनिकता के विविध रूपों का यथार्थ प्रस्तुतिकरण हुआ है। इसके साथ ही उपन्यासकार ने समन्वित दृष्टिकोण अपनाते हुए परोक्ष रूप से यह संदेश दिया है कि आज आवश्यकता इस बात की है कि पुरानी पीढ़ी को इस बदलते हुए परिप्रेक्ष्य में पश्चिमी देशों की संस्कृति को अपसंस्कृति न समझकर, उनकी संस्कृति के सर्वश्रेष्ठ तत्त्वों को अपनाना चाहिए और नई पीढ़ी के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलना चाहिए। यह समन्वित दृष्टिकोण अपनाने से भारतीय आधुनिकता की संकल्पना पूर्णत: साकार हो सकेगी।

संदर्भ

1. रवींद्र कालिया, ए॰बी॰सी॰डी॰ (उपन्यास), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004
2. रामधारी सिंह 'दिनकर', आधुनिक बोध, पंजाबी पुस्तक भंडार, दिल्ली, 1973
3. गंगाप्रसाद विमल (डॉ॰), आधुनिकता : साहित्य के संदर्भ में, मैकमिलन प्रकाशन, नई दिल्ली, 1978

amanjotmaan05@gmail.com

मीडिया और हिंदीभाषा

डॉ॰ पी॰व्ही॰ कोटमे
अध्यक्ष, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग
एवं संयोजक, हिंदी अनुसंधान केंद्र
के॰टी॰एच॰एम॰ कॉलेज, नाशिक

किसी घटना को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाना या संप्रेषित करना ही संचार कहलाता है। क्योंकि संचार मानव की एक सहज प्रवृत्ति है। मनुष्य की एक मुलभूत जरूरत है। आदिकाल में लोगों द्वारा चित्र बनाकर अपनी बात संप्रेषित करने की प्रारंभिक तकनीक आज इंटरनेट तक पहुँच गई है। अत: संपूर्ण प्राणि-जगत संचार की एक लंबी नैसर्गिक शृंखला से जुड़ा हुआ है। अर्थात् व्यक्ति निरंतर संचार की प्रक्रिया से गुजरता रहा है। संचार जीवन का आधारभूत सत्य है और यह व्यक्ति के लिए वायु और प्रकाश की तरह ही अनिवार्य है। संचार के बिना मानव के सामाजिक जीवन की कल्पना करना संभव नहीं है। वस्तुत: संचार ही मानव-समाज की संचालन-प्रक्रिया को संभव बनाता है।

संचार शब्द का अर्थ एवं परिभाषा

संचार शब्द आंग्ल भाषा Communication शब्द का हिंदी पर्याय है। Communication शब्द लैटिन भाषा Communes अथवा Communico से बना है, जिसका सामान्य अर्थ भागीदारी युक्त सूचना एवं उसका संप्रेषण है। संचार में एक व्यक्ति या व्यक्तिओं के समूह के साथ समानता की स्थापना समाहित होती है। व्यक्ति संचार-प्रक्रिया के द्‌वारा एक तरफ स्नेह, प्रेम और त्याग की भावना को अभिव्यक्त कर संप्रेषण करता है और दूसरी ओर वेदना, विपत्ति की अभिव्यक्त कर अपनी स्थिति को अन्यों तक संप्रेषित करता है। वस्तुत: समाज में एक-दूसरे से संबंधित एवं उद्‌देश्यपूर्ण प्रक्रिया ही संचार है अथवा सूचना, विचारों और अभिव्यक्तिओं को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक संप्रेषित करने की कला का ही नाम 'संचार' है।

सामान्यत: संचार मानव-समाज की महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है, जिसमें आवश्यकताओं का परस्पर आदान-प्रदान किया जाता है। संचार-प्रक्रिया में संचार-साधन या मार्ग वह संघटक है, जिसके द्‌वारा स्रोत से श्रोता तक संदेश पहुँचता है। मनुष्य ने औद्योगिकीकरण से पूर्व पारंपरिक संचार से काम चलाया। लेकिन औद्योगिकीरण के पश्चात् संचार के क्षेत्र में आमूल-चूल परिवर्तन करके विकास किया, जिसे आधुनिकयुग में 'जनसंचार माध्यम' या 'मीडिया' कहते हैं।

मानव की अभिव्यक्ति, उसकी प्रस्तुति का प्रभावशाली रूप-संचार माध्यम अर्थात् मीडिया है। मीडिया का स्वरूप व्यापक है और वह आज के जीवन के साथ गहराई से जुड़ा हुआ है। आज हिंदी में मीडिया के लिए भारत में 'संचार माध्यम' शब्द का प्रयोग हो रहा है। मीडिया का

शाब्दिक अर्थ है–'दो बिंदुओं को जोड़नेवाला साधन'। ये दो बिंदु स्रोत और लक्ष्य हैं। एक सूचना देनेवाला और दूसरा सूचना ग्रहण करनेवाला। मीडिया का लिखित रूप तो प्रभावशाली था ही, आज दृश्य-मीडिया और भी सशक्त और प्रभविष्णु होकर सामने आया है। मीडिया अपने विविध रूपों से सूचना तो प्रदान करता ही है, ज्ञान और संवेदना का व्यापक प्रसार भी करता है। आज मीडिया-क्रांति नवउदारवादी दर्शन को लाने में एक प्रभावी माध्यम साबित हुई है, जिसे मास मीडिया, मल्टी मीडिया भी कहा जाता है। परंतु मास मीडिया और मल्टी मीडिया दो अलग चीजें हैं। मल्टी मीडिया नव इलैक्ट्रानिक उपकरणों का समुच्चय है, जो जनमाध्यम के लिए साधन का काम करता है। आधुनिक सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में मल्टी मीडिया सूचना-संप्रेषण के विभिन्न माध्यमों का संयोजन करके सूचना को प्रभावोत्पादक ढंग से व्यक्त करता है। आज समाज, संस्कृति, साहित्य, दर्शन, धर्म, विज्ञान, कला आदि सभी क्षेत्रों के विकास और प्रकटीकरण में मीडिया माध्यम याने जनमाध्यम जनता, समाज, राष्ट्र और विश्व के सजग प्रहरी है।

जन-माध्यम/मीडिया के आधुनिक विकास ने समय और दूरी की सीमा को कम कर दिया है। आज के विकसित मीडिया ने विश्व को एक ग्राम में बदल दिया है, जिससे हमारी 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की विचारधारा फलीभूत हो रही है। इस भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में मीडिया माध्यम ही अहम भूमिका निभा रहे हैं, जिससे विश्व अनेक दृष्टि से नजदीक, परिचित और अपना-सा लग रहा है। आज शिक्षा, वाणिज्य, चिकित्सा, प्रशासन, सुरक्षा, वित्तीय संस्था, विज्ञान-तकनीक आदि में मीडिया का प्रयोग और महत्त्व बढ़ रहा है। यह मीडिया का पूरा संसार मानव जीवन पर छाया हुआ है। इसके परिणामों पर विचार बाकी है।

इसमें भाषा ही एकमात्र ऐसा माध्यम है, जिसके बिना मानव कोई काम संपन्न नहीं कर सकता। वर्तमान में जब इलैक्ट्रॉनिक माध्यमों ने मानव-जीवन के हर पल में जरूरी सामग्री और सहायता का रूप धारण कर लिया है, तो बिना भाषा के प्रौद्योगिकी के ये माध्यम अधूरे-से हो जाते हैं। कोई भी सूचना/इन्फॉर्मेशन बिना भाषा के अधूरी है। चूँकि मीडिया का मूल उद्देश्य शिक्षा, सूचना और मनोरंजन है। इनके लिए भाषा जरूरी है।

विश्व में मीडिया का विकास इंटरनेट से हुआ। भारत में इंटरनेट का आगमन 15 अगस्त 1995 में व्हीएसएनएल के गेटवे के माध्यम से हुआ। इंटरनेट भारतीय समाज में अनेक सकारात्मक परिवर्तनों के साथ प्रस्तुत हुआ है। इंटरनेट ने जिस वैश्विक भूगोल को अपने प्रभाव-क्षेत्र में समेटा है, उस सूचना-प्रौद्योगिकी का पूरा प्रसार विश्व के लगभग 100 भाषाओं के भीतर ही सीमित है, जबकि भारत में अँग्रेजी के साथ हिंदी ने भी अपना वर्चस्व कायम किया है। सूचना-तकनीक के इंटरनेट के माध्यम से उपस्थिति ने जिस परिदृश्य का निर्माण किया है, इस सूचना-संसाधन का केंद्र अमेरिका है। यहीं फेसबुक, ट्वीटर और व्हॉटस-अप आदि इंटरनेट के वर्चस्ववाली अधिकांश कंपनियों के सर्वर हैं, इसके प्रभावस्वरूप जिस समाज का निर्माण हो रहा है, वहाँ 'माइक्रोसॉफ्ट' अपने ऑपरेटिंग सिस्टम और 'गूगल' इंटरनेट पर वर्चस्व के कारण डिजिटल समाज के वे प्रधान हैं।

पिछले कुछ दिनों में इसी इंटरनेट ने भारत को जितना बदला है, उतना शायद मानव-सभ्यता के ज्ञात इतिहास में किसी और चीज ने किसी समाज को नहीं बदला। बहुआयामी बदलाव का यह सिलसिला बोलचाल के तौर-तरीके से शुरू हुआ। अब तो खरीदारी से लेकर भाषा-साहित्य

और हमारी तमाम प्रचलित मान्यताएँ और परंपराएँ भी अपना रास्ता बदल रही हैं। यह बदलाव इतना तेज है कि इसकी नब्ज को पकड़ना समाजशास्त्रियों के लिए भी आसान नहीं है। इस तेजी के मूल में 'ऐप' (मोबाइल ऐप्लिकेशन) जैसे साइबर टूल का बड़ा योगदान है। इसे अपनाने के बाद मोबाइल पर कोई वेबसाइट खोलने की जरूरत नहीं। हर चीज के लिए हम बस एक अदद खोजने जैसी व्यक्तिगत जरूरतों के लिए भी इसका प्रयोग आरंभ हो चुका है। दुनिया-भर के डेटिंग ऐप निर्माताओं की निगाह में भारत सबसे पसंदीदा जगह या बड़ा बाजार बनकर उभर रहा है।

मीडिया या जनसंचार माध्यम, स्वरूप एवं भेद

जनसंचार के माध्यमों के अंतर्गत मुख्यत: प्रिंट मीडिया, रेडियो, दूरदर्शन, फिल्म तथा कम्प्यूटर आदि आते हैं। जनसंचार के इन सभी माध्यमों ने विश्व में फैली संपूर्ण मानव-जाति के जीवन को प्रभावित किया है। शिक्षा ने विज्ञान को जन्म दिया और विज्ञान ने जनसंचार के आधुनिक साधनों को। जनसंचार के साधन मनुष्य की आधुनिक शिक्षा तथा विज्ञान दोनों के प्रचार एवं प्रसार के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका तथा दायित्व का निर्वाह कर रहे हैं।

Mass Communication अर्थात् जनसंचार है। इस संदर्भ में जनसंचार से अभिप्राय होगा मानव-समुदाय के सभी मिले-जुले वर्गों तक बड़े पैमाने पर चाहे वह समीप हो या दूर कुछ भाव, विचार अथवा सूचनाएँ शब्दों या प्रतीकों द्वारा संप्रेषित किए जाते हैं और इस काम के लिए इलैक्ट्रॉनिक उपकरणों आदि का प्रयोग किया जाता है। इसी संप्रेषण-व्यवस्था को जनसंचार की प्रक्रिया कहा जाता है। अत: स्पष्ट है कि जनसंचार का अर्थ सूचना को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाना इतना ही नहीं, जनसंचार के माध्यमों द्वारा जनमत का निर्माण भी सहज संभव होता है। मीडिया की जनमत निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

जनसंचार माध्यमों के भेद

जनसंचार के माध्यमों की उपयोगिता अलग-अलग स्थितियों तथा अलग-अलग संदर्भों में अलग-अलग है। किंतु इसके बावजूद जनसंचार-माध्यमों का उद्देश्य तथा लक्ष्य एक ही है। समाज की शैक्षणिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक धरोहर को वृद्धिगत करने तथा व्यक्ति के अभिव्यक्ति के मूलभूत आधिकार को कायम रखने की दिशा में प्रयोग करना संभव हुआ है। इसी से वह अलग-अलग माध्यमों से जनता के अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य को जाग्रत रखने का भी कार्य हो रहा है। जनसंचार के अनेक भेद विकसित हुए हैं–

अ. शब्दसंचार माध्यम या प्रिंट मीडिया : इसके अंतर्गत समाचारपत्र, पत्रिकाएँ तथा पुस्तकें और पंपलेट आदि आते हैं।

आ. श्रव्य संचार या इलैक्ट्रॉनिक माध्यम : इसके अंतर्गत रेडियो, टेलिफोन, कैसेट तथा टेपरिकॉर्डर, ऑडिओ आदि आते हैं।

इ. दृश्य संचार या नवइलैक्ट्रॉनिक माध्यम : इसमें अंतर्गत दूरदर्शन, वीडियो, फिल्म, इंटरनेट, फैक्स, टेलिप्रिंटर, मोबाइल, फेसबुक, ट्वीटर, व्हॉट्स-अप आदि आते हैं।

संचार माध्यमों में भाषिक वैविध्य

1. समाचार पत्र (खड़ीबोली या परिनिष्ठित भाषा)
2. रेडियो (बोलचाल की भाषा)

3. दूरदर्शन (प्रादेशिक भाषा, चित्र भाषा)

आज के युग को जनसंचार का युग कहा जाता है। आकाशवाणी, दूरदर्शन, फिल्म, समाचारपत्र, वीडियो, कम्प्यूटर, ई-मेल, इंटरनेट आदि ने विश्वभर की मानव-जाति को प्रभावित किया है। इसमें समाचारपत्र, रेडियो, मोबाइल तथा दूरदर्शन का विशेष महत्त्व है। वर्तमान समय में विभिन्न समाचारों को जनसामान्य तक पहुँचाने में इनकी मुख्य भूमिका है। इसलिए समाचार की भाषा पर ही इनकी संप्रेषण-शक्ति आधारित है। भाव-अभिव्यक्ति के साधन को भाषा ही प्रभावित करती है। पहले पत्रकारिता की भाषा के विषय में यह मान्यता रही है कि इसका सरल, सहज, सुगम होना अनिवार्य है। आज पत्रकारिता बहुआयामी होकर जीवन के विविध क्षेत्रों तक विस्तार कर चुकी है। ऐसे में भाषा का वैविध्यपूर्ण होना स्वाभाविक है। पत्रकार सर्वप्रथम विषय की गहन और अनुकूल जानकारी प्राप्त करता है। उसके पश्चात् पाठक या दर्शक की मानसिकता पर चिंतन करता है। पत्रकार इस भावभूमि के आधार पर अभिव्यक्ति देने के लिए भाषा के स्वरूप को अपनाता है। यह समाचारपत्रों, रेडियो तथा दूरदर्शन के परिप्रेक्ष्य में समान रूप से संभव नहीं हो पाता है। इसलिए जनसंचार माध्यमों में भाषिक वैविध्य दिखाई देता है।

1. **समाचारपत्र**

समाचारपत्रों में विविध प्रकार के समाचार होते हैं। साथ ही संपादकीय, लघु लेख तथा फीचर भी होते हैं। समाचारपत्र जीवन की भाषा के स्रोत होते हैं। सामान्यत: भाषा के स्वरूप में अंतर नहीं होता है, पर हर संपादकीय नीति के अनुसार भाषा का रूप कुछ भिन्न हो सकता है। आज हिंदी के कई समाचारपत्र विशिष्ट भाषा के माध्यम से अपना एक अलग स्थान रखे हुए हैं। समाज की जैसी परिस्थिति है, जैसी घटना घटी या कोई राजनीतिक, सामाजिक या आर्थिक उथल-पुथल हुई कि समाचारपत्र उसी विषय से संबंधित अनेक शब्दों, वाक्यांशों, वाक्यों से भरे दिखाई देते हैं। सूखा-पड़ा हों, चुनाव हुए हो या कोई हादसा हुआ हो, कोई बड़ा मेला हुआ हो तो उसी से संबंधित सूचनाएँ प्रकाशित होती हैं। इसमें हत्या, आगजनी, लूटमार, डकैती, दुर्घटना आदि को दैनिक समाचारों में स्थान मिलता है। हर मौके पर हर प्रकार चुस्त एवं मुहावरेदार भाषा समाचारपत्रों में देखी जा सकती है। इसमें संपादकीय एवं कोई विचार, लेख, परिनिष्ठित भाषा में ही होता है। इससे संपादक के स्तर का पता भी चलता है। हिंदी के मुख्यत: सभी समाचारपत्र व्यावहारिक और जीवंत भाषा का प्रयोग करते हैं, पाठकों द्वारा अधिकतर सहज, सरल, सुबोध भाषा पसंद की जाती है।

समाचारपत्रों के माध्यम से कई जीवंत शब्द दिन-प्रतिदिन हिंदी को मिल रहे हैं। नई-नई अभिव्यक्तियाँ, नए-नए प्रयोग होते जा रहे हैं। उदाहरण के लिए माफिया जो समाचार विरोधी गिरोह के अर्थ में प्रयुक्त है, एक प्रभावशाली शब्द है। इसी तरह घोटाला, तहलका आदि शब्द भी प्रभावशाली रूप से प्रचलित हो रहे हैं। आज की भाग-दौड़ में मनुष्य की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वह कम से कम समय में और कम से कम शब्दों में अपने अधिकतम भावों या विचारों को अभिव्यक्त करें। इसलिए संक्षिप्तिकीकरण की प्रवृत्ति दिखाई देती है। जैसे, पीटीआई, भाषा, यूनेक्सो, नाटो, सिटो, नाबार्ड आदि संस्थागत शब्द वामो, प्रमुख कपा, सपा, भाजपा, राकाँ आदि राजनीतिक दलों के नाम प्रचलन में आए हैं। इस तरह समाचारपत्रों समाज की दैनिक गतिविधियों से अधिकतर शब्दों का चयन किया जाता है और भाषा का गठन वर्तमान से ही जीवंत बनता है।

 ISSN 0975-735X

2. रेडियो की भाषा

भाषा मूलत: मौखिक ही होती है। उसके बाद ही उसका लिखित रूप सामने आता है। इसीलिए उसका उच्चारित रूप महत्त्वपूर्ण होता है। संचार-माध्यमों में रेडियो ही एक ऐसा माध्यम है, जहाँ भाषा का यह मौखिक रूप ध्वनि प्रतीकों के माध्यम से अंकित होता है। यह ध्वनि प्रतीक उसका भौतिक आधार हैं। ध्वनियों में अर्थों का समावेश होता है। भाषा में प्रकृति के साथ ही प्रक्रिया का भी समावेश होता है। मौखिक भाषा में वह शक्ति भी है, जिससे सारे हाव-भाव को, सुर, ताल को रेडियो में बिना दृश्य के ही व्यक्त करने में समर्थ होती है।

रेडियो श्रव्य माध्यम है, जिसमें भाषिक और अन्य ध्वनियों के द्वारा संदेश जनसामान्य तक पहुँचाया जाता है। रेडियो के मुख्य आयाम हैं–(1) समाचार और सूचना प्रसार तथा (2) मनोरंजन तथा वार्तालाप के द्वारा ज्ञान-विज्ञान और शिक्षा का प्रसार। समाचारपत्र के बाद रेडियो का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। आज दूरदर्शन के कारण रेडियो का महत्त्व जरूर कम हुआ है, फिर भी जहाँ दूरदर्शन की सुविधा प्राप्त नहीं है, वहाँ आज भी रेडियो का महत्त्व है। आज भी दूरदर्शन की चकाचौंध के बावजूद समाचारों की दृष्टि से रेडियो का महत्त्व है। क्षेत्रीय स्टेशनों से वहाँ की लोकभाषा को जोड़ा गया है। समाचारों की दृष्टि से रेडियो अग्रणी है। समाचारों में हर वाक्य पर ध्यान रखा जाता है। इसमें एक वाक्य में एक ही सूचना समाहित हो, वाक्य छोटे, सरल एवं स्पष्ट हो, वाणी प्रभावी हो, उच्चारण में कष्टसाध्य अप्रचलित शब्दों से बचा जाता है।

रेडियो में सामान्यत: दो प्रकार के कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं–**पहला उच्चारित और दूसरा संगीतपरक।** पहले कार्यक्रम के अंतर्गत वार्ता, साक्षात्कार, समाचार, परिचर्चा, रूपक, नाटक, रिपोर्ट, कविसम्मेलन एवं मुशायरा आदि हैं, तो दूसरे संगीतपरक कार्यक्रमों में वाद्य-संगीत, गायन, फिल्म-संगीत, शास्त्रीय-संगीत, सुगम-संगीत, पारंपारिक-संगीत और लोकसंगीत आता है। संगीत से संबंधित कार्यक्रमों को मनोरंजन समझकर छोड़ भी दिया जाए तो अन्य सभी कार्यक्रम भाषा-संबंधी हैं। इन कार्यक्रमों से हिंदीभाषा का बहुत बड़ा विकास हो रहा है।

इस तरह रेडियो की भाषा वाक् वाणी है। यह पूर्ण रूप से मौखिक है। साहित्यिक हिंदी तो हम हफ्ते में एक बार कुछ समय के लिए सुनते हैं। लेकिन विज्ञान एवं अन्य समाचारों में सामान्य हिंदी ही दिखाई देती है। इसके लिए लेखन एवं वाचन का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। रेडियो की भाषा बोलचाल की भाषा पर आधारित होती है और आवश्यकतानुसार लोकप्रचलित मुहावरों का प्रयोग भी किया जाता है। जैसे–भारतीय टीम ने श्रीलंका के विरुद्ध क्रिकेट का फाइनल मैच जीतकर देश की कीर्ति में चार चाँद जड़ दिए।

रेडियो की भाषा प्रामाणिक भाषा मानी जाती है। उसके द्वारा सही शब्दों का प्रयोग होता है। उदाहरण के लिए आज रात मूसलधार बारिश होने की संभावना है। न्यूयार्क के बंब विस्फोट में साठ लोगों की मरने की आशंका है। इन दोनों वाक्यों में संभावना, आशंका शब्दों का प्रयोग ठीक है। इसीतरह इसमें अच्छे शब्दों का ध्यान रखा जाता है, अश्लील या मन को चोट पहुँचानेवाले शब्दों का प्रयोग नहीं होता है। जैसे–किसी को अंधा न कहकर दृष्टिविहीन कहा जाता है या स्त्री के लिए महिला शब्द का प्रयोग किया जाता है।

इस तरह रेडियो में प्रयुक्त हिंदी जनसामान्य की भाषा है। भाषागत शुद्धता के साथ-साथ शुद्ध उच्चारण पर भी बल दिया जाता है, प्रसारण को अधिकाधिक जीवंत एवं प्रभावशाली बनाने

के लिए बलाघात, मात्रा, विराम आदि के उचित प्रयोग पर भी ध्यान दिया जाता है। रेडियो में प्रयुक्त हिंदी जनसामान्य की भाषा होती है। परंतु प्रशासन, विधि, बैंक, शिक्षा, खेल-कूद, स्वास्थ्य, विज्ञान, तकनीकी, कृषि आदि से संबंधित शब्दों को भारत सरकार के वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा निर्मित किया है। यथावत् प्रयुक्त संस्कृत, अरबी, फारसी, अँग्रेजी तथा उर्दू के शब्दों का भी प्रचलन दिखाई देता है। इस प्रकार रेडियो की भाषा की प्रकृति विशेष रूप से होती है, क्योंकि उसमें मौखिक ध्वनियों के माध्यम से ही सारे क्रियाकलापों को व्यक्त करना पड़ता है।

3. दूरदर्शन की भाषा

इक्कीसवीं शती में दूरदर्शन कई रूपों में सर्वाधिक प्रभावशाली दृश्य-श्रव्य संचार माध्यम है। श्रव्य-दृश्य माध्यम में भाषा का प्रयोग मुख्यत: दो प्रकार से होता है। एक, दो या दो से अधिक लोगों के बीच हो रहे वार्तालाप से फिल्म अपने कथानक को आगे बढ़ाती है और उसमें दृश्यों को तार्किक रूप में जोड़ने का कार्य करती है। दो, दूरदर्शन या फिल्म के लिए बनने वाले वत्तचित्रों में या किसी समाचार को स्पष्ट करने के लिए दृश्यों का प्रयोग होता है अथवा दृश्यों के माध्यम से कही जा रही बात को समझाने के लिए भाषा का प्रयोग होता है, जिसे सामान्यत: 'कमेंटरी' अथवा 'नरेशन' कहते हैं।

दूरदर्शन में प्रसारित हर कार्यक्रम को अधिक से अधिक लाभान्वित करवाना दूरदर्शन के सभी चैनलों का मुख्य उद्देश्य होता है। जिसमें हिंदी की प्रयुक्ति समन्वित रूप में मिलती है। दूरदर्शन के समाचार अधिक प्रभावशाली तथा विश्वसनीय माने जाते हैं। कारण उनमें श्रव्य के साथ-साथ दृश्यांकन भी होता है। हम जो कुछ देखते हैं, उस पर सहसा विश्वास होना स्वाभाविक है। यहाँ समाचार-संकलन में कैमरा महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। समाचारवाचक की तनिक-सी भूल भी पकड़ी जा सकती है। लेकिन कुछ उच्चारण-संबंधी दोष भी पाए जाते हैं। जैसे–कृपया-कृप्या, जनता-जन्ता, बलदेव-बद्देव आदि। दूरदर्शन के दर्शक सभी श्रेणियों के होते हैं। इसलिए इसकी भाषा वही होती है, जो सभी दर्शक समान रूप से समझ सकें। दूरदर्शन में समाचार-लेखक चित्रों के माध्यम से घटनाओं का यथार्थ वर्णन करता है। वह दर्शक को स्वयं उस स्थान पर ले जाता है, जहाँ से समाचार विकसित हुआ है। उस समाचार से सबंधित सभी व्यक्तियों के विचारों और स्पष्टीकरण को प्रत्यक्ष रूप से उन्हीं की भाषा में प्रस्तुत कर दिया जाता है। समाचार-लेखक अपनी ओर से कोई टिप्पणी नहीं करता।

कहा जाता है कि दूरदर्शन का एक चित्र हजार शब्दों के बराबर होता है। तात्पर्य यह है कि हजारों शब्दों में जिस स्थिति का भाव या घटना की अभिव्यक्ति नहीं हो सकती, उसे हम एक चित्र द्वारा स्पष्ट कर सकते हैं। चित्र शब्दरहित काव्य होता है। चित्र समाचार के आभूषण तो हैं ही, साथ-ही-साथ दर्शकों के मन-मस्तिष्क को मथकर स्वयं उसी के दिमाग में विचारों के शब्द निर्मित करने में मुख्य भूमिका निभाते हैं। दूरदर्शन के वाक्य संक्षिप्त और छोटे-छोटे होते हैं, जिससे श्रोता शीघ्र एवं सरलता तथा पूर्णता से समझ सकता है। यह वाक्य स्पष्ट, सरल एवं प्रभावपूर्ण होते हैं। वाक्यों की तरह ही सूचनाएँ भी होती हैं। इसमें आम बोलचाल के शब्दों का प्रयोग भी होता है। आज दूरदर्शन ने हिंदी को प्रयोजनमूलक भाषा बनाया है। व्यवसाय, वाणिज्य, व्यापार, विज्ञापन, राष्ट्रीय, अंतरराष्ट्रीय, क्रीड़ाक्षेत्र के साथ-साथ साहित्य और कला-संबंधी विषयों पर नए-नए

शब्द प्रयुक्त हो रहे हैं। हिंदीभाषा के इन शब्दों को हिंदीतर भाषी दर्शक भी समझने लगे हैं। वह भी सिर्फ भारत में ही नहीं, दुनिया के कई देशों के लोग दूरदर्शन के अनेक कार्यक्रमों के जरिए हिंदी भी सीख रहे हैं।

मीडिया के क्षेत्र में दूरदर्शन की बादशाहत के दौर में साहित्यिक कृतियों पर आधारित धारावाहिक भी बन रहे हैं। लेकिन अब फिल्मों की तर्ज पर व्यावसायिकता को ध्यान में रखकर सीरियल्स लिखे जा रहे हैं। यानी जो बिक रहा है, वही दिखाया भी जा रहा है। धारावाहिकों में 'फैमिली ड्रामा' के नाम पर एक अधकचरा समाज दिखता है। इनमें पारिवारिक संबंधों का भी विचित्र रूप देखने को मिलता है। इससे ऐसा लगता है कि दरअसल, हमारा समाज एक संक्रमणकाल से गुजर रहा है। पुराने और नए मूल्य तथा जीवन-पद्धतियाँ एक साथ चल रही हैं। एक ओर घोर पोंगापंथी विचार है, तो दूसरी ओर अति आधुनिक सोच भी है। इन सबका सभी आयुवर्ग के लोगों पर असर हो रहा है, क्योंकि यह सभी संचार के उपकरण एक सामाजिक माध्यम हैं। अत: वर्तमान में भारतीय मीडिया एक तरह के संक्रमणकाल से गुजर रहा है।

दूरदर्शन में प्रयुक्त हिंदीभाषा का जहाँ वर्चस्व है और बढ़ रहा है, दूसरी ओर अँग्रेजी दिल माँगे मोर हो गई है। वह आज फिफ्टी-फिफ्टी से ट्वेन्टी ट्वेन्टी बनती जा रही है। इस तरह दूरदर्शन के माध्यम से एक नई भाषा प्रयुक्त हो रही है, इसे कुछ लोग हिंग्लीश भी कहने लगे है। आज हिंदी भारत की अकेली भाषा है, जो समय के साथ सबसे तेज गति से बदल रही है। याने हिंदी आज भारत की अँग्रेजी है। जैसे, अँग्रेजी में फ्रेंच, लैटिन और तमाम भाषाओं के शब्द घिस-घिसकर अँग्रेजी के हो गए हैं, उसी तरह हिंदी में न जाने कितनी ही भाषाओं के शब्द रोजाना शामिल होते हैं और घिसते-घिसते हिंदी के हो जाते हैं। एक ही समय में आप अलग-अलग माध्यमों में तरह-तरह की हिंदी सुनते हैं, पढ़ते हैं और देखते हैं। न्यूज चैनल का एंकर किसी और तरीके से हिंदी बोल रहा होता है तो एफएम रेडियो का जॉकी किसी और तरीके से। हिंदी के अखबार इन दोनों ही दुनिया से अलग लिखने, बोलने लगते हैं। राजनेताओं की हिंदी भी बदल रही है। उनकी जुबान से हिंदी फिर से उस हिंदी की तरह पुनर्जीवित हो रही है, जिसके रूपक घिस गए हैं, मगर ऐसे पेश हो रहे हैं जैसे सुनने में फिर से नया-सा लग रहा है। अत: मीडिया के माध्यमों में हिंदीभाषा और साहित्य का वर्चस्व कुछ परिवर्तनों के साथ बरकरार है।

मो॰ 09850760866
ईमेल-kotamepv26@gmail.com

रामदरश मिश्र के आंचलिक उपन्यासों में ग्राम्यसमाज-जीवन

मनजीत कौर (शोधार्थी)
भाषा विज्ञान तथा पंजाबी कोशकारी विभाग,
पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला

आंचलिक उपन्यास स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास की महत्तम उपलब्धि है। ग्रामीण अंचल को केंद्र बनाकर भारतीय ग्राम्यजीवन को उद्घाटित करता आंचलिक उपन्यास सांस्कृतिक एवं परंपरागत मान्यताओं को चित्रित करता है। राष्ट्र एवं समाज की सांस्कृतिक एवं सामाजिक मर्यादाओं का विश्लेषण करना इसका प्रमुख लक्ष्य रहा है।

स्वतंत्रता के पश्चात् आंचलिक उपन्यासों का आविर्भाव हुआ, जिसने हिंदी साहित्य को गतिशील और समृद्ध किया। आंचलिक उपन्यास के पीछे मूल प्रवृत्ति राष्ट्र एवं समाज की सांस्कृतिक मर्यादा का अन्वेषण रहा है। आंचलिक उपन्यास कथासाहित्य को नई गति देकर, साहित्य की एक स्वतंत्र और विशिष्ट विधा के रूप में स्वीकृत एवं प्रतिष्ठित हो चुका है।

हिंदी उपन्यास में आंचलिकता के उन्नायक लेखक फणीश्वरनाथ 'रेणु' हैं। 'आंचलिक' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम फणीश्वरनाथ 'रेणु' ने सन् 1954 में प्रकाशित अपने उपन्यास 'मैला आंचल' की भूमिका में किया था।

'आंचलिक उपन्यास लिखना मानो हृदय में किसी प्रदेश की कसमसाती हुई जीवनानुभूति को वाणी देने का अनिवार्य प्रयास है। आंचलिक कथाकार को युग के जटिल जीवन का बोध नहीं है, इसलिए वह आज भी पिछड़े जनपदों के सरल, निश्छल जीवन की ओर भागने में सुगमता अनुभव करता है, ऐसा कहना असत्य होगा।'[1]

'मैला आंचल' के प्रकाशन के साथ ही हिंदी आलोचना क्षेत्र में 'आंचलिक' शब्द चर्चा का विषय बन गया। कई आलोचकों ने आंचलिक उपन्यास को अपने दृष्टिकोण से परिभाषित करने की कोशिश की है। यहाँ हम कुछ परिभाषाएँ प्रस्तुत कर उनके आलोक में आंचलिक उपन्यास के वास्तविक स्वरूप और विशेषता को समझने का प्रयास करेंगे।

'कुछ उपन्यासों में किसी प्रदेश-विशेष का यथातथ्य और बिंबात्मक चित्रण प्रधानता कर लेता है और उन्हें प्रादेशिक या आंचलिक उपन्यास कहा जाता है।'[2]

इस प्रकार आंचलिक उपन्यास पहले उपन्यास होता है, बाद में आंचलिक, इसलिए उपन्यास के सभी विधायक तत्त्व आंचलिक उपन्यासों में विद्यमान रहते हैं।

आंचलिक उपन्यासों के विषय में ग्राम्यसमाज-जीवन का चित्रण हिंदी उपन्यास साहित्य में प्रमुख रूप से दृष्टिगोचर होता है। ग्राम्यसमाज-जीवन के अर्थ से ही स्पष्ट है कि इसमें ग्राम्य-समाज, जीवन परिवेश वातावरण एवं गाँव के लोगों का रहन-सहन, आचार-विचार एवं उनके जीवन-व्यवहार

 ISSN 0975-735X

का ही चित्रण होता है। वस्तुतः भारतीय ग्राम्यसमाज अनेक विविधताओं से भरा है। गाँव के लोगों की अपनी परंपराएँ, मान्यताएँ, रीति-रिवाज, सामाजिक व्यवहार एवं जीवन जीने की अपनी निजी विशेषताएँ होती हैं। मिश्रजी ने इन विशेषताओं को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं धार्मिक सांस्कृतिक परिस्थितियों के द्वारा सजीव रूप में अंकित किया है।

सामाजिक परिस्थिति

हिंदी आंचलिक उपन्यास साहित्य में भारतीय ग्राम्यसमाज को उसकी संपूर्णता के साथ प्रतिबिंबित किया गया है। इसके अंतर्गत भारतीय ग्राम्यसमाज का स्वरूप, उसकी स्थिति, सामाजिक जीवन, व्यवहार, नारी की सामाजिक स्थिति तथा ग्राम्यसमाज जीवन की समस्याओं का चित्रण व्यापक रूप में मिलता है। मिश्रजी के आंचलिक उपन्यासों के माध्यम से अब हम इन परिस्थितियों का अध्ययन करेंगे।

आंचलिक उपन्यास साहित्य में पारिवारिक जीवन का चित्रण प्रमुख रूप में देखने को मिलता है। व्यक्ति की जन्म की प्रारंभिक अवस्था से लेकर अंत तक पूर्णरूपेण उसे परिवार पर आधारित रहना पड़ता है। भारतीय ग्राम्यसमाज में परिवार और रिश्ते-नातों का महत्त्व अधिक माना जाता है, लेकिन आज आर्थिक विपरीत परिस्थितियों के कारण पारिवारिक एकता टूट रही है। तनाव और मन-मुटाव की स्थिति देखी जा सकती है। मिश्रजी के कहार अंचल पर आधारित उपन्यास 'जल टूटता हुआ' की ग्रामीण पारिवारिक व्यवस्था के स्वरूप संबंध में तारा प्रकाश जोशी ने लिखा है–'उपन्यास में आजादी के बाद 15 वर्ष तक होनेवाले परिवर्तनों को, उस अंचल के उभरते हुए प्रभावों को, संयुक्त परिवारों की दूरियों के आर्थिक व नैतिक आधारों पर बनते और टूटते जीवन को चित्रित करने का मिश्रजी ने प्रयास किया है।'[3]

वस्तुतः आंचलिक उपन्यासों में चित्रित ग्राम्यसमाज में पारिवारिक व्यवस्था खंडित होती दिखाई देती है। परिवार में अर्थ का प्राधान्य बढ़ता जा रहा है। मिश्रजी के आंचलिक उपन्यासों में भी पारिवारिक मन-मुटाव का चित्रण पर्याप्त मात्रा में देखने को मिलता है।

'सूखता हुआ तालाब' में चेनइया अपनी माँ के हरजाईपन के कारण पति-सुख से वंचित रहती है। परपुरुषों का सहारा लेना पड़ता है, किंतु गर्भवती हो जाने पर उसे समाज और गाँव से दूर रहना पड़ता है। अन्य प्रसंग में मोतीलाल घर में अपनी पत्नी होते हुए भी विधवा भयहु की कामतृप्ति करते हैं।

'भयहू अगर रांड हो जाए तो क्या जिंदगी-भर तरसती रहे?'[4] उनकी दृष्टि में वे कुछ करते हैं। वह सही है। इस प्रकार मिश्रजी ने आंचलिक उपन्यासों में पति-पत्नी के संबंधों को अलग-अलग घटनाओं के द्वारा उपस्थित किया है।

लेकिन 'पानी की प्राचीर' का कथानायक नीरू पंचायत के सामने विधवा-विवाह का समर्थन करता है। नीरू प्रगतिशील युवक है। वह पंचायत के ठेकेदारों को चुप कर देता है। असहाय नारी गुलाबी को सहारा देने पर नीरू बैजू को कहता है–'असहाय अबला दुनियाभर की उपेक्षा की शिकार होती है, उसे सहारा देकर बैजू ने जो मरदाई की है, उसके लिए वह बधाई का पात्र है।'[5]

आर्थिक परिस्थिति

मनुष्य के जीवन का इतिहास आर्थिक नींव पर अवलंबित होता है। समाज की आर्थिक

व्यवस्था एक ऐसी नींव है, जिस पर कानूनी तथा राजनीतिक संस्थाओं की इमारत खड़ी होती है। 'अर्थ' से जीवन को अर्थ प्राप्त होता है और अर्थाभाव के कारण जीवन अर्थहीन होता है। अर्थ ही व्यक्तियों के पारस्परिक संबंधों की नींव है।

प्रस्तुत प्रकरण में रामदरश मिश्र के आंचलिक उपन्यासों में चित्रित आर्थिक व्यवस्था का स्वरूप, स्वतंत्रता-प्राप्ति के उपरांत अवतरित परिवर्तन, किसानों की स्थिति, जमींदारों का गरीबों के साथ व्यवहार तथा ग्राम्यसमाज की आर्थिक समस्याएँ आदि का प्रभाव उल्लिखित है।

'जल टूटता हुआ' उपन्यास में जमींदारी उन्मूलन का प्रभाव वहाँ के जमींदार महीपसिंह की वृत्ति में देखने को मिलता है। गाँव में सभी लोग मजदूर हैं। महीपसिंह का रोब इन गरीब मजदूरों को मारने तक रह गया है। इसी टूटन तथा उन्मूलन का यथार्थ चित्रण हमें सतीश के उद्‌बोधन में मिलता है–

'यह जड़ आदमी बदले हुए जमाने को नहीं समझता। भीतर से सब-कुछ टूटता जा रहा है, लेकिन बाहर अभी जीवन का वही रोब-दाब बनाए रखना चाहता है। जागपतिया बदले हुए जमाने की आवाज है, लेकिन बाबू महीपसिंह के कान बंद हैं, आँख मुँदी हैं, इनके पास बस गाली मुक्का है, लात है और...और।'[6]

यहाँ स्पष्ट है कि जमींदारी लूटने से जमींदार ग्राम्य किसानों पर क्रोध करते हैं। जमींदारी टूटने के साथ-साथ जमींदार भी टूटते हुए दिखाई देते हैं।

'पानी के प्राचीर' उपन्यास में ये लोग कई आर्थिक विषमताओं में घिरे हुए हैं। गाँव में लोगों की आर्थिक स्थिति निम्न एवं पछात है। लोग जीवित हैं, लेकिन मुर्दा की तरह खेतों में काम करते हैं। खेतों में से 'कुछ मटर या जो तोड़-तोड़कर लोग लाते हैं, पीस-पासकर उन्हें पकाते हैं और खा लेते हैं।'[7]

इसी उपन्यास में कथानायक नीरू को अपने परिवार की कमजोर आर्थिक स्थिति के कारण खाना तक नहीं मिलता। होली के दिन भी खाना नहीं मिलता। उसके हिस्से का खाना बहन रूपा और भाई केशव खा लेते हैं। माँ के पूछने पर 'माँ भूख नहीं है। आज अपने साथ दिन को बहुत देर से खाया था, इसलिए कोई बात नहीं अपने साथ कुछ राब लाया हूँ, पानी पी लूँगा।'[8]

यहाँ स्पष्ट है कि नीरू को भी बड़े-बूढ़ों की तरह मन मारकर रहना पड़ता है। ये आर्थिक विकट परिस्थिति का परिचय है।

राजनीतिक परिस्थिति

विशिष्ट राजनीतिक वातावरण को व्यक्त करने के लिए लेखक को राजनीतिक आंदोलन की गतिविधियों को उपन्यास में चित्रित करना होता है। भारतीय समाज-व्यवस्था में राजनीति का एक विशेष स्थान रहा है। रामदरश मिश्र के आरंभिक आंचलिक उपन्यासों में आजादी की माँग को लेकर राजनीतिक वातावरण तथा पंचायती चुनाव का वातावरण केंद्रित किया गया है। समकालीन राजनीतिक परिवेश का चित्रण हमें उनके आंचलिक उपन्यासों में प्राप्त होता है।

'भारत माता की जय', 'गांधी बाबा की जय' जैसे नारों की भीड़ से दूर रहकर नीरू अनिच्छा से भी जमींदार गजेंद्रसिंह के यहाँ नौकरी तो करता है, लेकिन रात में आजादी के लिए क्रांतिकारियों को अपना साथ देता रहता है। क्रांतिकारियों से गुप्त वार्तालाप में वह यह निर्णय लेता है–'आप लोग कल स्टेशन फूँकिए मुझे बाबू गजेंद्रसिंह के ईमानदार नौकर की तरह स्टेशन की

रक्षा करनी चाहिए, नहीं तो सरकार कल इन्हें पीस डालेगी। सो, मैं बाद में बंदूक लिए दौड़ता हुआ आऊँगा, आप लोग तब तक भाग जाइएगा।'[9]

स्वतंत्रता मिलने के बाद 'जल टूटता हुआ' के मास्टर सुग्गन तिवारी कई आशादायक सपने सँजोते हैं। आजादी की वर्षगाँठ मनाते समय उनके मन में अनेक सपने उभरते हैं–'हरे-भरे खेत, बाढ़ की छाती पर दौड़ती सड़कें, खाटों-खाइयों की पीठ पर बैठे हुए अस्पताल, स्कूल आदि चमक उठते थे।'[10]

धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थिति

भारतीय ग्राम्यसमाज में धर्म एवं संस्कृति का विशेष महत्त्व है। रामदरश मिश्र के आंचलिक उपन्यासों में धर्म एवं संस्कृति के संदर्भ भरे पड़े हुए हैं। उनके आंचलिक उपन्यासों में भारतीय ग्राम्यसमाज जीवन में प्रचलित धर्म-संबंधी विश्वास, मान्यताएँ आर्थिक, आस्थाएँ, अंधविश्वास आदि का चित्रण मिलता है। ग्राम्य लोग समझते हैं कि उन्हें कोई अज्ञात अनादि शक्ति संचालित कर रही है। इसी कारण वे अंधविश्वासों में भी जकड़ जाते हैं। रामदरश मिश्र के आंचलिक उपन्यासों में प्राप्त धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थिति का अध्ययन प्रस्तुत है।

मिश्रजी के आंचलिक उपन्यासों में धागा-ताबीज एवं मंत्र-तंत्र तथा शकुन-अशुकन जैसे अनेक प्रसंग मौजूद हैं। 'पानी के प्राचीर' उपन्यास में पांडेपुरवा गाँववाले मानते हैं कि टीले पर भूत इसलिए वहीं आता क्यों वहाँ वृद्ध बाबा का निवासस्थान है और यही बाबा नौकरी के लिए गाँव छोड़कर जानेवाली की रक्षा भी करते हैं। धागा-ताबीज करनेवाले वैद्य भी गाँव में हैं। 'जो कभी सत्यनारायण की कथा कहने, कभी बच्चों की कुंडली बनाने और भाखने, कभी दुष्टग्रहों को शांत करने, कभी साँप का मंतर पढ़ते और कभी कभी रोगों के लिए एक भस्म देने के पीछे दौड़ते फिरते हैं।'[11]

'सूखता हुआ तालाब' में भी अंधविश्वासों के कई उदाहरण मिलते हैं। गाँव के लोग इतने नासमझ हैं कि बेवकूफ आदमी भी उन्हें ठग सकता है। नेता मोतीलाल का यह कथन गाँव के विषय में एक प्रमाण माना जा सकता है–'ये सब बेवकूफियाँ अभी गाँव से गई नहीं। लोग आज भी पुराने अंधविश्वासों के गुलाम बने हुए हैं। किया क्या जाए।'[12]

जाति-पाँति की अस्पृश्यता का प्रभाव भी हमें इन उपन्यासों में मिलता है। 'जल टूटता हुआ' में चमार ब्राह्मण की अस्पृश्यता मिलती है। चमार हरिजन युवतियों से अपने अवैध संबंध रखते हैं तब नाक नहीं कटती है। सभी ब्राह्मण अपने-आपको हरिजनों का मालिक मानते हैं। हरिजनों का स्वर्ण की जोहूकमी चलती है।

'सूखता हुआ तालाब' में अस्पृश्यता मानते नेताओं का कहना है–'एक कुएँ पर बामन और हरिजन पानी नहीं भर सकते।'[13]

गाँव के एक नेता मोतीलाल जब हरिजन सभा से लौट रहे थे, तब रास्ते में जैराम उन्हें बताता है कि कुएँ पर पानी भरने गए आपके हलवाहे को रामलाल ने तमाचे मारे हैं। इस पर मोतीलाल बड़ी आजीजी से कहता है–'अरे जाने दीजिए, थप्पड़ खा गया तो कौन साला मर गया। अब चमार-सियार के लिए पट्टीदार से लड़ाई करने जाऊँ। जब गाँव के लोग छूतछात मानते हैं तो थोड़ा ठहरकर ही पानी भरता मुरतिया से, इतनी जल्दी क्या थी।'[14]

संदर्भ

1. सं॰ रामदरश मिश्र, ज्ञानचंद्र गुप्त, हिंदी के आंचलिक उपन्यास, पृ॰ 34
2. हिंदी साहित्य कोश, सं॰ डॉ॰ धीरेंद्र वर्मा, पृ॰ 14
3. ताराप्रकाश जोशी, संचेतना, पृ॰ 15
4. सूखता हुआ तालाब, रामदरश मिश्र, पृ॰ 45
5. पानी के प्राचीन, रामदरश मिश्र, पृ॰ 170
6. जल टूटता हुआ, रामदरश मिश्र, पृ॰ 5
7. पानी के प्राचीन, रामदरश मिश्र, पृ॰ 220
8. वही, पृ॰ 152
9. वही, पृ॰ 246
10. जल टूटता हुआ, रामदरश मिश्र, पृ॰ 9
11. पानी के प्राचीन, रामदरश मिश्र, पृ॰ 203
12. सूखता हुआ तालाब, रामदरश मिश्र, पृ॰ 36
13. वही, पृ॰ 16
14. वही, पृ॰ 18

पुत्री श्री रामसिंह
ग्राम और पोस्ट कुप कलाँ
तहसील मालेर कोटला
जिला संगरूर 148023
मो॰ 8872175813
manjeetmenrao88@gmail.com

आंचलिक उपन्यासकार फणीश्वरनाथ रेणु

रविंद्रकुमार, शोधार्थी
हिंदी-विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

भारत जैसे विशाल देश को यदि विविध अंचलों का समूह कहा जाए तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं होगी। मनुष्य ने जहाँ जन्म लिया है, वह एक अंचल है और है उसका कोई न कोई नाम। व्यक्ति घर से दूर जहाँ शिक्षा या जीविका पाता है, वह भी स्थान किसी अंचल में ही होता है। प्रत्येक अंचल भाषा, विचार, रहन-सहन, जीवन-यापन, सामाजिकता तथा धार्मिकता के कारण एक-दूसरे से अलग दिखाई देता है। यही पार्थक्य अंचल की आंचलिकता होती है।

अनुमानत: हर दो कोस के बाद भाषा अपना रूप बदलने लगती है। प्रत्येक अंचल पर जलवायु का अपना प्रभाव होता है। भेद भाषागत नहीं, विचारगत और आचारगत भी होते हैं। विचार के साथ आचार भी जुड़ा हुआ है। अत: बोलचाल, विचार, दूसरे अंचल से पृथक् ही प्रतीत होते हैं।

अंचल से तात्पर्य है कोई गाँव, उपनगर, नगर, प्रांत या विशेष भूखंड, जिसे कथाकार अपनी कृति का प्रधान केंद्र-स्थल मान लेता है। वह कथासाहित्य, जो किसी विशेष ग्राम, प्रांत या भूखंड से संबंधित होता है, उसे आंचलिक साहित्य की संज्ञा मिलती है।

हिंदी साहित्य में गाँव, नगर, प्रांत या एक विशेष भूखंड के लिए प्रयोग में आनेवाला अंचल शब्द व्याकरण की दृष्टि से योगरूढ़ है। अंचल शब्द संस्कृत से लिया गया है। 'संस्कृत का यह शब्द 'अचल' पाणिनी के व्याकरण के अनुसार 'अ्च' धातु के अलच् प्रत्यय लगाकर बना है।'[1]

संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी के अनुसार, 'अंचल शब्द का अर्थ वस्त्र या छोर ही है।'[2]

हिंदी राष्ट्रभाषा कोश में अंचल शब्द का अर्थ इस प्रकार किया गया है–'अंचल-संज्ञा पुलिंग (संस्कृत) आँचल, पल्ला, साड़ी का छोर, देश का वह भाग जो सीमा के पास में हो, नदी के किनारे की भूमि, तट या किनारा, क्षेत्र आदि।'[3]

ज्ञान शब्दकोश के अनुसार, 'अंचल का अर्थ है–वस्त्र का छोर, साड़ी, ओढ़नी आदि का छोर, जो धरती और पेट पर रहता है, आँचल, छोर देश का प्रांत भाग, कोना, तट, किनारा।'[4]

अंचल शब्द में तद्धित 'ठञ' प्रत्यय लगाकर आंचलिक विशेषण शब्द बनता है। यह 'ठञ' ठस्यंक: 'पाणिनीय सूत्र द्वारा 'इक' में परिणत होता है और तब अंचल इक=आंचलिक होता है। आंचलिकता का लगभग सभी आलोचकों ने एक-सा अर्थ ग्रहण किया है।

आंचलिकता शब्द की व्यापकता को स्पष्ट करने के लिए कुछ परिभाषाओं पर विचार करना अनिवार्य है–

श्री शिवप्रसाद सिंह के अनुसार, 'जैसा कि इस शब्द से स्पष्ट है, यह भाव संज्ञा किसी क्षेत्र

या अंचल से संबद्ध है। क्षेत्र या अंचल इस भौगोलिक खंड को कहते हैं, जो सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से सुगठित और विशिष्ट एक ऐसी इकाई ही जिनके निवासियों के रहन-सहन, प्रथाएँ, उत्सव आदि, आदर्श और आस्थाएँ, मौलिक मान्यताएँ तथा मनोवैज्ञानिक विशेषताएँ परस्पर समान और दूसरे क्षेत्र के निवासियों से इतनी भिन्न हों कि इनके आधार पर यह क्षेत्र या अंचल-विशेष इसी प्रकार के दूसरे क्षेत्रों से एकदम अलग प्रतीत हो। इस प्रकार के अंचल या क्षेत्र के जीवन को अभिव्यक्त करनेवाली रचना को हम आंचलिक कह सकते हैं।[5]

हिंदी साहित्यकोश में भी लिखा है, 'कुछ उपन्यासों में किसी प्रदेश-विशेष का यथा-तथ्य और बिंबात्मक चित्रण प्रधानता प्राप्त कर लेता है और उन्हें प्रादेशिक या आंचलिक उपन्यास कहा जाता है।'[6]

डॉ॰ विश्वंभरनाथ उपाध्याय ने 'आंचलिक उपन्यासों को जनजीवन का समग्र चित्रण माना।'[7]

डॉ॰ आदर्श सक्सेना के अनुसार, 'यदि प्रदेश का शाब्दिक अर्थ मात्र ही लिया जाए तो अंचल अवश्य ही उसकी परिधि में आ जाएगा, क्योंकि अंचल भी एक प्रदेश ही होता है। परंतु प्रदेश का एक अर्थ अपने विशिष्ट प्रयोग के कारण रूढ़ हो गया है और उसकी परिभाषा अंचल से भिन्न है।'[8]

अतः कहा जा सकता है कि आंचलिक उपन्यास में एक क्षेत्र, भूखंड या खंडविशेष के सामान्य जनजीवन का वैविध्यपूर्ण चित्रण होता है। उस ज्ञात-अज्ञात, परिचित या अपरिचित खंड-विशेष की जनभाषा, लोकसंस्कृति, राजनीति, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक आदि विविध विषयों का सर्वांग चित्रण करना इन आंचलिक उपन्यासों का अपना लक्ष्य होता है। अधिक गहराई में जाने पर ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रकार के उपन्यास में ग्राम्यजीवन के रहन-सहन, खान-पान, शिक्षा-दीक्षा, अंधविश्वास, धार्मिक विश्वास, कला, लोकसंस्कृति, आचार-विचार आदि पर पूर्णरूपेण प्रकाश पड़ता है तथा विभिन्न समस्याओं का हृदयग्राही रूप मिलता है।

अंचल होता है क्षेत्र या खंड, जो अपनी विशेषताओं के कारण संपूर्ण वस्तु का अंग होते हुए भी अपना विशिष्ट अर्थ रखता है। भाषा, शिल्प और रूप-विधान के क्षेत्र में भी आंचलिक साहित्य में एक नवीनता परिलक्षित होती है। आंचलिक साहित्य ने नए तत्त्वों का अन्वेषण किया, अभिव्यंजना की एक नई शैली दी। आंचलिकता आधुनिकता को प्रश्रय देती है, पर रेणु के उपन्यासों की आधुनिकता काल के प्रभंजन या आवेग में जीव की नौका को डुबा देनेवाला विधान नहीं है।

गाँव, कस्बा, नगर आदि एक समूह ही तो है। समूह अनेक जातियों का, अनेक संस्कारों का विभिन्न रस्म-रिवाजों का होता है। एक ही वातावरण में रहकर जातीय विभिन्नता के कारण भाषा में अंतर स्पष्ट परिलक्षित होता है। रेणु की 'परती परिकथा' में भी एक ही क्षेत्र 'परानुपुर' के गीतों में भाषा-वैविध्य के कारण आंचलिकता का सौंदर्य देखते ही बनता है। रेणु की 'परती परिकथा' आकार में लघु है, किंतु भाषा की गंभीरता और सजीदगी युक्त।'[9]

आंचलिक उपन्यासकार किसी विशिष्ट अंचल का सविस्तार वर्णन करता है और किसी भी परिवेश को उभारने का कार्य पृष्ठभूमि द्वारा संपन्न होता है। पृष्ठभूमि प्राकृतिक विशिष्टताओं की आत्मा होती है। प्राकृतिक चित्रण के माध्यम से ही आंचलिक उपन्यासकार वहाँ के जीवन को चित्रमयता प्रदान करता है। फणीश्वरनाथ 'रेणु' ने 'मैला आँचल' में एक ही क्षेत्र मेरीगंज को उपन्यास का माध्यम बनाया है। प्राकृतिक परिवेश को उपन्यासकार ने प्रारंभ में ही चित्रित किया

है–'बूढ़ी कोसी के किनारे-किनारे बहुत दूर तक ताड़ और खजूर के पेड़ों से भरा हुआ जंगल ताड़े छन्ना के बाद ही एक बड़ा मैदान, लाखों एकड़ जमीन बंध्या धरती का विशाल अंचल इसमें दूब भी नहीं पनपती है। बीच-बीच में बालूचर और कहीं-कहीं बेर की झाड़ियाँ। कोसभर मैदान पार करने के बाद पूरल की ओर काला जंगल दिखाई पड़ता है। वही मेरीगंज कोठी है।'[10]

उपन्यासकार मेरीगंज के मच्छरों और कालाजार से भी भयभीत है। छोटे-छोटे गड्ढों में पानी जमा होने के बाद मच्छरों का प्रकोप बहुत भयंकर होता है। उपन्यासकार का ध्यान उस ओर भी गया है।

'परती परिकथा' नाम ही वहाँ के भौगोलिक परिवेश की ओर इंगित करता है। 'परती परिकथा' में जिस क्षेत्र का चित्र उपन्यासकार उपस्थित करता है, वह है–धूसर, वीरान, अंतहीन प्रांतर पतिता भूमि, परती जमीन, बंध्या धरती नहीं धरती की लाश, जिस पर कफन की तरह फैली हुइ बालूचरों की पक्तियाँ।

आंचलिक उपन्यासकार मौखिक तत्त्व एवं वैज्ञानिक पद्धति पर विश्वास करता है। वैज्ञानिक पद्धति की समस्या का प्रश्न उन्होंने उठाया है। यदि सूखाग्रस्त क्षेत्रों के लिए कृत्रिम बादलों का आविष्कार हुआ तो अतिवृष्टि का भी निराकरण आवश्यक है। 'रेणु' ने अपनी पुस्तक में इस प्रश्न को उठाया है। असमय में प्रलयकारी बादलों को दूर करने के लिए आविष्कार की आवश्यकता है।

प्रेमचंद नारी-मनोविज्ञान के पारखी थे। नारी को स्वतंत्रता-संग्राम के लिए उन्मुख करनेवाले प्रेमचंद ही थे। नारी की सभी समस्याओं को उन्होंने अपनी कृतियों में स्थान दिया है। आंचलिक उपन्यासकार इस परंपरा को गति दे रहे हैं। नारी-स्वतंत्रता उनका लक्ष्य है। आंचलिक उपन्यास उपन्यासकारों ने गाँव की प्रगति में नारी को मेरुदंड माना है। नारी को समाज में हेय और दयनीय दृष्टि से देखा जाता है। आंचलिक उपन्यासकार 'रेणु' इस व्यथा से परिचित हैं। नारी को सामाजिक मुक्ति दिलाने के लिए किए जाने वाले संघर्ष के 'रेणु' समर्थक हैं। ग्रामीण नारियों में भी जागरूकता आ गई है। पुरुषों के समक्ष खड़ी होकर नारी अपना सामाजिक अस्तित्व बनाए रखना चाहती है। ग्रामीण क्षेत्रों में लड़की का जन्म अभिशाप माना जाता है। 'रेणु' इससे पूर्णत: परिचित हैं। 'मैला आँचल' में इस धारणा को स्पष्ट करते हुए 'रेणु' कहते हैं–'हुजूर, लड़की जात है, बिना दवा-दारू का ही आराम हो जाता है।' लेकिन बूढ़े का इसमें कोई दोष नहीं है। सभ्य कहलाने वाले समाज में भी लड़कियाँ बला की पैदाइश समझी जाती हैं। जंगल झार।'[11]

अत: निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि फणीश्वरनाथ रेणु ने अपने सभी उपन्यासों में ग्रामीण जीवन अंचल को चित्रित किया है। इन्होंने अपने उपन्यासों में अंचल-विशेष के रहन-सहन, शिक्षा-दीक्षा, धार्मिक मान्यता, अंधविश्वास, पाखंड आदि का वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त अपने उपन्यासों में ग्रामीण जीवन की राजनीति, धार्मिक मार्मिक, सामाजिक पर्वों पर भी पूरा प्रकाश डाला है। निश्चय ही इसमें कोई संदेह नहीं है कि 'रेणु' जी ग्रामीण जीवन से जुड़े रचनाकार हैं।

संदर्भ

1. सिद्धांत कौमुदी, उणादि प्रकरण, अंतिम सूत्र संख्या 759
2. संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी, सर मोनियर विलियम, पृ॰ 11
3. हिंदी राष्ट्रभाषा कोश, सं॰ श्रीवास्तव एवं चतुर्वेदी, पृ॰ 126

4. ज्ञान शब्दकोश, सं॰ मुकुंदीलाल श्रीवास्तव, पृ॰ 4
5. आंचलिकता और आधुनिक परिवेश, शिवप्रसाद सिंह, 'कल्पना', मार्च 1965, पृ॰ 26
6. हिंदी साहित्य कोश, सं॰ धीरेंद्र वर्मा, पृ॰ 19
7. हिंदी उपन्यास : सिद्धांत और विवेचन, डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, पृ॰ 9
8. हिंदी के आंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्पविधि, डॉ॰ आदर्श सक्सेना, पृ॰ 30
9. परती परिकथा, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ॰ 12
10. जुलूस, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ॰ 181
11. मैला आंचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ॰ 163-164

S/o Shri Rajkumar
Balbehra, Tehgulia
Kaithal 136034
Mo. 9992095036
ravinderbalbehra@gmail.com

 ISSN 0975-735X

दलित-चेतना की अभिव्यक्ति : स्वदेश दीपक के कोर्ट-मार्शल नाटक के विशेष संदर्भ में

प्रा॰ डॉ॰ ए॰जे॰ बेवले
सहयोगी प्राध्यापक, हिंदी विभाग
मोरेश्वर महाविद्यालय, भोकरदन, जि॰ जालना (महा॰)

भारतीय संस्कृति का मूल ढाँचा वर्णव्यवस्था पर आधारित है।इसी कारण समाज का बहुत बड़ा वर्ग सदियों से उपेक्षित रहा है। मनुष्य होने के बावजूद समाज-व्यवस्था ने उसे पशुतुल्य जीवन जीने के लिए विवश कर दिया है। भारतीय समाज-व्यवस्था में चतुर्थ वर्ण को शूद्र, अस्पृश्य, हरिजन और आज दलित के नाम से अभिहित किया जाता है। इसी चतुर्थ वर्ण को समाज-व्यवस्था ने इतना उपेक्षित किया है कि वे अपनी जुबान तक नहीं खोल सके। दलित उसे कहा जाता है, जिसका आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक दृष्टि से शोषण किया गया हो। भारत में विशेषकर दलितों का आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक शोषण हुआ है। आधुनिककाल में महात्मा ज्योतिबा फुले, राजर्षि शाहु महाराज, डॉ॰ बाबासाहेब आंबेडकर जैसे महापुरुषों के अथक् संघर्षों के कारण दलितों को शिक्षा का अधिकार प्राप्त हुआ। उनके जीवन में परिवर्तन हुआ। वर्तमान समय में भले ही अस्पृश्यता, छुआ-छूत समाप्त हुई हो, लेकिन आज भी सवर्णों के मन में छुआ-छूत और अस्पृश्यता बड़ी मात्रा में दिखाई देती है। उसी मानसिकता का शिकार आज दलितवर्ग दिखाई देता है। इक्कीसवी सदी ज्ञान-विज्ञान की सदी है फिर भी भारत में दलितों को अछूत माना जाता है। उन पर अन्याय, अत्याचार किया जाता है। जिस देश का लोकतंत्र जातीयता पर चुनाव जीतता हो, उस देश में समानता की भावना संभव नहीं है।

हिंदी नाटक साहित्य में भी साहित्य की अन्य विधा की तरह ही दलित-चेतना पर ध्यान दिया गया है। हिंदी नाटकों में दलितों की मानसिक शारीरिक व्यथा, शोषण, अपमान, पीड़ा को चित्रित किया गया है। नाटककारों ने कहीं-कहीं दलित पात्रों को क्रांतिकारी, विद्रोही चित्रित करके दलितचेतना के लिए प्रेरक बताया है। भारतेंदुयुग से लेकर आज तक वर्णव्यवस्था से प्रभावित दलितों की दशा एवं दिशा का चित्रण किया गया है। विशेषत: स्वातंत्र्योत्तरकालीन हिंदी नाटकों ने दलितों की विविध समस्याओं को ध्यान में रखकर समाधान बताते हुए अनेक नाटक लिखे गए हैं। इन्हीं में स्वदेश दीपक का 'कोर्ट मार्शल' नाटक भी है। कोर्ट मार्शल नाटक में रामचंदर के माध्यम से दलित-चेतना की अभिव्यक्ति होती है। स्वदेश दीपक ने इस नाटक के माध्यम से वर्तमान पीड़ा को व्यक्त किया है। देश की सुरक्षा के प्रमुख स्तंभ आर्मी में वर्णव्यस्था के कारण सैनिकों का मानसिक रूप से उत्पीड़न किया जाता है। यह नाटक गंदे हथकंडे अपनाने वाले उच्चवर्गीय अधिकारियों की पोल खोलता है। डॉ॰ माधव सोनटक्के के अनुसार स्वदेश

दीपक का नाटक 'कोर्टमार्शल' हमारी समकालीन व्यवस्था के हर अंग में छिपे उन चेहरों का सीधा पर्दाफाश करता है, जो कानून, नियम, अनुशासन तथा व्यवस्था की ओट में निम्नवर्ग का निर्मम शोषण करते रहे हैं।'[1]नाटक में रामचंदर नामक जवान का कोर्टमार्शल किया जा रहा है, जो निम्नजाति का है। इसने एक अपराध किया है। रेजिमेंट के दो अफसरों पर इसने कातिलाना हमला किया है। जिस हमले में कैप्टन वर्मा की मौत हो गई है और कैप्टन कपूर गंभीर रूप से घायल हुआ है। स्वदेश दीपक कोर्ट मार्शल के दौरान पूछे गए सवाल-जवाब के माध्यम से हमारे सामने शोषणमूलक व्यवस्था का चेहरा खोलते हैं।

रामचंदर सेना की टुकड़ी का कर्मठ सैनिक, अनुशासन, श्रम व खेलकूद में अव्वल एक आइडियल सोल्जर है। नाटककार ने उस सत्य पर प्रकाश डाला है, जिसके कारण रामचंदर को ऐसा जुर्म करने के लिए विवश किया गया। विकासराय कहते हैं–'सोचिए जरूर कि रामचंदर ने गोली क्यों चलाई। क्यों किया खून। कई बार सच बिल्ली की तरह दुबककर किसी अँधेरे कोने में छिपकर बैठा रहता है। ध्यान से देखें, सोचें, तभी पता चल सकता है कि सत्य क्या है।'[2] नाटक का यह संवाद सत्य को सामने लाता है। भारतीय प्रजातंत्र समता, न्याय, स्वातंत्र्य की नींव पर खड़ा है। सामंती प्रवृत्तियाँ अपने स्वार्थ के लिए दलितों का शोषण करती थीं इसलिए संविधान ने सवर्ण और दलित को एक समान अधिकार दिए। लेकिन दलितवर्ग का सम्मानित जीवन पाने का अधिकार संविधान के कागजों पर बेजान बनकर सूख गया है। क्योंकि आज भी हर शहर गाँव, गली और चौराहे पर दलित अत्याचार की घटनाएँ होती हैं। रामचंदर भंगी है तो कैप्टन बी॰डी॰ कपूर तथा कैप्टन मोहन वर्मा सवर्ण जाति से हैं इसलिए बार-बार उसको अपमानित कर उसे गंदी गालियाँ देते रहते हैं। व्यवस्था के हर ऊँचे पदो पर अधिकतर कैप्टन कपूर वर्मा, गुप्ता जैसे तथाकथित ऊँचे लोग ही बैठे हैं। प्रजातंत्र को उन्होंने मात्र मुखोटों के रूप में अपनाया है। उसके भीतर उनका असली चेहरा सामंती-संस्कारों से विकृत हुआ है। कैप्टन कपूर के दिमाग पर वंशीय महानता छाई हुई है, इसलिए वह बड़े गर्व से कहता है–'पिछली चार पुश्तों से हमारे पुरखे राज कर रहे हैं। आई॰सी॰एस॰, आई॰एफ॰एस॰ आर्मी, नेवी, एयर फोर्स सब जगह अफसर हैं हमारे खानदान के लोग।'[3] उनकी यह धारणा है कि सभी तरह की योग्यताएँ उच्चवर्णियों में होती हैं इसलिए हर ऊँचे पद पर उच्चवर्गीय का ही होना आवश्यक है। कैप्टन कपूर की यह मानसिकता एकाधिकार को स्पष्ट करती है।

अनादिकाल से चली आ रही निम्नजाति के शोषण और अन्याय की मानसिकता आजादी के इतने वर्षों बाद भी अनेक मस्तिष्कों में पनाह लिए हुए है। बी॰डी॰ कपूर शराब पीने के कारण रामचंदर से रेजीमेंट की दौड़ हार जाता है और बदला लेने के लिए रामचंदर को अपना सेवादार बना लेता है, ताकि वह दौड़ का अभ्यास न कर सके और उसे अपमानित किया जा सके। नियमों को तोड़कर बी॰डी॰ कपूर उससे घर के काम करवाता है, सरकारी अनाज खुले बाजार में बेचना, यहाँ तक कपड़े भी धोने का कार्य रामचंदर को करना पड़ता है। परंतु वरिष्ठ अधिकारी उच्चवर्ग के अफसरों पर कार्यवाही नहीं करते और निम्नजाति के कर्मचारी को प्रताड़ित करते रहते हैं। विकास राय कहता है–'नियम और कानून केवल छोटे और कमजोर लोगों के लिए होते हैं, कहाँ मानते हैं रूल्ज को बड़े और ताकतवर लोग...आप तो अपने से छोटों के खिलाफ एक्शन ले सकते हैं।'[4] न्यायव्यवस्था, अर्थव्यवस्था, धर्मव्यवस्था, समाजव्यवस्था और राजकीय व्यवस्था ने सदैव

निम्नवर्ग से भेदभाव किया है।

कैप्टन कपूर ऊँच-नीच, जाति-पाँति की घृणित मानसिकता से भरा हुआ है। इसलिए वह रामचंदर से नफरत करता है। उसकी धारणा है कि सभी तरह की योग्यताएँ उच्चवर्णियों तथा अफसरों में होती हैं, इसीलिए वे कहते हैं–'अब खानदानी लोग फौज में भरती नहीं होते। नीची जाति के लोगों को भरती किया जाएगा तो यही होगा। भूखे-नंगों को जब फौज में भरती किया जाए, भरपेट रोटी मिलने लगे तो उनका दिमाग फिरेगा कि नहीं।'[5] रामचंदर ने अपनी योग्यता के आधारपर फौज में भर्ती होकर एक अड़ियल सोल्जर के रूप में अपनी छवि निर्मित की है। साथ ही दौड़ प्रतियोगिता में भी प्रथम क्रमांक प्राप्त किया है। साथ ही उसने खानदानी ऊँचाई का गुमान करनेवाले कैप्टन कपूर के पिछाले रेकॉर्ड भी तोड़ दिए हैं। यहीं से आरंभ होता है, शोषण का लंबा सिलसिला। पराजय के कारण गहरी चोट खाया हुआ कपूर रामचंदर का दुश्मन बन जाता है। रामचंदर को मानसिक रूप से पीड़ित करना और उसके आत्मविश्वास को तोड़ना उसका प्रमुख लक्ष्य बन जाता है। रामचंदर से बदला लेने के लिए कैप्टन कपूर उसे अपना अर्दली बनवा लेता है। प्रैक्टिस के समय उसे घर के काम लगाए रखता है। कपूर और वर्मा उसे चुहड़ा और भंगी कहकर पुकारते, गाली देते। एक दिन तो रामचंदर की योग्यता और आत्मसम्मान पर कैप्टन कपूर ने करारा आघात किया। घर आए हुए मेहमानों के सामने उसे छोटी बच्ची की पॉटी साफ करने के लिए कहा। इस पर रामचंदर ने साफ इन्कार कर दिया। कैप्टन कपूर ने सब मेहमानों के सामने कहा–'जात का चूहड़ा और टट्टी उठाने में शर्म आती है, तुम्हारे पुरखे पुश्तों से हम लोगों की टट्टी की टोकरी सिर पर उठा रहे है।'[6] कैप्टन कपूर रामचंदर को अपमानित करके ही शांत नहीं रहता है, बल्कि बेवजह सजा दिलाता है, तेज बुखार में भी हॉकी खेलने के लिए मजबूर करता है। कैप्टन कपूर के व्यवहार से तंग आकर रामचंदर सूबेदार बलवानसिंह से शिकायत करके अपनी ड्यूटी बदलवा लेता है। कपूर के अंह को और भी ठेस पहुँचती है। जब भी रामचंदर उसके सामने आता है, तब उसे अपमानित करने का एक भी मौका कैप्टन कपूर नहीं छोड़ता है। जिस दिन रामचंदर ने गोलियाँ चलाईं, उस हादसे के समय भी कैप्टन कपूर ने रामचंदर की आत्मा को चोट पहुँचाई थी। अपने दोस्त कैप्टन मोहन वर्मा के साथ मोटर साइकल पर जाते समय कैप्टन कपूर ने कहा था, 'चिट्टे चूहडे। हराम की सट्ट। तेरी माँ जरूर किसी कपूर या वर्मा के साथ सोई होगी।'[7] ऐसी गंदी गालियों के कूर आघातों से, माँ के चरित्र पर लांछन लगता देख घायल रामचंदर के संयम के सभी बाँध टूट जाते हैं और अंदर तक अब जमा हुआ लावा फूट पड़ा। गुस्से में उसने गोली चलाई, जिसमें कैप्टन वर्मा की हादसे की जगह पर ही मौत हो गई, कैप्टन कपूर गंभीर रूप घायल हो गए है। जान-बूझकर होशोहवास में कत्ल करने पर रामचंदर का जनरल कोर्ट-मार्शल किया गया।

निम्नवर्ग का रामचंदर छुआछूत की मानसिकता का शिकार है और इसीलिए वह कोर्ट के सामने बोलने से सकपका रहा है। राय उसे बोलने के लिए तैयार करते हैं। भारतीय संविधान जिस जातिगत भेदभाव को मिटाने की बात करता है, उससे परिस्थिति बिल्कुल उल्टी बन गई है। विकासराय इस संदर्भ में कहते हैं–'कानून और संविधान ने सबको बराबर का दर्जा, बराबर का अधिकार दे दिया।'[8] जो समाज-व्यवस्था जाति के आधार पर चलेगी उस समाज की आयु कभी लंबी नहीं हो सकती और उस समाज का विकास भी संभव नहीं है।

उपसंहार

'कोर्ट मार्शल' नाटक हमारी समकालीन व्यवस्था के प्रत्येक पहलू में छिपे उन चेहरों का पर्दाफाश करता है, जो कानून, नियम, अनुशासन तथा व्यवस्था की विसंगति पर करारा व्यंग्य हैं। इसके साथ ही साथ भारतीय समाज का कोढ़ कहलानेवाली जाति और वर्णव्यवस्था के प्रति तीखा आक्रोश भी व्यक्त किया है। दलितों के आक्रोश को जितनी दृढ़ता के साथ स्वदेश दीपक ने पकड़ा है, उतना शायद अन्य दलित साहित्यकारों ने नहीं। सही रूप में दलितचेतना की अभिव्यक्ति 'कोर्ट मार्शल' में हुई है। जातिभेद की समस्या आज भी महत्त्वपूर्ण है। आज भी व्यवस्था के कई हिस्से ऐसे हैं, जो जातिभेद के कलंक को अपने साथ लिए हैं। इस नाटक में कैप्टन कपूर उसी व्यवस्था का प्रतिनिधि है। नाटककार ने जातिभेद की समस्या को खोलकर रख दिया है। आज भी हमारा समाज सामंती सोच से किस तरह मुक्त नहीं हुआ है, इसका यथार्थ चित्रण यहाँ हुआ है। स्वदेश दीपक ने उच्चजाति की निम्नजाति के प्रति सामंती मानसिकता को उघाड़ा है। न्यायव्यवस्था, अर्थव्यवस्था, धर्म व्यवस्था, समाजव्यवस्था और राजकीय व्यवस्था ने सदैव निम्नवर्ग से भेदभावपूर्ण रवैया अपनाया है। समाज के खोखलेपन को और घमंड को, स्वदेश दीपक ने कैप्टन कपूर और कैप्टन वर्मा के माध्यम से उजागर किया है। संविधान और कानून में जो समता, बंधुता और स्वातंत्र्य है, वह स्वातंत्र्य और समता वास्तव में नहीं है, इस तथ्य को स्वदेश दीपक ने उजागर किया है।

संदर्भ

1. समकालीन नाट्य विवेचन, डॉ॰ माधव सोनटक्के, पृ॰ 119
2. कोर्ट मार्शल, स्वदेश दीपक, पृ॰ 41
3. वही, पृ॰ 82
4. वही, पृ॰ 76
5. वही, पृ॰ 82
6. वही, पृ॰ 78
7. वही, पृ॰ 89
8. वही, पृ॰ 92

मो॰ 9422737968

वाचस्पति कुलवंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

मोनिका रानी
एम॰ फिल॰ शोधार्थी
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

व्यक्तित्व का कोशगत अर्थ है–व्यक्ति का विशेष गुण या भाव। आधुनिक हिंदी साहित्य में 'व्यक्तित्व' शब्द अँग्रेजी शब्द पर्सनैलिटी का पर्याय माना जाता है। लोमेन के मतानुसार, 'व्यक्तित्व वह उद्दीपक मूल्य है, जो कि एक व्यक्ति दूसरे के लिए रखता है। दार्शनिक दृष्टि से व्यक्तित्व पूर्णतया एक आदर्शी है।'[1] डॉ॰ सत्येंद्र ने व्यक्तित्व की परिभाषा देते हुए कहा है कि 'मनुष्य का समस्त स्वरूप ही उसका व्यक्तित्व है।'[2] उसके गुण, अवगुण, उसका स्वभाव, उसका आंतरिक मन, उसका सांस्कृतिक उपार्जन इन सबका एक-साथ रसायन प्रस्तुत होता है कि वह उस व्यक्ति के स्वरूप को एक पृथक् महत्त्व प्रदान कर सकता है। प्राय: सभी साहित्यकारों और विचारकों का व्यक्तित्व कुछ विशिष्ट होता है।

किसी वस्तु या व्यक्ति को देखने का नजरिया ही उसे खास या आम बनाता है। जैसे 1/2 भाग पानी से भरे गिलास को ही ले लीजिए। कुछ लोगों को यह आधा भरा, कुछ लोगों को आधा खाली और कुछ को पूरा भरा दिखाई देगा, आधा पानी से और आधा हवा से। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति का स्वभाव तथा व्यक्तित्व दूसरे से भिन्न होता है। वाचस्पतिजी का सरल व विनोदशील स्वभाव ही उसके व्यक्तित्व को अद्‌भुत बनाता है। विभिन्न सम्मेलनों की अध्यक्षता करते हुए प्राय: दृढ़ मुद्रा में बैठे हुए वाचस्पतिजी साक्षात कैलाश पर स्थित शंकर जैसे जान पड़ते हैं। उनका ऊँचा कद, सुदृढ़ पुष्ट शरीर उनके क्रांतिमय व्यक्तित्व को 'शिवत्व' का स्वरूप सहज ही प्रदान करता है। वाचस्पति कुलवंतजी के व्यक्तित्व को कुछ शब्दों में बयाँ करना ऐसा होगा, जैसे सूरज को दीपक दिखाना। वास्तव में, वाचस्पतिजी समसमायिक निर्भीक चिंतक, युगद्रष्टा एवं युगांतकारी साहित्यकार हैं। वाचस्पतिजी का व्यक्तित्व और कृतित्व अद्‌भुत है। वे स्वार्थ के दृढ़ पाश में पददलित करते हुए, जीवन की विभिन्न बाधाओं को चीरते हुए, निर्भीकतापूर्वक साहित्य में एवं समाजसेवा में लीन हैं।

किसी भी सामाजिक प्राणी को समझने, जानने में उनकी पारिवारिक भूमिका की विशेष महत्ता होती है कि किन-किन पड़ावों से गुजरकर कोई व्यक्ति कहाँ, किसी लक्ष्य तक पहुँचा है। वाचस्पतिजी साहित्य और समाज के वे स्तंभ हैं, जिनकी जड़ों को जाने बिना उन्हें पहचानने व समझने में कठिनाई होगी।

जन्म व पारंपरिक जीवन

वाचस्पतिजी का जन्म अलवर (राजस्थान) में हुआ। उनके पिता का नाम बहादुरसिंह आर्य

व माताजी का नाम श्रीमती सुरजीदेवी है। इनका विवाह डॉ॰ सुशीला कुलवंत से हुआ। पत्नी को वे अपनी परम मित्र मानते हैं। उनके बेटे का नाम सुधाकर व बेटी का नाम कविता है। वाचस्पतिजी ने अपनी प्रारंभिक शिक्षा राजकीय जवाहर वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, कुचामन शहर से प्राप्त की।

बचपन से ही वाचस्पतिजी अपने लिए नहीं, दूसरों के लिए जीने में विश्वास रखते हैं। वाचस्पतिजी अपने बनाए सिद्धांतों पर चलते हैं। संकल्प, सफलता की कुंजी है। हमेशा याद रखना चाहिए कि 'सफलता के लिए किया गया आपका अपना संकल्प किसी भी और संकल्प से ज्यादा महत्त्व रखता है।'

'हर सुबह मैं अपनी आँखें खोलता हूँ, उस भविष्य को सँवारने के लिए जो मेरे लिए खास है। हर रात मैं अपनी आँखें बंद कर लेता हूँ और देखता हूँ कि मेरा लक्ष्य थोड़ा और मेरे पास है।'

शिक्षा-दीक्षा

बचपन से ही वाचस्पतिजी को पढ़ने-लिखने का बहुत शौक था। उनकी आरंभिक शिक्षा कई स्थानों पर हुई। बी॰ए॰ की परीक्षा गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार से प्रथम श्रेणी में पास की। एम॰ए॰ हिंदी की परीक्षा कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र से उत्तीर्ण की। कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र से ही इन्होंने एम॰फिल॰ और पीएच॰डी॰ हिंदी की उपाधि प्राप्त की।

प्रशासनिक सेवाएँ

वाचस्पतिजी ने अपना संपूर्ण जीवन ही समाजसेवा और देशसेवा में लगा दिया है। इन्होंने छह वर्ष तक डी॰ए॰वी॰ कॉलेज, हिसार और अंबाला में प्राध्यापक के रूप में अपनी सेवाएँ दी हैं। उन्होंने 29 वर्षों तक भारत के अलग-अलग हिस्सों में अपनी प्रशासनिक सेवाएँ दी हैं। 'पूर्वी जोन' बिहार में उपनिर्देशक के रूप में डी॰ए॰वी॰ पब्लिक स्कूल में अपनी सेवाएँ दी हैं। बिहार, नेपाल, उड़ीसा, बंगाल, सिक्किम और हरियाणा में क्षेत्रीय निर्देशक के रूप में डी॰ए॰वी॰ पब्लिक स्कूल में अपना योगदान दिया है।'

'सन् 2016 से पतंजलि विश्वविद्यालय, हरिद्वार में उपकुलपति के रूप में अपनी सेवाएँ दे रहे हैं।'[3] पतंजलि विश्वविद्यालय, हरिद्वार में जाकर ही हम वाचस्पतिजी की काम के प्रति संपूर्ण भावना को समझ सकते हैं। शब्दों में वर्णन अत्यंत दुष्कर होगा, विश्वविद्यालय उनके लिए मंदिर है, जिसकी सेवा करना ही वे अपना धर्म समझते हैं। कहते हैं, शिक्षा ही वह दीपक है, जो चारों तरफ प्रकाश फैलाता है। शिक्षा का प्रकाश सूर्य के समान है, जिसे रोका नहीं जा सकता। शिक्षा के माध्यम से ही वाचस्पतिजी समाज में फैलते अँधेरे को मिटाने में योग दे रहे हैं।

कृतित्व

वाचस्पतिजी सौम्य, मिलनसार एवं हँसमुख व्यक्तित्व के धनी हैं। व्यक्तित्व के साथ-साथ उनका कृतित्व भी बेजोड़ है। उनके कृतित्व में समकालीन समस्याओं को अभिव्यक्त किया गया है। युग-परिवर्तन में मानव-मस्तिष्क पर पड़नेवाले प्रभावों को दिखाया है। आज अकेलापन, निराशा, दुखवाद, मृत्युबोध मानव जीवन का परम सत्य बन चुके हैं। आज व्यक्ति-स्वातंत्र्य का समर्थक होने के कारण सभी सामाजिक मान्यताओं को नकारता है। एकाकीपन या अकेलेपन में मनुष्य व्यष्टिगत या समष्टिगत दोनों रूपों में स्वयं को कटा-कटा सा महसूस करता है। चरम वेदना

एवं अनुभूति के क्षणों में व्यक्ति अकेला ही होता है और इस अकेलेपन में वह क्या करता है, इसी में उसके आत्मिक धातु की कसौटी है। इन जीवंत समस्याओं को ही उन्होंने अपने कृतित्व का आधार बनाया है। मनुष्य की इन्हीं भावनाओं को समझकर और महसूस करके वाचस्पतिजी ने अपनी कृतियों को रचा है। सच्चे प्रेम को आस्था माना है। प्रेमी में ही भगवान के दर्शन करते हैं। आज समाज में फैली असंतोष, अकेलेपन की शून्यता को प्रेम से ही दूर किया जा सकता है।

प्रमुख रचनाएँ

वाचस्पतिजी के सोलह शोध-पत्र प्रकाशित हुए हैं, जिसमें उन्होंने समाज को नई दिशा देने का प्रयास किया है।

1. निराला के काव्य में अद्वैत वेदांत का प्रभाव
2. निराला साहित्य एवं वेदांत दर्शन
3. आकाश में तानें दो मुट्ठियाँ
4. बिंदुमाल (कविताओं का संग्रह)
5. अनुभूतियों के संदर्भ में (काव्य-संग्रह)
6. पत्रिकाएँ 1. आवेदन 2. कालिंदी

विचारधारा

कोई भी रचनाकार अपने समय का सजग प्रहरी होता है। उनकी दृष्टि व्यक्ति और समाज की प्रत्येक गतिविधियों पर केंद्रित होती है। अपनी रचनाओं के उज्ज्वल प्रकाश से वह समाज और व्यक्ति का मार्गदर्शन करता है। उनके कुछ मूल्य होते हैं, जिनका आश्रय लेकर वह व्यक्ति समाज का दिग्दर्शन बनता है। बहुआयामी प्रतिभा के धनी साहित्यकार वाचस्पतिजी ऐसे ही सजग एवं सचेत रचनाकार हैं, जिनकी रचनाओं में प्रेम, करुणा, मैत्री, भ्रातृत्व-भावना, सहयोग आदि ऐसे ही अनेक मानवमूल्य यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। भावफलक की दृष्टि से भी वाचस्पतिजी का काव्य अनुपम है, जिनमें प्रेम और मानवीय मूल्यों की अपनी अलग छटा है।

संदर्भ

1. डॉ० रमेश गुप्त, बिहारी व्यक्तित्व एवं जीवन-दर्शन, पृ० 33
2. वही, पृ० 34
3. universityofpatanjali.com

वाचस्पति कुलवंत विरचित काव्य में प्रेम का स्वरूप

मोनिका रानी
एम॰फिल॰ शोधार्थी
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

प्रेम मानव की सहज एवं सार्वभौम प्रवृत्ति है। प्यार, मोहब्बत, आनंद, क्रीड़ा, हास्य, वर्ण, भाव, स्वभाव इत्यादि से उत्पन्न होने वाला वह आकर्षक एवं सुखद मनोभाव है, जिससे प्रभावित स्त्री-पुरुष आमोद-प्रमोद पूर्ण आदान-प्रदान हेतु एक साथ आनंदपूर्वक रहना चाहते हैं। प्रेम 'दो' से एक होने का भाव है। वाचस्पतिजी के काव्य-संग्रह 'अनुभूतियों के संदर्भ' में प्रेम के प्रत्येक स्वरूप को दिखाया गया है। लौकिक-अलौकिक, संयोगानुभूति, विरहानुभूति से लेकर प्रकृति के उद्दीपन तक अपनी सफल लेखनी चलाई है।

अलौकिक प्रेम

इनके काव्य में प्रेम के सभी सूक्ष्म-स्थूल, अलौकिक-लौकिक, नियंत्रित-उच्छृंखल रूप देखने को मिलते हैं। जब प्रेम इस लोक की मर्यादाओं को तोड़कर उपासना बन जाता है तो अलौकिक कहलाता है। ईश्वर के प्रति परम अनुरक्ति या अपने प्रेम को ईश्वर तुल्य मानकर उसकी उपासना करना ही अलौकिक प्रेम है। 'तुम विश्वास मुझे लौटा दो' कविता में वाचस्पतिजी दो पल के मिलन को अनंत काल तक मिलनेवाले संतोष से बढ़कर मानते हैं–

तेरे उन स्पर्शों से तब तो कोमल,
कोमल कलियाँ खिल जाती थीं।
जब हम दोनों, क्षण मिलते तो,
धरा स्वर्ग से मिल जाती थी।
वे घड़ियाँ अहसास करा दो,
चिर संतोषी बन जाऊँगा।[1]

विरहानुभूति ही प्रेम को पूर्ण करती है। यह प्रेम का सार है। महादेवीजी के काव्य में जो वेदना दिखती है, वही कसम वाचस्पतिजी के काव्य में विद्यमान है। 'प्रियतम! मैंने गूँथे हार' कविता में वाचस्पतिजी भी अपने अज्ञात प्रियतम से मिलने के लिए लालायित हैं और अपनी विरह-व्यथा का वर्णन करते हुए कहते हैं–

क्या-क्या प्रिय मैं तुम्हें सुनाऊँ,
दुख की गाथा कैसे गाऊँ?
रूप और यौवन-सरिता पर,
कब तक बंधन और लगाऊँ।[2]

 ISSN 0975-735X

लौकिक प्रेम

अलौकिक प्रेम शारीरिक एवं स्थूल रूप की सुंदर अभिव्यक्ति है। पाश्चात्य साहित्यकार स्कॉट जेम्स कहते हैं–'सौंदर्य एक भूषण है, एक युक्त गुण है। यह यथार्थ की दृष्टि से मूल तक प्रवेश कर जाता है और इसका संबंध उस आनंद एवं तृप्ति से है, जो हमें यथार्थ से प्राप्त होती है।'[3] नारी-पुरुष का यह संबंध एक नैसर्गिक वरदान है। यह प्रेम-व्यापार कोई अपराध न होकर सृष्टि की माँग है। आकर्षण प्रेम का आधार है। सौंदर्य किसी भी रूप में हो, उसमें सहज आकर्षण शक्ति विद्यमान है। बड़े-बड़े तपस्वियों, संन्यासियों को भी यह सौंदर्य मुग्ध करता है। वाचस्पतिजी के काव्य में सौंदर्य का असीम वर्णन है। जिस प्रकार अज्ञेय की 'सदानीरा' में दिखाया गया है कि प्रेमी नायिका के भोलेपन को देखकर प्रसन्न है कि किस प्रकार पुष्प भी उसके शरीर के साथ ठिठोली कर रहे हैं। वे मदहोशी में झूमकर नृत्य कर रहे हैं। यही भाव वाचस्पतिजी के काव्य में मिलता है। कवि की नायिका अनिंद्य सुंदरी है। जबसे उसे नायिका के रूप में सौंदर्य के दर्शन हुए हैं, उनकी चेतनता लुप्त हो गई है। वह अपलक नेत्रों के साथ अपनी प्रियतमा का सौंदर्य निहारता है। नायक का नायिका के बाह्य सौंदर्य पर सर्वस्व अर्पण करने का भाव इस प्रकार वर्णित है–

हँसकर मुझको गले लगाना।
अल्हड़ तेरी मस्त जवानी,
उस पर बच्चों-सी नादानी।
भोली-भाली तेरी आँखें,
धीरे से उनका झुक जाना,
हँसकर मुझको गले लगाना।[4]

वास्तविक सौंदर्य क्षण-क्षण नवीन होता है। सौंदर्य लौकिक-अलौकिक सबका आधार है। सौंदर्य प्रेमोत्पादक तत्त्व है, प्रेमियों की पारस्परिक प्रेम-कीड़ा के आनंद को बढ़ानेवाला भी है। उद्दीपन के सौंदर्य-दर्शन मात्र से ही आलंबन के चित्त में प्रेम मनोभाव स्फुरित हो जाता है। राधा तथा कृष्ण के हृदय से अद्‌भुत कामाकर्षण का उद्‌बोधक तत्त्व शरीर सोंदर्य ही है। राधा अत्यंत रूपवर्णी है तथा जिसके प्रत्येक अंग से दीप्ति उद्‌दीप्त हो रही है।'[5] नायक-नायिका के सौंदर्य का वर्णन करते हुए कहता है–

पुलक उठे तन के सब मृदुल पात,
मुस्काई जब भी तुम प्रिये! प्रात![6]

प्रेम में सुख-दुख, आशा और भय ये चार संवेग एक साथ उपस्थित रहते हैं। प्रेम का मनोविज्ञान कि कुछ ऐसा है कि जब हम दो की चर्चा करते हैं, तब प्रेम की चर्चा स्वत: आती है और जब प्रेम की चर्चा करते हैं, तब दो की चर्चा संभावित रूप से आ जाती है। वाचस्पतिजी ने अपने काव्य में प्रेमी-प्रेमिका के तन-मन और आत्मा से एक होने का भाव दिखाया है।

कामुक प्रेम

वाचस्पतिजी ने प्रेम के कामुक स्वरूप को भी दर्शाया है। काम को प्रेम से अलग नहीं किया जा सकता। बच्चनजी ने प्रेम के इस रूप का अनुपम वर्णन किया है। मिलन-यामिनी में प्रेयसी से मिलन की उत्कृष्ठा यौवन की उमंग और अभिसार की अभिव्यक्ति प्रभावशाली ढंग से हुई है। बन अनुराधा मुस्काना तुम में वाचस्पतिजी प्रेम के इसी स्वरूप का वर्णन करते हुए कहते हैं–

बन अनुराधा मुस्काना तुम।
एक तुम्हारी बहकी चितवन
रँगती मेरे दिल का आँगन,
तृषित अधर है आह, विकल मन,
इसकी प्यास बुझा जाना तुम,
बन अनुराधा मुस्काना तुम।[7]

वाचस्पतिजी ने अपने काव्य-संग्रह 'अनुभूतियों के संदर्भ' में प्रेम के सभी लौकिक-अलौकिक, नियंत्रित-उच्छृंखल, सूक्ष्म-स्थूल रूपों का वर्णन किया है। वे अंतर्मुखी प्रवृत्ति के कवि हैं। उनमें इंद्रियानुभूति की नहीं, हृद्यानुभूति की प्रधानता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि 'प्रेमी जगत् के बीच अपने अस्तित्व की रमणीयता का अनुभव आप भी करता है और अपने प्रिय को भी कराना चाहता है। प्रेम के दिव्य प्रभाव से उसे अपने आस-पास चारों और सौंदर्य की आशा फैली दिखाई पड़ती है, जिसके बीच वह बड़े उत्साह और प्रफुल्लता के साथ अपना कर्म प्रदर्शित करता है। वह प्रिया को अपने आस-पास चारों और सौंदर्य दिखाता है। वह प्रिय को अपने समग्र जीवन का सौंदर्य-जगत् के बीच दिखाना चाहते हैं।'[8] वाचस्पतिजी के काव्य में प्रेम का यह भाव स्पष्ट नजर आता है।

संदर्भ

1. डॉ॰ वाचस्पति कुलवंत, तुमको मेरे गीत समर्पित
2. डॉ॰ वाचस्पति कुलवंत, प्रियतम! मैंने गूँथे हार
3. अज्ञेय, सदानीरा, भाग -1, प्रश्नोत्तर, पृ॰ 128
4. डॉ॰ वाचस्पति कुलवंत, हँसकर मुझको गले लगाना
5. मुक्त स्वेदकन चिबुक लख लखी न अली के जाल, मुकुत रूप-रस में फँस्यो रसनिधि सुमन मराल।
   –डॉ श्यामसुंदरदास (संपा॰) सतसई सप्तक रसनिधि-सतसई, दोहा 150
6. डॉ॰ वाचस्पति कुलवंत, प्रिय के प्रति
7. डॉ॰ वाचस्पति कुलवंत, बन अनुराधा मुस्काना तुम
8. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, चिंतामणि, पृष्ठ 71, इंडियन प्रेस, प्रयाग 19

ISSN 0975-735X

महिलाओं के सामाजिक एवं आर्थिक विकास के विविध आयाम

सतीशकुमार
शोधार्थी, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक

एक व्यक्ति महिलाओं की स्थिति को देखकर राष्ट्र के हालात बता सकता है।

—जवाहरलाल नेहरू

स्वामी विवेकानंद ने कहा था कि 'जब तक महिलाओं की स्थिति नहीं सुधरेगी, तब तक इस दुनिया के कल्याण की कोई संभावना नहीं है।'[1] स्वतंत्रता के 70 वर्ष बीत जाने के बाद भी भारत में महिलाओं को पुरुषों के साथ समानता का दर्जा नहीं दिया गया है। बहुत से ऐसे क्षेत्र हैं, जहाँ पर महिलाओं की पहुँच बहुत ही कम है। महिलाओं और पुरुषों के बीच फैली इस असमानता को दूर करने के लिए सरकार द्वारा समय-समय पर विभिन्न कार्यक्रम एवं योजनाओं का निर्माण किया जाता है। साक्षरता को भी उसमें से एक माना जाए तो उसमें महिलाएँ पुरुषों की साक्षरता दर से पिछड़ी हुई हैं। जनगणना 2011 के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या लगभग 121 करोड़ आँकी गई है।[2] जिसमें में से महिलाओं की जनसंख्या 587 करोड़ यानि पुरुषों से लगभग आधे से थोड़ा कम है, परंतु शिक्षा-क्षेत्र में यह अंतर आज भी देश की आजादी के 70 वर्ष बीत जाने के बाद बहुत ज्यादा है। जनगणना 2011 के अनुसार देश की कुल साक्षरता दर 74.04 प्रतिशत है।[3] उसमें से पुरुषों की साक्षरता-दर कुल साक्षर जनसंख्या की 82.14 प्रतिशत और महिलाओं की मात्र 65.46 प्रतिशत है।[4] हालाँकि आजाद भारत की प्रथम पंचवर्षीय योजना में तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू की सोच के अनुसार महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए केंद्रीय समाज बोर्ड की स्थापना की गई थी।

'मैं एक समुदाय की प्रगति का पैमाना महिलाओं द्वारा हासिल की गई प्रगति को मानता हूँ।'

—बाबासाहेब डॉ॰ भीमराव अंबेडकर

भारतीय संविधान सभा द्वारा भी महिलाओं की उन्नति की बात जेहन में रखकर उन्हें पुरुषों के बराबरी का हिस्सा दिलवाने के लिए भारतीय संविधान ने महिलाओं के लिए अनेक कानून एवं अधिकारों की व्याख्या की है, जिनमें सविधान के अनुच्छेद 15 और 16 (मौलिक अधिकार) तथा अनुच्छेद 38 और 39 (राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांत)[5] के अनुसार महिलाओं और पुरुषों के बीच लैंगिक आधार पर भेदभाव करने को गैरकानूनी जताया है। आज आजादी के 70 वर्ष बीत जाने के बाद भी उन्हें समानता का दर्जा नहीं मिल सका है। आज महिलाएँ पुरुषों के साथ-साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम कर रही है। चाहे वह कृषिकार्य, घरेलु कार्य, पशुपालन और यहाँ

तक कि देश की सुरक्षा की जिम्मेदारी हो, पूर्णत: पूर्ण निष्ठा के साथ निर्वाह करती हैं, फिर भी महिला का पुरुष के समान दर्जा नहीं दिया गया जाता है। पुरुषप्रधान समाज की इन बातों को ध्यान में रखकर केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा महिलाओं के आर्थिक और सामाजिक विकास के लिए बहुत सारे सवैधानिक कानून एवं अधिकार, योजनाएँ और कार्यक्रम समय-समय पर संचालित किए गए हैं, जिससे महिलाओं को समाजिक और आर्थिक विकास के साथ-साथ समानता का दर्जा मिले और महिलाएँ आत्मनिर्भर हो सकें।

1. **स्वावलंबन**

स्वावलंबन कार्यक्रम जिसे पहले नौराड/महिला आर्थिक कार्यक्रम के नाम से जाना जाता था, 1982-83 में समूचे देश में शुरू किया गया। इस योजना का उद्देश्य गरीब और जरूरतमंद महिलाओं और समाज के कमजोर वर्गों की महिलाओं को शामिल करना है। इस योजना के अंतर्गत महिला विकास निगमों, सार्वजनिक क्षेत्र के निगमों, स्वायत्त संगठनों, न्यासों और पंजीकृत स्वैच्छिक संगठनों को वित्तीय सहायता दी जाती है।[6]

2. **रोजगार तथा प्रशिक्षण (स्टेप)**

महिलाओं को रोजगार और प्रशिक्षण के लिए सहायता देने का कार्यक्रम (स्टेप) 1986-87 में केंद्रीय क्षेत्र की योजना के रूप में शुरू किया गया। इसका उद्देश्य परंपरागत क्षेत्रों में महिलाओं के कौशल में सुधार तथा परियोजना आधार पर रोजगार उपलब्ध कराकर, महिलाओं की स्थिति में महत्त्वपूर्ण सुधार लाना है। इस योजना के अंतर्गत रोजगार के आठ परंपरागत क्षेत्र शामिल हैं, जो इस प्रकार हैं: कृषि, पशुपालन, डेरी व्यवसाय, मछलीपालन, हथकरघा, हस्तशिल्प, खादी और ग्राम उद्योग तथा रेशम कीट पालन। यह योजना सार्वजनिक क्षेत्र के संगठनों, राज्य निगमों, जिला ग्राम्य विकास अभिकरणों, सहकारिताओं, परिसंघों और ऐसे पंजीकृत स्वैच्छिक संगठनों के माध्यम से, जो कम से कम तीन साल से अस्तित्व में हैं परिचालित की जाती है। योजना के तहत परियोजना लागत का 90 प्रतिशत केंद्र सरकार वहन करती है, जबकि 10 प्रतिशत लागत कार्यान्वयन एजेंसियों द्वारा उठाई जाती है।[7]

3. **महिला ई-हाट**

महिला और बाल विकास मंत्रालय ने महिला उद्यमियों के लिए डिजिटल मार्केटिल पोर्टल महिला ई-हाट का शुभारंभ किया है। इस पोर्टल पर 10,000 स्वयं-सहायता समूहों के अंतर्गत 1,25,000 लाभार्थी पंजीकृत हो चुके हैं। पोर्टल की स्थापना राष्ट्रीय महिला कोष से 10 लाख रुपये के निवेश से की गई है। यह कोष महिला एवं बाल विकास मंत्रालय के सामाजिक, आर्थिक सशक्तिकरण के लिए काम करता है। विक्रेता अपने उत्पादों को पोर्टल के प्लेटफार्म पर पंजीकृत कर सकते है, जिसके लिए कोई लिस्टिंग शुल्क अदा करने की आवश्यकता नहीं है।

पंजीकरण के लिए एकमात्र पात्रता-मानदंड यह है कि विक्रेता महिला हो अथवा किसी स्वयंसहायता समूह की सदस्य हो और उसकी आयु 18 वर्ष से ऊपर हो। यह प्रावधान बालमजदूरी की समस्या समाप्त करने के लिए रखा गया है।[8]

4. **महिला समाख्या योजना**

इस कार्यक्रम की शुरुआत केंद्र सरकार द्वारा वर्ष 1989 में की गई। इस कार्यक्रम के अंतर्गत

महिलाओं को अपने अधिकार और कर्तव्यों के प्रति जागरूक करने हेतु विभिन्न प्रकार की योजनाएँ बनाना तथा क्रियान्वित करवाना है। इनके माध्यम से महिलाओं को शिक्षित किया जाता है कि ताकि वे परंपरागत और रूढ़िवादी विचारों से ऊपर उठकर समर्थ और निर्णय लेनेवाली सशक्त नारी की भूमिका निभा सकें।[9]

5. **प्रधानमंत्री की रोजगार योजना**

शिक्षित बेरोजगार युवाओं के लिए 2 अक्टूबर, 1993 से प्रारंभ की गई प्रधानमंत्री की रोजगार योजना के अंतर्गत आठवीं योजना के दौरान उद्योग सेवा तथा कारोबार में सात लाख लघुतर इकाइयाँ स्थापित करके लगभग 10 लाख से भी अधिक व्यक्तियों को रोजगार उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा गया था। 9वीं पंचवर्षीय योजना में कतिपय संशोधनों के साथ इस स्कीम को जारी रखा गया। इसके लिए चुने हुए आठवीं कक्षा उत्तीर्ण शिक्षित बेरोजगारों, जिनकी आयु 18 से 35 वर्ष के बीच है। (उत्तर पूर्वी राज्यों के लिए यह आयुसीमा 18 से 40 वर्ष रखी गई है। जबकि एस॰सी॰/एस॰टी॰ तथा शारीरिक रूप से विकलांग तथा महिलाओं के लिए 10 वर्ष अधिक की आयुसीमा निर्धारित की गई है) तथा जिनकी पारिवारिक आय 40,000 रुपये वार्षिक से कम है एवं जो उस क्षेत्र में पिछले 3 वर्षों से निवास कर रहा है, को व्यापारिक कारोबार के लिए एक लाख रुपये तक तथा अन्य गतिविधियों के लिए दो लाख रुपये तक तथा दो या दो से अधिक लोगों की भागीदारी वाली परियोजनाअें के लिए 10 लाख रुपये तक का ऋण दिया जाता है।[10]

6. **स्वर्ण जयंती शहरी रोजगार योजना**

स्वतंत्रता के स्वर्ण जयंती वर्ष में केंद्र सरकार ने शहरी क्षेत्रों में निर्धनता-निवारण की एक नई योजना प्रारंभ की है। स्वर्ण जयंती शहरी रोजगार योजना नाम से प्रारंभ की गई यह योजना 1 दिसंबर, 1997 से लागू की गई थी। इसके साथ ही शहरी क्षेत्रों में पहले से कार्यान्वित की जा रही तीन योजनाओं—नेहरू रोजगार योजना, निर्धनों के लिए शहरी बुनियादी सेवाएँ तथा प्रधानमंत्री की समन्वित शहरी गरीबी-उन्मूलन योजना को इसी नई योजना में शामिल कर दिया गया है।

स्वर्ण जयंती शहरी रोजगार योजना का उद्देश्य शहरी निर्धनों को स्वरोजगार उपक्रम स्थापित करने हेतु वित्तीय सहायता प्रदान करना तथा संवेतन रोजगार सृजन हेतु उत्पादक परिसंपत्तियों का निर्माण करना है।

7. **बालिका समृद्धि योजना**

2 अक्टूबर, 1997 से आरंभ इस योजना में 15 अगस्त, 1997 के बाद जन्मी बालिका के परिवार को ग्रामीण या शहरी क्षेत्र में (गरीबीरेखा के नीचे रहनेवाला परिवार) बव्वी के जन्म के समय रुपये 500 की राशि (केवल दो लड़कियों तक) देने का प्रावधान है। इस बालिका के स्कूल जाने पर इस योजना में बालिका को एक छात्रवृत्ति दी जाती है। यह छात्रवृत्ति पहली कक्षा के लिए 300 रुपये तथा दसवीं कक्षा के लिए 1000 रुपये है।[11]

8. **स्व-शक्ति**

यह योजना 1998 में शुरू की गई थी, केंद्र सरकार द्वारा प्रायोजित विश्व बैंक एवं अंतर्राष्ट्रीय कृषि विकास कोष के सहयोग से यह योजना हरियाणा, बिहार, गुजरात, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, झारखंड, छत्तीसगढ़ तथा उत्तराखंड में महिला विकास निगमों तथा स्वयं-सहायता

समूहों के माध्यम से संचालित की जा रही है। इस योजना का उद्देश्य जीवन-स्तर में सुधार के लिए संसाधनों तक महिलाओं की पहुँच बढ़ाना है। पूर्व में संचालित इंदिरा महिला योजना तथा महिला समृद्धि योजना को स्वशक्ति में सम्मिलित कर दिया गया है।[12]

9. **स्वर्णजयंती ग्राम स्वरोजगार योजना**

एक निश्चित समय सीमा के अंदर आय में प्राप्त वृद्धि सुनिश्चित कर गरीबीरेखा से नीचे जीवनयापन करनेवाले परिवारों को गरीबीरेखा से उपर उठाने के लिए भारत सरकार द्वारा 1 अप्रैल, 1999 को स्वर्णजयंती ग्राम स्वरोजगार योजना का शुभारंभ किया गया।[13]

10. **जवाहर ग्राम समृद्धि योजना**

जवाहर ग्राम समृद्धि योजना पूर्व में चल रही जवाहर रोजगार योजना का पुनर्गठित सुव्यवस्थित और व्यापक स्वरूप है। 1 अप्रैल 1999 को प्रारंभ की गई सितंबर 2001 से इसे संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना में मिला दिया गया है। इस योजना का मौलिक उद्देश्य गाँवों में माँग आधारित सामुदायिक अवसंरचना का सृजन करना है परिसंपत्तियों का सृजन सम्मिलित है। इस प्रकार जे॰जी॰एस॰वाई॰ का प्राथमिक उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगार एवं अल्प बेरोजगार व्यक्तियों के लिए लाभकारी रोजगार अवसरों का सृजन करना है। जे॰जी॰एस॰वाई॰ का गौण उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगार गरीबों के लिए मजदूरी आधारित रोजगार अवसरों का सृजन करना भी है। इस योजना को दिल्ली और चंडीगढ़ को छोड़ समग्र देश में सभी ग्राम पंचायतों में लागू किया गया ह।[14]

11. **संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना**

इस योजना का शुभारंभ प्रधानमंत्री द्वारा 25 सितंबर, 2001 को किया गया, जिसके लिए रोजगार आश्वासन योजना और जवाहर ग्राम समृद्धि योजना को एक में मिला दिया गया था, रोजगार आश्वासन योजना के तहत जनवरी 2001 में प्रारंभ किए गए काम के बदले अनाज कार्यक्रम को भी इस योजना में मिला दिया गया था। 1 अप्रैल, 2008 से संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना को महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना से समन्वित कर दिया गया है।[15]

12. **स्वाधार**

कठिन परिस्थितियों में पड़ने वाली महिलाओं के लाभ के लिए ग्रामीण विकास विभाग ने वर्ष 2001-02 में केंद्रीय क्षेत्र में एक नई योजना स्वाधार शुरू की। यह योजना निम्नलिखित महिलाओं के लिए है : दीन-हीन, विधवाएँ, जिनके परिवारवालों ने उन्हें वृंदावन, काशी आदि धार्मिक स्थानों पर बेसहारा छोड़ दिया है, जेल से रिहा की गई महिला कैदी, जिसे परिवार का सहारा नहीं है, प्राकृतिक आपदा की शिकार ऐसी महिलाएँ, जो बेघर हैं और उनके पास कोई सामाजिक तथा आर्थिक सहारा नहीं है, वेश्यालयों या अन्य स्थानों से भागी अथवा मुक्त कराई गई महिलाएँ/लड़कियाँ या यौनशोषण की शिकार ऐसी महिलाएँ/लड़कियाँ, जिनके परिवारवालों ने उन्हें वापस लेने से मना कर दिया है अथवा जो किसी अन्य कारणों से वापस अपने परिवार में नहीं लौटना चाहती हैं। आतंकवाद की शिकार महिलाएँ, जिन्हें परिवार का सहारा नहीं है तथा जिनके पास जीने के लिए सार्थक जरिया नहीं है, मानसिक रूप से विक्षिप्त महिलाएँ, जिन्हें परिवार अथवा रिश्तेदारों से कोई मदद नहीं मिलती आदि।

इस योजना के अंतर्गत उपलब्ध कराई जानेवाली सेवाओं के पैकेज में भोजन, कपड़ा,

आवास, स्वास्थ्य की देखभाल, परामर्श की व्यवस्था है। इसके अलावा शिक्षा के माध्यम से सामाजिक और आर्थिक पुनर्वास, जागरूकता पैदा करने, कौशल बढ़ाने और व्यवहार-संबंधी प्रशिक्षण का भी इंतजाम किया जाता है। इन श्रेणियों के अंतर्गत महिलाओं को हैल्पलाइन और अन्य सेवाएँ भी उपलब्ध कराई जाती हैं।[16]

13. महिला उद्यमियों हेतु ऋण

यह योजना केंद्र सरकार द्वारा 15 अगस्त, 2001 को घाषित की गई, इसके अंतर्गत महिला उद्यमियों को सार्वजनिक बैकों के द्वारा अधिक मात्रा में बैंक ऋण आसान शर्तों पर उपलब्ध कराने के लिए योजना का संचालन किया जाता है। योजना के अंतर्गत सार्वजनिक बैंक द्वारा अपनी कुल ऋण राशि का 5 प्रतिशत भाग महिला उद्यमियों को आवश्यक रूप से प्रदान किया जाता है।[17]

14. स्वर्णिम योजना

भारत सरकार द्वारा पिछड़े वर्ग की महिलाओं हेतु, जो गरीबीरेखा के नीचे परिवारों की हैं, उन्हें आर्थिक रूप से सक्षम बनाने के उद्देश्य से यह योजना वर्ष 2002 में संचालित की गई। इसके अंतर्गत रुपये 50 हजार तक ऋण उपलब्ध कराया जाता है। इस ऋण पर उन्हें ब्याज की दर मात्र 4 प्रतिशत निर्धारित की गई है। इन महिला उद्यमियों को ऋण वापस करने हेतु 12 वर्ष की लंबी अवधि तय की गई है।[18]

15. महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम

ग्रामीण बेरोजगारी, भूख और गरीबी से निजात पाने के लिए केंद्र सरकार की महत्त्वाकांक्षी राष्ट्रीय रोजगार गारंटी योजना का शुभारंभ तत्कालीन प्रधानमंत्री डॉ॰ मनमोहन सिंह ने 2 फरवरी, 2006 को आंध्र प्रदेश के अनंतपुर जिले से किया। पहले चरण में वर्ष 2006-07 के दौरान देश के 27 राज्यों के 200 चुनिंदा जिलों में इस योजना का कार्यान्वयन किया गया था। इसमें सर्वाधिक 23 जिले बिहार के सम्मिलित थे, जबकि गोआ के 2 जिलों में से कोई भी जिला इसमें शामिल नहीं था। पहले चरण के कार्यान्वयन के लिए चयनित 200 जिलों में वह 150 जिले शामिल थे, जहाँ काम के बदले अनाज कार्यक्रम पहले से चल रहा था। 'काम के बदले अनाज' योजना व 'संपूर्ण ग्रामीण रोजगार याजना' का विलय अब नई योजना में कर दिया गया है। अप्रैल 2008 से इस योजना को संपूर्ण देश में लागू कर दिया गया है। वर्तमान में अधिसूचित मजदूरी में न्यूनतम रुपये 168 (बिहार) से रुपये 277 (हरियाणा) तक में भिन्नता है।[19]

16. उज्ज्वला योजना

महिलाओं की खरीद-फरोख्त की रोकथाम तथा व्यावसायिक यौनशोषण की शिकार महिलाओं के उद्धार, पुनर्वास तथा उन्हें फिर से समाज की मुख्य धारा में शामिल करने के लिए केंद्र प्रायोजित व्यापक स्कीम उज्ज्वला का शुभारंभ 4 दिसंबर, 2007 को किया गया है।[20]

17. महिला किसान सशक्तिकरण योजना

वर्ष 2010 में इस योजना का शुभारंभ केंद्र सरकार द्वारा किया गया। इसके अंतर्गत कृषक महिलाओं और कृषि महिला मजदूरों को चयनित कर कृषि हेतु ऋण सुविधा उपलब्ध कराई जाती है।[21]

18. **राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन**

ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धनता निवारण के लिए अब एक राष्ट्रीय ग्रामीण आजीवका मिशन की शुरुआत केंद्र सरकार ने की है। इसका शुभारंभ 3 जून, 2011 को राजस्थान के बाँसवाड़ा जिले से किया गया। इस मिशन के तहत ग्रामस्तर पर स्वयंसहायता समूहों को फेडरेशन के रूप में गठित कर उनके माध्यम से लाभप्रद स्वरोजगार के अवसर उपलब्ध कराकर उन्हें बेहतर जीवनयापन का स्थायी आधार प्रदान करने की सरकार की योजना है। इस मिशन का उद्देश्य 2024-25 तक सभी ग्रामीण परिवारों को संगठित करना और उन्हें लगातार तब तक संपोषित करना और सहायता देना है जब तक वे दयनीय गरीबी स्तर से उबर नहीं जाते। यह योजना महिलाओं तथा समाज के अन्य उपेक्षित वर्गों जैसे अनुसूचित जाति, जनजाति, अल्पसंख्यकों एवं विकलांगों पर विशेष रूप से केंद्रित होगी।[22]

19. **प्रधानमंत्री मुद्रा योजना**

मुद्रा योजना का अर्थ है माइक्रो यूनिट्स डेवलपमेंट रिफाइनंस एजेंसी जिसे MUDRA कहा गया, छोटे अर्थ में मुद्रा का मतलब धन से है। यही इस योजना का मुख्य बिंदु है। कुटीर उद्योगों को धन की सहायता। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने छोटे कुटीर उद्योगों के लिए मुद्रा बैंक नामक योजना 8 अप्रैल 2015 को घोषित की। मुद्रा योजना छोटे व्यापार को मदद देने के लिए शुरू की गई योजना है। वित्तमंत्री अरुण जेटली ने 2015 के बजट के तहत इस मुद्रा बैंक योजना में 20 हजार करोड़ रुपये के फंड एवं 3 हजार करोड़ रुपये क्रेडिट की घोषणा की है। अरुण जेटली ने स्पष्ट किया कि मुद्रा योजना एक सही तरीका है जरूरतमंदों के लिए वित्तीय मदद का "Funding the unfunded". प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने कहा कि मुद्रा योजना से छोटे उद्यमियों को फायदा होगा। यह 'माइक्रोफाइनेंस संस्थाओं (एमएफआई) छोटे उद्योगों के लिए एक नियामक के रूप में कार्य करेगा।[23]

20. **स्टैंड अप इंडिया योजना**

माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने 15 अगस्त 2015 को स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर अपने भाषण के दौरान युगांतरकारी 'स्टैंड अप इंडिया' की प्रस्तावना रखी। स्टैंड अप इंडिया, आर्थिक सशक्तिकरण और रोजगार के लिए जमीनी स्तर पर उद्यमशीलता को बढ़ावा देने वाला है। स्टैंड-अप इंडिया योजना की शुरुआत ऐसे समय की गई है, जब डॉ॰ बाबा साहेब भीमराव अंबेडकर की 125 वीं जयंती मनाई जा रही है। इस योजना से असेवित क्षेत्र की अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति ओर महिला उद्यमियों को संस्थागत ऋण संरचना का लाभ पहुँचाना है ताकि वे समर्थ होकर देश के आर्थिक विकास में योगदान कर सकें। इस योजना से देशभर में स्थित 1.25 लाख बैंक शाखा नेटवर्कों से 2.5 लाख उधारकर्ताओं को फायदा होगा।[24]

21. **दीनदयाल उपाध्याय-ग्रामीण कौशल योजना**

दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल योजना ग्रामीण विकास मंत्रालय का एक महत्त्वपूर्ण रोजगार से जुड़ा कौशल प्रशिक्षण कार्यक्रम है, जिसकी घोषणा 25 सितंबर, 2014 को की गई।[25]

22. **प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना**

21 मार्च, 2015 को केंद्रिय मंत्रिमण्डल ने रुपये 1120 करोड़ के कुल परिव्यय वाली

ISSN 0975-735X

प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना को स्वीकृति प्रदान की। इस योजना की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित प्रकार हैं–

* 1.4 मिलियन युवा को कौशल विकास हेतु प्रशिक्षण प्रदान करना।

* यह योजना श्रमबल में शामिल होनेवाले नए युवाओं विशेष रूप से कक्षा 10 उत्तीर्ण तथा बारहवीं की पढ़ाई छोड़कर घर बैठ जानेवाले युवाओं के कौशल विकास प्रशिक्षण को प्राथमिकता प्रदान करेगी।[26]

निष्कर्ष

महिलाओं के सामाजिक एवं आर्थिक विकास के लिए लागू की गई इन तमाम योजनाओं के माध्यम से महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा मिला है। शायद कोई ऐसा क्षेत्र नहीं, जहाँ महिलाएँ अपनी उपस्थिति का अहसास न करवा सकी हों। पंचायतीराज संस्थाओं में महिलाओं के 50 प्रतिशत आरक्षण के संवैधानिक प्रावधान से महिलाओं को सार्वजनिक एवं राजनितिक क्षेत्र में प्रवेश के अवसर पर बल मिला है। इस प्रावधान से ग्रामीण और शहरी निकायों में महिलाओं की सहभागिता में न केवल उभार आया है, बल्कि उनमें नेतृत्व की क्षमता का विकास भी हुआ है। शायद आज कोई ऐसा क्षेत्र होगा (पंचायतीराज से लेकर केंद्रीय नेतृत्व तक) जहाँ महिलाएँ अपनी उपस्थिति का अहसास न करवा सकी हों। सरकारी एवं गैरसरकारी स्तर पर विगत वर्षों में किए गए प्रयासों ने महिलाओं के प्रति पुरुषों के नजरिये में बदलाव लाने में काफी हद तक सफलता प्राप्त की है। फिर चाहे वह बदलाव बाध्यकारी नीतियों से या जागरूकता से ही क्यों न आ सके हों। सामाजिक परिदृश्य में महिलाएँ मजबूर नहीं, मजबूत नजर आ रही हैं। आज के युग में महिलाओं द्वारा अपने एवं परिवार से संबंधित निर्णयों में काफी हद तक केंद्रीय भूमिका का निर्वहन कर रही हैं। इन तमाम योजनाओं एवं कार्यक्रमों के माध्यम से महिलाओं में अपने अधिकारों के प्रति ऐसी प्रक्रिया का जन्म हुआ है, जिससे वह संगठित होकर अपना सतत् विकास कर सकती हैं।

संदर्भ

1. कुरुक्षेत्र हिंदी मासिक पत्रिका जनवरी 2018
2. http://hi.wikipedia.org
3. http://hi.wikipedia.org
4. http://hi.wikipedia.org
5. ग्रामीण विकास योजनाओं के माध्यम से महिलाओं का सामाजिक, आर्थिक, विकास, कला एवं धर्म शोध संस्थान वाराणसी
6. महिला सशक्तिकरण : एक कदम आगे की ओर, डॉ॰ अर्पिता शर्मा, प्रतियोगिता दर्पण/दिसंबर 2016, पृ॰ 78
7. भारत 2005, पृ॰ 791-92 प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार
8. समीरा सौरभ : सशक्त होती ग्रामीण महिलाएँ, कुरुक्षेत्र हिंदी मासिक पत्रिका, जनवरी 2018, पृ॰ 16
9. डॉ॰ अर्पिता शर्मा : महिला सशक्तिकरण : एक कदम आगे की ओर, प्रतियोगिता दर्पण/दिसंबर 2016, पृ॰ 79
10. प्रतियोगिता दर्पण/भारतीय अर्थव्यवस्था, पृ॰ 213

11. डॉ॰ अर्पिता शर्मा : महिला सशक्तिकरण : एक कदम आगे की ओर, प्रतियोगिता दर्पण/दिसंबर 2016, पृ॰ 79
12. डॉ॰ अर्पिता शर्मा : महिला सशक्तिकरण : एक कदम आगे की ओर, प्रतियोगिता दर्पण/दिसंबर 2016, पृ॰ 79
13. वार्षिक रिपोर्ट 2009-10, ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, पृ॰ 8
14. प्रतियोगिता दर्पण/भारतीय अर्थव्यवस्था, पृ॰ 210
15. प्रतियोगिता दर्पण/भारतीय अर्थव्यवस्था, पृ॰ 211
16. भारत 2005, पृ॰ 793-94 प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार
17. डॉ॰ अर्पिता शर्मा : महिला सशक्तिकरण : एक कदम आगे की ओर, प्रतियोगिता दर्पण/दिसंबर 2016, पृ॰ 79
18. डॉ॰ अर्पिता शर्मा : महिला सशक्तिकरण : एक कदम आगे की ओर, प्रतियोगिता दर्पण/दिसंबर 2016, पृ॰ 78
19. प्रतियोगिता दर्पण 2015/भारतीय अर्थव्यवस्था, पृ॰ 210
20. प्रतियोगिता दर्पण/भारतीय अर्थव्यवस्था, पृ॰ 224
21. डॉ॰ अर्पिता शर्मा : महिला सशक्तिकरण : एक कदम आगे की ओर, प्रतियोगिता दर्पण/दिसंबर 2016 पृ 80
22. वाार्षिक रिपोर्ट 2013-14, ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, पृ॰ 23-24
23. www.newschemes.com/newupdates/7.pdf
24. http://www.standupmitra.in/HOME/SUISchemes
25. वार्षिक रिपोर्ट 2014-15, ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, पृ॰ 43
26. प्रतियोगिता दर्पण/भारतीय अर्थव्यवस्था, पृ॰ 211-12

पाँच बहतरीन कहानियाँ : अजय नावरिया सामाजिक यथार्थ का एक दस्तावेज

डॉ॰ कंचन पुरी, शोध निर्देशक
एसोसिएट प्रोफेसर, आर॰जी॰पी॰जी॰ कॉलेज, मेरठ
श्रीमती स्नेहलता, शोध छात्र
आर॰जी॰पी॰जी॰ कॉलेज, मेरठ

अजय नावरिया हिंदी साहित्य के प्रसिद्ध युवा सशक्त कहानीकार हैं। इन्होंने समाज के नए-नए मुद्दों को अलग दृष्टि से हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया है। अजय नावरिया का कहानी-संग्रह 'पाँच बेहतरीन कहानियाँ' चर्चित कहानी संग्रह है। यह संग्रह सन् 2013 में वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित है। इसमें लेखक ने 'न्यास कथा', 'निर्वासन', 'शार्प कर्व', 'बलि' और 'चीख' शीर्षकों से पाँच कहानियाँ दी हैं। 'बलि' कहानी उनकी प्रारंभिक कहानियों में से एक प्रमुख कहानी है। ये सभी कहानियाँ जाति, राजनीति और दलित पर हमारी संवेदना को झकझोर देती हैं। इसमें लेखक ने गाँव और शहर के द्वंद्व को व्यक्त किया है। लेखक स्वयं दलित है और दलितों के यथार्थ को अभिव्यक्ति देने के कारण उन पर दलित लेखक होने का ठप्पा भी लगा है। भारतीय समाज जाति-आधारित समाज है। जातीयता या जाति-व्यवस्था हजारों सालों से भारतीय संस्कृति में व्यवस्थित है। जाति और वर्ण के आधार पर संपूर्ण समाज बँटा हुआ है। यह जाति-व्यवस्था गाँवों से लेकर शहरों, नगरों और महानगरों तक बालक से लेकर बड़ों तक सभी में एक समान रूप से विद्यमान है। गाँवों में जातियाँ एक-दूसरे से संबंध नहीं रखतीं। एक जाति के लोग दूसरी जाति के लोगों में विवाह-संबंध नहीं करते। यहाँ निम्नजाति के लोगों को सिर्फ मजदूरी करवाने हेतु ही पुकारा जाता है। उनसे कोई आत्मीयता नहीं होती। यहाँ तक की सवर्ण (उच्च जाति) के लोग भी आपस में एक-दूसरे के साथ खा-पी नहीं सकते, उठ-बैठ नहीं सकते। राजनीतिक गुटबाजी ने उन्हें भी बाँट दिया है। जातिवाद, गुटबाजी की संकीर्ण सोच आपसी भाईचारे और मेल-मिलाप में बाधक है। यह इन कहानियों में पूर्णतः स्पष्ट होता है।

गाँव और शहर के समाज के अंतर को लेखक ने बहुत ही सूक्ष्म ढंग से चित्रित किया है। 'बलि' कहानी में लेखक ने स्पष्ट किया है कि लोग आगे बढ़ जाने पर अपनी ही जाति के गरीब लोगों के साथ अभद्र व्यवहार करने लगते हैं। वे उन्हें नीचा मानकर वैसा ही व्यवहार करते हैं जो वे स्वयं झेल चुके हैं। वे अपनी जाति, अपने लोगों को ऊपर उठाने के विषय में नहीं सोचते। इस कहानी में 'कालू' नाम का व्यक्ति अपनी ही जाति के अविनाश के घर जाता है तो निम्न व्यक्ति की भाँति ही वह वहाँ रहता है। इस कहानी में अविनाश को समझाते हुए कालू चाचा कहते हैं–

कि 'कमी पेशे की नहीं, गरीबी की है। हमसे छुआछूत इसलिए करते हैं, क्योंकि हम गरीब हैं। बामन-बनियों के सामने बेअदबी नहीं करते। अब तो वक्त बदल गया है। मीणे-गूजर भी ठाकुर बने हैं। इन्होंने गाँव में जीना मुश्किल कर रखा है।' (बलि पृ॰ 75) यह एक ग्रामीण का सुलझा हुआ तर्क है, जो हमें कुछ पल के लिए सोचने के लिए विवश कर देता है।

दलित लेखक अजय नावरिया जी की कहानियों में दलित-चेतना स्पष्ट झलकती है। लेखक ने दलित शोषित और दमित को माना है, चाहे वे निम्नजाति के लोग हों, या स्त्रियाँ हों, ये सभी शोषण के शिकार हैं।

लोग आजीविका की तलाश में नगरों और महानगरों की ओर रुख करते हैं, लेकिन उद्योगों के विस्थापन के साथ-साथ लोगों को भी विस्थापित होना पड़ता है, यह उनकी सबसे बड़ी विडंबना है। निम्नवर्ग जब अपनी दैनिक आवश्यकताओं को पूरी नहीं कर पाता तो वह दूसरे कामों में लग जाता है। 'चीख' कहानी की रेवती इसी का एक उदाहरण है। रेवती अपनी आजीविका के लिए बार डांसर बन जाती है। समाज के अनुसार लड़की के लिए यह प्रतिष्ठित कार्य नहीं, लेकिन हालात व्यक्ति से क्या-क्या करवाते हैं, यह इसी से स्पष्ट होता है। 'चीख' कहानी का नायक पटेल के लड़के विनायक द्वारा प्रताड़ित किया जाता है, पर स्वयं को समाप्त करना चाहता है और गाँव से शहर आ जाता है। शहर में वह देखता है कि जो दुष्कर्म विनायक ने उसके साथ किया उसके लिए अमीर लोग पैसे खर्च करते हैं। वह इसी से धन कमाकर आगे की पढ़ाई करता है और एक दिन बड़ा आदमी बनकर गाँव में जाने के सपने देखता है। परंतु उसका अतीत उसका पीछा नहीं छोड़ता। उस वातावरण से बाहर निकलकर भी वह मानसिक रूप से उससे प्रभावित रहता है। यहाँ मानव-मनोविज्ञान का चित्रण है। मनुष्य वातावरण बदल जाने पर भी बहुत जल्दी अपने अतीत से पीछा नहीं छुड़ा पाता। अतीत की घटनाएँ बार-बार उसके मन में उथल-पुथल मचाती हैं। लेखक ने यह बताने का प्रयास किया है कि लोगों का आपस में जुड़ाव नहीं है। लोग जाति, वर्ग ही नहीं, बहुत-से अन्य आधारों पर भी बँटे हुए हैं। यह गाँव का है, यह शहर का है, यह उस जाति का है, यह उस समुदाय से है आदि। लोगों में अपनेपन की भावना नहीं है। हमारा नहीं है, हमें क्या मतलब, मरने दो का भाव प्रबल है।

भारत के शहरी वर्ग में गरीब लोग वजूद के लिए संघर्षरत हैं। वे अपनी पहचान चाहते हैं। पिछले पचास-साठ वर्षों में देश में जो परिवर्तन हुए हैं, वे लेखक ने बहुत ही मुखर ढंग से प्रस्तुत किए हैं यद्यपि आरक्षण, शिक्षा और जागरूकता से निम्न जातियाँ ऊपर उठी हैं। तथापि कहीं न कहीं अपनी जाति के कारण उन्हें अपना परिचय छुपाना पड़ता है। सवर्णों के साथ मेल-जोल में निम्न जातियों को आज भी हिचकिचाहट है। 'न्यास कथा' कहानी इसी को केंद्र बनाकर लिखी गई है। इस कहानी में रविदास और उसकी पत्नी रश्मि दोनों ही प्रोफेसर हैं। मल्टीस्टोरी अपार्टमेंट में रहते हैं। अच्छा जीवनस्तर, अच्छा ज्ञान होने के बावजूद वे लोग अपार्टमेंट के लोगों के साथ घुलते-मिलते नहीं हैं। इसका कारण स्वयं रविदास बताते हुए कहते हैं–'हम जानते हैं कि जैसे ही हमारी जाति का पता चलेगा, हमसे रिश्ता तोड़ लिया जाएगा। जब तक हमारी पहचान नहीं खुलती हम योग्य, स्वच्छ और स्वीकार्य हैं।' (न्यास कथा पृ॰ 17)

निम्नजाति के लोग अपना नाम या उपनाम बदलकर उच्चजाति में अपना परिचय देना गर्व समझते हैं। 'निर्वासन' कहानी में राहुल कोली अपना नाम बदलकर राहुल देव कोहली इसलिए

रखते हैं ताकि उन्हें लोगों की जहरीली हँसी और कटाक्ष का सामना न करना पड़े। वास्तविकता यही है कि हम कितने भी शिक्षित हो जाएँ, हमारी मानसिकता आज भी वही है। 'शार्प कर्व' कहानी में मणिका आई॰ए॰एस॰ की परीक्षा पास करती है। एम॰बी॰ए॰ करके मैनेजमेन्ट की राह चुनती है। तमाम आधुनिक विचार और शौक रखती है। लेकिन अंत में असंग जब कहता है कि 'मेरी माँ ब्राह्मण है तो वह कहती है कि 'तभी मैं कहूँ तुम्हारे भीतर ऐसी तेजस्विता और प्रतिभा कहाँ से आई?' (निवासन पृ॰ 56)

लेखक बताना चाहता है कि एक आई॰ए॰एस॰ स्तर का व्यक्ति, जो जाति-व्यवस्था का विरोधी है, कहीं-न-कहीं वर्ग-विशेष को महत्त्व देता है। मणिका भी मानती है कि असंग में प्रतिभा ब्राह्मण माँ होने के कारण है। निम्नजाति के लोगों में प्रतिभा नहीं होती, ऐसी उसकी मानसिकता है।

ग्रामीण परिवेश का चित्रण यह दर्शाता है कि गाँव में निम्न जातियाँ ही नहीं, स्त्रियाँ भी उपेक्षित व्यहार का शिकार होती हैं। 'शार्प कर्व' कहानी की मणिका के ही शब्दों को देखिए–'स्त्रियों के लिए गाँव बजबजाते गटर की तरह हैं। कोई आजादी नहीं, कोई इज्जत नहीं, वे वहाँ घुट-घुटकर मर रही हैं, उन्हें कोई नहीं बचाता वहाँ।' (पृ॰ 46)

इसी प्रकार 'बलि' कहानी में भी अर्चना की स्थिति बताते हुए कालू कहता है कि 'बड़ी जातिवाले लोग बहुत निर्दयी होते हैं, अर्चना को रांड होते ही मुँडवा दिया। भूखा मारते थे उसे।' (बलि पृ॰ 77)

गाँवों में स्त्रियों के साथ सामान्यता यही व्यवहार देखने को मिलता है और आश्चर्य तो यह है कि ग्रामीण स्त्रियाँ इसका विरोध न करके इसे अपनी नियति मानती हैं। बच्चों की गलतियों के लिए महिलाओं को बहुत कुछ सुनना पड़ता है। स्त्रियाँ इस व्यवस्था का विरोध करें तो उन्हें बदचलन माना जाता है। घूँघट में रहना, रूढ़िवादी परंपराओं के अनुसार चलना आज भी ग्रामीण महिलाओं के उत्तम चरित्र का मानक है। इसीलिए 'शार्प कर्व' की मणिका गाँवों को महिलाओं के लिए गटर की संज्ञा देती है। रूढ़िवादी परंपराओं और संकीर्ण मानसिकता ने ग्रामीण महिलाओं को शारीरिक रूप से प्रताड़ित करने के साथ-साथ मानसिक रूप से ऐसा बना दिया है कि वे अपने विकास के बारे में सोच ही नहीं सकतीं। अपने अस्तित्व के लिए लड़ना तो दूर की बात है, वे परिवार और पति से अलग अस्तित्व की कल्पना ही नहीं करतीं।

लेखक अजय नावरिया ने शोषित के प्रति आधुनिक और प्राचीन ग्रामीण और शहरी मानसिकता का बड़ा ही सशक्त चित्रण अपने इस कहानी-संग्रह में किया है। हमारे समाज में प्रत्येक जाति ने अपने को श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए अपने से निम्न एक जाति ढूँढ ली है। 'बलि' कहानी में अविनाश के पिता अविनाश की पत्नी अनिता के हाथ का खाना नहीं खाते, क्योंकि वह एस॰सी॰ है। स्वयं निम्नजाति का होने पर भी वह अपने से निम्न के प्रति अत्यधिक कठोर व्यवहार करते हैं। यह यही बताता है कि तमाम प्रयासों के बाद और आजादी के इतने वर्षों में भी भारतीय समाज जातीयता और धार्मिक संकीर्णता से ऊपर नहीं उठ पाया है। अपने से निम्न जातियाँ बनाते-बनाते हमारे समाज में जातीयता की जड़ें इतनी महीन हो गई है कि इनके ताने-बाने को समझना दुष्कर होता जा रहा है।

ग्रामीण महिलाओं की दशा जहाँ दयनीय है, वही शहरी महिलाएँ स्वच्छंद और उन्मुक्त हैं।

'शार्प कर्व' कहानी की मणिका, 'चीख' कहानी की मिसेज देशमुख और 'न्यास कथा' की कला इनके उदाहरण हैं। मणिका तमाम आधुनिक शौक रखती है। मांसाहार करना, शराब पीना, देर रात असंग के साथ घूमना उसकी स्वच्छंदता को दर्शाते हैं। कला भी आधुनिक शहरी विचारधारा का प्रतिनिधित्व करती दिखाई देती है। मिसेज देशमुख को तो स्वच्छंदता की पराकाष्ठता कहा जा सकता है। लेकिन ये सभी स्त्रियाँ कहीं-न-कहीं पुरुषों से प्रताड़ित होती हैं। 'न्यास-कथा' का उदाहरण देखिए–'सारे वीर पति घर आकर अपनी पत्नियों के गाल थप्पड़ से लाल करते हैं और नशे में कहते हैं कि हमें कोतवाल समझकर वैसे ही टूटकर प्यार करो, जैसे वहाँ किया था। पराधीन पत्नियाँ रोती जातीं और हिचकियों में गाती हैं।' (न्यास कथा पृ॰ 7)

ग्रामीण और शहरी स्त्रियों के जीवन में एक बहुत बड़ा फासला दिखाई देता है। शहरी स्त्रियाँ जहाँ स्वतंत्र दिखाई देती हैं, वहीं उनका स्वच्छंद सोच भारतीय संस्कृति पर आघात करता नजर आता है। स्त्रियाँ मणिका की भाँति स्वतंत्र हैं, अपनी आजीविका के लिए, घूमने-फिरने, खाने-पीने, मित्रता करने और वैचारिक अभिव्यक्ति के लिए। मिसेज देशमुख और कला की भाँति अपनी इच्छाओं की पूर्ति हेतु स्वतंत्र हों, लेकिन संकीर्णता से ऊपर उठें। उच्छृंखलता जब पुरुषों के लिए उचित नहीं होती, तो महिलाओं के लिए कैसे उचित हो सकती है। जिस प्रकार मधुमक्खी शहद संग्रह करती है, ठीक उसी प्रकार महिलाओं को अपने गुणों का संग्रह कर अपना विकास करना चाहिए। वे पुरुषों के षड्यंत्रों में न फँसें।

हम सभी एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते हैं, जहाँ जाति, वर्ग, स्त्री, पुरुष में भेदभाव न हों। अमीर-गरीब का फासला मिटे। सबसे ज्यादा भेदभाव धनाभाव के कारण होता है। आर्थिक स्थिति अच्छी होने पर निम्नवर्गीय भी सम्मानपूर्वक व्यक्ति का भी अनादर करता है। 'चीख' कहानी का नायक कहता है–'गरीब ब्राह्मण होने से अमीर अछूत होने में मुझे सार्थकता दिखती है।' (चीख पृ॰ 103)

लेखक अजय नावरिया की भाषा बहुत ही संप्रेषणीय और सहज है। शब्द कहीं भी कथावस्तु को बोझित नहीं करते। सामान्य भाषा के शब्दों में अपनी बात को पाठकवर्ग के समक्ष जीवंत रूप में रखते हैं। भाषा की संप्रेषणीयता के लिए उन्होंने प्रचलित अँग्रेजी के शब्दों का प्रयोग सहज रूप से किया है। बलि कहानी की अनिता को वे अनुसूचित जाति की न कहकर एस॰सी॰ कहते हैं, क्योंकि यह शब्द पाठकवर्ग के लिए अधिक संप्रेषणीय है। लेखक हिंदी के दुरूह और कठिन शब्दों से बचते हुए से जान पड़ते हैं। अपनी विद्वत्ता प्रदर्शित करने हेतु इस प्रकार के प्रयोग से लेखक कोसों दूर है और यह उनकी कहानी को अधिक संप्रेषणीय बनाता है। ग्रामीण भाषा के शब्दों का प्रयोग भी प्रचुर मात्रा में किया गया है। आजकल के षड्यंत्र, राजनीतिक दाँवपेच सब नावरिया जी की कहानियों में हैं। लोग एक-दूसरे की संपन्नता से, निजता से खुश नहीं हैं। वे दूसरे पर अपनी प्रभुसत्ता जमाना चाहते हैं। इसके लिए अधिकारियों या राजनेताओं से अपनी उठ-बैठ का भी गलत फायदा उठाते हैं। 'न्यास-कथा' की कला पर यह बात सटीक बैठती है। वह शहर के एस॰पी॰ साहब से अपने संबंधों का गलत फायदा उठाती है। बिना अपराध के रविदास को न्यायालय तक के चक्कर कटवा देती है।

इन कहानियों में यह भी स्पष्ट है कि सरकारी कर्मचारी जैसे–पुलिस, अधिकारी आदि आम जनता से सही ढंग से व्यवहार नहीं करते। यदि उन्हें पता हो कि सामनेवाला शेड्यूल कास्ट है तो

 ISSN 0975-735X

उनका व्यवहार अत्यधिक निष्ठुर हो जाता है। अपशब्द कहना, गलत इल्जाम लगाना और डराकर उन इल्जामों को स्वीकार करा लेना इन लोगों का बाएँ हाथ का खेल है। 'न्यास कथा' के रविदास को पुलिसवाले थाने में ले जाकर यही सब करते हैं। दरोगा की बातचीत का एक नमूना देखिए– 'अबे साले मास्टर, तेरे पिछवाड़े पर डंडे पड़ेंगे न अभी, तो सब पता चल जाएगा, ड्रग्स का धंधा करता है, कॉलगर्ल्स सप्लाई करता है, साले तेरे उपर तो कई इल्जाम हैं।'

'साले तुम लोगों के दिमाग चढ़ गए हैं, अब भी नहीं सुधरा तो घर में ड्रग्स रखवाकर जिंदगी भर के लिए चक्की पिसवाऊँगा।'

इसी कहानी में यह भी स्पष्ट किया गया है। कि भारतीय न्याय–व्यवस्था बहुत ही धीमी है। सामान्य व्यक्ति न्याय का इंतजार करते–करते थक जाता है। अपराधियों के प्रति लड़ने का उसका जोश भी ठंडा हो जाता है। आदमी पूर्णत: न्याय की उम्मीद भी नहीं रख सकता। बड़े–बड़े वकील तथ्यों को तरोड़–मरोड़कर ऐसे प्रस्तुत करते हैं कि सब–कुछ जानते–समझते हुए भी जज साहब साक्ष्यों के आधार पर जो निर्णय सुनाते हैं, उससे न आम आदमी संतुष्ट होता है और न ही स्वयं जज साहब। इस प्रक्रिया में आम आदमी को आर्थिक रूप से ही नहीं, मानसिक रूप से भी प्रताड़ित होना पड़ता है। 'न्यास–कथा' के रविदास का उदाहरण लें तो–रविदास शहर के प्रसिद्ध वकील को भारी फीस देकर कोर्ट केस फाइल करता है। वकील साहब की भारी कोशिशों और पेशकार को पेश कई गुणा पेशगी के बावजूद सालभर बाद की ही तारीख मिलती है। यह दिखाता है कि भ्रष्टाचार किस तरह से आम आदमी की कमर तोड़ रहा है। पहले तो उसे बिना अपराध के झूठे इल्जाम में फँसाया गया, फिर वह ऐसे कुचक्र में फँसा, जिसमें वकील की मोटी फीस, पेशगी देने के बावजूद उसे न्याय नहीं मिला।

मानवीय संवेदना समाप्त होती जा रही है। बहुत ही सोचनीय विषय है कि मनुष्य यंत्रवत् जीवन जी रहा है। मानवता कहीं पीछे छूटी जा रही है। किसी को किसी से कोई मतलब नही है लोग एक–दूसरे से आत्मीयता रखने के स्थान पर अपरिचितों की तरह जीवन बिता रहे हैं। किसी को पीड़ा में देखकर भी लोगों की संवेदना नहीं जागती। 'निर्वासन' कहानी के राहुल कोहली इसके उदाहरण हैं–जब वह तैरते वक्त एक आदमी को बचाने की गुहार लगाते हुए देखते हैं तो उनके मुँह से शब्द निकलें–'मुझे क्या लेना–देना...वह मरे या जिए; जाने कौन है?' (निर्वासन पृ॰ 19)

लेखक बताना चाहता है कि एक साहित्यकार के लिए लिखना, पढ़ना ही उसकी जिंदगी होती है। यह बात 'निर्वासन' कहानी में स्पष्ट की है। लेखक को लेखन के अलावा अन्य कोई सांसरिकता अच्छी नहीं लगती। वह बच्चों, पत्नी व अन्य रिश्तों को भी समय नहीं दे पाता है। वह अपने लेखन को अपने स्वास्थ्य से भी ज्यादा महत्त्व देता है। वह न तो किसी की जिंदगी में हस्तक्षेप करता है और न ही स्वयं अपने जीवन में हस्तक्षेप चाहता है।

'निर्वासन' कहानी में दलित लेखक कबीरदास कोली अपने पुत्र राहुल कोली को उपर्युक्त बात स्पष्ट करते हैं–'मैं लिखता हूँ, मुझे जीने का यही तरीका अच्छा लगता है। मैं भीतर से बाध्य हूँ, इसे छोड़ दूँगा तो मैं इतना भी नहीं हँस पाऊँगा, जितना अब हँस लेता हूँ।' (निर्वासन पृ॰ 38)

कबीरदास कोली एक दलित लेखक थे। स्वतंत्रता के पक्षघर, पूर्ण रूप से ईमानदार और आदर्शवादी, लेकिन जब अपने पुत्र के नाम–परिवर्तन की बात सुनते हैं तो आवेश में आ जाते हैं। अपने छोटे भाई के दक्षिण भारतीय नायर परिवार में विवाह करने पर आपत्ति जताते हैं। उनके

चरित्र में यह विरोधाभास स्पष्ट दिखाई देता है। यह केवल कबीरदास कोली की ही समस्या नहीं है, हमारे संपूर्ण समाज की समस्या है। बहुत कम लोग स्वयं को इस प्रकार विरोधाभास से बचा पाते हैं। सामान्यत: देखने को मिलता है स्वतंत्रता की बड़ी-बड़ी बातें करनेवाले अपने ही घर में स्त्रियों के स्वयं निर्णय लेने पर क्रोधित हो जाते हैं। दहेज पर लंबे-लंबे भाषण देनेवाले, प्रतिष्ठित लोग, राजनेता आदि करोड़ों की धनराशि लेते देते हैं।

बड़ी-बड़ी आदर्श की बातें करना और उस आदर्श को जीवन में अपनाना दो अलग-अलग बातें हैं। आज के समाज में महात्मा गांधी के जैसे लोग नहीं हैं, जो किसी बात या सिद्धांत को बोलने से पहले स्वयं आत्मसात् करते थे। आज तो ऐसे लोग हैं, जो आदर्श की सिर्फ बातें करते हैं। स्वयं पर चरित्रार्थ करने की बारी आने पर उनके आदर्श की पोल खुल जाती है। खोखली बातों पर समाज की नींव कब तक टिक पाएगी, यह सोचनीय है।

धन कमाकर लोग एक-दूसरे के उत्थान के लिए उसका प्रयोग न करके दूसरे को नीचा दिखाने में प्रयोग करने की मानसिकता रखते हैं। लेखक अजय नावरिया जी ने अपनी कहानियों में यह बात बहुत ही स्पष्ट रूप से प्रकट की है। 'चीख' कहानी का नायक धन कमाकर अपने गाँव जाकर विकास की बात नहीं सोचता, वह तो पटेल के बेटे विनायक को नीचा दिखाना चाहता है। नायक जब एक बार गाँव जाता है तो बताता है–'पटेल का लड़का विनायक मुझे मिला था रास्ते में। मेरे गले में सोने की मोटी चेन थी। उँगलियों में सोने की अंगूठियाँ थीं, विनायक कुछ कह नहीं पाया था। वह मुस्कुरा भी नहीं सका था। मेरे सामने वह बिल्कुल भिखारी लग रहा था। उसकी आँखों में मैंने मात देखी थी। मैं विनायक को बिल्कुल हारा हुआ देखना चाहता था।'

वास्तविकता भी यही है व्यक्ति धन कमाकर अपने गाँव-समाज के विकास के बारे में नहीं सोचता। वह अधिक-से-अधिक अपने धन का दिखावा करके समाज पर अपना प्रभाव जमाना चाहता है। बदले की मानसिकता के कारण धन का उचित प्रयोग नहीं कर पाता और जीवन-भर संकीर्ण विचारों के कारण स्वयं भी कुंठित रहता है।

स्त्रियों के डर को भी लेखक ने बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से हमारे समक्ष रखा है। स्त्रियों की स्थिति बहुत दयनीय है। वह अपने मन की बात अपने पति तक से स्पष्ट रूप से नहीं कह पातीं। 'निर्वासन' कहानी में राहुल कोली की माँ अर्थात् कबीरदास कोली की पत्नी अपने पति को कभी अपने मन की नहीं कहती। पति के पीठ-पीछे वह जिन बातों की शिकायत करती है, किसी के द्वारा पति के सम्मुख कहे जाने पर उन्हीं का स्वयं विरोध करके स्वयं को पति के विचारों के अनुरूप दिखाने का प्रयत्न करती है। 'चीख' कहानी में भी शुचिता अपने पति वरुण को कभी अपनी मानसिकता नहीं बताती, वह इस संबंध को सिर्फ ढो रही है। वह इससे छुटकारा पाना चाहती है। सिर्फ शुचिता की ही नहीं यह कहानी भारतीय समाज की बहुत-सी नारियों की है। हमारे समाज में स्त्री-पुरुष संबंधों में पुरुष ही हमेशा हावी रहता है। स्त्रियों की मानसिकता, विचारों और स्थिति पर ध्यान नहीं दिया जाता। आर्थिक रूप से सक्षम न हो पाने के कारण स्त्रियाँ पुरुष को अपना आलंबन मानकर उसकी प्रभुसत्ता को स्वीकार भी करती हैं और मानसिक रूप से प्रताड़ित भी होती हैं। लेखक ने नारी के मन की स्थिति का बहुत ही सटीक वर्णन किया है, लेकिन मुख्य बात है कि पीड़ा व दुख के इस समाज में नारियाँ न उदास हों और न ही कुंठित हों, वे संघर्षशील बनकर आगे की और अग्रसर रहें।

अजय नावरिया जी के कहानियों के पात्र दलित मानसिकता से पीड़ित हैं। ये सभी दलित पात्र ग्रामीण वातावरण से निकलकर आए हैं। शहर में अच्छा आर्थिक स्तर है और कोई भेदभाव नहीं है। लेकिन मानसिक रूप से सभी पात्र यही सोचते हैं कि अगर हमारी पहचान सामने वालों को पता चलेगी तो इनका व्यवहार हमारे प्रति बदल जाएगा। यह एक मानसिक स्थिति है। शहरों में जाति-व्यवस्था बदल रही है। मानसिक रूप से फिर भी सुधार की आवश्यकता है। दलितों की यह स्थिति उनके शोषण का ही परिणाम है।

दलितों और शोषितों की कुंठा और अंतर्द्वंद्व को लेखक ने बहुत ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है, लेकिन सभी शोषित पात्र अपने अंतर्मन में द्वंद्व की स्थिति में हैं कोई भी जाति-व्यवस्था और शोषण के विरोध में आवाज उठाता हुआ नहीं दिखाई देता। स्त्रियों की स्थिति तो अधिक दयनीय है।

'निर्वासन' कहानी में राहुलदेव कोहली के पिता कबीरदास कोली अपनी पत्नी को बात-बात पर डाँटते, झल्लाकर बोलते, गधी तक कहते, लेकिन वह एक शब्द भी नहीं बोलती। उसे गुलामी की आदत हो गई थी।

'चीख' कहानी का नायक भी पटेल के बेटे के दुष्कर्म करने पर गाँव में विरोध नहीं करता। भागकर शहर आ जाता है।

इसी प्रकार 'बलि' कहानी की अनिता, अपने ससुरजी के द्वारा अपशब्द कहने पर अपने पति को हो रोकती है स्वयं तो उनका विरोध करती ही नहीं। सभी पात्र चाहे वे 'न्यास कथा' के रविदास हों या 'निर्वासन' के राहुल कोली, दलित शोषित हैं, लेकिन शोषण से बचते हुए दिखाई देते हैं। शोषक के प्रति डटकर खड़े होने का साहस नहीं दिखाते। शायद इसकी वजह यह है कि दलित, शोषित के पास ताकत नहीं है। न सामाजिक रूप से और न मानसिक रूप से।

विवेच्य संग्रह हमें यह सोचने पर विवश करता है कि क्या दलित और शोषितों को नाम बदलकर या अपनी पहचान छुपाकर या मेल-जोल न रखकर अपने अस्तित्व को बचाना संभव है? बाबा भीमराव अंबेडकर ने तो यह संदेश नहीं दिया था। उन्होंने कहा था—शिक्षित बनो, एकजुट हो और सशक्त होकर आगे बढ़ो। परंतु भारतीय समाज की यही विडंबना है कि शिक्षित होकर भी यह एकजुट नहीं होता। जातियाँ अपने अंदर उपजातियाँ पैदा करके समाज को और अधिक विखंडन की ओर ले जा रही हैं। नगर व शहर का द्वंद्व दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। जितनी सुविधाएँ बढ़ रही हैं, उतनी ही विसंगतियाँ पैदा होती जा रही हैं।

यही कारण है कि संकीर्ण मनोवृत्ति से हम उबर नहीं रहे हैं। हम ऊपरी स्तर के लोगों के व्यवहार से आहत होते हैं। लेकिन जब हम स्वयं उस स्तर पर पहुँचते हैं तो वही व्यवहार जो हमें आहत करता था, हम अपने से निम्न पर करते हैं। 'चीख' कहानी की मिसेज देशमुख अपने पति के साथ प्रतिशोध का व्यवहार करके आध्यात्मिक सुकून पाती हैं। यही संकीर्णता है। इन्हीं विसंगतियों के कारण समाज में विखंडन पैदा होता है। हम पर कोई शासन करे तो हमें पीड़ा होती हैं। और जब शासक बनते हैं तो वही सब हमें आनंद देता है। पीड़ित, शोषित की पीड़ा को आत्मसात करके हम हर संकीर्ण मानसिकता से उठ सकते हैं। 'चीख' कहानी की मिसेज देशमुख अंत में नायक से यही कहती है, 'हम क्यों एक-दूसरे को समझने की बजाय एक-दूसरे के साथ अत्याचारी की तरह पेश आ रहे थे? हम एक-दूसरे के सहयोगी क्यों नहीं बनें? मुझे माफ कर देना। मैंने तुम्हारे साथ वही किया, जो देशमुख ने मेरे साथ किया। हमें देशमुख नहीं बनना चाहिए।'

(चीख पृ॰ 109)

इससे आगे की कहानियों में कमजोर पक्षों पर विचार किया गया है। जैसे लेखक की 'यश सर' कहानी 'आरक्षण' पर है। आरक्षण का सवाल राजनीति से साहित्य में आया है। और सवाल आरक्षण का नहीं, हक का है। 'आरक्षण की वजह से दलित समाज मुख्य धारा में आया है, दलित कुछ ताकतवर हुए है, पर वहाँ एक नया जातिवाद उनके बीच खड़ा हो गया है। अपनी जरूरतों और जरूरतों से अधिक लालच के लिए ये गैरदलितों के दरवाजे पर खड़े रहते हैं।' समाज के दलित, शोषितवर्ग को मुख्य धारा से जोड़ने के लिए कुछ प्रयास आवश्यक हैं। मुख्य धारा में बैठे लोग और हम सब एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते हैं, जहाँ व्यक्ति की पहचान उसकी जाति, वर्ग, समुदाय से न होकर, उसकी योग्यता और उसके गुणों से हो। परंतु किसी काम को चाहने से वह हो नहीं जाता, उसे करना पड़ता है। हम सिर्फ चाह रहे हैं। गत बीस-तीस वर्षों में इस दिशा में कुछ प्रयास अवश्य हुआ है। जाति, वर्ग, समुदाय के नाम पर हमारी सोच कुछ उदार हुई है, लेकिन अभी भी अधिक सुधार की आवश्यकता है। तभी जातिवाद की जड़ता कम होकर समाज में चेतना आएगी और धर्म, जातिवर्ग के फसाद से हम ऊपर उठ सकेंगे।

आज की राजनीति समाज को जाति, वर्ग, समुदाय और संप्रदाय-विशेष में बाँटकर एक घिनौना खेल-खेल रही है। इसे समझने की आवश्यकता है, क्योंकि यह वोट के लिए उनकी एक राजनीतिक चाल है। वोट के लिए दलितों, शोषितों का मसीहा बननेवाले केवल अपने स्वार्थ हेतु समाज को बाँट रहे हैं। हमें उनसे सतर्क रहते हुए शिक्षा और स्तर को बढ़ाना होगा। शिक्षित होकर ही हम समाज की मुख्य धारा में जुड़ सकते हैं। मिसेज देशमुख की यह बात इस ओर भी इशारा करती है। मनोविज्ञान की अभिव्यक्ति बहुत सशक्त है। लेखक ने दलित की मानसिकता का चित्रण बहुत ही सटीक किया है। 'न्यास-कथा' की कला, 'शार्प-कर्व' की मणिका, असंग, 'निर्वासन' के राहुलदेव कोहली, 'बलि' के अविनाश और अनिता हो या 'चीख' कहानी का नायक सभी के मनोविज्ञान को लेखक ने बड़े सटीक ढंग से पाठकवर्ग के समक्ष रखा है। जातिवाद, ऊँच-नीच, भेदभाव हमारे देश, समाज और व्यक्ति के विकास में बाधक हैं। जातीयता और धार्मिक संकीर्णता से ऊपर उठकर ही देश, समाज और व्यक्ति का कल्याण हो सकता है। यह मानसिकता लेखक को प्रदान करनी चाहिए।

संदर्भ

1. पाँच बेहतरीन कहानियाँ, डॉ॰ अजय नावरिया, बलि, पृ॰ 75
2. पाँच बेहतरीन कहानियाँ, डॉ॰ अजय नावरिया, न्यास कथा, पृ॰ 17
3. पाँच बेहतरीन कहानियाँ, डॉ॰ अजय नावरिया, शार्प कर्व, पृ॰ 56
4. पाँच बेहतरीन कहानियाँ, डॉ॰ अजय नावरिया, शार्प कर्व, पृ॰ 46
5. पाँच बेहतरीन कहानियाँ, डॉ॰ अजय नावरिया, बलि, पृ॰ 77
6. पाँच बेहतरीन कहानियाँ, डॉ॰ अजय नावरिया, न्यास कथा, पृ॰ 07
7. पाँच बेहतरीन कहानियाँ, डॉ॰ अजय नावरिया, चीख, पृ॰ 103
8. पाँच बेहतरीन कहानियाँ, डॉ॰ अजय नावरिया, निर्वासन, पृ॰ 19
9. पाँच बेहतरीन कहानियाँ, डॉ॰ अजय नावरिया, निर्वासन, पृ॰ 38
10. पाँच बेहतरीन कहानियाँ, डॉ॰ अजय नावरिया, चीख, पृ॰ 109

यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र' की कहानियों में सदस्यों की स्वार्थ भावनाओं की समस्या का अध्ययन

डॉ॰ सतीशकुमार, हिंदी अध्ययनशाला
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म॰प्र॰)

यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र' राजस्थान के प्रसिद्ध कहानीकरों में से एक थे। यादवेंद्र जी का जन्म 15 अगस्त सन् 1932 को राजस्थान राज्य के बीकानेर शहर की धरती पर पुष्करण ब्राह्मण परिवार में हुआ।'[1] यादवेंद्रजी अपने जीवनकाल में प्राय: लेखनकार्य ही किया। इनकी कहानियों में हमें लगभग सभी प्रकार का परिवेश देखने को मिलता है। लेकिन पात्रों में कहीं-न-कहीं हमें स्वार्थ भावनाओं की समस्या भी देखने को मिलती है। आगे जाकर इस प्रकार की समस्या परिवार के टूटने का कारण बनती है।

ग्रामीण परिवारों में सदस्यों की संख्या एक से अधिक होती है। परिवार में दादा-दादी, माता-पिता, पति-पत्नी, भाई-बहन, चाचा-चाची आदि सभी व्यक्ति अपने सामूहिक परिवार को चलाने के लिए कुछ-न-कुछ काम-काज करते हैं, परंतु एक या दो व्यक्ति या कोई भी सदस्य अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए जब कोई मन में स्वार्थ-भावना रखता है, तभी परिवार में पारिवारिक विघटन की समस्या उत्पन्न हो जाती है।

यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र' की विभिन्न कहानियों के अध्ययन के बाद यह अनुभव होता है कि कहानी में पात्रों के व्यक्तिगत स्वार्थ के कारण कहीं-न-कहीं पारिवारिक विघटन हुआ है।

'बंदूक वाली मौसी' कहानी-संग्रह में हमें यही समस्या देखने को मिलती है। 'वासंती' कहानी में वासंती की माँ कोठे की वेश्या गिरिजा थी, जो अपने रंगरूप, यौवन आदि से लोगों को लुभाती थी। सेठ बसंतलाल की रखैल बन गई, इसी से वासंती का जन्म हुआ। वासंती सात वर्ष की थी, तभी उसकी माँ की मृत्यु हो गई। वासंती की माँ का स्वार्थ था। कोठे पर रुपये-पैसे खूब आते थे, इसीलिए जमनाबाई के यहाँ कोठे से कहीं जाती नहीं थी। फिर वह प्रेम स्वार्थ में सेठ के यहाँ बैठ गई–

'जमनाबाई का यह सार्थक सूत्र उसकी मन की स्लेट पर अमिट रूप से छप गया कि वेश्या का बुढ़ापा नारकीय लपटों में जाने जैसा होता है। जवानी में वेश्या सिर के बल चलती है और रूप के अभिमान में हर कदम पर फूल कुचलती है। लेकिन बुढ़ापे में वे ही फूल कंकर बन जाते हैं, इसलिए वासंती जिसके पस धन होता है, वह हर आयु में सुखी रहता है।'[2]

जमनाबाई और गिरिजा दोनों का यही स्वार्थ था कि वासंती बड़ी होकर हमें और कोठे को सँभाल लेगी। साथ ही हमें धन-दौलत कमाकर भी देगी जवानी में। इसी स्वार्थ की वजह से वासंती का घर नहीं बस पाया था।

'सब लाचार हैं' कहानी में मधुरिमा स्वयं अपने स्वार्थ को सिद्ध करने के लिए लीलाधर के साथ यौनसंबंध तक बना लेती है। बदले में उसे विवाहपूर्व तो नौकरी और विवाह के बाद पति को नौकरी मिल जाती है–'मेरे होनेवाले पति के पास अच्छी शिक्षा-दीक्षा है, डबल एम॰ए॰। एक अँग्रेजी ऑनर्स में एक एम॰ए॰ इन हिंदी किया है। लेकिन सर वह है बाबू का बाबू यानी क्लर्क। आपके मंत्रालय में सेक्रेट्री पद खाली हुआ है। शायद उसका इंटरव्यू अगले माह होगा उसे..।'[3]

मधुरिमा लाचार थी, क्योंकि लीलाधर उसके साथ पहले भी संबंध बना चुका था। इसी लिए उसने अपने स्वार्थ के लिए अपनी शर्त मंत्री के बीच में रख दी–'उसने जबरदस्ती मधुरिमा को अपनी ओर खींचकर चूम लिया। उसके गालों पर जलन सी हुई। उसने उसे हथेली से पोंछा।'[4]

मधुरिमा ने अपना स्वार्थ सिद्ध किया और मंत्री लीलाधर ने भी। दोनों का अपना-अपना स्वार्थ तो सिद्ध हो गया, मगर परिवार नहीं बसा। वास्तव में शायद मधुरिमा के साथ या किसी और के साथ जीवन में ऐसी घटना घटी ही होगी। मगर समाज और परिवार इस तरह के संबंधों को मान्यता नहीं देता है।

'समय सच' कहानी में भी अंजली अपने परिवार में माँ और भाई को बचाने के लिए या कहें कि अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए अपने शरीर को बेच देती है। अंजली ने अपनी समस्या को सहेली सुषमा को बताया तो उसने स्पष्ट कह दिया कि तुम्हारा काम मेरा एक परिचित है वह निकाल देगा। बस तुम्हें उसकी बात माननी होगी। अंजली लाचार थी, क्योंकि उसकी माँ और भाई अस्पताल में भर्ती थे और उसके पास इलाज के लिए रुपये नहीं थे।

'चलो, तुम्हारा संकट दूर हो गया। अब तुम्हारे घर में जन्म नहीं होगा। वह सुषमा के पाँवों में बैठती हुई फफक पड़ी। मैं एकदम अपवित्र हो गई। पापिन और कलंकिनी।'[5]

अंजली के स्वार्थ के साथ-साथ उसकी आर्थिक मजबूरी भी थी, इसीलिए यहाँ पर यह अमान्य संबंध बना है। मगर अंजली का स्वार्थ सिद्ध हो ही गया। उसने सुषमा को धन्यवाद भी दिया।

'गुलजी-गाथा' कहानी-संग्रह की कहानी में भी हमें स्वार्थ की समस्या देखने को मिलती है। 'कठपुतली का विद्रोह' कहानी पूर्णतया स्वार्थपरक कहानी है। कहानी का मुख्य पात्र अशेष गुप्ता और उसकी पत्नी नीलिमा है। अशेष गुप्ता अपनी आर्थिक समस्या को हल करने के लिए अपनी पत्नी नीलिमा को बार-बार इस्तेमाल करता है। नीलिमा गुप्ता गोरी-चिट्टी, स्लिम बॉडी सुंदर महिला है। अशेष गुप्ता ने नीलिमा से स्पष्ट कह दिया कि तुम वही करो जो में तुम्हें कहता हूँ। अगर नहीं करोगी तो भूखे मरने की नौबत आ जाएगी–

'नीलिमा! तुम जानती हो कि मेरे कहे अनुसार चलने पर ही तुम्हारा भला है। क्या तुम शादी के बाद भूखे-नंगे दिनों को भूल गई हो। उन अभावों को अपने दिल से निकाल सकती हो, जब हम हर इच्छित वस्तु के लिए तरसते थे। सोचो, कान खोलकर सुनो, मैं जैसा कहूँ, करती जाओ, वरना तुम मेरी बर्बरता जानती ही हो।'[6]

नीलिमा को उसने डरा-धमकाकर तैयार कर लिया, अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए। वह क्या करती, उसके पास और कोई रास्ता नहीं था। अशेष गुप्ता ने गंगेशबाबू से ठेके लेने के लिए नीलिमा से मिला दिया। गंगेश ने नीलिमा का खूब इस्तेमाल किया, यहाँ तक कि उसके साथ शारीरिक संबंध भी बनाए। इसमें अशेष गुप्ता का स्वार्थ स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

'वह आवेश में बोली–मेरे जादू को तुम कब तक काम में लाओगे? देखो अशेष! मैं इस

जीवन से नितांत ऊब चुकी हूँ। अपने रंग-रूप और कामुक संकेतों से दूसरों को एक्सप्लोयर करते-करते मैं अपने को एक किस्म की वेश्या समझने लगी हूँ और तुम्हें चालाक व कुटिल दलाल। अरे! मैं तेरी पत्नी हूँ—पैसा कमाने की कोई मशीन नहीं। सोचो डियर, मेरे पास एक दिल है, भावनाएँ हैं, सिद्धांत है, पत्नी के कर्तव्य हैं, दांपत्य-जीवन की सीमाएँ हैं। तुम मेरी बार-बार बेइज्जती मत करो। मुझे तुमसे घिन्न होने लगी है। ग्लानि-सी होती रहती है।'[7]

अशेष गुप्ता की हरकतों से परेशान होकर नीलिमा गुप्ता अशेष गुप्ता को छोड़कर चली गई। यहाँ पर अशेष के स्वार्थ के कारण नीलिमा का देह-शोषण हुआ और पारिवारिक विघटन भी स्पष्ट रूप से हुआ।

'तपता समंदर' कहानी-संग्रह की कहानी 'उत्तरजीवी' कहानी में अरूवा किस तरह से अनंग को अपनी ओर आकर्षित करके उसके साथ यौनसंबंध बनाना चाहती है। अरूवा और अनंग मित्र होने का अरूवा अपनी मौन इच्छाओं को पूरा कर अपना स्वार्थ निकालना चाहती थी। मगर अनंग ठहरा अपनी मार्यादा में। 'अरूवा ने व्यंग्य से कहा, श्रीमान अनंगजी, श्रीमान कामदेव जी, क्या कभी आप अपने पर कामुकता के तीर नहीं चला सकते? हर एक ऋषि-मुनियों को आपने उत्तेजित किया था, पर अपने को क्यों नपुंसक बना रखा है।'[8]

अनंग ने अरूवा को समझाया कि स्त्रियों को अपनी मर्यादा में रहना चाहिए। हमारी संस्कृति में धर्म और नारी का लज्जापन बनाए रखना चाहिए। वह बड़बड़ाता हुआ चला गया। अरूवा अकेली रह गई। अरूवा ने सुनीति को अपने जाल में फँसा लिया और दोनों का पारिवारिक संबंध बनने लगा। 'दूसरे महीने ही अरूवा ने सुनीति को बताया कि वह प्रेगनेंट हो गई है। सुनीति ने हंसते हुए कहा, इक्कीसवीं सदी में हमारा भी एक उत्पाद जनता के सम्मुख तो रहेगा और वे बिस्तर पर लिपटकर सो गए।'

स्वार्थ चाहे किसी भी प्रकार का क्यों न हो उसे अगर हासिल किया जाता है तो मानव किसी भी हद तक चला जाता है जैसा कि अरूवा ने किया। बिना विवाह के ही माँ बन गयी।

संदर्भ

1. गीता मा॰ बेणचेकर, यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र' व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ॰ 9
2. यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र', बंदूक वाली मौसी : वासंती, पृ॰ 84
3. यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र', बंदूक वाली मौसी : सब लाचार है, पृ॰ 96
4. यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र', बंदूक वाली मौसी : सब लाचार है, पृ॰ 96
5. यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र', बंदूक वाली मौसी : समय सच, पृ॰ 104
6. यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र', गुलजी गाथा : कठपुतली का विद्रोह, पृ॰ 116
7. वही, पृ॰ 118
8. यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र', तपता समंदर : उत्तरजीवी, पृ॰ 23

मो॰ 09887136408

भारतीय साहित्य में नारी वैष्यम्य

शकुंतला वाघ

सभ्यता के प्रथम चरण में नर-नारी में कोई भेद नही था वे आपस में मिलकर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अन्वेषण एवं कार्य करते थे। सिन्धु सभ्यता के प्रथम चरण में प्राप्त बहुसंख्याक नारी मूर्तीयों के कारण यहाँ मातृसत्तात्मक स्थिति थी ऐसा माना जाता है। ऋग्वेदकाल में पितृसत्तात्मक परंपरा में नर-नारी की स्थिति समान दिखाई देती है। बैद्धिक, आध्यात्मिक जीवन में स्त्रियों को वही प्रतिष्ठा प्राप्त थी, जो पुरुषों को प्राप्त थी। पर्दाप्रथा एवं सतीप्रथा प्रचालित नहीं थी। कन्याओं की शिक्षा की अवहेलना नहीं की जाती थी। ऋग्वेद में स्त्रियाँ 'ब्रह्मवादिनी' एवं 'मंत्रद्रष्टा' मानी जाती थीं। लोपामुद्रा, अपाला, इंद्राणी, घोषा, विश्ववारा आदि विदुषी महिलाओं का उल्लेख प्राप्त होता है। ऋग्वेदकाल में स्वयंवरप्रथा का प्रारंभ हो गया था। वेद ग्रंथों में नर-नारी दो होते हुए भी एक थे।

उत्तर वैदिककाल में धीरे-धीरे स्त्रियों की दशा में गिरावट आने लगी। संपत्ति के अधिकार से स्त्रियों को वंचित रखा गया। कन्या का जन्म दुख का कारण माना जाने लगा। गार्गी, मैत्रेयी नारियाँ शिक्षित थीं। महाकाव्य काल में कुंती, देवयानी, द्रौपदी, उत्तरा, सीता जैसी स्त्रियाँ शिक्षित थीं। उच्चवर्ग में नारियाँ शिक्षा प्राप्त कर सकती थीं, लेकिन अधिकतर नारियाँ शिक्षा से वंचित थीं भारत की सबसे प्राचीन सभ्यता सिंधु घाटी की सभ्यता मानी जाती है। वैदिक समाज भारतीय इतिहास का आदर्श समाज रहा है, जिसमें नारियों ने समस्त अधिकारों का पूर्णता के साथ उपभोग किया था तथा जनतंत्रीय सभाओं को शासन सम्बन्धी बहसों में भाग लेती थी। इस समय कन्या निर्मुक्त होकर युवकों के साथ अध्ययन करती थी। ऋषि याज्ञवल्क्य की पत्नी मैत्रेयी दार्शनिक वाद-विवादों में भाग लेती थीं। गार्गी ने जनक की सभा में दर्शनशास्त्र के वाद-विवाद में भाग लेकर याज्ञवल्क्य को चौंका दिया।

मध्यकालीन भारत में हिंदू और मुसलमान दोनों वर्गों में पर्दाप्रथा पाई जाती थी। इसे सामाजिक प्रतिष्ठा का एक अंग माना गया। मुगलकाल नारी का सामाजिक जीवन विभिन्न प्रतिबंधों के अधीन था, किंतु इस प्रतिबंधों के बाद भी कई मुस्लिम महीलाओं ने विद्वत्ता के क्षेत्र में नाम कमाया। हुमायूँ की बहन गुलबदन बेगम ने 'हुमायूँ नामा' नामक हुमायूँ की जीवनी लिखी है। शाहजहाँ की पुत्री जहाँआरा कवयित्री थी। सलीमा सुल्ताना, नूरजहाँ और जेबुन्निसा ने श्रेष्ठ काव्य की रचना की थी। हिंदुओं में मीराबाई, रानी दुर्गावती और ताराबाई अपने समय की विख्यात हिंदू महिलाएँ थीं। मीराबाई भक्ति के क्षेत्र में और दुर्गावती तथा ताराबाई ने शासनिक और सैनिक क्षेत्र में स्थान प्राप्त किया।

भारतीय नारी जागरण के संदर्भ में राजा राममोहन रॉय, स्वामी दयानंद सरस्वती और

 ISSN 0975-735X

विवेकानंद का ऐतिहासिक महत्त्व है। पंडित रमाबाई, सरलादेवी, घोषाल चौधरानी, भगिनी निवेदिता एनी बेसेंट मेडम भिकाजी रुस्तमजी कामा, सरोजनी नायडू, कमनादेवी चट्टोपाध्याय महिलाओं ने अधिकार एवं महिला शिक्षा के बारे में कार्य किया है। 1889 में पंडित रमाबाई ने बंबई में उन्होंने एक गृह सह-विद्यालय शुरू किया तथा उसका नाम 'शारदा सदन' रखा महाराष्ट्र में यह पहला विधवा गष्टह था। एक अन्य गृह कलकत्ता में कोई सेन महाशय चलाते थे। लुधियाना में आर्य स्त्री समाज ने भी कन्या वैदिक स्कूल तथा विधवाओं के लिए एक आश्रम भी चलाया था। स्वर्णकुमारी देवी रवींद्रनाथ टैगोर की चौथी पुत्री थीं। 1882 में उन्होंने लेडीज थियोसॉफिकल सोसायटी की स्थापना की। सन् 1886 मे उन्होंने सारवी समिति शुरू की। समिति का पहला उद्‌देश अनाथों तथा विधवाओं की सहायता करना था। स्वर्णकुमारी देवी उन पहली दो महिलाओं से एक थी 1890 के कॉग्रेस सत्र में बंगाल राज्य का प्रतिनिधित्व करने के लिए प्रतिनिधे के रूप में चयन हुआ था।

भिकाजी कामा (मैडम कामा के रूप में विख्यात) भारत तथा विदेशों में क्रांतिकारी आंदोलन में श्यामजी कृष्णवर्मा एस.आर.राणा तथा अन्य लोगों के साथ जुडी थी। सन 1907 में उन्होंने स्टुटगार्ड में संपन्न हुई इंटरनेशनल सोशालिस्ट काँग्रेस में भाग लिया जहाँ उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय झेंडा फहराकर भारत की आजादी का समर्थन करने के लिए काँग्रेस को सहमत किया। एनी बेसेंट 1893 में भारत आईं। वह सरोजनी नायडू तथा आठ भारतीय स्त्रियों को साथ मोंटेग से मिलने गईं तथा उनसे स्त्रियों को वोट देने का अधिकार देने की माँग की। कमलादेवी चट्टोपाध्याय ने काँग्रेस की सदस्यता के रूप में 1921 में असहयोग आंदोलन में भाग लिया। वह पहली महिला थीं, जो सन् 1926 में अपने ग्रहराज्य मंगळरू से चुनाव में खड़ी हुईं। सरोजनी नायडू का परिवार शिक्षावादी था। उनके पिता शिक्षाशास्त्री थे। सरोजनी नायडू ने महिलाओं के अधिकारों के लिए कार्य किया। स्त्रियों के कष्ट-निवारण के लिए जिन अभियानों में सक्रिय रहीं उनमें विधवा पुनर्विवाह अभियान, स्त्री-शिक्षा तथा स्त्रियों के मुक्ति के अभियान के प्रमुख थे। 1914 में उन्होंने गांधीजी के साथ स्वेच्छा से कार्य करने की इच्छा जताई। 1925 में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की पहली भारतीय महिला अध्यक्ष चुनी गईं। अरुणा आसफ अली का रूढ़िवादी हिंदू बंगाली परिवार में जन्म हुआ। उनका नाम अरुणा गांगोली था। कलकत्ता में गोखले मेमोरियल स्कूल में नौकरी करती थी। तब इलाहाबाद में उनकी मुलाकात मशहूर काँग्रेस नेता एम॰ आसफ अली से हो गई। अपने परिवार, माता-पिता के घोर विरोध के बावजूद विजातीय विवाह किया। अरुणा आसफ अली को स्वाधीनता-आंदोलन की महान महिला तथा 1942 के आंदोलन की नायिका के रूप में जाना गया।

स्वंतत्र भारत के बाद स्थिति में काफी परिवर्तन आया। महिलाओं के लिए शिक्षा महत्त्वपूर्ण मानी गई, किंतु भारत के कई राज्य ऐसे थे, जो अपनी परंपरा को छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे। विधवा-विवाह, सतीप्रथा अपने समाज को अलंकार मानते थे। सितंबर 1987 में राजस्थान के एक गाँव में हुई सती की एक घटना ने रूपकुँवर को जिंदा जलाया गया। वह पढ़ी-लिखी लड़की थी। वह सती होने के लिए राजी नहीं थी। उसे बेसूध होने का इंजेक्शन देकर सती के तैयार किया रूपकुवर को जिंदा जला देने के फौरन बाद घटनास्थल (देवराल) में एक लोकप्रिय तीर्थस्थल बन गया, जहाँ झँनझुन की भाँति चढ़ावा का सामान तथा स्मृतिचिह्न (अपने पति के सिर पर हाथ

रखे आग की लपटों के बीच मुस्कराती रूपकुँवर की फोटो) बेचनेवाली दुकानें खुल गईं। कई महत्वपूर्ण लोगों एवं सती धर्म रक्षा समिति नामक नवस्थापित संगठन के सदस्यों ने मिलकर राणी सती संघ की स्थापना की। रूपकुँवर की मृत्यु के बाद दसवें दिन सतीस्थल पर 'चुनरी महोत्सव' का आयोजन किया गया था। उसी समय अनेक नारे लगा ये गए 'सती हो तो कैसे हो, 'रूपकुँवर जैसी हो।' 'देश धरम का नाता है सती हमारी माता है।'

बनारस तथा पुरी जैसे बड़े हिंदू मंदिरों के मुख्य पुजारियों ने बयान जारी कर कहा कि सती राजपूत संस्कृति के सर्वोत्तम तत्त्वों का प्रतिनिधित्व करती है, बल्कि यह हिंदू की प्रतीक है तथा उसे शास्त्रीय मान्यता प्राप्त है। सती-विरोधियों की वजह से हिंदुत्व खतरे में है। दक्षिणपंथी हिंदुसुधारवादी परंपरा तथा स्वामी अग्निवेश ने बनारस एवं पुरी मंदिरों के मुख्य पुजारियों को चुनौती दे दी। वे सतीप्रथा को शास्त्रसम्मत मान्यता के मुद्दे पर उनके साथ शास्त्रार्थ करें। उनकी चुनौती ठकरा दी गई। महाराष्ट्र के जाति-विरोधी आंदोलन ने भी सतीप्रथा के विरोध की घोषणा की। राजस्थान में भी ग्रामीण स्त्रियों ने भी सरकारी निष्क्रियता तथा सतीप्रथा के विरोध में प्रदर्शन किया।

निष्कर्ष

महिलाओं की अन्य समस्याओं की भाँति सती की समस्या सिर्फ अभियान चलाकर हल नहीं की जा सकती। नारीवाद की जड़ें अब पूरे देश में अनेक प्रकार सें फैल रही हैं।

संदर्भ

1. डॉ॰ अंजु शुक्ला, आधुनिक नारी एवं महिला सशक्तिकरण, अमन प्रकाशन कानपुर 2010
2. राधाकुमार, स्त्री संघर्ष का इतिहास 1800 -1990, वाणी प्रकाशन, दिल्ली 2011
3. डॉ. राजेंद्रपाल सिंह जोश डॉ अमरसिंह वधान, दृष्टि और सृष्टि, रूपकँवर प्रकाशन, पंजाब 2014

मो॰ 9860678180
waghsp123@gmail.com

अशोक वाजपेयी की कविता में अभिव्यक्त मृत्युबोध

प्रो॰ डॉ॰ सदानंद भोसले
अध्यक्ष, हिंदी विभाग
सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय, पुणे
नवनाथ शिंदे
टीचर रीसर्च फेलो, हिंदी विभाग
सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय, पुणे

अशोक वाजपेयी समकालीन हिंदी कविता के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। पिछले पचास वर्षों से वे हिंदी साहित्य-जगत् में कवि, आलोचक एवं संस्कृतिकर्मी के रूप में सक्रिय भूमिका का निर्वाह कर रहे हैं। अब तक उनके पंद्रह कविता-संग्रह और आलोचना की एक दर्जन से अधिक किताबें प्रकाशित हुई हैं। उनकी कविता समकालीन कविता के दौर में नवस्वच्छंदतावादी प्रवृत्तियों का वहन करती रही है। उनकी विशेषता रही है कि उन्होंने साहित्य की मुख्य धारा से हटकर सर्वथा नए विषयों पर कविता लिखी है। समकालीन कविता वर्तमान राजनीतिक, सामाजिक परिदृश्य से अत्यधिक प्रभावित रही है। उसमें मनुष्य के राजनीतिक एवं सामाजिक संघर्षशील जीवन को प्रमुखता से अभिव्यक्ति मिली है। किंतु अशोक वाजपेयी ने सामाजिकता की अपेक्षा वैयक्तिकता को अधिक महत्त्व दिया है। इसीलिए प्रेमभाव की व्यंजना, सौंदर्य-चित्रण, वैयक्तिकता, प्रकृति-चित्रण आदि उत्तरछायावादी प्रवृत्तियों को उनकी कविता में देखा जा सकता है। उनकी कविता के प्रमुख विषय प्रेम, सौंदर्य, प्रकृति, महानगरीय जीवन, ललित कलाएँ, मृत्युबोध आदि रहे हैं। समकालीन कविता की मुख्य धारा (राजनीतिक, सामाजिक विषय से संबंधित) से अलग विषयों पर कविता लिखने के कारण उनकी कविता को समकालीन कविता का प्रतिपक्ष भी माना जाता है।

अशोक वाजपेयी के रचनात्मक व्यक्तित्व पर अस्तित्ववादी विचारधारा का प्रभाव होने के कारण वैयक्तिकता, जिजीविषा और मृत्युबोध की अभिव्यक्ति उनकी कविता में मुख्य रूप से देखी जाती है। अपने पारिवारिक जीवन में पिता, माता, ताऊ, भाभी आदि की मृत्यु, सार्वजनिक जीवन में मुक्तिबोध, अज्ञेय, श्रीकांत वर्मा, कुमार गंधर्व, मल्लिकार्जुन मंसूर आदि अत्यंत स्नेही मित्रों की मृत्यु को उन्होंने नजदीक से देखा है। उन्हें मृत्यु की निष्ठुरता ने गहरे स्तर पर आंदोलित किया है। यही कारण है कि मनुष्य-जीवन की नश्वरता एवं असहायता को उन्होंने मृत्युबोध से संबंधित कविताओं के माध्यम से व्यक्त किया है। किंतु मृत्यु के प्रति उनका दृष्टिकोण नकारात्मक न होकर सकारात्मक रहा है। वे मानते हैं कि जब हम नश्वर हैं, तो हम अनश्वरता का उत्सव मनाते हैं। इस संबंध में समीक्षक प्रकाश ने लिखा है–'अवसाद कविता में नश्वरता का भय पैदा करता है, पर यही नश्वरता अनश्वरता का उत्सव मनाने के लिए भी प्रेरित करती है। यह उत्सव

नश्वरता के विरुद्ध है, मृत्यु के विरुद्ध, अवसाद, पीड़ा और न होने के विरुद्ध।'[1] स्पष्ट है कि उनकी कविता में मृत्युजनित अवसाद का चित्रण होते हुए भी यह अवसाद अंततः मनुष्य की जिजीविषा को बढ़ाते हुए उसके जीवन की सार्थकता प्रतिपादित करता है। कवि की ये कविताएँ हमें दुःख, पीड़ा, अवसाद के क्षणों में लड़ने की प्रेरणा देते हुए जीवन के आनंद के स्रोत तलाशने में मदद करती हैं।

मृत्यु मनुष्य-जीवन का शाश्वत सत्य है। मनुष्य के मन में मृत्यु के प्रति विषाद और भय की भावना होती है, क्योंकि मृत्यु जीवन का अंत होता है। इसलिए हम मृत्यु से डरते हैं। वास्तव में मृत्यु क्या है? मृत्यु के बाद क्या होता है? आदि प्रश्नों के ठीक-ठीक उत्तर न मिल पाने के कारण मानवी मन में मृत्यु के प्रति रहस्यमिश्रित भय का भाव विद्यमान होता है। इस संबंध में अशोक वाजपेयी ने लिखा है, 'नश्वरता मनुष्य का एक चिरंतन प्रश्न है। कविता उस नश्वरता के विरुद्ध एक असमाप्य संघर्ष है और उसकी अनिवार्यता का सहज स्वीकार भी। हम कविता लिखते हैं, क्योंकि हम जीना चाहते हैं, मरना नहीं। अंतर्विरोध यह है कि हर कविता एक तरह का अवसान है। वह जीने के साथ ही मरने को भी खुली आँखों देखना-पहचानना है। असल में वही जीता है, जो मरते हुए जीता है: कविता एक तरह से मरते हुए जीना है, बीतते हुए खिलना है। वह जीवन नहीं, अतिजीवन है।'[2] स्पष्ट है कि कवि ने मनुष्य-जीवन के चिरंतन सत्य मृत्यु के प्रति कविता के माध्यम से संघर्ष छेड़ दिया है। वे मानते हैं कि नश्वरता मनुष्य-जीवन का अनिवार्य एवं अंतिम सत्य है। मृत्यु अटल एवं अवश्यंभावी है; हम उसे टाल नहीं सकते, परंतु उसके डर को हलका कर सकते हैं। मनुष्य की जिजीविषा की तीव्र इच्छा हमें कर्मशील बनाती है, कविता भी एक कर्म है। कविता के द्वारा कवि जीवन के दुःखदायी प्रसंग को कम करता है और जीवन में आशा एवं सकारात्मकता को अधिक पुष्ट करता है। हम सभी जीवित रहना चाहते हैं। इसका कारण हम अपने से और अपनों से बहुत प्रेम करते हैं। कविता मनुष्य के इस नश्वर जीवन को अधिक आशावादी बनाए रखती है। कविता जीवन के साथ-साथ मृत्यु पर भी चिंतन प्रस्तुत करती है, अतः जीवन में अन्य पक्षों की तरह मृत्यु भी महत्त्वपूर्ण है। कविता जीवन के अवसाद, दुःख के क्षण में खुशी के स्थल खोजती है। इसीलिए कवि का यह कहना 'मरते हुए जीना ही वास्तव में जीना है' उचित है। यह सत्य है कि वर्तमान समय में हम इतने संघर्षों से घिरे हैं कि हर क्षण हमारी लड़ाई चल रही है। ऐसे समय में जीना वास्तव में जीवन है। कवि की मृत्युबोध के प्रति सचेतनता वास्तव में जीवन के प्रति आसक्ति के कारण है।

अशोक वाजपेयी ने जीवन में प्रेम के साथ-साथ मृत्यु को भी महत्त्वपूर्ण माना है। वे प्रेम और मृत्यु को जीवन के दो महत्त्वपूर्ण पक्ष मानते हैं। कवि के लिए प्रेम के साथ-साथ मृत्यु अथवा अनुपस्थिति की गहरी समझ होना आवश्यक मानते हैं, बगैर इस समझ के कोई कवि जीवन को समग्र एवं ठीक तरह से व्याख्यायित नहीं कर सकता। अपनी प्रेम-कविताओं के संकलन 'थोड़ी सी जगह' की भूमिका में उन्होंने कवि के लिए प्रेम-भाव की गहरी समझ एवं अनुभव होने पर जोर दिया है, तत्पश्चात उन्होंने मृत्यु के बारे में समझ की आवश्यकता प्रतिपदित करते हुए मृत्यु एवं अनुपस्थिति पर आधारित काव्य-संकलन 'जो नहीं है' की भूमिका में लिखा है—'थोड़ी सी जगह' में मैंने कहा था कि 'जिसने कविता में प्रेम न किया हो, वह कवि क्या?' यह जोड़ा जा सकता है कि जो कविता में मृत्यु से न उलझा हो, वह भी कवि क्या?'[3] स्पष्ट है कि एक मँजे हुए

कवि के लिए प्रेमभाव एवं आसक्ति की गहरी समझ आवश्यक है। सौंदर्यदृष्टि एवं जीवन के प्रति गहरे लगाव के अभाव में यह संभव नहीं है। प्रेम के साथ-साथ कवि को जीवन में निहित अवसाद अथवा मृत्यु की गहरी समझ होना आवश्यक है। आसक्ति और अवसाद एक-दूसरे से गहरे जुड़े हैं अथवा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, ऐसा कहें तो गलत नहीं होगा। अत: सफल कवि के लिए दोनों की समझ आवश्यक है।

अशोक वाजपेयी की कविताओं में प्रेम और मृत्यु महत्त्वपूर्ण बिंदु हैं। वे दोनों को अलग-अलग न मानते हुए दोनों को एक ही आसक्ति के दो रूप मानते हैं। कवि मृत्यु को छोड़कर जीवन की कल्पना व्यर्थ समझता है। हमें सार्थक जीवन तभी प्राप्त होगा, जब हम मृत्यु का सहज स्वीकार करेंगे। उनकी धारणा है कि मृत्यु ही मनुष्य-जीवन सार्थकता प्रदान करती है, अन्यथा मनुष्य का जीवन नारकीय होता। हमारे जीवन को महत्त्व इसी कारण है कि हम एक दिन मृत्यु का वरण करनेवाले हैं। कवि मृत्यु के छोर से जीवन को देखते हैं और जीवन को उत्सव की तरह मनाने की सलाह देते हैं। उन्हें मृत्यु का शोक नहीं है, शोक इस बात का है कि हम जीवित होकर भी जीवन में निहित आनंद के स्थल को नहीं खोज पाते। हम जिंदा रहकर भी यदि दु:खी रहे तो जीवित होकर भी मरने के बराबर है। अत: हमें अपने जीवन को आनंद से व्यतीत करना चाहिए। उनके इसी जीवन-दर्शन के संबंध में प्रकाश कहते हैं, 'अशोक के कवि को प्रेम के साथ-साथ मृत्यु के पीछे छिपी जटिलता, उसका रहस्य, उसका आश्चर्यलोक सदा से आकर्षित करता रहा है। प्रेम की अपेक्षा मृत्यु में यह आकर्षण विशेष प्रखर है। अशोक की कविता मृत्यु की ओर आकर्षित होती है। प्रेम से गहरी संसक्ति के कारण।'[4] अर्थात् कवि का मृत्यु से लगाव जीवन के प्रति प्रेम के कारण है। यही कारण है कि उनकी कविता में अवसाद के अनेक क्षण विद्यमान हैं। किंतु उनमें जीवन के प्रति नकारात्मक सोच का अभाव है, बल्कि अशोक वाजपेयी तो मृत्यु का स्वागत करते हैं। उनकी कविता में मृत्यु के प्रति कुतूहल का भाव दिखाई देता है। 'कितने दिन और बचे हैं?' शीर्षक कविता में वे लिखते हैं—

> कोई नहीं जानता कि/ कितने दिन और बचे हैं?
> चोंच में दाने दबाए
> अपने घोंसले की ओर/ उड़ती चिड़िया कब सुस्ताने बैठ जाएगी
> बिजली के एक तार पर और
> आल्हाद से झुलकर छू लेगी/ दूसरा तार भी।[5]

कवि ने मृत्यु की शाश्वतता का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि किसी को पता है कि उसके कितने दिन और बचे हैं? कवि ने चिड़िया के प्रतीक द्वारा हमें सूचित किया है कि जिस प्रकार चोंच में दाना दबाए कोई चिड़िया अपने घोंसले की ओर जाने की अपेक्षा कुछ समय के लिए किसी बिजली के तार पर कुछ समय के लिए सुस्ताने बैठती है और अचानक उड़ते हुए दूसरे तार पर बैठती है। उसी प्रकार हमारी मृत्यु भी हमारे इर्द-गिर्द होती है; हम उससे घिरे हैं। वह अचानक कब आ जाएगी, हमें इसका पता नहीं है। उस चिड़िया की तरह वह चुपचाप आनेवाली है। कवि मृत्यु के संबंध में इसी कविता में लिखते हैं—

> वह आएगी/ जैसी आती है धूप
> जैसे बससता है मेघ/ जैसे खिलखिलाती है

सपने में एक नन्ही बच्ची
जैसे अँधेरे में भयातुर होता/ है खाली घर।[6]

अर्थात् मृत्यु चुपचाप दबे पाँव आनेवाली है। उसका किसी को आभास तक नहीं होगा। हम अपने रोजमर्रा के काम में इतने व्यस्त हैं कि हमें जीवन के संबंध में सोचने के लिए समय नहीं है। किंतु हमें अपने जीवन के संबंध में सोचना होगा, अन्यथा हमारा जीवन समाप्त होगा, फिर भी हमें पता नहीं चलेगा। धूप जिस सहजता से खिलती है, मेघ जिस तरह धमधम बसरते हैं, एक नन्हे बच्चे की हँसी जिस प्रकार की होती है, उसी तरह अत्यंत सहजता से वह आएगी और हमें ले जाएगी। अत: हमें चाहिए कि हम इस जीवन को आनंद से व्यतीत करें। कवि ने मृत्यु को जीवन का समापन मानने की बजाय नए जीवन का आरंभ माना है। उन्होंने लिखा है–'मरना जीने का समापन नहीं है। अकसर हम जीते-मरते साथ-साथ हैं। हम जीवन में आगे बढ़ते हैं, पर मृत्यु की ही ओर, भले हमें ऐसा लगता न हो। जीने की प्रक्रिया में ही हम बहुत सारा छोड़ते-गँवाते, नष्ठ करते चलते हैं। बहुत कुछ है, जो बीतता जाता है।'[7] स्पष्ट है कि कवि मृत्यु को जीवन का समापन मानने की अपेक्षा इस बात पर जोर देते हैं कि हम जीते-मरते एक साथ ही हैं। अपने जीवन में आगे बढ़ते हैं, अर्थात् हम धीरे-धीरे मृत्यु के समीप पहुँच रहे हैं। अपने जीवन में अनेक संघर्षों में हम बहुत कुछ प्राप्त करने के साथ बहुत कुछ गँवाते भी है। यह गँवाना भी एक मृत्यु से साक्षात्कार करना ही है। इतना होते हुए भी कवि जीवन में उत्सव को महत्त्व देता है। मृत्यु पर रोने की अपेक्षा कवि मृत्यु को उत्सव की तरह मनाने के पक्ष में हैं। 'अंत का समय आरंभ का समय' शीर्षक कविता में वे लिखते हैं–

यह अभिषेक का समय है
जीने के धूल-धक्कड़
मैल-कलुष को तजने का/ समय।[8]

कवि मृत्यु का स्वागत करते हुए उसका रोना रोने की अपेक्षा इस समय को अभिषेक का समय कहते हैं। अपने जीवन के सभी कर्मों एवं कुकर्मों से विदा लेने का समय होने के कारण मृत्यु से डरने की अपेक्षा उसका स्वागत करना आवश्यक मानते हैं। अपने जीवन में जो बुरी घटनाएँ घटित हुई हैं, उनको तजने का यह समय है। मृत्यु के प्रति नकारात्मक सोच रखना उचित नहीं है। बुरा छोड़कर नया ग्रहण करने का समय होने के कारण उसका स्वागत करना चाहिए। अत: कवि ने अंत के समय को जीवन में दु:खदायी नहीं माना है, इसके विपरीत पुराने को त्यागने का समय स्वीकार किया है। वे इसी कवित में लिखते हैं–

समय हवा की तरह हलके होने का
जो कुछ किया धरा
उसे ज्यों का त्यों/ उतारने का/ समय।[9]

स्पष्ट है कि मृत्यु का समय अपने पर स्थित विभिन्न बोझों से हल्का होने का समय है। हमने जो कुछ अच्छा-बुरा किया है, उसे यहीं छोड़कर अपनी जिम्मेदारी से मुक्त होने का समय है। इसी कारण कवि मृत्यु के अंतिम क्षण को उत्सव की तरह मनाने के पक्ष में है। कवि मानते हैं कि मृत्यु तो नए जीवन की शुरुआत है। अत: हर मृत्यु अपने जीवन में जो अमंगल है, उसे त्यागने का समय है। उनसे मुक्त होने का समय होने के कारण उसे आनंद से व्यतीत करना आवश्यक है,

 ISSN 0975-735X

इसीलिए वे अपने अंत के समय को एक नए जीवन के आरंभ के रूप में देखते हैं।

कवि की इन कविताओं में अवसाद का भाव दिखाई देता है। जिसमें प्रमुखतः अनुपस्थिति, भय, दु:ख आदि भाव उसके साथ प्रयुक्त हुए हैं। यह एक वास्तविक तथ्य है कि मृत्यु की कल्पना हममें भय और अवसाद का भाव भर देती है। किंतु इससे डरकर मृत्यु से पीछा नहीं छुड़ाया जा सकता। हम हर पल मृत्यु की ओर बढ़ रहे हैं, यह बोध हमें होना आवश्यक है। मृत्यु के भाव से निर्मित अवसाद को कवि ने इस प्रकार चित्रित किया है–

> फिर एक दिन धूप की तरह वह आएगी
> गरमाहट की तरह शरीर पर छा जाएगी
> एक बच्चे को उँगली पकड़कर ले जाते हैं
> जैसे सुबह-सुबह घुमाने
> वैसे अपने साथ ले जाएगी।[10]

मृत्युजनित अवसाद का भाव यहाँ विद्यमान है, जो यह प्रतिपादित करता है कि हमें एक दिन इस संसार को छोड़कर जाना है। अपनी कविता पर स्थित अवसाद के प्रभाव को लक्षित करते हुए उन्होंने लिखा है, 'मेरी कविता अवसाद के रेशों से बुनी गई है। एक लगभग अकारण अवसाद की छाया में जीवनभर कविता लिखना विचित्र भले है, सच है। कुछ इस हद तक कि कभी-कभी यहाँ तक लगता है कि कविता शब्दों से नहीं बुनियादी तौर पर इस अवसाद से लिखता हूँ।'[11] अर्थात् उनकी कविता पर अवसाद का काफी प्रभाव रह चुका है। इसका प्रमुख कारण जीवन में फिर से वापस न लौट पाने की हताशा और जीवन से प्रगाढ़ प्रेम है।

कवि मृत्यु को आसक्ति का रूपक बना देता है। वह मृत्यु को मानव-जीवन के पास ले आता है। कवि मृत्युबोध से संबंधित कविताओं का एक पक्ष यह है कि वह मनुष्य-जीवन के प्रेम, आसक्ति एवं जिजीविषा के साथ गहरी जुड़ी हुई हैं। कवि इस तथ्य से परिचित है कि मृत्यु तो अनिवार्य है, फिर भी मृत्यु को जीवन का उत्सव मानकर जीवन को उत्सव की तरह मनाना चाहिए। यहाँ जीवन और मृत्यु अर्थात् उपस्थिति एवं अनुपस्थिति का गहरा द्वंद्व मिलता है। अनुपस्थिति अर्थात् मृत्यु उन्हें शुरू से विचलित करती रही है। किंतु उन्होंने इसे जीवन से जोड़कर देखा है–

> तुम उस मोड़ पर नहीं हो
> उस बेंच पर तुम नहीं बैठी हो
> उस बस स्टॉप पर तुम इंतजार नहीं कर रही हो
> बरसते पानी में छाते के नीचे तुम नहीं जा रही हो
> इतने सारे नहियों में
> फिर किसका होना अंकित है?[12]

प्रस्तुत कविता में कवि ने अपनी प्रेमिका की अनुपस्थिति का एहसास कराते हुए उसमें नहीं में होने की कल्पना की है। वह यह जानता है कि प्रेमिका वहाँ नहीं है। न वह किसी बेंच पर बैठी होगी, न किसी बस स्टाप पर वह उसका इंतजार कर रही होगी। बरसात का मौसम होने से न वह कहीं छाता लेकर जा रही होगी। अर्थात् पूरी कविता में अनुपस्थिति का बोध होता है, परंतु इस नहीं में भी कवि की स्मृति में उसके होने का एहसास जीवित है। अतः कह सकते हैं कि अशोक

वाजपेयी की कविताओं में मृत्यु के आलोक में अवसाद, विषाद, भय, उपस्थिति-अनुपस्थिति इत्यादि भावों का चित्रण हुआ है। इस प्रसंग में यह तथ्य भी ध्यातव्य है कि आलोच्य कवि की प्रेमभाव से संबंधित कविताओं के समान सशक्त चित्रण मृत्युबोध से संबंधित कविताओं का हुआ है। वे इसे मानव-जीवन का शाश्वत सत्य मानते हैं जो मनुष्य-जीवन को व्यापकता प्रदान करता है।

अशोक वाजपेयी की मृत्युविषयक कविता का एक पक्ष मनुष्य की अनिवार्य नियति से उसका साक्षात्कार कराना भी है। नियति प्रत्येक मनुष्य के जीवन का एक अत्यंत निजी अंग है, परंतु वर्तमान समय में उसके इस निजीपन को सार्वजनिक दबाव ने इतना आक्रांत कर दिया है कि हमारे जीवन के छोटे-छोटे सच दबाएँ जा रहे हैं। मृत्यु भी हमारे जीवन का निजी सच है, जो हमारे जीवन को निर्धारित करता है। कवि इस सच को बचाना चाहता है। इस संबंध में प्रकाश लिखते हैं, 'अशोक ने माँ, बहन आदि पारिवारिक सदस्यों की मृत्यु पर तो कविताएँ लिखी ही हैं, सार्वजनिक जीवन में संपर्क में रहे कुछ साधारण लोगों जैसे ड्राइवर सरनामसिंह की मृत्यु पर भी कविताएँ लिखी हैं। आलोच्य कवि ने संगीतज्ञ कुमार गंधर्व पर भी इक्कीस बंदों में 'बहुरि अकेला' शीर्षक से लंबी कविता लिखी है, जो हिंदी का सबसे दीर्घ शोकगीत है।'[13] उनकी मृत्युबोध से संबंधित इन कविताओं का शिखर 'बहुरि अकेला' ही है। कुमार गंधर्व उनके आत्मीयजनों में एक थे। उनका अचानक जाना कवि के लिए किसी सदमे से कम नहीं था। उनका जाना कवि के लिए मात्र एक सार्वजनिक अवसान न होकर निजी क्षति भी थी। 'बहुरि अकेला' शीर्षक कविता में कवि लिखते हैं-

एक जन्म ही नहीं फूँकता
एक जीवन की ही नहीं होती अंत्येष्टि
कुछ और जन्म भी झुलसते हैं
कुछ और जीवन भी सरकते हैं
अंत की ओर।[14]

'बहुरि अकेला' हिंदी का महत्त्वपूर्ण शोकगीत है, निराला के 'सरोज स्मृति' के पश्चात् इसे महत्त्वपूर्ण माना जाता है। मृत्यु जैसे विषय पर दार्शनिक रूप से चिंतन प्रस्तुत करना अलग है और अपने आत्मीय की मृत्यु से उत्पन्न संवेदना से प्रेरित होकर काव्य-सृजन करना अलग है। अशोक वाजपेयी की कविताओं में मृत्युबोध के प्रति जो सघन आस्था दिखाई देती है, इसका कारण उनका जीवन से प्रेम और मृत्यु में विश्वास है। यहाँ यह नहीं भूलना चाहिए कि मृत्यु मनुष्य-जीवन का शाश्वत सत्य है। जहाँ मृत्यु का विस्मरण हमारे अमर्याद आचरण को बढ़ावा देता है, जो हमें भोगवादी सभ्यता की ओर लेकर जाता है, वहीं मृत्युबोध हमारे जीवन को संतुलित करता है। कवि की ये तमाम कविताएँ जीवन का अर्थ प्रतिपादित करते हुए अच्छा जीवन जीने की प्रेरणा देती हैं। इन कविताओं का उद्देश्य उपदेश देना अथवा वैराग्य भाव को जाग्रत करना नहीं, बल्कि जीवन की सार्थकता को प्रतिपादित करते हुए उस सार्थकता की निरंतर तलाश करना है। कवि ने मृत्यु जैसे विषय को कलात्मक रूप से व्यक्त करते हुए हमारे जीवन को समृद्ध बनाने का महत् कार्य किया है।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि अशोक वाजपेयी की कविताओं में प्रेम और मृत्यु पर गहन चिंतन प्रस्तुत हुआ है। वे प्रेम को आसक्ति का रूप मानते हैं और अवसाद को मृत्यु का। उनकी

अधिकांश प्रेम-कविताओं पर इस अवसाद की छाया दिखाई देती है तथा अवसाद के भाव से संबंधित कविता गहरी जिजीविषा एवं जीवनासक्ति के भाव से संपृक्त है। उन्होंने मृत्यु की शाश्वता प्रतिपादित करते हुए मनुष्य-जीवन की सार्थकता एवं आसक्ति को चित्रित किया है। वे मृत्यु को सकारात्मक रूप से ग्रहण करते हुए उसका स्वागत करते हैं तथा प्रतिपादित करते हैं कि नश्वरता के कारण ही हमारे जीवन की एहमियत है। उनकी 'बहुरि अकेला' रचना इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है, जो यह संदेश देती है कि एक की मृत्यु कैसे दूसरे को दुःख पहुँचाती है? एक का जाना कैसे दूसरे का भी कुछ न कुछ ले जाता है? एक के साथ दूसरे का क्षरण और लोप का भीषण अनुभव यह कविता करती है।

अशोक वाजपेयी की अन्य कविताओं की तरह उनकी मृत्युबोध से संबंधित कविताएँ न सिर्फ हमें जीवन एवं मृत्यु के प्रति आस्था प्रकट करती हैं, अपितु हमें सोचने के लिए बाध्य भी करती हैं। उनकी ये कविताएँ एक ओर पाठकों का नियति से साक्षात्कार कराती हैं, वहीं मनुष्य-जीवन में निहित विभिन्न संभावनाओं की तलाश के लिए गुँजाइश रखती हैं। उन्होंने मृत्यु के माध्यम से मनुष्य की नियति को प्रत्यक्ष किया है। मनुष्य-जीवन के अन्य छोटे-छोटे सचों की तरह मृत्यु भी एक महत्त्वपूर्ण सच है।

संदर्भ

1. कविता का अशोक पर्व, संपा॰ प्रकाश, पृ॰ 106
2. जो नहीं है, अशोक वाजपेयी, पृ॰ 13
3. जो नहीं है, अशोक वाजपेयी, पृ॰ 07
4. कविता का अशोक पर्व, संपा॰ प्रकाश, पृ॰ 103
5. तत्पुरुष, अशोक वाजपेयी, पृ॰ 86
6. तत्पुरुष, अशोक वाजपेयी, पृ॰ 86
7. जो नहीं है, अशोक वाजपेयी, पृ॰ 11
8. बहुरि अकेला, अशोक वाजपेयी, पृ॰ 60
9. बहुरि अकेला, अशोक वाजपेयी, पृ॰ 60
10. कहीं नहीं वहीं, अशोक वाजपेयी, पृ॰ 38
11. कविता का अशोक पर्व, संपा॰ प्रकाश, पृ॰ 104
12. दुःख चिट्ठीरसा है, अशोक वाजपेयी, पृ॰123
13. कविता का अशोक पर्व, संपा॰ प्रकाश, पृ॰ 111
14. बहुरि अकेला, अशोक वाजपेयी, पृ॰ 40

मो॰ 9763602304

कबीर की क्रांतिधर्मिता और सांस्कृतिक प्रवाह

डॉ॰ माला मिश्र
हिंदी और पत्रकारिता विभाग
अदिति महाविद्यालय (दिल्ली विश्वविद्यालय)

आज समाज, देश और विश्व के देशों में बढ़ती हुई भुखमरी, अशिक्षा, बेरोजगारी, स्वार्थलोलुपता, अनेकता आदि समस्याओं से सारी मानवजाति चिंतित है। वास्तव में ये ऐसी मूलभूत समस्याएँ हैं, जिनसे निकलकर ही हत्या, लूट, मार-काट, आतंकवाद, धार्मिक विद्वेष, युद्धों की विभीषिका आदि समस्याओं ने जन्म लिया है। इसप्रकार आज इन समस्याओं ने पूरे विश्व की मानवजाति को अपनी गिरफ्त में ले लिया है। ऐसी भयावह परिस्थिति में समाज को सही राह दिखाने के लिए आज कबीरदासजी जैसे युगप्रवर्तक की आवश्यकता है।

हिंदी साहित्य में कबीर का व्यक्तित्व अनुपम है। गोस्वामी तुलसीदास को छोड़कर इतना महिमामंडित व्यक्तित्व कबीर के सिवा अन्य किसी का नहीं है। कबीर की उत्पत्ति के संबंध में अनेक किंवदंतियाँ हैं। कुछ लोगों के अनुसार वे जगद्‌गुरु रामानंद स्वामी के आशीर्वाद से काशी की एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। ब्राह्मणी उस नवजात शिशु को लहरतारा ताल के पास फेंक आई। उसे नीरू नाम का जुलाहा अपने घर ले आया। उसी ने उसका पालन-पोषण किया। बाद में यही बालक कबीर कहलाया। कतिपय कबीरपंथियों की मान्यता है कि कबीर की उत्पत्ति काशी में लहरतारा तालाब में उत्पन्न कमल के मनोहर पुष्प के ऊपर बालक के रूप में हुई। एक प्राचीन ग्रंथ के अनुसार किसी योगी के औरस तथा प्रतीति नामक देवाङ्‌गना के गर्भ से भक्तराज प्रह्लाद ही संवत् 1455 ज्येष्ठ शुक्ल 15 को कबीर के रूप में प्रकट हुए थे।

कुछ लोगों का कहना है कि वे जन्म से मुसलमान थे और युवावस्था में स्वामी रामानंद के प्रभाव से उन्हें हिंदूधर्म की बातें मालूम हुईं। एक दिन, एक पहर रात रहते ही कबीर पंचगंगा घाट की सीढ़ियों पर गिर पड़े। रामानंद जी गंगास्नान करने के लिए सीढ़ियाँ उतर रहे थे कि तभी उनका पैर कबीर के शरीर पर पड़ गया। उनके मुख से तत्काल 'राम-राम' शब्द निकल पड़ा। उसी राम को कबीर ने दीक्षा-मंत्र मान लिया और रामानंद जी को अपना गुरु स्वीकार कर लिया। कबीर के ही शब्दों में—'कासी में हम प्रकट भये हैं, रामानंद चेताए'।[1]

अन्य जनश्रुतियों से ज्ञात होता है कि कबीर ने हिंदू-मुसलमान का भेद मिटाकर हिंदू-भक्तों तथा मुसलमान फकीरों का सत्संग किया और दोनों की अच्छी बातों को हृदयंगम कर लिया। जनश्रुति के अनुसार उन्हें एक पुत्र कमाल तथा पुत्री कमाली थी। इतने लोगों की परवरिश करने के लिए उन्हें अपने करघे पर काफी काम करना पड़ता था। 119 वर्ष की अवस्था में उन्होंने मगहर में देह-त्याग किया।

कबीर ने वास्तविक सत्य को समझ लिया था। इसलिए वे उस सत्य के विपरीत आचरण

 ISSN 0975-735X

करनेवालों को फटकार कर सही रास्ते पर लाना चाहते थे। कबीरदास की इस प्रवृत्ति का समर्थन करते हुए डॉ॰ गोविंद त्रिगुणायत ने अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है, 'कबीर का जीवन सत्य के विविध प्रयोग विविध धर्मों, पद्धतियों के आधार पर किए थे। इसीलिए उनकी अभिव्यक्ति एवं रहस्यात्मक अनुभूतियों पर उन सबका प्रभाव परिलक्षित होता है। कहीं-कहीं उनमें सूफियों के प्रेम-भरे मार्ग का निरूपण मिलता है। कहीं पर हठयोगियों के पारिभाषिक शब्दों एवं प्रतिक्रियाओ का रहस्यात्मक वर्णन है। कहीं सिद्धांतों की संधा भाषा की शैली का अनुकरण करते हैं। कहीं उपनिषदों के ढंग पर रहस्यात्मक शैली में तत्त्व का प्रतिमान।[2]

इस प्रकार अपनी लोकचेतना की प्रवृत्ति के अनुसार कबीर ने अपने समय के प्रचलित नाना प्रकार के सप्रदायों का खंडन किया था। उनकी रचनाओं पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट है कि उन्होंने विभिन्न धार्मिक संप्रदायों की कमियों को जग-जाहिर कर आलोचनात्मक रूप अपनाते हुए उनमें सुधार के भी उपाय बताए थे। उन्हीं को उद्धृत करके कबीर के खंडन-मंडन-संबंधी चेतना का पता लगाया जा सकता है। कबीर हिंदू, मुसलमानों में कोई भेद नहीं मानते थे। इसीलिए उन्होंने दोनों धर्मों के धर्मावलंबियों के भ्रम को दूर करने के लिए उपदेश दिए थे। मुसलमानों के हज, काबा जाने, रोजा-नमाज, अजान, मस्जिद की ओर उन्होंने दृष्टिपात किया है। अजान लगानेवाले परंतु आचरण अच्छे न होने वाले मुसलमानों को देखकर वे कैसा व्यंग्य करते हैं—

काँकर पाथर जोरि के, मस्जिद लई बनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय।[3]

इसी क्रम में कबीर साहब कहते हैं कि खुदा बहरा तो है नहीं, जिसके लिए जोर-जोर से चिल्लाते हो, वह तो तुम्हारे ही अंदर निवास करता है। फिर व्यर्थ क्यों बाह्याचरण करते हो—

मुल्ला मुनारे क्या चढ़िहिं साई न बहरा होई।
जा करन तू बाँग देहि दिल की भीतर जोई।[4]

महात्मा कबीर एक अच्छे विचारक थे। उन्हें वही बात प्रिय एवं सुसंगत लगती थी, जो तर्क की कसौटी पर कसी जा सके। जब परमेश्वर ने सभी जीवों को बनाया है, तो एक जीव को मारकर भगवान का कृपापात्र कैसे बना जा सकता है। दिनभर रोजा रखना और रात को गाय को मारकर खाते खुदा को खुशी कैसे हो सकती है?

दिन में रोजा रखत हैं, रात हनत हैं गाय।
यह तो खूब वह बंदगी कैसे खुशी खुदाय।[5]

कबीरदास बाह्याडंबर-शून्य एवं सत्य के प्रति वास्तविकता से पूर्ण थे। उनकी कथनी और करनी में जरा भी अंतर नहीं मिलता है। उनकी लोकचेतना धार्मिक दृष्टि से इतनी प्रबल एवं सत्यान्वेषी थी कि धर्म का कोना-कोना झाँककर आई। उनकी दृष्टि जहाँ भी धर्मों में विकार दिखाई दिया, वे उसका खंडन करने में तनिक भी चूके नहीं। वे जो कहते, वही सोचते और वही करते भी थे। इसलिए उन्होंने नि:संकोच नाना प्रकार के संप्रदायों का खंडन करके उन्हें सन्मार्ग पर आने के लिए अथक् प्रयास किया। जब उन्होंने समझा कि अमुक व्यक्ति अज्ञानतावश ऐसा आचरण करता है, जो सत्य के प्रति विपरीत है, तो उसके प्रति दयाभाव रखते हुए व्यंग्यात्मक भाषा में अपनी बात कही, जिनको किसी संप्रदाय-विशेष का अच्छा ज्ञाता होते हुए भी पथ-भ्रष्ट पाया, उनको डाँट-फटकार कर सीधे रास्ते पर लाने का प्रयास किया। फलस्वरूप पंडितों एवं

मुल्लाओं के लिए कही गई उनकी उक्तियाँ अधिकतर व्यंग्यात्मक हैं।

'महात्मा कबीर का सारा जीवन आध्यात्म और अनुभूति का विवेचन है। उनका सारा जीवन साधना में ही बीता था। उनकी वह साधना अनुभूति के आधार पर ही टिकी हुई है।'[6] कबीर ने कहा है–'कहत कबीर तरक दुई साधे, तिनकी गति है मोटी।'[7]

कबीर का अनुभूतिमूलक सारा दर्शन अद्वैत पर टिका हुआ है। उनका अद्वैतवाद है–'जाए हम सोई हम ही में नीर मिले जल एक हुआ।'[8] तथा 'हम सब मांहि सकल हम पै और दूसरा नाहीं।'[9]

कबीर जीवन के क्षेत्र में बुद्धिवादिता के समर्थक थे। उनका सहज धर्म धर्मात्माओं की प्रतिक्रिया के रूप में उदित हुआ था। कबीर के शब्दों में–'एक न भूला दोय न भूला सब संसार।'[10] कभी-कभी तो धार्मिक बाह्याचारों के प्रचारकों पर वे इतना अधिक क्रुद्ध हो जाते हैं कि कटूक्तियों की वर्षा करने लगते हैं। हिंदू पंडित के प्रति–'पांडे न करसि वाद विवाद।'[11] मुसलमानों के प्रति–'मीया तुमसो बोल्या नांहि वणि जावैं।'[12] कबीर साहब का लक्ष्य इन्हीं धार्मिक भूलों का सुधार करना था, जिसके लिए उनकी चेतना स्पष्ट लक्षित होती दिखाई देती है।

समाज में धर्म के ठेकेदार के रूप में जो पंडित और मुल्ला थे, जो अपने ज्ञान के द्वारा धर्म के क्षेत्र में पथभ्रष्ट थे, समाज में द्वेष-भावना और सांप्रदायिकता का विष फैला रहे थे, उनके विष को समाज में फैलते हुए कबीर ने देखा था। कबीर वाणी की गड़गड़ाहट बिजली की तरह हुई, जिसकी आवाज ने पाखंडियों, मुल्लाओं के कानों को बेध दिया। यह सब इन्हें नागवार लगा। लगता क्यों नहीं? कबीर ने तो सीधे धर्म के ठेकेदारों की रोजी-रोटी और ऐश आराम पर लात मारी थी। मंदिर की पंडिताई को रौंदा था और मस्जिद के बहरेपन को जगजाहिर किया था। इंसानी ताकत को तमाशाई बनानेवाले धर्म के पाखंडियों को कबीर साहब ने सरेआम चौराहे पर नंगा कर दिया था। हिंदुओं और मुसलमानों में प्रचलित धार्मिक बाह्याचारों, रोजा, नमाज, तीर्थ, व्रत आदि की बुराइयों की जोरदार आलोचना करते हुए वे दोनों को अपने कर्मों के विरोधाभासों के लिए फटकारते हुए कहते हैं–

संतों, राह दोउ हम दीठा।
हिंदू तुरक हटा नांहि माने स्वाद सवन को मीठा।[13]

तीर्थ-व्रत आदि को वे व्यर्थ बताते हुए ढकोसला कहते हैं–'मन मैला तीरथ न्हावैं नरक न बध्या जाई।'[14] कबीर ने इसी क्रम में तीर्थस्नान जाने व स्नान करने की व्यर्थता को सिद्ध करते हुए कहा है कि जिसके मन में कपट है, दंभ है, उसकी गति नहीं हो सकती है, साथ ही उसे राम के संबंध में ज्ञान भी नहीं हो सकता।

अंतरि में जे तीरथ न्हावै तिसु बैकुंठ न जाना।
लोक पतीणै कहु न होवै नाहीं राम अवाना।[15]

उन्होंने तीर्थ-व्रत की व्यर्थता को सिद्ध करते हुए कहा कि जब हमारा मन ही साफ नहीं रहेगा तब तीर्थ-व्रत करने से कोई लाभ नहीं होने वाला है। वास्तविकता तो यह है कि तीर्थस्थल तो हमारे घर के भीतर ही है। जहाँ ईश्वर निवास करता है। हमारा मन और काया किसी काशी से कम नहीं है। वे काशी के जल के संबंध में व्यंग्य करते हुए कहते हैं कि यदि काशी का जल इतना पवित्र है, तो उसमें रहनेवाले मेढक क्यों नहीं जीवनमुक्त हो जाते हैं।

कबीर ने हिंदुओं द्वारा किए जानेवाले दाहक्रिया उनके निमित्त किए जाने वले शुद्धिकर्म को

 ISSN 0975-735X

भी व्यर्थ का खर्च बताया है। उनका कहना है कि जिसके प्रति जीते जी श्रद्धाभाव तक नहीं प्रदर्शित किया उसकी श्राद्ध क्रिया करने से क्या लाभ होगा। जिस पिता को डंडे से मारकर बात का प्रति उत्तर देते थे, उसके मरने के बाद उसे गंगा ले जाने अथवा पिंडदान देने से क्या लाभ। इस संदर्भ में कबीर की एक रचना देखी जा सकती है–

जारि-वारि आवै देहा, मुवाँ पीछे प्रीति सनेहा।
जीवन पितहिं मारय डंडा, मुवां पित्रहिं ले धावे गंगा।
जीवन पित्र कुंणीले अपराध, मूवा पीछे देहि सराध।[16]

कबीर ने मूर्तिपूजा, तीर्थटन, जप, तप आदि को धार्मिक ढकोसला सिद्ध किया है। उसकी व्यर्थता बतलाते हुए कबीर ने पंडितों को कई प्रकार से उपदेश दिया है–

जप तप दीसै थोथरा, तीरथ ब्रत बेलास।
सुवै सैवल से किया यौ जब चाल्या निरास।
सेवै सालिग्राम कूँ मन की भ्रांति न जाई।
सीतलता सुपनै न हीं, दिन-दिनन अधकी लाई।[17]

इसी भावना में जप, तप, पूजा की व्यर्थता बताते हुए कबीर ने कहा है कि जिसके मन में दूसरा भाव है, तो ऐसे जप, तप से क्या फायदा–'क्या जप, क्या तप क्या व्रत पूजा, जाके हृदै भाव है दूजा।'[18] कबीर उपदेश देते हैं कि यांत्रिक रूप से जप, तप, तीर्थ आदि से कोई लाभ नहीं, जब तक मन और इंद्रियों को अपने वश में न कर लिया जाए। यथा–

मन मथुरा, दिल द्वारिका, काया काशी जांणि।
दशवाँ द्वारा देहुरा, तामै जोति पिछांणि।[19]

तीर्थ के संबंध में आडंबर का विरोध करते हुए कहते हैं कि तीर्थ, व्रत सब व्यर्थ की चीज हैं। पाखंडियों ने साधारण जनमानस पर तरह-तरह के अत्याचार किए। कबीर ने तीर्थ-व्रत से किसी लाभ की कामना को व्यर्थ बताया है। उनकी यह दृष्टि व्यावहारिक रूप को देखकर बनी थी। उन्होंने स्पष्ट कहा है–

तीरथ में तो सब पानी है, होवे नहीं कछु अन्हाय देखा।
प्रतिमा सकल तो जड़ है, भाई बोले नहीं बोलाय, देखा।
पुरान कौशल सबै बात है, या घट का परदा खोल देखा।
अनुभव की बात कबीर कहें, यह सब है झूठी पोल देखा।[20]

कबीर प्रतिमा-पूजन के घोर विरोधी थे। उन्होंने लोगों को चेताया और कहा कि परमात्मा का कोई आकार नहीं, जिसके लिए देशकाल का कोई आधार आवश्यक नहीं, उसकी मूर्ति कैसी। इस प्रकार जगह-जगह पर उन्होंने मूर्तिपूजा के प्रति अपनी अरुचि प्रदर्शित की है–

हम भी पाहन पूजते होते, बन के रोझ।
सतगुरु की किरपा भई, डार्‌या सिर थै बोझ।[21]

जिसका आकार नहीं उसकी मूर्ति का सहारा लेकर उसकी प्राप्ति का प्रयत्न ऐसा ही है, जैसे झूठ के सहारे सच तक पहुँचने का प्रयत्न। असत्य से मन की भ्राँति बढ़ती है, घटती नहीं। उससे जिज्ञासा की तृप्ति होना तो असंभव है ही। मूर्तिपूजा में भगवान को जो भोग लगाने की हिंदूधर्म में प्रथा प्रचलित है, उसकी भर्त्सना करते हुए हिंदुओं की जगहँसाई की है–

लाडू लावर लापसी पूजै चढ़ै अपार।
पूजि पूजारा लै चला दे मुरति के मुवद्वार।[22]

संत नामदेव ने भी ऐसे ही विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि हिंदुत्व एवं इस्लाम दोनों ही अधूरे धर्म हैं, सबको उस सूक्ष्म आरम धर्म तक पहुँचना चाहिए, जहाँ पहुँचकर मंदिर और मस्जिद दोनों ही व्यर्थ हो जाते हैं–

हिंदू पूजै देहुरा, मुसलमान मसीत।
नामा सोई सेविया, जहँ देहुरा न मसीत।[23]

अंधविश्वास की तरफ संकेत करते हुए वे आगे कहते हैं–

पाहन पूजै हरि मिलै, तो मैं पूंजूँ पहार।
ताते यह चाकी भली, पीस खाय संसार।[24]

उन्होंने मिथ्या कर्मकांड का भी विरोध किया था। उनका अटल विश्वास था कि–'कूणी करनी राम न पावैं, साँच टिके निज रूप दिखावै।'[25]

संत दादूदयाल साहब की दृष्टि में हिंदू, मुसलमान सब एक ही परमात्मा की संतान हैं–

हिंदू तुरक न जान्यो दोई।
साई सवन का सोई हैरे और न दूजा कोई।[26]

संत रैदास जी ने भी अपनी विचारधारा व्यक्त करते हुए कहा है कि राम और करीम की, वेद और कुरान की और धार्मिक बाह्याडंबर करना व्यर्थ है। सूफी कवि जायसी ने मत-मतांतर, ऊँच-नीच, हिंदू-मुसलमान आदि भेद का विरोध किया है। वे सभी धर्मों को परमात्मा तक पहुँचाने का मार्ग मानते हैं। उन्होंने कहा है–'विधना के मारग हैं, ऐसे, सरग नखत तन, रोवां जैसे।'[27]

कबीर की मान्यता है कि भगवान की प्राप्ति, जो प्रत्येक धर्म का लक्ष्य है, बिना हृदय की शुद्धता के नहीं हो सकती। उन्होंने स्पष्ट घोषणा की है–'हरि न मिले बिना हिरदै सूध।'[28]

उनकी रचनाओं में भगवान की शाखा में जाने के उपदेश भरे पड़े हैं। गीता के समान एक स्थान पर कबीरदास कहते हैं–मनुष्यों, मन से समस्त भ्रमों को त्यागकर केवल राम की शरण में जाओ और उसका जप करो। और अटल विश्वास है कि–'भाव भगति सूँ हरि अराधा, जन्म मरन की मिटी न साधा।'[29] कबीर ने अर्चन और उपासना के लिए लोक को चेताते हुए कहा है कि किसी प्रकार के बाह्याचार की जरूरत नहीं। अगर पूजा की चौकी देना है तो सच्चे शील की देनी चाहिए–'साच सील को चौका दीजै, भावभगति की सेवा कीजै।'[30]

हिंदू और मुसलमान तथा अन्य संप्रदाय के लोगों एवं सामान्य जनता को उपदेश देते हुए उन्होंने धन, धरती, जोड़ना को संतोषी-वृत्ति के विरुद्ध बताया है–

काहे कूं मीत बनाउ टाटी, का जाणु कहं परिहै माटी।
कहै कबीर गरब न कीजै, चेता सन सेटी-सेटी भुई लीजै।[31]

कबीर के समय सभी धर्मवाले अपना-अपना ढाई चावल पकाते हुए वास्तविकता से बहुत दूर चले गए थे। कबीर ने सत्य को ग्रहण करते हुए तथा भ्रम-असत्य का खंडन करके सभी को एक ही मार्ग पर चलने का उपदेश दिया। वे स्वयं ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने अपनी चेतना-शक्ति से सफलता प्राप्त की थी, इसके लिए दोनों धर्मों के दोषों का खंडन करके दोनों को सही रास्ते पर लाने का प्रयास किया था। उन्होंने कहा है कि अन्य सब तो धोखा और भ्रम है, केवल राम-नाम

 ISSN 0975-735X

की आराधना करनी चाहिए। कबीर की धार्मिक दृष्टि और लोकजागरण का कार्य उनकी लोकचेतना का प्रतिफल है। सहज मानवीय गुणों की स्थापना उन्होंने धर्मांधता की निंदा करके की है। संसाररूपी भवसागर में पड़कर इधर-उधर भटक रहे भ्रमित जनसमुदाय को राम का ही भजन करने को कहा है–'कबीर एक राम जपहु रे, हिंदू तुरक न कोई।'[32] उसी से सबका उद्धार होगा, ऐसा संदेश देते हुए कबीर की निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

अंजन अलप निरंजन सार, यहै चीन्हि नर करहु विचार।
जोग ध्यान तब सबै विकार, कहै कबीर मेरे राम अधार।[33]

उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि यदि गंगातट पर ही अपना निवास बना लें और नित्य उसके निर्मल पानी का पान करें, फिर भी मुक्ति ईश्वर की भक्ति करने, उसमें रमने से ही हो सकती है अन्यथा नहीं–

गंगा तीर जु घर करहिं, पीवहिं निर्मल नीर।
बिनु हरि भगत न मुकतिं होई यो कहि रमै कबीर।[34]

कबीर ने अपनी मर्मस्पर्शी वाणी द्वारा तत्कालीन धार्मिक, पाखंडों, कुरीतियों, बाह्याचारों, अंधविश्वासों को दूर करके जनसाधारण को सरल जीवन, सदाचार, सात्त्विक व्यवहार, पारस्परिक एकता आदि की ओर उन्मुख करने का सराहनीय कार्य किया है।

सामाजिक, धार्मिक, विद्रूपताओं पर कबीर का आक्रमण

कबीर की चेतना मूलत: आध्यात्मिक थी। वह स्वभाव से संत थे, किंतु कर्म से साधक और सुधारक। वह न समझौतावादी थे, न पलायनवादी। वह सामाजिक वैषम्य से क्षुब्ध थे। दलित और शोषितवर्ग के प्रति उनमें गहरी सहानुभूति थी। समाज-कल्याण उनका लक्ष्य था। उनकी गहन अनुभूति ही अभिव्यक्ति का आधार है। इसलिए उनकी वाणी में समाज के विविध चित्र हैं। उनमें गहन सत्य ही मुखर हुआ है।

कबीर के समय में सर्वाधिक उथल-पुथल सामाजिक जीवन में व्याप्त थी। भारतीय इतिहास में यह समय घोर राजनीतिक उथल-पुथल और संक्रांति का माना जाता है। कबीर के समय में उत्तर भारत के राजपूतवंश प्राय: नष्ट हो चुके थे। वर्ण-व्यवस्था और आश्रम-धर्म के आधार पर संघटित ब्राह्मण समाज-व्यवस्था का ढाँचा बदल गया था।

भारतीय समाज का उपेक्षित वर्ग इस्लाम की ओर आकृष्ट हो रहा था। मुसलमान विजेता और शासक के रूप में यहाँ आए थे। इसलिए निम्नवर्ग पर उनका विशेष आतंक था। इस्लाम धर्म ग्रहण करने पर निम्नवर्गीय जनता को कुछ सुविधाएँ मिल जाती थीं।

हिंदुओं में एक बार जातिच्युत और बहिष्कृत होने के बाद पुन: लौटने की गुंजाइश नहीं थी। हिंदुओं की देखा-देखी मुसलमानों में भी बाहर से आए हुए सैयदों, पठानों और यहाँ के परिवर्तित मुसलमानों ने भेदभाव बढ़ गया था। धर्म के नाम पर दोनों में (हिंदू और मुसलमान) पाखंड बढ़ रहा था। उस समय कुछ मुसलमानों में फकीरों, पीरों और मकबरों को आस्था का केंद्र बना लिया था। जिन हिंदुओं ने इस्लाम ग्रहण कर लिया था, उनकी दशा विचित्र थी। बाहर से आए मुसलमान उन्हें सम्मान नहीं देते थे और हिंदू उनसे घृणा करते थे। स्त्रियों की दशा सबसे खराब थी। पंडितों के लिए संस्कारहीन होने के कारण वे शूद्रवत् थीं और संतों और भक्तों के लिए साक्षात् माया की मूर्ति थीं। भक्तलोग उनके सतीरूप की प्रशंसा करते थे और दरबारी कवि उनके रानीरूप की।

सामान्य नारी की कोई सामाजिक मर्यादा न थी।

महाकवि कबीर मूलतः संत थे। उनकी बुद्धि सत्याग्रही और बाह्याचारों की विरोधी थी। कबीर के समय में पुरोहितों (पंडितों) के मिथ्याचारों के कारण समाज में ऊँच-नीच की भावना का प्रसार हुआ। छुआछूत की बीमारी संक्रामक रोग की तरह फैलती चली जा रही थी। इसी कारण इसका उन्होंने कड़े शब्दों में विरोध किया।

कबीर पंडितों से सीधा प्रश्न करते थे कि भला बताओ कि छूत क्या है और कहाँ से उत्पन्न हुई है? तुमने बिना सोचे-विचारे यह भावना कैसे बना ली? कबीर समाज में प्रचलित छुआछूत की भावना का उपहास करते हुए, अपनी व्यंग्यात्मक शैली में ऐसे तर्क उपस्थित करते हैं, जिनका कोई उत्तर नहीं मिलता। वे कहते हैं–'हे पंडित, तुम तथाकथित नीची जाति के घर में रखे हुए मिट्टी के पात्र और उसके जल को भी अशुद्ध मानते हो। तुम्हारा अपना घर भी जिस मिट्टी से बना है, वह भी तो अपवित्र है। इसलिए अब समझ-बूझकर जल पियो, क्योंकि सभी जगह के जल और मिट्टी अशुद्ध हैं, सारी सृष्टि में जो कुछ है, उसका संबंध मिट्टी से है। मरने पर सभी लोग मिट्टी में मिल जाते हैं। इसी मिट्टी में छप्पन करोड़ यादव और अट्ठासी हजार महर्षि मुनि विलीन हो गए। इस मिट्टी पर पग-पग पर पैगंबर भी दफनाए गए हैं। हे पंडित! उसी मिट्टी से तुम्हारे सभी बर्तनों का निर्माण होता है, केवल मिट्टी ही अशुद्ध नहीं है, वह जल भी अशुद्ध है और ग्रहण करने योग्य नहीं है, जिस जल को तुम पीते हो। नदी के जल में तमाम प्रकार के जीव (मछलियाँ, कछुए, घड़ियाल) रहते हैं। यही नहीं, सृष्टि में निवास करने वाले मृत पशु और मनुष्य इत्यादि भी उसमें फेंके जाते हैं। नदी में रहनेवाले जीव बच्चों को जन्म देते हैं। जन्म के समय रुधिर युक्त नीर निकलकर उसी जल में मिल जाता है। इसी कारण नदी का जल तो नरतुल्य अशुद्ध हो गया। जिस दूध को तुम पवित्र समझते हो, वह भी पशुओं की हड्डी से झड़कर और गुद्दे से गलकर बनता है। ऐसे दूध को शुद्ध समझकर तुम पीते हो और मिट्टी को अशुद्ध बताते हो। हे पंडित! धर्मग्रंथों के प्रमाण तुम व्यर्थ में देते हो। यह विपरीत आचरण तुम्हारे मन का भ्रम है। यह मिथ्या पाखंड तुम्हारी अपनी ही करतूतें हैं। इन सब नियमों का वेद-कुरान से कहीं से कोई संबंध नहीं है।

कबीर मानसिक विकारों के त्याग को वास्तविक पवित्रता, मानते थे। शेष अन्य कार्यों को दिखावे की श्रेणी में रखते थे। उन्होंने पाखंडी पंडितों से पूछा कि तुम वह स्थान बताओ, जो सर्वथा पवित्र है। उसी स्थान पर मैं भी भोजन करूँ। कबीर की दृष्टि में इस संसार में माता का गर्भ भी अपवित्र रहा है। पिता के संयोग को भी अपवित्र, यहाँ तक कि शिशु भी अपवित्र रहता है। कबीर कहते हैं कि मानव-जन्म की सारी प्रक्रिया अशुद्ध है। स्पष्टतः कबीर ने एक ऐसा साधनापरक भक्तिमार्ग खड़ा किया, जिसमें हिंदू और मुसलमान दोनों बिना किसी विरोध के एक साथ चल सकें। यह मार्ग ही निर्गुण मार्ग या संतमत है। कबीर की यह दृष्टि परंपरा के सारतत्वों के संग्रह से बनकर भी परंपरा से भिन्न है, इसलिए क्रांतिकारी है। कबीर अपनी साधना से इस निर्गुण ब्रह्म का साक्षात्कार कर चुके थे और इसे दूसरों तक पहुँचाना चाहते थे। इसलिए कबीर आज भी प्रासंगिक हैं। कबीर एक महान शिक्षक थे। यहाँ तक कि अपनी मृत्यु से भी कबीर ने अपने शिष्यों को विश्वबंधुत्व का सबक सिखाया।[35] सन् 1518 में जब उनकी मृत्यु हुई, तो उनके शिष्यों में इस बात पर वाद-विवाद हो गया कि उनके पार्थिव शरीर का हिंदू-परंपरा के अनुसार अंतिम संस्कार किया जाना चाहिए, या मुस्लिम-परंपरा के अनुसार उसे दफन करना चाहिए। कहा

 ISSN 0975-735X

जाता है कि कबीर एक छाया के रूप में दोनों समूहों के समक्ष प्रकट हुए। उन्होंने शिष्यों को बताया कि उनका संबंध किसी एक समूह से नहीं था; वे तो सभी के थे। उन्होंने शिष्यों के समूह को अपने शरीर से चादर हटाने का आदेश दिया। शिष्यों ने जब चादर हटाई तो उनकी आँखें विस्मय से भर गईं। जहाँ पहले कबीर का पार्थिव शरीर था, वहाँ अब केवल गुलाब की पंखुड़ियाँ थीं!

संदर्भ

1. कबीर वाङ्मय, खंड-2, डॉ॰ जयदेवसिंह, वासुदेवसिंह, पृ॰ 483
2. कबीर ग्रंथावली, डॉ॰ भगवतस्वरूप मिश्र, सोच कौ अंग, पृ॰ 99
3. कबीर ग्रंथावली, डॉ॰ भगवतस्वरूप मिश्र, पद-279
4. वही
5. कबीर ग्रंथावली, डॉ॰ भगवतस्वरूप मिश्र, मेष कौ अंग, पृ॰ 107
6. कबीर ग्रंथावली, डॉ॰ भगवतस्वरूप मिश्र, पद-139, पृ॰ 269
7. वही
8. कबीर शब्दावली, पृ॰ 83
9. कबीर शब्दावली, पृ॰ 85
10. डॉ॰ हजारीप्रसाद द्विवेदी, जनपद, वर्ग-1, अंक-1, पृ॰ 65
11. 'समाज', काशी विद्यापीठ, वर्ष-4, अंक-3, पृ॰ 446
12. कबीर, डॉ॰ राजेंद्रमोहन भटनागर, पृ॰ 32
13. कबीर ग्रंथावली, डॉ॰ भगवतस्वरूप मिश्र, पृ॰ 15
14. कबीर ग्रंथावली, डॉ॰ श्यामसुंदर दास, पृ॰ 163
15. कबीर ग्रंथावली, डॉ॰ भगवतस्वरूप मिश्र, पद-29, पृ॰ 97
16. कबीर ग्रंथावली, डॉ॰ भगवतस्वरूप मिश्र, मेष को अंग, पृ॰ 35
17. कबीर दर्शन, डॉ॰ रामजी लाल, पृ॰ 435
18. कबीर की विचारधारा, डॉ॰ गोविंद त्रिगुणायत, पृ॰ 319
19. कबीर ग्रंथावली, डॉ॰ भगवतस्वरूप मिश्र, पृ॰ 155
20. वही, पृ॰ 172
21. वही, पृ॰ 174
22. कबीर की विचारधारा, डॉ॰ गोविंद त्रिगुणायत, पृ॰ 317
23. कबीर, डॉ॰ राजेंद्रमोहन भटनागर, पृ॰ 12
24. कबीर ग्रंथावली, डॉ॰ भटनागर परिशिष्ट, पृ॰ 196
25. कबीर ग्रंथावली, डॉ॰ भटनागर परिशिष्ट, पृ॰ 184
26. कबीर साहित्य की परख, डॉ॰ परशुराम चतुर्वेदी, पृ॰ 47
27. कबीर ग्रंथावली, डॉ॰ भटनागर, पृ॰ 34-35
28. वही, परिशिष्ट, पृ॰ 212
29. कबीर ग्रंथावली, डॉ॰ भगवतस्वरूप मिश्र, मेष को अंग, पृ॰ 35
30. अभिनव भारती, पत्रिका, पृ॰ 12 पर उद्धृत
31. कबीर ग्रंथावली, डॉ॰ भटनागर, पृ॰ 41-42
32. वही, पृ॰ 32
33. वही, पृ॰ 33
34. वही, पृ॰ 41
35. कबीर, साखी सुधा, डॉ॰ वासुदेव सिंह, पृ॰ 59

शमशेरबहादुर सिंह की काव्यभाषा में बिंब-विधान

डॉ॰ अनीता रानी
राजकीय महाविद्यालय, रेवाड़ी (हरियाणा)

प्रतीक और अप्रस्तुत तो आरंभ से ही कविता की समीक्षा के प्रतिमानों के रूप में स्वीकार किए गए, अब बिंब को भी कविता के मूल्यांकन की कसौटी के रूप में स्वीकार किया जाने लगा है। आजादी से पहले तक हिंदी के समीक्षकों और आलोचकों ने बिंब को काव्य का प्राणतत्त्व नहीं माना था। आजादी के बाद कई नए संदर्भ और नए शिल्प-प्रतिमान सामने आए। छायावादी कवियों ने भी अप्रत्यक्ष रूप से शिल्प के अंग के रूप में 'चित्रतत्त्व' को स्वीकार किया था। पंतजी ने काव्यभाषा का विवेचन करते हुए चित्रभाषा के प्रयोग की बात कही। इसका अभिप्राय था कि उन्होंने बिंब को काव्य-शिल्प के अंगरूप में स्वीकार किया था। आचार्य शुक्ल ने भी बिंब को स्वीकृति दे दी थी। 'चिंतामणि' के एक निबंध में उन्होंने लिखा था, 'काव्य का काम है कल्पना में बिंब या मूर्तभावना उपस्थित करना।[1]

बिंब काव्यभाषा की तीसरी आँख है। बिंब शब्द का अर्थ है छाया, प्रतिच्छाया, अनुकृति या शब्दों के द्वारा भावांकन। बिंब अँग्रेजी के इमेज शब्द का हिंदी रूपांतर है। सी॰डी॰ लेविस ने कहा है–'The poetic image is more or less a sensuous picture in words, to some degree metaphorical, with an undernote and some human emotion, in its context but also charged with releasing into the reader a special poetic emotion or passion.' अर्थात् काव्यात्मक बिंब एक संवेदनात्मक चित्र है, जो एक सीमा तक अलंकृत रूपात्मक भावात्मक और आवेगात्मक होता है। लीविस ने बिंब को भावगर्भित चित्र माना है।[2]

डॉ॰ नगेंद्र के अनुसार, 'बिंब किसी अमूर्त विचार अथवा भावना की पुनर्निर्मिति है।[3] एजरा पाउंड के अनुसार, 'बिंब वह है, जो किसी बौद्धिक तथा भावात्मक संश्लेष को समय के किसी एक बिंदु पर संभव करता है।'[4]

'तार सप्तक' में प्रभाकर माचवे ने अपनी कविता को बिंबवादी घोषित किया। फिर भी तीसरे सप्तक के कवि केदारनाथ सिंह से पहले किसी ने बिंब-विधान को प्रमुखता नहीं दी थी। केदारनाथ सिंह ने घोषणा की–'कविता में मैं सबसे अधिक ध्यान देता हूँ बिंब-विधान पर।'[5]

केदारनाथ सिंह 'बिंबों की आविष्कृति' को कवि की श्रेष्ठता की कसौटी मानते हैं। 'आधुनिक हिंदी में बिंब-विधान का विकास' पुस्तक में उन्होंने बिंब के प्रतिमान पर छायावाद से लेकर प्रयोगवाद तक के साहित्य की परीक्षा की है।

शमशेरबहादुर की कृतियों में बिंब अधिक सजीव और ऐंद्रिय हैं। उनके काव्य में बिंब अधिक संश्लिष्ट और गहराई लिए हुए हैं। शमशेर की कविता में लौकिक बिंबों के साथ-साथ अलौकिक बिंबों की सृष्टि भी हुई है। शमशेर के काव्य में वस्तु या प्राकृतिक उपादानों का

 ISSN 0975-735X

मानवीकरण हुआ है, जो एक प्रकार की बिंबात्मकता ही है। शमशेर की कविता में जहाँ कल्पना है, वहाँ बिंब अधिक प्रभावशाली हैं।

शमशेरबहादुर की काव्यभाषा मुख्य रूप से बिंब-प्रधान है। वह बिंबों का चयन बड़ी कुशलता से करते हैं। उनकी कुछ कविताओं में भाषिक संवेदना के साथ बिंबों-प्रतीकों का कौशल बहुत प्रभावशाली है। उनके बिंब-विधान को निम्नलिखित वर्गों में रख सकते हैं–

1. प्रकृति-बिंब, 2. गंध बिंब, 3. आस्वाद्य बिंब, 4. रूप-बिंब, 5. स्थिर बिंब, 6. स्पर्श बिंब, 7. दृश्य बिंब, 8. नाद बिंब, 9. गति बिंब, 10. स्मृति बिंब, 11. आद्य बिंब, 12. अप्रस्तुत बिंब

1. **प्रकृति-बिंब**

शमशेर की कविता में प्राय: प्रकृति-बिंबों का सुंदर प्रयोग हुआ है। उनके प्रकृति-बिंबों में संश्लिष्ट रोमानी बिंबों की मोहकता और मार्मिकता है। उनके बिंब कल्पनाजनित होकर भी यथार्थ से परिचय कराते हैं। कहीं-कहीं वे यथार्थपरक होकर भी कल्पना जैसे लगते हैं। 'एक नीला दरिया बरस रहा', 'सारनाथ की एक शाम', 'सागर तट सौंदर्य', 'एक पीली शाम', 'पूर्णिमा का चाँद', शाम होने को हुई', 'बसंत आया' आदि कविताओं में उनकी प्रकृति-बिंबों की आभा दिखाई देती है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

1. पी गया हूँ दृश्य वर्षा का/ हर्ष बादल का
   हृदय में भरकर हुआ हूँ। हवा सा-हल्का।
   धुन रही थीं सर/ व्यर्थ व्याकुल मत्त लहरें[6]
2. व्योम में फैले हुए मेहराब के विस्तार
   स्तूप औ, मीनार नभ को थामने के लिए/ उठते हुए।
   विकटतम थे अति विकटतम
   विगत के सोपान पर्वतश्रृंग।[7]

2. **गंध बिंब**

गंध बिंब गंध-विषयक अप्रस्तुतों के माध्यम से घ्राण-संबंधी अनुभूति को उद्‌बुद्ध करते हैं। दृश्य को प्राणवान बनाने में गंध योजना सहायक सिद्ध होती है–

1. धुआँ-धुआँ सुलग रहा।[8]
2. सीने में सूराख हड्‌डी का।
   आँखों में घास-काई की नमी।[9]
3. थी महक/ शराब की।[10]

3. **आस्वाद्य बिंब**

दृश्य को स्वाद के स्तर पर अनुभव करना और कराना कल्पना-व्यापार का सबसे कठिन काम है। शमशेर के काव्य में स्वाद-संवेदना की कलात्मक अभिव्यक्ति हुई है। इसे 'रासायनिक' बिंब भी कहते हैं। स्वाद-संवेदना के अनेक चित्र उनकी कविताओं में मिलते हैं–

हल्की मीठी चा सा दिन
मीठी चुस्की-सी बातें

मुलायम बाहों का अपनाव।[11]
2. आखिर क्यों मुस्कुराते हैं शराबी अधर?[12]
3. नमक जैसे मैले संगमरमर का बादल।[13]
4. दिलों में जैसे मीठी फाँसें।[14]

4. **रूप बिंब**

कवि अपने भावातिरेक से प्रेरित होकर कविता का सृजन करता है। काव्य की सफलता इस बात में है कि उसे पढ़ते ही आँखों के सामने चित्र जैसे घूमने लगते हैं। प्राय: रोमांटिक कविताओं में रूप-बिंब की प्रधानता होती है। कुछ उदाहरण देखें–

1. नील जल में या किसी की
   गौर झिलमिल देह/ जैसे हिल रही हो।[15]
2. अपनी अजीब-सी खनक और चमक लिए
   गोरी गुलाबी धूप।[16]

5. **स्थिर बिंब**

काव्य में स्थिर बिंब वस्तु के आकार, रूप व रंग को प्रस्तुत कर पाठक की राग-चेतना को उद्बुद्ध करते हैं और उसके मन को वस्तु की कल्पना के लिए प्रेरित करते हैं। पाठक की आँखों के सामने वस्तु का चित्र बन जाता है। स्थिर बिंब द्वारा वस्तु, आकृति और अपनी रंग-रेखाओं के साथ पाठक के सामने मूर्त रूप में प्रस्तुत होती है। स्थिर बिंबों के लिए कवि संज्ञापद, विशेषण, अप्रस्तुत योजना, विशेषण-विपर्यय आदि विभिन्न प्रकार के उपकरणों की सहायता लेता है–

1. रवि! कमल के नाल पर बैठा हुआ मानो
   एक एड़ी पर टिकाए मौन।[17]
2. जो कि सिकुड़ा हुआ बैठा था, वो पत्थर।[18]
3. दोपहर बाद की धूप-छाँह में खड़ी
   इंतजार की ठेले गाड़ियाँ।[19]

6. **स्पर्श बिंब**

स्पर्श बिंब के अंतर्गत मन:स्थितियों, शारीरिक संबंधों, क्रिया-व्यापारों, चेतना, संरचण, या अंत:वृत्ति की मांसल अभिव्यक्ति होती है। इसलिए इन्हें आंगिक अथवा जैविक बिंब भी कहते हैं। ये बिंब मातृ-वात्सल्य के परिचायक हैं–

1. जहाँ, उसने अपना सर रखा था/ तुम्हारे वक्ष पर
   वह स्थान बहुत ही मुकद्दस है।[20]
2. गीली मुलायम लटें, आकाश
   साँवलापन रात का गहरा सलोना
   स्तनों के बिंबित उभार लिए।[21]

7. **दृश्य-बिंब**

शमशेर की रचनाओं में दृश्य-बिंबों की प्रधानता है। प्रकृति-चित्रों में मानवीकरण की प्रवृत्ति दृश्य-बिंबों को विश्वसनीयता बढ़ाती है। इनमें हवा, साँझ, चाँद, तारे, पर्वत, नदी, घास, धूप आदि

के चित्र अकेलेपन को व्यक्त करते हैं। शमशेर की कविता में कई दृश्य-बिंब स्थिर चित्रों की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं तो कई दृश्य-बिंब मन:स्थितियों के परिचायक हैं–

1. धूप कोठरी के आइने में खड़ी/ हँस रही है![22]
2. धूप में लिपटा हुआ है आसमान।[23]
3. मैली, हाथ की धुली खादी/ सा है आसमान।[24]

8. नाद-बिंब

नाद-बिंब की दृष्टि से प्राकृतिक ध्वनियों, वस्तु-ध्वनियों, संगीत-ध्वनियों को सम्मिलित किया जा सकता है। शमशेरबहादुर की कविता में नाद-बिंबों का प्रभावशाली प्रयोग हुआ है–

1. मेघ गरजे,
   और मोर दूर कई दिशाओं से
   बोलने लगे-पीयूअ! पीयूअ![25]
2. हरहरा कर उठ रहा है
   नव/ जनमहासागर![26]

9. गति-बिंब

शमशेरबहादुर को गतिशील बिंबों के चित्रण में अभूतपूर्व कुशलता प्राप्त है। गति-बिंबों के माध्यम से उन्होंने बहिर्जगत् की गति के संदर्भ में आंतरिक जगत् की गत्वरता को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। शमशेर गति को प्रगति के साथ जोड़ते हैं-

1. सीप-सी रंगीन लहरों के हृदय में डोल।[27]
2. सुर्ख फूल ओस में/ चुपचाप/ लुढ़कते चले जाते।[28]
3. जोकि सिकुड़ा हुआ बैठा था वो पत्थर
   सजग-सा होकर सरकने लगा आपसे आप।[29]

10. स्मृति-बिंब

मानव स्वभाव से अतीत-प्रेमी होता है। वह प्राय: अतीत की स्मृतियों को महत्त्वपूर्ण स्थान देता है। शमशेरबहादुर सिंह ने स्मृति-बिंबों की संरचना में अपनी काव्य-कुशलता का परिचय दिया है–

1. कहीं दूर पार से/ स्मृतियाँ/ बहुत-सी/ इकट्ठा हो रही हैं।[30]
2. आज कहाँ वे गीत जो कल थे
   गलियों-गलियों में गाए गए।[31]

11. आद्य-बिंब

'आद्य-बिंब सामूहिक अचेतन की सृष्टि होते हैं...इनकी प्रकल्पना युग ने की है। ये आदि अनुभूतियों के संस्कार रूप में आज भी मानव-जाति के अचेतन मन में विद्यमान हैं, और अनेक प्रकार से अपनी अभिव्यक्ति करते हैं।'[10] आद्य-बिंब की सृष्टि की दृष्टि से उनके काव्य में सूर्य, चाँद, धूप, मछली, साँप, शिव आदि के बिंब आए हैं। आद्य-बिंब कविता को कालजयी बनाने में सहायक होते हैं। उसे विशिष्ट अर्थ-सौंदर्य सौंपते हैं–

क्या शिवलोक के बीच कोई

विभाजक दीवार/ खड़ी की जा सकती है
सिवाय सच्चाई की उज्ज्वलता के[32]

12. **अप्रस्तुत-बिंब**

अप्रस्तुत बिंब काव्य में कलात्मक सौंदर्य की सृष्टि करते हैं। दरअसल, अलंकृत बिंब वर्ण्यवस्तु-प्रसंग-दृश्यांश को अलंकारों के द्वारा प्रत्यक्ष करते हैं। शमशेर की कविता में भौतिक-प्राकृतिक दोनों तरह के दृश्यों-बिंबों की अभिव्यक्ति हुई है, जिनसे मानसिक विनोद या रस का अनुभव होता है। अलंकृत बिंबों में अप्रस्तुत कवि-कथ्य को अर्थवान बनाते हैं। इसमें अनुभूतियों और अर्थों का भाव सूक्ष्म स्तर पर प्रतिष्ठित होता है। शमशेर की कविता में अप्रस्तुत विधान की भूमिका महत्त्वपूर्ण है–

1. सूर्य मेरी पुतलियों में स्नान करता
केश वन में झिल मिलाकर डूब जाता
स्वप्न-सा निस्तेज गतचेतन कुमार।[33]

अप्रस्तुत को प्रस्तुत करने के लिए कवि तुलना, सादृश्य, साम्य, विपर्यय, सान्निध्य, आवेग संकर्षण तथा एकरूपता के संयोग का सामान्यत: उपयोग करता है। शमशेर के काव्य में अप्रस्तुत कहीं-कहीं आकारमूलक रूप में भी प्रस्तुत हुए हैं–

1. शिला का खून पीती थी
वह जड़, जोकि पत्थर थी स्वयं।
सीढ़ियाँ थीं बादलों की झूलती/ टहनियों-सी,
और वह पक्का चबूतरा, ढाल में चिकना
सुतल था, आत्मा के कल्पतरु का?[34]

शमशेर ने अप्रस्तुत-विधान के अंतर्गत उपमामूलक बिंबों–चाँदनी, सीपी, मोती, शंख, ओंठ, नारंगी, अधर, कुहरा, धूप, छाँव आदि के प्रयोग से ताजगी पैदा करने का सार्थक प्रयास किया है–

कुसुमों से चरनों का लोच लिए
थिरक रही हैं
भीनी-भीनी सुंगधिया।[35]

शमशेर के काव्य में बिंब उनके रचना-तंत्र को संपन्न और भाषा को समृद्ध करते हैं। उनके बिंबों में ताजगी है। इनमें उनका सौंदर्यबोध निहित है। शमशेर के बिंब-विधान की विशेषता है कि उनकी कविताओं में वर्ण्य-विषय और बिंब अनायास एक-दूसरे पर आरोपित हैं। भाषा की सार्थक शक्ति-सहयोग पाकर वे पर्याप्त प्रभावशाली और आकर्षक बन गए हैं। उनके बिंबों-प्रतीकों में विविधता, अर्थगर्भिता और प्रयोगधर्मिता है, जो उन्हें छायावादोत्तर रचनाकारों में एक नई पहचान देती है।

संदर्भ

1. चिंतामणि, आचार्य रामचंद्र शुक्ल पृ॰ 228
2. सी॰डी॰ लेविस, पोयटिक इमेज, पृ॰ 22
3. हैले, डॉ॰ नगेंद्र द्वारा उद्धृत काव्यात्मक बिंब, पृ॰ 5
4. रेनेवेलेक एंड अस्टिन वारेन, थिअरी ऑफ लिटरेचर, पृ॰ 187

5. कविता की तीसरी आँख, प्रभाकर श्रोत्रिय, पृ॰ 30
6. कुछ कविताएँ, पृ॰ 37
7. चुका भी हूँ मैं नहीं, पृ॰ 33
8. कुछ कविताएँ, पृ॰ 40
9. कुछ और कविताएँ, पृ॰ 154
10. कुछ और कविताएँ, पृ॰ 68
11. कुछ कविताएँ, पृ॰ 36
12. चुका भी हूँ मैं नहीं, पृ॰ 36
13. वही, पृ॰ 57
14. काल तुमसे होड़ है मेरी, पृ॰ 51
15. शमशेर की प्रतिनिधि कविताएँ, पृ॰ 102
16. कुछ और कविता, पृ॰ 158
17. वही, पृ॰ 70
18. कुछ कविताएँ, पृ॰ 44
19. वही, पृ॰ 131
20. काल तुमसे होड़ है मेरी, पृ॰ 64
21. कुछ कविताएँ, पृ॰ 48
22. कुछ और कविताएँ, पृ॰ 37
23. कुछ कविताएँ, पृ॰ 32
24. कुछ और कविताएँ, पृ॰ 60
25. कुछ कविताएँ, पृ॰ 20
26. वही, पृ॰ 43
27. कुछ कविताएँ, पृ॰ 35
28. चुका भी हूँ मैं नहीं, पृ॰ 32
29. कुछ और कविताएँ, पृ॰ 36
30. काल तुमसे होड़ है मेरी, पृ॰ 53
31. वही, पृ॰ 42
32. चुका भी हूँ मैं नहीं, पृ॰ 50
33. शमशेर, कवि से बड़े आदमी सं॰ महावीर अग्रवाल, पृ॰ 113
34. कुछ और कविताएँ, पृ॰ 155
35. कुछ कविताएँ, पृ॰ 63

मं॰नं॰ 1655, सेक्टर 4
रेवाड़ी (हरियाणा)
मो॰ 9416744868

अर्थ-परिवर्तन : दिशाएँ

डॉ॰ आलोककुमार सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
माँ मंशादेवी महाविद्यालय, चंदौली (उ॰प्र॰)

विविध प्रयोगों वाले शब्दों का किस प्रकार एक विशिष्ट अर्थ में विकास हो जाता है, इसे यों समझना चाहिए कि उस शब्द के अनेक प्रयोगों में से एक अवश्य ही प्रधान होता है और कालांतर में वही अर्थ निर्धारित होकर मान्य हो जाता है। पर कभी-कभी प्रधान अर्थ के स्थायी होने का निश्चय नहीं हो पाता, सभी अर्थ प्रयोग में आते रहते हैं तथा समय पाकर किन्हीं विशेष स्थितियों में एक अर्थ प्रबल हो उठता है और वही उसका मुख्य अर्थ मान लिया जाता है और अन्य अर्थ धीरे-धीरे क्षीण होते जाते हैं। फ्रांसीसी विद्वान् वेंद्रेये ने इसे एक उदाहरण से स्पष्ट करने का यत्न किया है। उनका कहना है कि जिस प्रकार जब किसी वृक्ष की एक शाखा सारा रस चूसने लगती है तो उसकी अन्य शाखाएँ सूखने लगती हैं, उसी प्रकार नवीन अर्थ धीरे-धीरे विकसित होता रहता है एवं अन्य अर्थों का स्थान ले लेता है। इस प्रकार शब्द का अर्थ परिवर्तित होता है। लिखित रूप में प्राप्त होनेवाली जीवित भाषाओं के विभिन्न कालों के रूपों की तुलना करने पर पता चलता है कि उनके पदों में ध्वन्यात्मक तथा अर्थात्मक परिवर्तन चलता रहता है। उन परिवर्तनों के विभिन्न कारण एवं दिशाएँ होती हैं।

किसी शब्द के विभिन्न अर्थों में से केवल एक ही अर्थ बुद्धि में क्यों सुग्राह्य होता है, इसे इस प्रसंग से समझा जा सकता है। जैसा कि हम सभी भली-भाँति परिचित हैं कि किसी क्रिया के व्यापार के साथ किसी भी संज्ञा के अनेक संबंध हो सकते हैं, पर किसी संज्ञा से क्रियारूप बनने पर प्राय: एक ही संबंध की अभिव्यक्ति हुआ करती है। अत: अनजाने में बुद्धि, आवश्यकतानुसार सभी संभाव्य व्यापारों में से प्रयोग के लिए किसी एक का निर्वचन कर लेती है, यदि और कोई बाधा न हो तो इस प्रकार से प्राप्त शब्दार्थ स्थायी हो जाता है और शब्दकोश में इसी रूप में स्थान पा जाता है।

सभी भाषाओं में न्यूनाधिक मात्रा में पाए जानेवाले अर्थ-संबंधी परिवर्तनों को मोटे तौर पर तीन रूपों में देखा जाता है—कुछ अर्थों की विशेषार्थ से सामान्यर्थ की ओर प्रवृत्ति देखी जाती है अर्थात् उसका प्रयोग पहले किसी विशेष अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए किया जाता था और बाद में सर्वसामान्य अर्थ की अभिव्यक्ति की जाने लगती है। इस प्रकार उसका मूल अर्थ विस्तृत हो जाता है। इसके विपरीत कभी ऐसा भी देखा जाता है कि मूलत: कोई सामान्यार्थ का बोधक अर्थ किसी विशेषार्थ का बोध कराने लगता है। इस प्रकार उसके मूल अर्थ का संकोच हो जाता है। पर कभी-कभी ऐसा भी देखा जाता है कि किसी शब्द के दो अर्थ समान रूप से व्यापक होते हैं पर

 ISSN 0975-735X

बाद में कारणवश एक के स्थान पर दूसरे का आदेश हो जाता है। इन्हीं तीन प्रमुख स्थितियों के कारण शब्द-परिवर्तन की दिशाओं को तीन प्रमुख वर्गों में विभाजित किया जाता है, वे हैं– 1. अर्थ-विस्तार, 2. अर्थ-संकोच, 3. अर्थांतरण।

अर्थ-विस्तार का अर्थ है 'प्रारंभ में किसी एक सीमित अर्थ में प्रयुक्त किए जानेवाले शब्द का कालांतर में उस अर्थ से संबद्ध सभी अर्थों का बोध कराने लगना, उदाहरणार्थ, प्रारंभ में **'गवेषणा'** का मूल व्युत्पत्तिपरक अर्थ था **'गायों की खोज करना'**, किंतु कालांतर में इसका प्रयोग किसी भी प्रकार की खोज के लिए किया जाने लगा। यही बात **'अनुसंधान'** की भी है। ऐसे ही **'तेल'** शब्द का मूल अर्थ था **'तिलों से निकलने वाला स्निग्ध पदार्थ'** किंतु बाद में इसका प्रयोग किसी भी **'स्निग्ध पदार्थ'** के लिए किया जाने लगा। यहाँ तक कि **'मछली का तेल'** और **'मिट्टी का तेल'** में भी इसका विस्तार हो गया। कुछ और बहुप्रचलित उदाहरण हैं-**'सब्जी** < **सब्ज हरा**। मूलतः इसका प्रयोग **'हरी सब्जी'** के लिए किया गया, पर बाद में **'सफेद गोभी'**, **'लाल टमाटर'**, **'पीला कद्दू'** सभी के लिए चल पड़ा। इस प्रकार **'सब्जी'** के मूल अर्थ का इतना विस्तार हुआ कि किसी भी रंग की सब्जी के लिए इसका प्रयोग किया जाने लगा। यही स्थिति **'स्याही** < **स्याह'** अथवा **मसि 'काला'** की भी है। यह शब्द जो कि मूलतः लेखन-सामग्री के लिए प्रयुक्त किया जाता था, अब **लाल**, **हरे**, **नीले**, **पीले**, **बैंगनी** आदि सभी रंगों की लेखन-सामग्री (स्याही) के लिए प्रयुक्त किया जाने लगा है। यही बात **कुशल** < **कुशा**, **प्रवीण** < **वीणा**, **निष्णात** < **स्नान**, **रुपया** < **रुप्य** 'चाँदी' आदि अनेक शब्दों के संबंध में भी सत्य है।[1]

प्रवीण का अर्थ पहले केवल वीणा बजाने में दक्ष होता था, किंतु धीरे-धीरे इस शब्द के अर्थ का विस्तार हुआ और आज हर प्रकार के वाद्य-यंत्रों को बजाने में दक्ष हर प्रकार के अच्छे-बुरे कार्यों के करने में दक्ष व्यक्ति को प्रवीण कहा जाता है। भले ही वह कलम चलाने की बजाय माउस की-बोर्ड चलाने में दक्ष हो, या फिर चाकू-बंदूक चलाने में दक्ष हो। **कुशल** का अर्थ पहले केवल कुश के चयन में चतुर एवं निष्णात व्यक्ति के लिए प्रयुक्त होता था, किंतु आज इस शब्द का प्रयोग हर प्रकार के अच्छे-बुरे कार्य में चतुर व्यक्ति के लिए होने लगा है। **साहसी** का अर्थ पहले केवल डकैतों के लिए प्रयुक्त होता था, पर आज यह शब्द हर कार्यों में साहस प्रदर्षित करनेवाले के लिए होता है। **स्याही** का अर्थ पहले केवल काले रंग की स्याही के लिए होता था, पर आज यह लेखन में आनेवाली काले, नीले, हरे, लाल, आदि रंग की हर प्रकार की स्याही को स्याही कहा जाता है। **तैल** का अर्थ पहले केवल तिल के तैल के लिए प्रयुक्त होता था, पर आज यह हर प्रकार के तेल चाहे वह सरसों का हो या आँवले का हो या फिर मिट्टी के तेल के लिए प्रयुक्त होता है। **अभ्यास** का अर्थ पहले केवल धनुष-बाण चलाने के लिए होता था पर आज यह हर प्रकार की पुनरावृत्ति के लिए होता है, चाहे वह कक्षा का पाठ हो, या उसे याद करने की प्रक्रिया हो। **गवेषणा** का मूल अर्थ पहले केवल गाय की खोज करना था, परंतु अब किसी भी प्रकार की खोज का वाचक बन गया है। जयचंद, विभीषण, नारद जैसी व्यक्तिवाचक संज्ञाओं का भी अर्थ-विस्तार हो चुका है, आज कन्नौज के राजा के अतिरिक्त हर विश्वासघाती व्यक्ति को **जयचंद** की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। रावण का भाई **विभीषण** आज घर के भेदी के रूप में व्याप्त है और **देवर्षि नारद** आज उन व्यक्तियों के पर्याय बन गए हैं, जो इधर की

बात क्षण-भर के अंतराल में दूसरी तरफ पहुँचाकर संघर्ष की स्थिति पैदा कर देते हैं। कुछ अन्य शब्द जो अपना अर्थ-विस्तार बनाने की फिराक में हैं–**नेता :** भई वह वादा निभाने में नेता है। उससे कोई उम्मीद मत रखना मतलब अविश्वसनीय गैर-भरोसेमंद।

अर्थ-संकोच की प्रवृत्ति विस्तार के विपरीत दिशा में होती है अर्थात् जब किसी विस्तृत अर्थ को घोषित करनेवाला कोई शब्द कालांतर में केवल सीमित अर्थ का द्योतक-मात्र रह जाता है तो उसे अर्थसंकोच की संज्ञा दी जाती है। भाषाविज्ञानी शील ने इसका संबंध सभ्यता के विकास के साथ जोड़ा है। उनका विचार है कि जो जाति जितनी अधिक सभ्य होगी, उसकी भाषा में उतना ही अधिक अर्थ-संकोच मिलेगा। इसका कारण स्पष्ट है, प्रारंभ में बौद्धिक एवं सांस्कृतिक विकास के अभाव में एक ही शब्द से कई भावों का बोध कर लिया जाता है और अधिक शब्दों की आवश्यकता भी नहीं रहती है, किंतु ज्यों-ज्यों बुद्धि एवं व्यवहार से सूक्ष्मता आती है, उनके पृथकत्व के लिए अलग-अलग शब्दों की आवश्यकता प्रतीत होती है और उस मूल शब्द को उनमें से किसी एक का संकेत-बोध करने के लिए आरक्षित करके शेष भावों की अभिव्यक्ति के लिए नवीन शब्दों को गढ़ लिया जाता है।[2]

भाषा की इस प्रवृत्ति को निम्नलिखित उदाहरणों के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। **पय** '**दूध**', इसका व्युत्पतिलब्ध अर्थ है '**पीने की वस्तु**'। इसीलिए प्राचीन संस्कृत में 'दूध' तथा 'पानी' दोनों को '**पय**' कहा जाता था, किंतु बाद में आकर 'पय' का अर्थ '**दूध**' में सीमित हो गया, **मृग** जिसे शिकार के लिए ढूँढ़ा जाए', (मृग्यते इति)। इस रूप में प्राचीनकाल में कोई भी पशु, जिसका शिकार किया जा सके मश्ग कहलाता था, मृगेंद्र, मृगराज '**मृगों का राजा**' शब्द में इसे अब भी देखा जा सकता है, किंतु बाद में इसका अर्थ '**हरिण**' नामक पशु में सीमित हो गया। '**पंकज**' कीचड़ से पैदा होनेवाला, जलज, अब्ज। 'पानी से उत्पन्न होनेवाला' का प्रयोग अब पानी या कीचड़ में उत्पन्न होनेवाली घास या कीड़े-मकोड़े के लिए न होकर केवल 'कमल' के अर्थ में रूढ़ हो गया है। यही स्थिति है **गो** 'जो चलनेवाला हो', **वर** 'जिसका वरण किया जाए', **भार्या** 'जिसका भरण-पोषण किया जाय', **सर्प** 'रेंगने वाला', **श्राद्ध** 'जो श्रद्धापूर्वक किया जाए' आदि की भी है। ऐसे ही एक अन्य उदाहरण है **पर्वत** अर्थात् 'पर्वों (पोरों) वाला', इसीलिए प्राचीन संस्कृत में इसका अर्थ नरकुल, सरकंडा, गन्ना, बाँस भी होता था, किंतु बाद में पहाड़ के अर्थ में संकुचित हो गया। केवल देशी या तद्‌भव शब्दों में ही नहीं अपितु विदेशी शब्दों में भी यह प्रवृत्ति क्रियाशील दिखाई देती है। उदाहरणार्थ, फारसी के '**मुर्ग**' शब्द को लिया जा सकता है। इसका मूल अर्थ था '**पक्षी**' जैसा कि अब भी 'शुतुरमुर्ग' (उष्ट्राकार पक्षी), मुर्गाबी (जल पक्षी) आदि में देखा जा सकता है। किंतु भारत में इसका अर्थ '**कुक्कुट**' पक्षी में सीमित होकर रह गया। '**जगत्**' शब्द का प्रारंभिक अर्थ था खूब चलनेवाला, किंतु आज यह रेलगाड़ी, हवाई जहाज, बस का प्रतीकार्थक न होकर केवल संसार का अर्थ देता है। '**सभ्य**' का व्युत्पत्तिपरक अर्थ है सभा में बैठनेवाला पर आज सभा में बैठनेवाला, हर व्यक्ति सभ्य नहीं होता। '**जलज**' आज जल से निष्पन्न सभी चीजों को नहीं कहा जाता केवल 'कमल' के लिए रूढ़ हो गया है। **धान्य** और **दुहिता** शब्द इसी कोटि के हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'अर्थ-संकोच' भाषाओं के विकास में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। यदि अर्थ-संकोच न हो और व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ के आधार पर ही संकेत-बोध होता रहे

 ISSN 0975-735X

तो एक ही शब्द अनेक पदार्थों का बोध कराता रहेगा। इससे न तो नवीन शब्दों का निर्माण हो सकेगा और न अभिव्यक्ति में ही स्पष्टता आ सकेगी। संस्कृत के प्रारंभिक काल में 'वत्स, पोत, शावक' आदि का अनियंत्रित प्रयोग 'बच्चे' के अर्थ में हुआ करता था, किंतु बाद में अर्थ-संकोच के कारण इनका प्रयोग 'मानव', 'पशु' आदि के बच्चों के लिए सीमित हो गया।

अर्थांतरण, जिसे कभी-कभी 'अर्थादेश' भी कहा जाता है, का अभिप्राय है 'अर्थ का बदल जाना', अर्थात् इसमें शब्द का मौलिक अर्थ बदलकर नवीन अर्थ धारण कर लेता है। यह स्थिति 'अर्थ-विस्तार' तथा 'अर्थ-संकोच' दोनों से सर्वथा भिन्न होती है।[3] अर्थांतरण प्राय: साहचर्य के कारण हुआ करता है। कारण यह है कि कभी-कभी शब्द के मुख्यार्थ के साथ एक-एक गौणार्थ का भी विकास हो जाता है, कुछ काल तक तो दोनों अर्थ साथ-साथ प्रयोग में चलते रहते हैं, किंतु कालांतर में अनेक कारणों से मुख्य अर्थ गौण होकर धीरे-धीरे लुप्त हो जाता है और गौण अर्थ उसका स्थान लेकर स्वयं मुख्यार्थ बन जाता है। इस प्रकार होनेवाले अर्थांतरण की दो दिशाएँ पाई जाती हैं अर्थात् कभी ऐसा होता है कि अर्थांतरण की प्रवृत्ति को दिखानेवाले शब्द का मूल अर्थ विशेष अच्छा नहीं होता या किसी हीनभाव का द्योतक होता है, किंतु उसका परिवर्तित अर्थ उससे श्रेष्ठ होता है। इसे पारिभाषिक रूप में 'अर्थोत्कर्ष' कहा जाता है। इसके विपरीत कभी ऐसा भी होता है कि शब्द का मूल अर्थ श्रेष्ठ भाव को प्रकट करनेवाला होता है, किंतु उसका परिवर्तित अर्थ हीनभाव का द्योतन करता है। परिवर्तन के इस रूप को 'अर्थोपकर्ष' कहते हैं। साहसी पहले डकैतों के लिए और मुग्ध मूढ़ों के लिए प्रयुक्त होता था किंतु अब यह क्रमश: अच्छे कार्यों में हिम्मत का प्रदर्शन करनेवाले तथा मोहित हो जाने के अर्थ में प्रयुक्त होता है। अर्थांतरण की यह प्रक्रिया दो रूपों में चलती है–

अर्थोत्कर्ष के अनेक उदाहरण प्राप्त हो सकते हैं। यथा आजकल '**अदम्य उत्साह**' के अर्थ में प्रचलित 'साहस' शब्द का प्राचीनकाल में अर्थ था कूर, नृशंस, और इसका प्रयोग डाका, हत्या आदि कर्मों के संदर्भ में हुआ करता था। किंतु इन नृशंस कार्यों के लिए भी मजबूत दिल, शक्ति आदि की आवश्यकता होने से उसी साहचर्य से इसका गौणार्थ विकसित होकर मुख्यार्थ बन गया और इसका प्रयोग 'हिम्मत के साथ किये जानेवाले कार्यों के संदर्भ में किया जाने लगा। ऐसे ही संस्कृत में '**कर्पट**' का अर्थ होता था 'चीथड़ा', 'जीर्ण-शीर्ण वस्त्र', किंतु कपड़े के साहचर्य के कारण बाद में इससे विकसित शब्द 'कपड़ा' का अर्थ हो गया 'वस्त्र-मात्र', सामान्य तो क्या बहुमूल्य वस्त्र का भी इसी से संकेत-बोध होने लगा। इन दोनों ही उदाहरणों में शब्द अपने मौलिक हीन अर्थ को त्यागकर उत्कर्ष को प्राप्त हो गए हैं।[4]

अर्थोत्कर्ष के समान ही अर्थोपकर्ष भी जीवित भाषाओं की एक सामान्य प्रवृत्ति का परिचायक हुआ करता है। इसमें कई बार मूलत: उदात्त भाव के अभिव्यंजन अर्थ का इतना पतन होता है कि कभी-कभी तो वह विपरीत भाव को व्यक्त करने लगता है। यथा वैदिक साहित्य में '**असुर**' शब्द से 'देवता' या तत्सम शक्ति का बोध होता था। इसी का प्रतियोगी शब्द 'अहुर' अवेस्ता में अब भी इसी भाव का द्योतन करता है, किंतु बाद के युगों में देवताओं और राक्षसों के संघर्ष के कारण उनकी प्रबल शारीरिक शक्ति के साहचर्य से यह शब्द उनका बोधक बन गया। फलत: यह अपने मूलार्थ से च्युत होकर 'दैत्य, राक्षस' आदि का बोधक बन गया। एक अन्य उदाहरण है–'**हरिजन**'। गांधीजी के द्वारा इसका प्रयोग 'असवर्ण' या शूद्र जाति के लोगों के लिए

किए जाने के पूर्व तक यह 'भगवान् के भक्तों का बोधक था, किंतु अब 'हरिजन' से हिंदुओं के अंतिम वर्ण के लोगों का ही संकेत-बोध हुआ करता है। **'पाखंड'** शब्द की भी यही स्थिति है। यह एक बौद्ध संप्रदाय था। अशोक के काल में इसे काफी सम्मान प्राप्त था और अशोक द्वारा इसे दानादि देने का भी उल्लेख पाया जाता है, किंतु कालांतर में अपनी आचरण-भ्रष्टता के कारण समाज में इसका पतन हो गया और फलस्वरूप इस शब्द के अर्थ का भी पतन हो गया। कुछ शब्द पहले अच्छे अर्थ में प्रयुक्त होते हैं, पर बाद में बुरे अर्थों में प्रयुक्त होने लगते हैं। अर्थ-परिवर्तन की यह स्थिति अर्थ का अपकर्ष कहलाती है। जैसे भद्दा, महाराज पंडित आदि।[5] **भद्दा** शब्द भद्र से व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ भला होना चाहिए। महाराज राजाओं के लिए प्रयुक्त होता था पर आज भंडारी, भोजन बनानेवाले का वाचक है। **पंडित** शब्द पहले विद्वान् का वाचक था, पर आज मूर्ख ब्राह्मण का भी वाचक है। **पाखंड** इस नाम का मूलत: संन्यासी संप्रदाय था, लेकिन अब इसका अर्थ अपकर्ष हो गया। इसी तरह जमादार, जयचंद, विभीषण आदि के अर्थ भी हीनतायुक्त हो गए हैं। व्यवहारिका का मतलब दासी, किंतु कुमाऊँनी में इसका अपभ्रंश शब्द ब्वारी है, जो अब पुत्रवधू के लिए प्रयुक्त होता है। अर्थ-परिवर्तन के उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण से स्पष्ट है कि अर्थ-परिवर्तन का कोई एक तथा सुनिश्चित कारण नहीं है। वस्तुत: आंतरिक और बाह्य, मानसिक और भौतिक अनेक कारण सम्मिलित रूप से कार्य करते हैं, जिनकी परिणति अर्थ-विकास में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है।

संदर्भ

1. श्रीराम परिहार, शब्द-शब्द झरते अर्थ, प्रभात प्रकाशन, पृ॰ 33
2. डॉ॰ राजमणि शर्मा, आधुनिक भाषाविज्ञान, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृ॰ 264
3. रामविलास शर्मा, भाषा और समाज, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 2002, पृ॰ 419
4. रामकिशोर शर्मा, भाषाविज्ञान, हिंदीभाषा और लिपि, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2007, पृ॰ 206
5. वही, पृ॰ 207

सवाल साहित्य के : स्वानुभूति के विविध आयाम

डॉ॰ निशा तिवारी

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल रचित 'सवाल साहित्य के' पुस्तक का प्रकाशन सन् 2013 में हुआ है, जो सन् 2016 में प्रकाशित रचनावली के खंड चार 'गद्य समग्र' में संकलित है। 'सवाल साहित्य के' पुस्तक अग्रवाल जी के विचारात्मक लेखों का संग्रह है, किंतु उनकी आत्मानुभूति ने उसमें वैयक्तिक तथा भावनात्मक रंग भरकर उन्हें नितांत नूतन निबंधशैली और समालोचनापरक वक्तव्यों से परिवेष्ठित किया है। गिरिराजशरण जी मूलत: ग़ज़लकार हैं अत: आत्मानुभूति उनके साहित्य का प्राथमिक तत्त्व बन गया है, किंतु यह वैयक्तिकता समूह या समाज की भावनाओं के रंग में कुछ इस प्रकार निखरकर आई हैं—'अपनी ग़ज़ल में मैंने 'मैं' या Self को कुछ इस तरह स्थापित किया है कि वह अब अक्सर दुनिया भर के अनुभवों को अपने व्यक्तिगत अनुभव बनाकर ही पेश करती है- (गिरिराजशरण रचनावली भाग-5 पृष्ठ 61) मानवीयता की ऐसी ही व्यापकता 'सवाल साहित्य के' के विचारात्मक लेखों में भी देखी जा सकती है। शास्त्रीय मानदंडों के घटाटोप इनमें नहीं हैं वरन् अपने वैयक्तिक गुणों के अनुरूप ऐसी शालीनता और सादगी है कि वह पाठक को विचारों के बीहड़ वनों में नहीं भटकाती बल्कि ऐसी भावनात्मक वीथिका का निर्माण करती है, जिसपर चलने के लिए उसे कोई कठोर श्रम नहीं करना पड़ता। इन निबंधों का सर्वाधिक वैशिष्ट्य इस बात में हैं कि वे साहित्य-संबंधी समस्याओं को सर्वप्रथम प्रश्नांकित करते हैं और पश्चात् आँखन देखी तथा सोची-समझी चिंतना से उसका समाधान और समाहार करते हैं। इस प्रकार उन्होंने आलोचना का एक नया आयाम विकसित किया है। देखना यह है कि वे कौनसे समस्यामूलक प्रश्न हैं, जो लेखक को आंदोलित करते रहे हैं और उनकी समाधानपरक अवधारणाएँ और निष्पत्तियाँ क्या हैं।

साहित्य की अंतर्यात्रा कभी समाप्त न होनेवाली यात्रा है, जिसपर चलनेवाले साहित्यकार नित नवीन पड़ावों का निर्माण करते चलते हैं, किंतु अपनी आरंभिक यात्रा की उपेक्षा नहीं करते। वे ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते हैं समय-समाज-संस्कृति-परिवेश की नूतनता की छाप छोड़ते चलते हैं। यही नूतनता उन्हें अपने सहयात्रियों से विशिष्ट बनाती है, भीड़ से हटकर कुछ नया रच देने की प्रेरणा भी देती है, किंतु क्या परंपरा से हटकर यह प्रेरणा फलदायी हो सकती है? अग्रवालजी लिखते हैं—'साहित्य में कोई ऐसा नया प्रयोग संभव नहीं है, जिसकी नींव पहले से चली आ रही परंपरा पर न हो। हम परंपरा की नींव पर अपने प्रयोग से नित-नए भवन तो निर्मित कर सकते हैं, किंतु बुनियाद की उस ईंट को नहीं निकाल सकते, जिस पर सभी तरह के प्रयोगों का दुर्ग उठाया जा सकता है।' (रचनावली 4, पृ॰ 99)

यह परंपरा ही तो संस्कृति है। जब साहित्यकार को ऐसा प्रतीत होता है कि कहीं कुछ छूट

रहा है तो उसकी दृष्टि इसी परंपरा की ओर जाती है तथा वह उस छूटे हुए को पकड़ने की निरंतर कोशिश करता है और तब साहित्यकार अपनी रचना में एक नयापन भर देता है। आलोचक का दायित्व तो इससे भी बड़ा होता है। वह रचना की पुनर्रचना करता है—एक अच्छा पाठक बनकर। वह परंपरा की परतों को खोलकर उसमें नया अर्थ भर देता है, किंतु समय के साक्ष्य पर। गिरिराजशरण ने 'सवाल साहित्य के' निबंधों में यह दायित्व बखूबी निभाया है।

'सवाल साहित्य के' में गिरिराजशरण के पंद्रह निबंध हैं—1. साहित्यिक अध्ययन की समस्या, (2) साहित्य में भाषा की समस्या, (3) गद्य में उपमाओं और प्रतीकों का प्रयोग, (4) समीक्षा में निष्पक्षता और सहानुभूति के संदर्भ, (5) साहित्य में आत्मनिर्भरता का महत्त्व, (6) महत्त्व किसका, परंपरा या प्रयोग का, (7) साहित्य में आंदोलनात्मक खेमाबंदी, (8) हिंदी ग़ज़ल में मेरे अनुभव, (9) चिंतन, भावना, अनुभव और उद्देश्य, (10) साहित्य में आशावाद और निराशावाद, (11) लेखक, सामान्यजन और साधारण पाठक, (12) साहित्य-जगत् में बढ़ती हुई जनसंख्या, (13) कबिरा खड़ा बाजार में, (14) यथार्थ, कल्पना और सामाजिकता, (15) अभिव्यक्ति में उलझाव की समस्या।

लेखक द्वारा इन साहित्यिक निबंधों की परख विभिन्न कोणों से की गई है, साथ ही समालोचना-संबंधी स्थापनाओं को व्यावहारिक समीक्षा से अनुस्यूत किया गया है, विशेषतया ग़ज़लकारों और ग़ज़लों को व्यावहारिक समीक्षा का आधार बनाया गया है। स्वत: की ग़ज़लों से अन्य ग़ज़लों और ग़ज़लकारों को सापेक्षिता में आकलित करते हुए तुलनात्मक समीक्षा का भी परिचय दिया गया है।

यदि समीक्षा के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य पर विचार करें तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भरतमुनि का नाट्य सूत्र समीक्षा का आदिमंत्र ठहरता है, जिसे प्रथमत: नाट्य का (पश्चात् काव्य) का उद्देश्य निरूपित किया गया है। संस्कृत के अनेक आचार्यों ने उसकी व्याख्याएँ दार्शनिक, रचयिता, मूल चरित्र, सामाजिक और कलापरक दृष्टिकोण से की है। इधर भारतीय काव्यशास्त्र में रस के अतिरिक्त अलंकार, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि, औचित्य सिद्धांतों का प्रणयन एक ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक धरोहर के रूप में हिंदी के समीक्षकों को प्राप्त हुआ है। डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल ने भी इस सांस्कृतिक धरोहर को आत्मसात करते हुए तथा उसका मंथन कर उससे नितांत नवीन विचार-सरणियों का नवनीत निकाला है। उनकी मान्यता है—'जहाँ तक विषयवस्तु का प्रश्न है, इस तथ्य को सदैव ध्यान में रखना चाहिए कि किसी एक युग या समय में मानव-जीवन और समाज से संबंधित जितने भी विषय हैं, उन पर उस काल या समय के सभी बुद्धिजीवियों अथवा लेखकों की पकड़ एक जैसी होती है।' (रचनावली खंड 4, पृ॰ 48)

यहाँ गिरिराजशरण के निबंधों का वर्गीकरण कर वस्तुपरिगणन शैली का परिचय देना अभिप्रेत नहीं है बल्कि यह दर्शाना उद्दिष्ट है कि उन्होंने अपने निबंधों में काव्य के तत्त्वों, काव्य के प्रयोजनों, उद्देश्यों, समस्याओं को किस प्रकार नूतन विचारों में ढालने का प्रयास किया है। लेखक के समालोचना-संबंधी विचारों को पढ़कर मुझे आभास हुआ कि मेरे गुरुवर आचार्य नंददुलारे बाजपेयी ने 'हिंदी साहित्य बीसवीं शताब्दी' पुस्तक की विज्ञप्ति में साहित्य-समीक्षा संबंधी स्वत: की प्रयास-दिशा को जिन सप्त सूत्रों के माध्यम से दर्शाने का प्रयास किया है, वे प्रकारांतर से गिरिराजशरण की मान्यताओं और अवधारणाओं में भी निहित हैं। उनकी ये स्थापनाएँ

 ISSN 0975-735X

नितांत मौलिक हैं। किन्हीं पूर्व धारणाओं का अंधानुकरण नहीं हैं।

'समीक्षा में निष्पक्षता और सहानुभूति के संदर्भ', 'साहित्य में आत्मनिर्भरता का महत्त्व', 'महत्त्व किसका, परंपरा या प्रयोग का', 'हिंदी ग़ज़ल में मेरे अनुभव', 'चिंतन, भावना, अनुभव और उद्देश्य', 'साहित्य' में 'आशावाद और निराशावाद' इत्यादि निबंधों में लेखक ने प्रथमतः 'पोयटिक स्पिरिट' Poetic Spirit का विश्लेषण किया है। लेखक की काव्यात्मक प्रतिभा अध्ययन के द्वारा परिमार्जित होती है–'यदि कोई साहित्यकार अपने से पहले लिखे हुए साहित्य का गंभीर अध्ययन नहीं करता है, तो वह ऐसा करके स्वयं अपने विकास के मार्ग में बाधा उत्पन्न कर लेता है... किंतु यह अध्ययन खुले दिमाग से हो, निष्पक्ष हो मानसिक दासता के साथ न किया गया हो।' (रचनावली खंड 4 पृ॰ 35) यदि प्रतिभा न हो तो कवि के द्वारा काव्य-सृजन हो ही नहीं सकता किंतु अध्ययन, मनन, चिंतन के बिना परिष्कृत काव्य रचा ही नहीं जा सकता। इसीलिए प्राचीन संस्कृत के आचार्यों ने काव्य हेतु के रूप में प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास इन तीन तत्त्वों की आवश्यकता पर बल दिया है। अध्ययन को व्युत्पत्ति अर्थात् लोकशास्त्र अवेक्षण के अंतर्गत सम्मिलित किया गया है। गिरिराजशरण व्यक्तिगत अभिरुचि को काव्य-सृजन के लिए एकमात्र स्पिरिट नहीं मानते। उनके अनुसार उसके लिए सौंदर्यबोध और सामूहिक अनुभवों की भी अपेक्षा होती है–वे सौंदर्यबोध की व्याख्या निजी वैयक्तिक तथा सामाजिक दोनों स्तरों पर करते हैं– 'व्यक्ति के भीतर का सौंदर्यबोध उसकी निजी प्रतिक्रिया होते हुए भी कहीं-न-कहीं सामूहिक अनुभवों अथवा सामाजिक मान्यताओं से जुड़ा रहता है, लेकिन पसंद-नापसंद की हर कसौटी को साहित्य के संबंध में इस तरह प्रयोग नहीं किया जा सकता जैसाकि फूल, बच्चे की मुस्कान अथवा चंद्रमा के संबंध में किया जा सकता है।' (वही, पृ॰ 77) समय, समाज और उनकी प्रेरणाएँ ही सर्जक की कृति को प्राणवान बनाती हैं।

काव्य की रचना-प्रक्रिया में चिंतन, भावना, अनुभव और उद्देश्य का अत्यंत महत्त्व है। काव्य-सृजन मात्र भावावेग का स्फुरण नहीं है, बल्कि चिंतन-मनन के द्वारा भावावेग को संतुलित करना भी आवश्यक होता है, यद्यपि भावोन्मेष ही वह प्राथमिक तत्त्व है, जिससे काव्य-सृजन की प्रेरणा मिलती है। वर्ड्सवर्थ जैसे महान स्वच्छंदतावादी कवि ने काव्य की परिभाषा ही भावना के सहज प्रवाह को आधार बनाकर की है तथा उसे उत्तम कविता की संज्ञा दी है, किंतु चिंतन की गहराई ही कविता को परिपक्व बनाती है अन्यथा कविता का कोरे भावोद्गार में बदल जाने का खतरा सदैव बना रहता है। यही कारण है कि गिरिराजशरण जी ने 'चिंतन, भावना, अनुभव और उद्देश्य' निबंध में काव्य के अंतर्गत इन तत्त्वों के संतुलन की सलाह दी है। वे लिखते हैं– 'उच्चस्तरीय साहित्यिक रचना वही मानी जाएगी जिसमें विचार, भाव, चिंतन आदि सभी तत्त्व ठीक-ठीक अनुपात में प्रयुक्त हुए हों। रचना में भावना की गर्मी हो, दर्शनिक विश्लेषण की गहराई हो, विचार की परिपक्वता हो, तभी हम एक रचना को सुंदर और उच्चस्तर की साहित्यिक रचना कहेंगे, अन्यथा नहीं।' (वही, पृष्ठ-129) ऐसा संतुलन ही रचना को सुंदर बनाता है। सौंदर्य की व्याख्या करते हुए लेखक ने कहा है कि सौंदर्य मात्र आनंदित नहीं करता वरन् पाठक को चमत्कृत भी करता है तथा यह चमत्कार संतुलन से ही उत्पन्न होता है। रचना-प्रक्रिया के अंतर्गत विचार, भाव, चिंतन की आनुपातिकता की कोई निश्चित माप नहीं हो सकती और न ही उसे किसी भौतिक प्रयोगशाला में सिद्ध किया जा सकता है। अग्रवाल जी के अनुसार उक्त तत्त्वों के संतुलन

हेतु रचनाकार को बाहर-भीतर इन दोनों स्तरों पर संघर्ष करना पड़ता है। चिंतन की यथार्थता, अनुभवों को आत्मनिष्ठता से परे ले जाकर अधिक से अधिक वस्तुनिष्ठ बनाती है। इस प्रकार कोई भी काव्य-कृति न तो विशुद्ध आत्मनिष्ठ होती है और न नितांत वस्तुनिष्ठ। रचना की श्रेष्ठता दोनों के संतुलन में है। रचनाकार का बाहरी संघर्ष अभिव्यक्ति के स्तर पर होता है, जो भाषा पर केंद्रित होता है। भाव और विचार उत्कृष्ट और सशक्त भाषा में ही आकार लेते हैं। इस तथ्य पर बल देते हुए लेखक टिप्पणी देते हैं–'यदि साहित्यकार अपने भीतर और बाहर के इस संघर्ष में सफल होता हो, तो निस्संदेह वह एक अच्छे रचनाकार के रूप में अपने धर्म का निर्वाह कर सकेगा।' (वही पृ० 133)

धर्म का अर्थ धारण करने से है तथा साहित्यकार का धर्म होता है–रचना की उद्देश्यपरकता। यह उद्देश्यपरकता समाजसुधारक, दार्शनिक, राजनीतिज्ञ इत्यादि से भिन्न होती है। साहित्यकार अपने उद्देश्य को सौंदर्य से अनुप्राणित करता है, जबकि अन्य अपने निष्कर्षों को संप्रेषित करने के उद्देश्य से बँधे होते हैं, इसीलिए सौंदर्य का संप्रेषण करनेवाला साहित्यकार अन्य सुविज्ञों से विशिष्टि होता है।

डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल ने साहित्य की सबसे बड़ी समस्या अभिव्यक्ति की शैली को माना है। बीसवीं शताब्दी के इटली के दार्शनिक क्रोचे ने साहित्य को अभिव्यंजना कहा था तथा सौन्दर्य का अभिव्यंजना से घनिष्ठ संबंध निरूपित करते हुए कहा था-We may define beauty as succeessful expression' किंतु यह ध्यातव्य है कि गिरिराजशरण की अभिव्यक्ति बाह्यार्थक है और क्रोचे की सहजानुभूतिजन्य अर्थात् आंतरिक। गिरिराजशरण अभिव्यक्ति की शैली को सामयिक समस्या बताते हुए कहते हैं–'साहित्य की सबसे बड़ी समस्या अभिव्यक्ति की शैली की है। यद्यपि इन दिनों जितना जोर विषयों और विचारों पर दिया जा रहा है उतना अभिव्यक्ति के सौंदर्य पर नहीं दिया जा रहा है।' (पृष्ठ-134) अभिव्यक्ति का माध्यम भाषा होती है अतः सशक्त अभिव्यक्ति के लिए सशक्त भाषा का प्रयोग आवश्यक होता है।

परंपरा और प्रयोग हिंदी साहित्य के प्रचलित शब्द हैं। वस्तुतः ये शब्द साहित्य के दो दृष्टिकोण हैं। प्रयोग नवीनता का प्रतीक है और परंपरा विरासत का। प्रयोग कथ्य और कथन दोनों में किए जाते हैं, किंतु लेखक ने प्रयोग को भाषा, अभिव्यक्ति और व्यवहार से संबंधित किया है। उनकी मान्यता है कि दोनों विकास की प्रक्रिया में एक-दूसरे से जुड़े होते हैं तथा प्रयोग का भवन परंपरा की नींव पर ही खड़ा किया जाता है।

साहित्य की रचना-प्रक्रिया में कलात्मक सौष्ठव के अतिरिक्त सामाजिकता और समय का तत्त्व भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। साहित्य की रचना-प्रक्रिया स्वाभाविक ढंग से चलती है, पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार नहीं। इस प्रक्रिया में कल्पना, यथार्थ, समय और सामाजिकता सभी संश्लिष्ट रहते हैं। अग्रवाल जी लिखते हैं–'रचनाकार के चिंतन और मस्तिष्क में उसके अनुभव, गुजरे दृश्य और घटनाएँ, सामूहिक अनुभव, अध्ययन के माध्यम से प्राप्त ज्ञान, कल्पना तथा घटनाओं के विश्लेषण से उपलब्ध यथार्थ तो होता ही है, साथ ही वह सामग्री भी सुरक्षित रहती है, जो चेतना से निकलकर अवचेतन में सुरक्षित हो जाती है।' (वही, पृ० 173)

जहाँ तक यथार्थ और कल्पना का प्रश्न है, पश्चिम में न जाने कितनी सिद्धांतिकियाँ निर्मित की गई हैं। फ्रायड एडलर युंग का मनोविश्लेषणवादी यथार्थ, मैथ्यू आर्नाल्ड का 'जीवन की

 ISSN 0975-735X

आलोचना' का यथार्थ, ये सभी विचार-सरणियाँ साहित्य समीक्षा के अनेक मानदंड निर्धारित करती हैं, किंतु गिरिराजशरण जी का यथार्थ भारी-भरकम सिद्धांत निर्मित नहीं करता। उनका यथार्थ तो सीधा-सरल, सत्यवादी विश्लेषण तथा मानववादी दृष्टिकोण पर आधारित है, घटनाओं और अनुभव की सत्यवादी कसौटी पर कसा हुआ। वह तो बौद्धकथा के उस वृद्ध अनुभवी कबूतर की भाँति है, जो सुख के साधन नहीं खोजता, किंतु उसके पीछे छिपे हुए बहेलिये के धोखे के जाल तथा षड्यंत्र को पहचानकर सर्वहिताय सावधानी बरतने की सलाह देता है। रचनाकार को उस अनुभवी कबूतर की भाँति ही सतर्क होकर आत्मविश्लेषण करना चाहिए ताकि त्रुटियों से बचा जा सके। जो साहित्यकार आत्मालोचन का सामर्थ्य रखता है, वही सफल रचनाकार होता है।

कल्पना, यथार्थ की अनुगामिनी होती है। यथार्थ वह दृश्य होता है, जो जैसा है वैसा ही दिखाई देता है। कल्पना की सक्रियता मानस-बिंब निर्मित करने में होती है, जिसे द्रष्टा कवि आत्मा में दृश्य के प्रभावों से ग्रहण करता है, यद्यपि इन प्रभावों को वह यथातथ्य ग्रहण न करके, दृश्य प्रकृति को तोडफोड़ कर उसकी आत्मा तक पहुँचकर उसे सौंदर्य से संश्लिष्ट कर देता है। कवि, कल्पना द्वारा यथार्थ को नया रूप दे देता है। गिरिराजशरण ने कल्पना को ऐसी रचनात्मक प्रक्रिया कहा है जो यथार्थ को विशिष्ट बनाती है। कल्पना का यह वैशिष्ट् अधिकतर प्रतीकों में देखा जा सकता है। कवि की अनुभूति कल्पना के द्वारा ही यथार्थ से जुड़ पाती है।

गिरिराजशरण के कुछ निबंध साहित्यिक समस्याओं को उजागर करते हैं भले ही उनका परिप्रेक्ष्य सामाजिक हो, आर्थिक हो अथवा अभिव्यक्तिगत या भाषिक। कुछ अन्य निबंध साहित्य के बहिरंग पक्ष से संबंधित हैं। बहिरंग तत्त्वों में सर्वप्रमुख समस्या भाषा की है। वे लेखक की आत्मतुष्टि को संप्रेषणीयता से बाँधकर देखते हैं। लेखक का उद्देश्य भी यही होता है कि वह अपनी कृति को प्रथमतः स्वयं पढ़े पश्चात् उसे पाठकों तक पहुँचाए। संप्रेषण भाषा के माध्यम से होता है। 'पाठक के लिए शब्दों की जो प्राथमिकता है, वह विषय की नहीं है। चूँकि विषय उसे शब्दों के माध्यम से दूसरे स्तर पर हाथ आता है।' (वही, पृष्ठ-47) भाषा के संबंध में अग्रवाल जी ने लेखक के दो दायित्वों का निर्देश किया है—प्रथम प्रचलित शब्दावली का रचनात्मक प्रयोग और द्वितीय प्रचलित भाषा का विकास और विस्तार। यह दायित्व-बोध कबीर में था, जिन्होंने भाषा को उर्वर बनाया था।

गिरिराजशरण ने साहित्य की उन ज्वलंत समस्याओं को उठाया है, जिनसे लेखक पाठक, संपादक निरंतर जूझ रहे हैं। संप्रति साहित्य में एक बहुत बड़ी समस्या आंदोलनात्मक खेमाबंदी की है। किसी भी विचारधारा के लिए प्रतिबद्ध होना एक बात है, किंतु उस विचारधारा के लिए गुटबाजी कर दूसरी विचारधाराओं के प्रति विरोधभाव रखकर दुष्प्रचार करना दूसरी बात है। प्रतिबद्धता एक सीमा के बाद साहित्यकार की स्वतंत्र सोच को बाधित करती है। लेखक की मान्यता है कि 'यदि साहित्यकार स्वयं अपनी इच्छा से कोई मत, कोई विशेष विचारधारा, कोई मान्यता अपनी सोच पर हावी कर लेता है और वह मत या मान्यता उसकी स्वतंत्र सोच को प्रभावित या उसकी रचनात्मक गतिविधियों में हस्तक्षेप करने लगती है तो निश्चित रूप से सृजनात्मक निष्पक्षता प्रभावित होती है।' (वही पृष्ठ-101) स्पष्ट है कि गिरिराजशरण के अनुसार लेखक को निष्पक्ष, तटस्थ और मताग्रहों से मुक्त रहना चाहिए। मतवादों की कट्टरता अंततः साहित्य की मौलिकता को ख़तरे में डाल देती है। लेखक ने मार्क्सवाद की क्रांतिकारी आंदोलनात्मक

प्रवृत्ति तथा वर्ग-संघर्ष की भावना के परिप्रेक्ष्य में तथा फ्रायड आदि मनोविश्लेषणवादियों के परिप्रेक्ष्य में साहित्यिक खेमाबंदी को विश्लेषित किया है तथा निष्पक्ष निर्णय दिए हैं।

उत्तर-आधुनिक युग की सबसे बड़ी समस्या है—बाजारवाद। उत्पादन के स्थान पर उपभोग को तरजीह देनेवाली इस उपभोक्तावादी संस्कृति में कला और साहित्य बिकाऊ हो गए हैं। गिरिराजशरण ने 'कबिरा खड़ा बाजार में' निबंध में साहित्य की इसी प्रवृत्ति की ओर संकेत किया है। कबीर के बहाने वे लिखते हैं—'कबीर अब बाजार में खड़ा होकर सबकी खैर नहीं माँगता, वह भलाई का प्रदर्शन करते हुए अपनी अधिक-से-अधिक कीमत माँगता है।' (वही, पृ॰ 165) लेखक ने अपनी गंभीर और पैनी दृष्टि से इस तथ्य को उजागर किया है कि बाजार की संस्कृति ने मान्य नैतिक व्यवस्था को ही ध्वस्त कर दिया है। साहित्य-जगत् में लेखक से कर्मी बनने की प्रक्रिया से गिरिराजशरण अत्यंत क्षुब्ध हैं। यदि श्रम का मूल्य लेकर कर्मी बनना है तो वारांगना भी तो यौनकर्मी ही कही जाती है। तो क्या साहित्यकार को कर्मी बनना अभिप्रेत है? अथवा उसे उच्चस्तरीय सर्जन नहीं करना चाहिए? कविसम्मेलन, पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन, सरकारी-अर्द्धसरकारी साहित्यिक संस्थाएँ तथा फिल्म-जगत् सभी बाजारवादी प्रवृत्तियों से संचालित हो रहे हैं। बावजूद इस प्रवृत्ति के लेखक आशावान है कि कभी-न-कभी तो ऐसा समय आएगा, जब साहित्यकार अपने निरंतर अविराम लेखन द्वारा साहित्य का सृजन 'सर्वजनहिताय' कर सकेगा।

बाजारवाद ने ही साहित्य-जगत् में भीड़तंत्र की स्थापना कर डाली है। मान सम्मान की वांछा एवं प्रदर्शन की प्रवृत्ति ने साहित्यकारों की संख्या में इज़ाफा किया है, लेकिन जैसे-जैसे लेखकों की संख्या बढ़ रही है साहित्य का स्तर गिरता जा रहा है। 'भीड़पन ललित कलाओं के लिए घातक है। ललित कलाओं का निर्णय ज्ञान द्वारा होना चाहिए, भीड़ के आधार पर नहीं।' (वही, पृ॰ 161) गिरिराजशरण जी ने इस भीड़तंत्र से बचाव का एक रास्ता सुझाया है कि पाठक और समीक्षक ही नवागंतुक साहित्यकारों का मार्गदर्शन कर उन्हें नैतिकता की ओर उन्मुख कर सकते हैं।

'हिंदी ग़ज़ल में मेरे अनुभव' निबंध गिरिराजशरण की व्यावहारिक समीक्षा का उत्कृष्ट उदाहरण है। निबंध की विशिष्टता और श्रेष्ठता इस बात में है कि उन्होंने एक ओर हिंदी ग़ज़लों की सामान्य रचना-प्रक्रिया का विश्लेषण किया है, जो नितांत वस्तुनिष्ठ है तो दूसरी ओर स्वयं के अनुभवों के माध्यम से वैयक्तिक और आत्मनिष्ठ विवेचन किया है। काव्य में रचयिता की मानसिक प्रवृत्तियों का आकलन करने के लिए उस पर पड़नेवाले प्रभावों की अपेक्षा होती है। 'हिंदी की सर्वश्रेष्ठ ग़ज़लों' का संपादन करने का दायित्व जब उन्हें सौंपा गया, तब मार्गदर्शन हेतु उन्होंने ग़ज़ल-विशेषज्ञ निश्तर ख़ानक़ाही से भेंट की और ग़ज़ल की तकनीकी जानकारी प्राप्त की। किसी भी कला की जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रेरक एवं दक्ष विशेषज्ञ की आवश्यकता होती है, जिन्हें हम गुरु अथवा उस्ताद की पदवी देते हैं। गुरु की प्रेरणा और उनके ज्ञान-दान के अतिरिक्त उत्कृष्ट साहित्य-सृजन के लिए अभ्यास भी आवश्यक होता है—'ग़जल की कला सीखने के लिए जितनी आवश्यकता एक गुरु की होती है, उससे ज़्यादा जरूरत अभ्यास की होती है।' (वही, पृ॰ 120)

कस्तूरी मृग सुगंध से मदमस्त कुलाँचे भरता हुआ उसके स्रोत की तलाश करता हुआ यहाँ-वहाँ भागता फिरता है, किंतु इस तथ्य से अनजान रहता है कि कस्तूरी की सुगंध तो उसकी नाभि

में ही है। फिक्र तौसवीं का दृष्टांत देते हुए गिरिराजशरण ने लिखा है कि पहले फिक्र तौसवीं उर्दू में कविता लिखते थे, लेकिन जब उन्होंने व्यंग्य-विधा में पदार्पण किया तो आश्चर्यचकित रह गए कि उनमें व्यंग्यकार की भी प्रतिभा है। गिरिराजशरण पर भी यही बात लागू होती है। हिंदी में कहानी, कविता, नाटक, व्यंग्य, जीवनी, संपादकीय लिखनेवाला साहित्यकार ग़ज़लें भी लिख सकता है और ग़ज़ल विधा के चरम तक पहुँच सकता है, संभवत: गिरिराजशरण स्वयं भी इससे अनभिज्ञ थे।

गिरिराजशरण ने हिंदी और उर्दू ग़ज़लों की समीक्षा कथ्य और शिल्प दोनों स्तरों पर की है, उनमें अंतर भी स्थापित किया है। भाषा के अंतर्गत उर्दू गजलों में प्रयुक्त क़ ख़ ग़ ज़ फ़ का हिंदीभाषा में क़ ख़ ग़ ज़ फ़ के परिप्रेक्ष्य में उन्होंने सूक्ष्म विश्लेषण किया है तथा उच्चारण स्थान और प्रयत्न के आधार पर उनमें अंतर भी बताया है। अधिकांश हिंदी ग़ज़लकार क़ ख़ ग़ ज़ फ़ का प्रयोग नहीं करते। हिंदी में इन्हें केंद्रीय स्वनिम न मानकर अकेंद्रीय स्वनिम माना गया है। डॉ॰ भोलानाथ तिवारी के अनुसार क़ ख़ ग़ अरबी + फारसी-तुर्की शब्दों में आते हैं तथा ज़ फ़ उक्त भाषाओं के अतिरिक्त अन्य योरोपीय भाषाओं अँग्रेजी आदि से हिंदी में आए हैं। क़ ख़ ग़ की तुलना में ज़ फ़ का ध्वन्यात्मक ढाँचा हिंदी के अधिक अनुकूल है। गिरिराजशरण की मान्यता है कि हिंदीभाषा अत्यंत उदार है। जब उसने विदेशी शब्दों को अपनाकर अपने शब्द-भंडार को समृद्ध किया है तो हिंदी-ग़ज़लकारों को भी उर्दू की कथित ध्वनियों को हिंदी में ग्रहण कर लेना चाहिए। उर्दू छंदों को भी हिंदी में अपनाए जाने के संबंध में उनका कथन है–'कुछ लोग हैं, जो ग़ज़ल की छंद-व्यवस्था को ज्यों का त्यों हिंदीभाषा में लेने को अनुचित मान रहे हैं...साहित्य में यह भी एक संकीर्ण मानसिकता ही है।' (वही, पृ॰ 116)

किसी भी रचनाकार से उसकी अभीष्ट विधा में रचना करने के लिए विधागत व्याकरणिक दक्षता की अपेक्षा भले ही न हो, किंतु एक समीक्षक से यह अपेक्षा अवश्य होती है कि आलोचना करने से पूर्व वह आलोच्यकृति को भीतर-बाहर दोनों ही ओर से उसके रोयें-रेशे की सूक्ष्म पहचान कर ले। इस दृष्टि से गिरिराजशरण सिद्ध ग़ज़लकार हैं और प्रबुद्ध समीक्षक हैं। समीक्षा के क्षेत्र में वे 'अहो रूपं अहो ध्वनि:' से काम नहीं चलाते। निष्पक्षता उनकी आलोचना का प्राथमिक वैशिष्ट्य है। उनकी आलोचना की एक अन्य विशेषता है कि वे आत्मालोचना करते समय स्वत: पर भी वार करने से नहीं चूकते। ऐसा करते समय वे आत्मरति, आत्मप्रशंसा से बहुत ऊपर उठ जाते हैं।

'सवाल साहित्य के' के सभी आलोचनात्मक निबंधों को किसी विशिष्ट विचारधारा की सीमारेखा में नहीं बाँधा जा सकता, न ही उनकी कोई गणितीय माप की जा सकती है। उनमें निहित विचार एक सीधी रेखा में न चलकर तरंगायित होते रहते हैं, यद्यपि अपने केंद्र से कभी नहीं हटते। बस, मैंने विचारों की उसी केंद्रीयता को पकड़ने की कोशिश की है। यदि कहीं वे हाथ से फिसल गए हों तो वह मेरी ही चूक कही जाएगी, लेखक की नहीं।

यह पूर्व में भी कहा जा चुका है कि उक्त पुस्तक के माध्यम से गिरिराजशरण आलोचना की सिद्धांतिकी अथवा उसके मानक निर्धारित नहीं करना चाहते थे वरन् साहित्यिक समस्याओं से जूझकर उनका हल निकालना चाहते थे। अक्सर अन्य साहित्यकार अपनी कृतियों में समस्याएँ तो दर्शाते हैं, किंतु उसका समाधान प्रस्तुत नहीं करते। गिरिराजशरण ने साहित्यिक समस्याओं के

किसी एक पहलू को पकड़कर उसके अंतिम छोर तक पहुँचने का प्रयास किया है तथा किसी भी प्रश्न को अनुत्तरित नहीं छोड़ा है। यों उनके सवाल-जवाब की शैली ने साहित्य-समीक्षा के कतिपय सूत्र भी दिए हैं, जिनका समीक्षा के क्षेत्र में अत्यंत समादर रहेगा।

अपने समीक्षकीय निर्णयों के लिए गिरिराजशरण ने आगमन, निगमन दोनों ही शैलियाँ अपनाई हैं। 'गद्य में उपमाओं और प्रतीकों का प्रयोग' निबंध में निगमन शैली अपनाते हुए वे लिखते हैं–'यदि कोई लेखक आम आदमी की भाषा को रचनात्मक ढंग से प्रयोग नहीं कर रहा है तो वह आम आदमी के साधारण व्यवहार से ऊपर नहीं उठ पाएगा। उदाहरण के लिए–

कोई आता है, कोई जाता है
कौन जग में जगह बनाता है (पृ॰59)

यहाँ निर्णीत सिद्धांत पूर्व में है, और प्रमाणस्वरूप उदाहरण पश्चात् में। उक्त उदाहरण की विशद व्याख्या करते हुए वे आम बोलचाल की भाषा को रचनाकार द्वारा कलात्मक बनाए जाने की सलाह देते हैं। एक अन्य उदाहरण 'यथार्थ, कल्पना और सामाजिकता' से है, जहाँ वे कबूतरवाली बौद्धकथा का उदाहरण देते हैं–'कभी की पढ़ी हुई कथा याद आ गई है। रातभर विश्राम करने के बाद भूखे कबूतरों के एक झुंड ने...कबूतर बहेलिए की पकड़ में थे। अब उनके सामने कोई उपाय शेष नहीं रह गया था।' (पृ॰ 176) कबूतरों ने अनुभवी कबूतर की सलाह नहीं मानी थी, इसीलिए उनका ऐसा हश्र हुआ था। इस बौद्धकथा का दृष्टांत देने के पश्चात् लेखक ने टिप्पणी दी है–'हम सब मानव-प्राणी सीधे-सादे सरल कबूतरों की भाँति हैं–हम चावलों के दाने देखकर धोखा खा रहे हैं। विश्वास करने को तैयार नहीं हैं कि आसपास कहीं बहेलिया भी छिपा हो सकता है।' (वही, पृ॰ 178) इस दृष्टांत में कथा-विवरण पूर्ववर्ती है निष्कर्ष पश्चातवर्ती।

'अभिव्यक्ति में उलझाव की समस्या' पर निबंध लिखनेवाले गिरिराजशरण की भाषा अत्यंत सरल, सशक्त और प्रभावशाली है। उनकी भाषा-शैली पर ध्यान देने पर अनुभव होता है कि उनका लेखन प्रशांत मनोदशा में किया गया है। भाषा, भावों और विचारों की सहचरी होती हैं और भिन्न-भिन्न विधाओं में विभिन्न परिधान धारण कर उपस्थित होती है। उनकी भाषा न केवल परिमार्जित और उच्चस्तरीय है वरन् पाठकों के मानसिक और भाषागत स्तर को ऊँचा उठाने में भी सक्षम है। इस प्रकार आलोचक के रूप में गिरिराजशरण साहित्यकार के दायित्व-बोध से भलीभाँति परिचित हैं तथा दायित्वों को निभाने में अत्यंत सजग और सचेत। एक अच्छे समीक्षक के रूप में हमें उनसे बहुत आशाएँ हैं।

सेवानिवृत्त पी॰जी॰ प्राचार्य
650, **नेपियर टाउन, भँवरताल**
पानी की टंकी के सामने, जबलपुर (म॰प्र॰) 482001
pawanknisha@gmail.com

भगवानदास मोरवाल के उपन्यासों में मेवाती संस्कृति का विश्लेषण

डॉ॰ वरिंदरजीत कौर
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
देवसमाज कॉलेज फॉर वूमेन, फिरोजपुर (पंजाब)

साहित्य और समाज का आपस में गहरा संबंध है। समाज की भावनाएँ ही लेखनीबद्ध होकर साहित्य की संज्ञा प्राप्त करती हैं। प्रत्येक समाज की संस्कृति, अर्थ-व्यवस्था, राजनीतिक व्यवस्था, वैज्ञानिक प्रगति, रूढ़ि-परंपराओं की स्थिति और भावी बहुमुखी योजनाओं का प्रतिबिंब उसका साहित्य ही होता है। कोई समाज अथवा जाति, विकास के किस स्तर पर है, इसका अनुमान उसके साहित्य से सहज ही लगाया जा सकता है। साहित्य में युग के परिवेश का प्रभाव होता है। साहित्यकार जो भी अपने जीवन व परिवेश में देखता है, महसूस करता है, जीता है, उसे अपनी लेखनी का माध्यम बनाता है। प्रत्येक अच्छा साहित्य अपने समाज के परिवेश का आकलन करता है और अपनी अंतर्दृष्टि के अनुसार समाज को नई गति और नई दिशा प्रदान करता है। भगवानदास मोरवाल आधुनिक हिंदी कथासाहित्य के उभरते साहित्यकारों में से एक हैं, जिन्होंने मेवाती समाज तथा उसकी संस्कृति को अपने कथासाहित्य में बड़े सशक्त ढंग से अभिव्यक्त किया है।

भगवानदास मोरवाल के साहित्य के केंद्र में मेवात क्षेत्र है, जो हरियाणा-राजस्थान सीमा पर स्थित है। मेवात, हरियाणा का पिछड़ा इलाका है, जहाँ मेव जाति के लोग रहते हैं। मेव समाज के इतिहास पर दृष्टि डाली जाए तो 'मेव' इस मेवात क्षेत्र का बहुसंख्यक समुदाय है, जो कि इस्लाम धर्म से है, पर वह अपने-आपको एक मुसलमान के रूप में नहीं वरन् मेव के रूप में ही पहचानता है। विभाजन के समय गांधीजी के कहने पर पाकिस्तान न जानेवाले ये मेव मुसलमान अटल देशभक्त रहे हैं।

अट्ठारह सौ सत्तावन में दो सौ अट्ठावन मेव जाति के लोग शहीद हुए थे। हसन खाँ मेवाती इनका प्रेरक व्यक्तित्व है, जिसने बाबर का साथ न देते हुए राजा सांगा का साथ दिया। मेव एक धर्मपरिवर्तित मुसलमान जाति है, जो हिंदू से मुसलमान बने हैं। मूलरूप से कई हिंदू-जातियों से इनका संबंध रहा है। मेवों में आज भी हिंदू-जातियों जैसे रीति-रिवाज पाए जाते हैं। मेवात क्षेत्र में हिंदू और मुसलमान दोनों धर्मों के लोग एक इकाई के रूप में रहते आ रहे हैं।

भगवानदास मोरवाल के उपन्यासों 'काला पहाड़' और 'बाबल तेरा देस में' के अतिरिक्त विभिन्न कहानियों में मेवाती समाज और संस्कृति उभरकर सामने आई है, जिसका विर्णन इस प्रकार है–

संस्कृति मानव-समाज का एक अभिन्न हिस्सा है। समाज सामाजिक संबंधों की व्यवस्था है। सामाजिक संबंधों का विकास, संचालन और निर्देशन सांस्कृतिक मूल्यों तथा नियमों द्वारा होता है। इस संदर्भ में गिलिन और गिलिन का कहना है कि 'संस्कृति के संदर्भ को और समूह-समूह में की जानेवाली क्रियाओं को समझ सकते हैं।'[1]

'It is in term of culture that we are able to understand and specific activities of the individual members in their social relations and also the activities of the group vis-a-vis group.'—Gillian and Gillian

प्रत्येक समाज अपने पारंपरिक संस्कार, रीति-रिवाज और आचार-विचार के जीवन में प्रचलित प्रथाओं के प्रति विशेष आस्था रखता है। ये रीति-रिवाज और परंपराएँ उसकी संस्कृति का महत्त्वपूर्ण अंग होते हैं। इस संबंध में नर्मदेश्वरप्रसाद लिखते हैं, 'प्रत्येक सामाजिक समुदाय की एक अपनी संस्कृति होती है, जो अन्य समुदायों की संस्कृति से कुछ अंशों में मिलती-जुलती है और कुछ अंशों में नहीं। संस्कृति समुदाय के सोचने और काम करने का ढंग या तरीका हुआ करती है, वह एक प्रकार का सामाजिक वातावरण तैयार करती है, जिसमें मनुष्य जन्म लेता है और अपनी विशिष्ट संस्कृति द्वारा निर्मित रीति-रिवाजों को अनायास सहज और स्वाभाविक रूप से ग्रहण कर लेता है।'[2]

भारतीय संस्कृति अत्यंत प्राचीन है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार के जीवन को उज्ज्वल बनाने की भावना विद्यमान रही है। संस्कृति समाज की आत्मा है, जिससे परिचालित होकर वह आगे बढ़ता है। व्रत, उत्सव, तीज-त्योहार, रीति-रिवाज, संस्कार, प्रधान परंपराएँ, जन-रीतियाँ, रूढ़ियाँ इत्यादि सभी इसमें समाहित होती हैं।

उपन्यास 'काला पहाड़' और 'बाबल तेरा देस में' दोनों में मेवाती समाज उभरकर सामने आया है। मेवाती समाज में हिंदू-मुस्लिमों की सांझी संस्कृति है। सदियों से यहाँ हिंदू और मेव (मुसलमान) इकट्ठे रहते आ रहे हैं। इनका साँझा भाईचारा है, तीज त्योहार, पर्व साँझे हैं, 'ठीक तीज वाले दिन पूरे नगीना में मेला सा लग गया। रहड़ीवालों ने बीच गोहरवाली में खाने-पीने की दुकानें सजा लीं। इन रहड़ीवालों की याद ताजा होते ही सलेमी का यह भी कहना है कि उस दिन रहड़ीवालों के पास जितना सामान था, देखते-ही-देखते सब खत्म हो गया। बहरहाल—मुम्मा मनिहार के बंगले से सारे हुचकों और पतंगों को लाला नौबतराय की हवेली की सबसे ऊपरवाली छत पर लाकर रख दिया गया। मंगतु के हिसाब से लाला नौबतराय की छत ही इस मौके के लिए सबसे उपयुक्त थी। पेच शुरू होने से पहले रील के रास्ते में पड़नेवाली ऊँची-ऊँची नीम, पीपल और कीकर की टहनियों को छाँग दिया गया, ताँकि पेच लड़ते समय रील इन टहनियों में उलझ न पाए। सारा नगीना घरों से निकलकर अपनी-अपनी छतों पर आ गया और इंतजार करने लगा, मंगतू की अँगुलियों की जादू का।'[3] इस प्रकार तीज के त्योहार पर पतंगबाजी के दौरान सारा जनमानस इनमें उमड़ पड़ता है। मनोरंजन, खेलकूद हमारे समाज और संस्कृति का अभिन्न हिस्सा है।

पर्व, त्योहार, मेले, प्रथाएँ संस्कृति के मूलभूत तत्त्वों के रूप में समाहित हैं। मानव-जीवन में आमोद-प्रमोद का अपना विशिष्ट स्थान है। समाज में विभिन्न पर्वों एवं त्योहारों का आयोजन भी मुख्यत: इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु किया जाता है। पर्व-त्यौहार सांस्कृतिक गरिमा के द्योतक हैं तथा

जन-जन को उमंग, उल्लास व आनंद को मूर्त रूप प्रदान करते हैं। उपन्यास 'काला पहाड़' में तीज के त्योहार पर पतंगबाजी के आयोजन की अभिव्यक्ति हुई है, जिसे मेवाती समाज पूरे हर्षोल्लास से मनाता है।

लोकगीत में मेवाती समाज की संस्कृति में कीर्तन, भजन तथा कथवार्ता आदि धार्मिक कृत्य भी सम्मिलित हैं। ग्रामीण समाज की तरह मेवाती समाज का ऐसा कोई अंग नहीं, जिस पर धर्म का प्रभाव न पड़ता हो। गाँव में जिस घर में पुत्र का जन्म होता है, तो सबसे पहले दादाखानू की मजार पर चादर चढ़ाने का रिवाज है।

साथ ही मेवात की अमर लोकगाथाएँ–चंद्रावल गूजरी की बात, शमसुद्दीन पठान की बात, चूहड़सिंह की बात, खैरा मेव की बात, महादेव-गौरा को दल, शाह जमाल की बात, पंडून को कड़ा, दरिया खाँ मेव, शशि बदनी मीणी की प्रेमकथा आदि हैं, जो मेवाती लोकसंस्कृति का हिस्सा हैं। इन सभी में मेवाती समाज के स्वभाव की अच्छाइयों-बुराइयों की सूक्ष्म झलक मिलती है।

इन लोकगीतों में कुछ आलोप होते जा रहे हैं, जिनमें 'रतवाई' लोकगीत प्रमुख है। 'रतवाई, अब कहान् धरी है रतवांई...अब तो ये सुपना होगी। धीरे से अतीत में झाँकते हुए बोली असगरी।'[4] अब केवल बुजुर्ग पीढ़ी की औरतें ही इन लोकगीत को गाकर सुनाती हैं–

परवत पे मोरा नाच रहो
देख तो चलूँ याको नाच
बलम डोला डाट्यो।
मेरा नणदी का बीरा
परदेसी की पीत, सू को तापणो
परदेसी उठ जाए, जीव को दाझणो
झूठी मोती ओय की
पौन पले दल जाए
भरोसो ना है मौत को।

इसके बाद दादी जैतूनी ने सुनाई कुछ रतवाई–

औंडी रोटी घी घणो
खा ले तेरा नणदी का बीर
तोमें भेरो जी घणो।
औंडी जौल कठोल की
गोदी में ले ले मेरा नणदी का बीर
लावण तो भीजे जोल की।'[5]

ये लोकगीत ग्रामीण जनता की भावनाओं, उनकी अनुभूतियों एवं संवेगों का प्रतिनिधित्व करते हैं। किसी क्षेत्र-विशेष के लोगगीतों की भाषा क्षेत्रीय होती है। विभिन्न अवसरों पर विभिन्न प्रकार के लोकगीत गाए जाते हैं ।

'लोकगीत लोकमानस के व्यक्तिगत और सामूहिक सुख-दु:ख की लयात्मक अभिव्यक्ति होते हैं। लोककथा की भाँति ये भी लोककंठ की मौखिक परंपरा की धरोहर और लोकमानस की

विविध चिंताधाराओं के कोण माने गए हैं।'[6] इन लोकगीतों में उन भावों की भी अभिव्यक्ति होती है, जिनको सामान्य तौर पर अभिव्यक्त करने में ग्रामीण समाज हिचकिचाता है।

लोकगीतों के साथ-साथ लोकनृत्यों की समृद्ध परंपरा होती है। ये नृत्य लोकजीवन में खुशी व उल्लास पैदा करते हैं।

'जब मंच पर राजा इंदर की आमद की पूरी तैयारी हो गई, यानी सभा के लिए गावतकिया और आस-पास कुर्सियाँ बिछ गईं, तब राजा इंदर ने दरबार में पर्दापण किया। राजा इंदर ने आते ही हुक्म दिया कि आज उनका मन परियों का मुजरा देखने को है, इसलिए सभा में आते ही वह कहने लगे—

राजा हूँ मैं कौम का, इंदर मेरा नाम
बिन परियों की दीद के मुझे नहीं आराम
सुनो रे मेरे देव रे दिल को नहीं करार
जल्दी मेरे वास्ते सभा करो तैयार
लाओ परियों को जल्दी जाकर यहाँ
बारी-बारी आन कर मुजरा करें यहाँ।

मुजरा रुकते ही पूरा नोहरा मारे शोर के गूँज उठा...!

भीड़ की व्यग्रता के आगे आयोजकों को नोहरे का फाटक खोलना पड़ा। नोहरे का फाटक खुलते ही भीड़ बाँध में ठहाटा मार रहे पानी की तरह अंदर की ओर टूट पड़ी।'[7]

अत: लोकगीत, लोकनृत्य इत्यादि प्रत्येक समाज की संस्कृति का अभिन्न हिस्सा होते हैं। ये समाजिकता एवं सामूहिकता की भावना को पूरे समाज में फैलाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

घर में पुत्र पैदा होने पर ये लोग दादा खानू की समाधि पर चादर चढ़ाते हैं, जिस दौरान गाँव की औरतें समवेत स्वर में गीत गाती हैं। दादाखानू की समाधि पर गलेप चढ़ाने के बाद लोग पंचपीर पर चादर चढ़ाने जाते हैं और औरतों द्वारा भजन गाए जाते हैं—

चारों पीर अरस्ते उतरे
खेलत गरत भसानी
तुम देखो लाल या सायब की वानी
बानी बानी हले दीवानी
लाल बंग अंगमानी
चार भरोटा दूब के लाओ
दो आले, दो सूफे।[8]

हिंदू-मुस्लिम दोनों द्वारा मन्नत पूरी होने पर दादाखानू व पंचपीर पर चादर चढ़ाने का मेवाती समाज में रिवाज है, जिसे पूरे उल्लास से मनाया जाता है।

संस्कृति में सम्मिलित विभिन्न रीति-रिवाजों में विवाह के समय किए जानेवाले रीति-रिवाजों को बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। इन रीति-रिवाजों को करते समय औरतें वर से मजाक करती हैं तथा साथ ही गीत गाते समय माहौल भावनापूर्ण हो जाता है। लड़के के पक्ष में सबसे पहले बनवारे की रस्म की जाती है, जिसके अनुसार वर अर्थात् लड़के को घी-बूरा खिलाया जाता है तथा लड़के की बड़ी बहन थाली में दिया जलाकर उसकी आरती उतारती है। 'थाली को बाएँ

हाथ की हथेली पर रख, लूगड़ी के पल्ली से दीए की ओट पर रहमती सलेमी के साथ आगे-आगे चल दी और पीछे-पीछे चल दी बनवारे का गीत गाती हुई औरतें–

धौले-धौले चावल, उजलो है भात
उजली बतीसी बरवारो जोतो
मैं तोहे बूझूँ मेरे सुघड़ बनड़ा, मेरे चतर बनड़ा
तेरो बनवारो री किन्ने नोतो
दादा मेरो राजा, दादी रानी होए
मेरे बनवारो रो, उन्ने नोतो
बाबा मेरो राजा, भाई रानी होए
मेरो बनवारो री उन्ने नोतो
ताऊ मेरो राजा, ताई रानी होए
मेरो बनवरो री, उन्ने नोतो
धौले-धौले चावल।[9]

उबटन की रस्म की जाती है उस समय भी गात गाए जाते हैं–

काए को तेरो बटणो
काए को तेरो तेल
गेहूँ-चणा को बटणा
सिरसू को मेरो तेल...।[10]

विवाह के कुछ दिन पहले चाक पूजना की रस्म की जाती है। इस रस्म में गाँव की नाइन अनाज, गुड़, सरसों का तेल, चावल से भरी टोकरी को चाक के पास रखती है। इसके बाद पानी से लीपकर बनाए चाक के चौसर हिस्से पर थाली में रखी गीली हल्दी का स्वास्तिक बनाया जाता है और उसके बाद चाक के चारों तरफ कलावा धागा बाँधकर चाकपूजा की रस्म की जाती है। इस रस्म के समय औरतें गीत गाती हैं–

चौबारा ये मसीन चलावे दरजी को
या कुर्ती ए अपणा जेठ लू खिऊँगी
वही तो देवेगो याको दाम
चौबारा पे मसीन चलावे दरजी को
जेठ भला ने घोड़ी बख्सी
ना लूँ री ना लूँ करे दरजी को
चौबारा पे मसीन पलावे दरजी को।[11]

मेवाती समाज में विवाह के समय विभिन्न रीति-रिवाज किए जाते हैं। इसके बाद शाम को बन्ना के गीत गाए जाते हैं। दूल्हे को बनड़ा की संज्ञा दी जाती है और स्त्रियाँ उसे संबोधित करके गाती हैं–

बनड़ा ले ले कलम दवात, चलो जा पढ़णा कू,
इसलामी मदरसों पास, चलो जा पढ़णा कू,
बनड़ा मैं जाणू बाबा गयो, तेरी माई पे अजब बहार

चलो जा पढ़णा कू बनड़ा ले ले कलम दवात।[12]

विवाह के कुछ दिन पहले दूल्हे को तेल व बेसन का लेप लगाया जाता है। इस लेप को बटणा कहा जाता है। जब दूल्हे लड़के को बटणा लगाया जाता है, तो स्त्रियाँ लोकगीत गाती हैं।

इसी प्रकार लड़की के घर में भी क्रियाएँ शुरू हो जाती हैं। लोकगीत गाए जाते हैं और उबटन लगाया जाता है। दूसरी ओर विवाह की रस्मों में चाक पूजना की रस्म की जाती है। इस समय में लोकगीत गाए जाते हैं। विवाह के एक दिन पहले वरपक्ष और कन्यापक्ष दोनों तरफ लड़के की माँ का भाई व उधर लड़की की माँ का भाई भात करने की रस्म अदा करते हैं। भात के रूप में लड़के और लड़की की माँ को उपहार व आर्थिक सहायता दी जाती है। यह विवाह का महत्त्वपूर्ण रीति-रिवाज माना जाता है और इससे दोनों पक्षों की सामाजिक प्रतिष्ठा भी बढ़ती है। इस अवसर पर ननिहाल पक्ष की प्रशंसा भरे गीत गाए जाते हैं–

भाई अच्छो भरियो भात बहाण टोटो में
थाली में डेढ़ हजार मोहर लोटा में
मैं हँसती कठला पहर खड़ी कोठा में
भाई अच्छो भरियो भात बहाण टोटे में।[13]

विवाह में दोनों पक्षों की ओर खूब हँसी उल्लास होता है।

दूल्हे की सेहराबंदी, बारात की रवानगी, लड़की पक्षवालों द्वारा बारात का स्वागत, उनकी सेवा, निकाह पढ़ना तथा अंत में बिदाई की रस्मों को किया जाता है। विवाह के रीति-रिवाजों में उस समाज के सामाजिक जीवन तथा लोकसंस्कृति उद्घाटित होती है, जो किसी भी समाज की अमूल्य निधि होते हैं। इन रीति-रिवाजों को करते हुए लोग अपनी परंपराओं को फिर से जीवित कर लेते हैं।

इस्लाम धर्म में लड़के के खतने व मुसलमानी करने का रिवाज है। उपन्यास 'बाबल तेरा देस में' मुसलमानी रस्म का उद्घाटन हुआ है, फत्तू लियाकत से नजर बचाने की कोशिश करते हुए और नजदीक आया तथा धीरे से कुर्ता उठाकर लियाकत की जननेंद्रिय के अग्र की पतली त्वचा को चिरी हुई खपच्ची में डाल...लियाकत से बोला, 'बेटा देख तिहारी मेड़ी पे जाणे ई कहा बैठी है।'...और फिर, फत्तू के होंठों से कूटते 'बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रऽऽहीऽऽय' के अस्फुट शब्दों के साथ लियाकत के कर्णभेदी चीत्कार से पूरा चौक गूँज उठा। जननेंद्रिय के अग्र भाग की पतली चमड़ी कटकर राख से भरी परात में आ गिरी। सुर्ख खून की पतली धार बँध गई जननेंद्रिय से।'[14] मुसलमानी रस्म को लोग बड़े उल्लास व उत्साह से मनाते हैं और लड्डू बाँटते हैं।

परंतु वर्तमान समय में हमारी साँझी संस्कृति में कुछ दूरियाँ पैदा हो रही हैं, जिससे हमारी साँझी परंपराएँ छिन्न-भिन्न हो रही हैं। बहुसंख्यक-अल्पसंख्यक जैसी शब्दावली बनाई जा रही है, जिसके पीछे राजनीतिक प्रपंच है। बाबू खाँ जैसे युवा अपनी परंपराओं को छोड़ अपने संप्रदाय के रीति-रिवाजों के अनुसार निकाह करवाने लगे हैं। तमाम राजनीतिक-संप्रदायिक प्रदूषण में पहली बार नौसी बुरके में आती है। लड़की-लड़केवाले तय करते हैं कि इस्लामी रीति-रिवाज से विवाह होगा। जबकि अब से पहले साँझी परंपराओं के रीति-रिवाजों से विवाह होते आए हैं, जिसके पीछे वर्तमान समय के स्वार्थी राजनीतिज्ञों द्वारा परोसी जा रही सांप्रदायिक शिक्षा का हाथ है।

अत: कहा जा सकता है कि प्रत्येक समाज की अपनी संस्कृति होती है। व्यक्ति अपने

सांस्कृतिक परिवेश के अनुसार ही रीति-रिवाज, तीज-त्योहार को मनाता हुआ जीवन व्यतीत करता है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी मिले संस्कारों और परंपराओं का सम्मान करता है। भगवानदास मोरवाल के कथासाहित्य में विशेष रूप से मेवाती समाज उभरकर सामने आया है। जहाँ हिंदू-मेव की साँझी संस्कृति सदियों से कायम है। ये लोग विवाह, सगाई, नामकरण, उबटन लगाना, भोज, भात, न्यौता देना, छोरा रोकना सभी रिवाज मिलकर करते आ रहे हैं। यह तीज-त्योहार बड़े उल्लास से मनाते हैं। साथ ही अपनी मन्नत पूरी होने पर हिंदुओं का मजार पर गलेप चढ़ाना, चाक पूजना, कुँआ पूजना, पाँच वक्त की नमाज का पूरा ध्यान, दोनों संप्रदाय द्वारा रखना वहाँ की साँझी संस्कृति को उद्‌घाटित करता है। भारतीय सामाजिक संरचना वैविध्यपूर्ण है तथा हमारी नागरिक के रूप में पहचान अपने धर्म और संप्रदाय से ऊपर है। हिंदू या मुसलमान बाद में हम हिंदुस्तानी, या 'काला पहाड़' के संदर्भ में देखें तो मेव या हिंदू के बजाय एक मेवाती के रूप में पहले हैं। इसीलिए हमारे सुख-दु:ख, जरूरतें, समस्याएँ इत्यादि साँझी हैं। परंतु अब कुछ विशेष किस्म की जटिलताएँ, जिनमें असामाजिक तत्त्व तथा सांप्रदायिक भावनाएँ खास तौर पर पनपने के कारण हमारी साँझी संस्कृति और परंपराएँ तेजी से छिन्न-भिन्न हो रही हैं। विवेच्च कथासाहित्य में आयोध्या के स्याहपक्ष को केंद्रित करने के पीछे हमारी बहुलतावादी संस्कृति को खंडित करने के लिए जिस तेजी के साथ प्रयास किए जा रहे हैं, उनके प्रति कथाकार ने हमें सचेत रहने का संकेत दिया है।

संदर्भ

1. Gillan and Gillan 'Cultural Sociology', P. 139
2. नर्मदेश्वर प्रसाद, मानवव्यवहार और सामाजिक व्यवस्था, पृ॰ 75
3. भगवानदास मोरवाल, काला पहाड़, पृ॰ 128
4. भगवानदास मोरवाल, बाबल तेरा देस में, पृ॰ 275
5. वही, पृ॰ 275
6. विश्वंभरदयाल गुप्त, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी-उपन्यास और ग्राम-चेतना, पृ॰ 208
7. भगवानदास मोरवाल, काला पहाड़, पृ॰ 43-44
8. वही, पृ॰ 37
9. वही, पृ॰ 110
10. वही, पृ॰ 114
11. वही, पृ॰ 118
12. वही, पृ॰113
13. भगवानदास मोरवाल, बाबल तेरा देस में, पृ॰ 315
14. वही, पृ॰ 235

मो॰ 8054999425

varinderkaur0110@gmail.com

मेहरुन्निसा परवेज की कहानियों में निम्नवर्गीय जीवन

वसीम (शोधार्थी)
एन०ए०एस० कॉलिज, मेरठ

कथाकार मेहरुन्निसा परवेज का नाम महिला लेखिकाओं में किसी परिचय का मोहताज नहीं है। मेहरुन्निसा परवेज का निम्नवर्गीय समाज से बहुत गहरा संबंध रहा है, क्योंकि उनका जन्म आदिवासी-बहुल क्षेत्र में हुआ। जहाँ उन्होंने निम्नवर्ग के जीवन को निकट से देखा-परखा और उनकी संवेदनाओं को हृदय के गर्त में उतारकर कलम के माध्यम से कागज पर उकेरा। मेहरुन्निसा परवेज के शब्दों में 'मुझे प्रसन्नता तथा गर्व है कि मेरा जीवन तथा बचपन आदिवासियों के बीच ही हुआ और गुजरा। मैं इन्हीं के हाथों पली-बढ़ी। इन्हीं की कहानियाँ बातें सुनती। इन्हीं के दु:ख में रो पड़ती तथा इनके सुख में प्रसन्न हो जाती।'[1] मेहरुन्निसा परवेज ने अपनी कहानियों में निम्नवर्गीय समाज के जीवन की स्थिति का यथार्थ चित्रण तटस्थता के साथ किया है। इनकी कहानियों में निम्नवर्ग के पात्र अज्ञानी, अनपढ़, गरीब और शोषित हैं, परंतु अपनी स्थिति को बदलने हेतु प्रयासरत कम ही दिखते हैं, मानो वे परिस्थितियों से समझौता करते नजर आते हैं।

स्वतंत्रता के पश्चात् देश के विकास के लिए नए-नए उद्योगों को बढ़ावा दिया गया। अमीरों ने गरीबों को काम तो दिया, परंतु उनकी स्थिति दयनीय ही बनी रही। न तो उनकी रहने की उचित व्यवस्था की गई और न ही उनकी स्थिति को बदलने के प्रयास किए गए। एक छोटे से घर में परिवार के सदस्य इस प्रकार जीवन व्यतीत करते हैं, जैसे इन घरों में मानव नहीं, बल्कि जानवर बाड़े में रह रहे हों। इस स्थिति का यथार्थ वर्णन लेखिका मेहरुन्निसा परवेज ने मध्य प्रदेश की इंद्रावती नदी के आस-पास बसे गाँवों के माध्यम से इस प्रकार किया है-'फूस की छत से ढँके घरों वाला मुहल्ला था उसका। घरों के सामने चरती मुर्गियाँ, मिट्टी के ताजे लिपे-पुते ओसारे, कोठार में बकरियों की हेड़ की हेड़, ताजी माटी की गंध से भरे कमरे, नंगे बच्चों की सैलानी जमात, जिन्हें विरासत में माँ-बाप का पेशा और लिजलिजी गरीबी ढोनी थी।'[2]

ऐसे ही-'वह कुँए के पास खड़ा आश्चर्य से मकान की नाप-तौल करने लगा। पच्चीस बाई पचास के प्लाट पर करीब पंद्रह फैमिली जी रही थीं, मकान देख लगता था, जैसे उन्होंने हवा के निकलने की जगह नहीं छोड़ी, जैसे बरसाती पुलिया के नीचे देर सुअर भरे हों।'[3]

इन उदाहरणों से लेखिका का अभिप्राय: है कि एक ओर तो अमीर लोग बँगलों, कोठियों और लग्जरी फ्लटों में रह रहे हैं, तो दूसरी ओर गरीबों को अपने पैर फैलाने तक की जगह प्राप्त नही है। वर्तमान समय में भी हम इस स्थिति से बाहर नहीं निकले हैं।

शिक्षा मानव को समाज में सिर उठाकर जीने का अधिकार देती है, परंतु आज शिक्षा के व्यवसायिकरण ने मानो गरीबवर्ग को शिक्षा से वंचित कर दिया है। उच्च शिक्षा तो अब इतनी

 ISSN 0975-735X

महँगी हो गई है कि निम्नवर्गीय समाज को अपना घर तक बेचना पड़ जाता है। अधिकांश बच्चे, युवा इसी कारण शिक्षा को छोड़कर अपने पुश्तैनी व्यवसाय में लग जाते हैं। जैसे–'मैं क्या कह रहा हूँ ?' राजू पलटकर बोला, 'मैं वही तो कह रहा हूँ पापाजी, अब आप बहुत बूढ़े हो गए हैं। वह घर बैठे, मैं उनकी जगह दुकान पर बैठूँगा। मुझे नहीं बनना बड़ा आदमी, मैं पापाजी की तरह चिमनी बनाना चाहता हूँ।'[4]

शिक्षा व्यक्ति को चेतना देती है। शिक्षा के अभाव के कारण व्यक्ति अनेक प्रकार के अंधविश्वासों, पाखंडों और कर्मकांडों में पड़कर अपने जीवन को बर्बाद कर देते हैं। निम्नवर्ग में शिक्षा का अभाव होता है, इसी कारण यही लोग धर्म के नाम पर सबसे अधिक शोषण का शिकार होते हैं। धर्म की आड़ में वह अपना जीवन नरक बना लेते हैं। मेहरुन्निसा परवेज ने इस समस्या को इन शब्दों में व्यक्त किया है–'अब तो शाइस्ता इस काम में माहिर हो गई थी। मुँह अँधेरे वह दरगाह में इलायचीदाना समेटने पहुँच जाती थी, तब कोई उठा नहीं रहता था। बस दरगाह के मुजावर जागते थे। गाँव के लोगों को पता चल जाए तो लोगों की श्रद्धा ही टूट जाए। दुकान में दरगाह के और उसके बाबा का आधा-आधा शेयर होता था। रोज वही चादरें चढ़तीं, रात को वही चादरें उतारकर वापस दुकान में पहुँचा दी जातीं। यह सारा काम बहुत सफाई से होता। कोई जानता नहीं था, जो जान भी लेता तो अपनी जुबान बंद रखता। धर्म के कामों में बोलकर कौन अपने सिर गुनाह लिखाए।'[5] लेखिका ने स्पष्ट किया है कि किस प्रकार धर्म के नाम पर लोगों को लूटा जाता है। धर्म के ठेकेदार श्रद्धा की आड़ में आर्थिक शोषण के साथ-साथ शारीरिक शोषण तक करने में डर महसूस नहीं करते हैं। अज्ञानता और गरीबी मानव को इन सफेदपोश लोगों के काले धंधों में फँसा देती है।

मेहरुन्निसा परवेज ने स्त्री की दशा का बड़ा ही मार्मिक चित्रण अपनी कहानियों में किया है। निम्नवर्गीय समाज की स्त्री का जीवन तो नरक से कम नहीं होता है। आज लगभग सभी शहरों में कॉल गर्ल्स, जिस्मफरोशी आम बात हो गई है। मासूम और गरीब लड़कियों को नौकरी के नाम पर देह-व्यापार में धकेल दिया जाता है, तो कुछ गरीबी के कारण इस विष को पीने पर मजबूर हो जाती हैं। सफेदपोश लोग इस मौके का जमकर लाभ उठाते हैं–जैसे 'सारा काम निपटाकर सड़क की पुलिया पर बैठकर नानी आया का रास्ता देखती रहती। नानी आया आती तो दोनों हटरी चले जाते। धीरे-धीरे उसकी समझ में बात आने लगी कि माँ बाबू लोगों के पास क्यों रुक जाती है, पर वह डटकर यह बात बाबा को नहीं बता पाती। आखिर घर का सारा खर्चा, कपड़ा, अनाज सब नानी आया लाती थी। बाबा तो बस शराब पीना और जुआ खेलना जानता था।'[6]

दूसरी ओर गरीबी के कारण कुछ मजबूर लड़कियों को पेट पालने के कारण देह-व्यापार को अपनाना पड़ता है। जैसे–'अच्छा, पैसा कैसे मिलता है इतना?'

'बड़ा जोखिम का है, ससुरी देह एक बार में टूटकर चटक जाती है, बाबू लोगों की चाकरी करनी पड़ती है।' 'सौ कैसे?'[7]

प्रेम के नाम पर अमीर लड़के गरीब लड़कियों से छल करने को अपना अधिकार समझते हैं। ऐसी खबरें हम लगभग रोजाना ही समाचार-पत्रों में पढ़ते हैं। लेखिका ने इस समस्या को बड़े ही सहज ढंग से इन शब्दों में कहा–'उसने मास्टर के घर के भी कई चलकर लगाए, पर मास्टर तो जैसे उसे पहचानता नहीं था। उसके गर्भ को अपना वह कहना नहीं चाहता था। उसे अब अपनी

गलती का एहसास हो रहा था, नानी आया ठीक कहती थीं, मर्द शरीर का भूखा होता है, मन का नहीं।'[8]

गरीबी का सबसे अधिक दु:ख एक स्त्री को ही सबसे अधिक उठाना पड़ता है। उसे कई स्तरों पर जीवन संघर्षों से जूझना पड़ता है। इन संघर्षों में एक बाल-विवाह है। आज भी हम कहीं-न-कहीं बाल-विवाह होते देखते हैं। शासन ने बाल-विवाह को रोकने के चाहे जितने कानून बनाए हों, लेकिन यह प्रथा आज भी विधमान है। थोड़े से पैसों के लिए लड़कियों को अपने से बड़ी उम्र के लोगों के साथ विवाह कर माँ-बाप भी इस मुश्किल से छुटकारा पाने को अपना हक समझते हैं। लड़की की मर्जी हो या न हो, उसे हर हाल में इस बंधन को स्वीकार करना पड़ता है। मानो लड़की इंसान नहीं, एक पशु है, जिसके साथ चाहो बाँधकर विदा कर दो। लेखिका ने बाल-विवाह की इस स्थिति का इन शब्दों में बड़ा ही सजीव वर्णन किया है। जैसे–'तेरा ब्याह होने को है, अब घर से बाहर हुड़दंग करती फिरी तो टाँग तोड़कर हाथ में दे दूँगी?'

ओ माँ री, मेरा ब्याह! जैसे पिछली बार मैंने गुड़िया का किया था, वैसा ही?'[9] मेहरुन्निसा परवेज ने बाल-विवाह का जो चित्रण किया है, भारत के विभिन्न राज्यों में यह कुरीति आज भी हम देख सकते हैं। न तो लोगों को कानून का डर है, और अगर कानूनी कार्यवाही हो गई भी तो समाज ऐसे लोगों के साथ खड़ा नजर आता है। यहाँ तक कि नेता भी अपने स्वार्थ के लिए ऐसे लोगों का साथ देने में शर्म महसूस नहीं करते हैं।

मेहरुन्निसा परवेज ने निम्नवर्ग की दुर्दशा के लिए स्वयं निम्नवर्ग को भी काफी सीमा तक दोषी माना है। मानसिक रूप से यह वर्ग अपनी स्थिति से समझौता करता प्रतीत होता है। सरकार द्वारा गरीबों के लिए जो योजनाएँ चलाई जाती हैं, उनका लाभ भी इस वर्ग को नहीं मिल पाता, दलालों के चक्कर, दूसरी और ढेरों प्रमाण-पत्रों के झमेले से यह वर्ग बचता है। यदि कोई इनका साथ भी दे तो वह उसका सहयोग नहीं करते या आर्थिक स्थिति के कारण अपना हाथ खींच लेते हैं। ऐसा लगता है जैसे वह अपनी स्थिति से बाहर नहीं निकलना चाहते हैं। जैसे–'कुछ दिन करीमन भीख के लिए जुमे-जुमेरात निकालना बंद कर देती है, पर कब तक? एक दिन बहू खाना देती है, दूसरे दिन दरवाजा दिखाती है और करीमन दूसरे दिन बस्ती में घूमती नजर आती है।'[10]

ऐसे ही–'उसने दो-तीन बार उठने की कोशिश की, पर बहू ने मना कर दिया–'नानी, अभी बुखार है, लेटी रहो। कल जुम्मा है, मस्जिद चली जाना (भीख हेतु)। जुम्मन पहुँच आएगा।'[11]

लेखिका ने साम्यवाद का समर्थन अपनी कहानियों में किया है। उनका मानना है कि समाज में बराबरी का अधिकार होना चाहिए अर्थात् 'समाज की वस्तु सभी के लिए होनी चाहिए न कि कुछ लोगों के लिए। समाज में समानता आए और ऊँच-नीच का अंतर समाप्त होना चाहिए। मेहरुन्निसा परवेज ने इस विषय पर स्पष्ट लिखा है–'प्रश्न यहाँ इंसान की हैसियत तथा आर्थिक संपन्नता की बहस का नहीं है, बल्कि आदमी के घटते और बढ़ते कद का, उसकी अपनी औकात का है। वर्तमान तथा भविष्य के निर्माण में कभी उसके श्रम, भावना, प्रतिष्ठा को क्यों दर्ज नहीं किया गया? एक ओर तो दूसरे सीढ़ी लगा-लगाकर ऊँचाइयाँ लाँघते गए, वहीं यह जहाँ के तहाँ आज भी खड़े दिखाते हैं।'[12] आशय यह है कि गरीबी मिटाओं का नारा तो दिया गया, पर गरीबी हटाने के प्रयास नहीं हुए।

इस तरह कहा जा सकता है कि लेखिका मेहरुन्निसा परवेज ने कहानियों के माध्यम से

अपने समय, समाज में निम्नवर्गीय समाज-जीवन से संबंधित जो मुद्दे समाज के समक्ष प्रस्तुत किए हैं, उनकी प्रासंगिकता को आज भी नकारा नहीं जा सकता है। आज भी निम्नवर्ग की समस्याएँ वैसी ही हैं जैसी पहले थीं जैसा कि कथाकार ने अपनी कहानियों में दर्शाया है। इस स्थिति के एक नहीं अनेक कारण हैं, जैसे अज्ञानता, एक-दूसरे के प्रति ईर्ष्या-भाव, शिक्षा का अभाव, उदासीनता तथा सबसे बड़ी समस्या गरीबी और बेराजगारी की है। आज भी निम्नवर्ग को राजनीतिक दल सिर्फ बोट बैंक मानते हैं। न तो सरकार उनकी स्थिति बदलना चाहती है और न समाज। साहित्यकारों में भी निम्नवर्ग के प्रति उदासीनता की भावना प्रकट हो रही है।

मेहरुन्निसा परवेज का कहना है कि मेरा जीवन निम्नवर्गीय समाज (आदिवासी) के बीच बीता। उन्होंने निम्नवर्ग का दर्द अपने साहित्य में मुखरता से प्रस्तुत किया। परंतु आज भी कुछ साहित्यकार यश और धन के कारण इस वर्ग की उपेक्षा करते हैं।

आज साहित्य में केवल दलित-विमर्श, स्त्री-विमर्श, समलैंगिकता आदि मुद्दे चर्चा के विषय तो बनते हैं, परंतु निम्नवर्ग प्राय: उपेक्षित ही बना हुआ है। निम्नवर्ग में समाज के सभी धर्म, जाति के लोग आते हैं। साहित्यकारों को चाहिए कि यश को छोड़कर एक बार फिर समाज के उस वर्ग की समस्याओं को उठाएँ, जो दबा-कुचला है। क्योंकि वर्तमान में वर्ग-विभाजन और भेदभावपूर्ण अन्याय जाति-धर्म के साथ-साथ अर्थ और व्यवस्था के आधार पर भी हो रहा है।

संदर्भ

1. मेरी बस्तर की कहानियाँ, मेहरुन्निसा परवेज, वाणी प्रकाशन दिल्ली, फ्लैप
2. वही, पृ॰ 109
3. मेहरुन्निसा परवेज की कहानियाँ : एक अध्ययन, डॉ॰ अनिता जाधव, चंद्रलोक प्रकाशन, पृ॰ 99
4. मेरी बस्तर की कहानियाँ, मेहरुन्निसा परवेज, वाणी प्रकाशन दिल्ली, पृ॰ 95
5. वही, पृ॰ 187
6. वही, पृ॰ 111
7. वही, पृ॰ 112
8. वही, पृ॰ 114
9. वही, पृ॰ 83-84
10. आदम और हव्वा, वही, पृ॰ 109 : पृ॰ 2
11. मेरी बस्तर की कहानियाँ, वही पृ॰ 109, वाणी प्रकाशन दिल्ली, पृ॰ 45
12. वही, फ्लैप

मो॰ 8979787109

सामाजिक सरोकार के कवि केदारनाथ अग्रवाल

डॉ॰ रतनप्रकाश मिश्र
ति॰माँ॰भा॰वि॰वि॰ (भागलपुर)

कवि केदारनाथ अग्रवाल यथार्थ धरातल के कवि है। उन्होंने अपने रचना-संसार के माध्यम से समाज को यथासंभव समृद्ध और परिष्कृत करने का अथक प्रयास किया है। 'मेकीवर' तथा 'पेज' ने समाज की परिभाषा करते हुए लिखा है–'समाज रीतियों एवं कार्य-विधियों, अधिकार और पारस्परिक सहायता, अनेक समूहों और उप-विभागों, मानव-व्यवहार के नियंत्रणों तथा स्वतंत्रता की व्यवस्था है। यह सामाजिक संबंधों का जाल है तथा सदैव परिवर्तित होता रहता है।'[1] कवि केदार ने समाज की इस पारस्परिक सहायता और स्वतंत्रता के लिए अपने स्वर दिए।

लेपियर का कथन है–'समाज मनुष्यों के एक समूह का नाम नहीं हैं, बल्कि मनुष्यों के बीच होनेवाली अंतर्क्रियाओं और इनके प्रतिमानों को हम समाज कहते है।'[2] समाज की इस व्यापक अंतर्क्रियाओं में जो आवेग है, जो सौंदर्य है उसे ही कवि, लेखक या साहित्यकार रेखांकित करता है।

बेलिंसकी का मानना है कि सौंदर्य सामाजिक जीवन के जीवंत यथार्थ का ऐसा प्रतिबिंब है, जो हमें आनंद ही नहीं देता, प्रगतिशील होने के प्रेरणा भी देता है।'[3] और ऐसा ही प्रगतिशील सौंदर्य कवि केदारनाथ अग्रवाल के काव्य का आलंबन रहा है।

> आओ, मेरे स्वर में स्वर दो/ गाओ जग का गीत।
> गाँव-गली में भर दो भर दो/ जीवन का संगीत।
> पीले पत्तों की आबादी/ पीड़ा से है म्लान।
> आशा के शीतल चंदन से/ दे दो उसको प्रान।[4]

सामाजिक दायित्वों के प्रति पूर्ण सचेत केदार काव्य के माध्यम से जनता के चित्त में सौंदर्य की सृष्टि करना चाहते हैं। इस क्रम में कभी वे काफी उत्साहित तो कभी पीड़ित भी नजर आते हैं। समाज की दुर्दशा से आक्रांत होकर कड़ी टिप्पणी करते हैं–

> बेकार व्यर्थ ही बेचारी
> चुपचाप खड़ी वह एक ओर चालीस साल से रोती है
> ऐसा इसका दु:ख भारी है
> जिससे हरदम चौरस्ते पर छाई रहती अँधियारी है
> राही समीप से जाता है/ तो धीरे-धीरे जाता है
> तिस पर भी ठोकर खाता है/ जीवन का रक्त गिरता है
> असमय ही वह मर जाता है/ उल्लू फिर शोक मनाता है
> सारी रजनी मँडराता रह/ शव के उपर चिल्लाता है

 ISSN 0975-735X

बेकार व्यर्थ ही बेचारी
चुपचाप खड़ी वह एक पाँव चालीस साल से रोती है।[5]

म्युनिसपैलिटी की लालटेन का बिंब गढ़कर समाज के अव्यवस्थित स्वरूप का चित्रण करते हैं। समाज का यह अव्यवस्थित स्वरूप आदमी को असमय मार रहा है। इस असामयिक मृत्यु से कवि दुःखी है और इस दुर्व्यवस्था को ललकारने के लिए तैयार भी। केदार के कवि-स्वभाव की चर्चा करते हुए प्रकाशचंद्र गुप्त लिखते हैं–'केदार सीधे-साधे, स्वस्थ-मन प्राणी हैं। आपका व्यक्तित्व सहज, सरल और निश्छल है। फूल की तरह आप गमक उठते हैं, किंतु आप लौह-शलाका की तरह कठिन भी हो सकते हैं। आपकी कविता में इन दोनों ही रूपों की अभिव्यक्ति है। आप मनुष्य की वेदना से मोम की तरह द्रवित होते हैं, और अन्याय के विरुद्ध संघर्षों में फौलाद की भाँति कठोर भी हो सकते हैं। आपके काव्य में कोमलता और सुकुमारता भी है, साथ ही साथ उसमें शक्ति, बल और दृढ़ मांसलता भी है।[6]

समाज की दुर्दशा को देखकर कभी-कभी केदारजी के हृदय में गहरा आक्रोश उत्पन्न होता है। आक्रोशित केदार की कविता में निर्माण के लिए विध्वंस आवश्यक है। इन पंक्तियों पर गौर करें–

कोई गिद्ध ले उड़े/ पंजों में दाबकर दुनिया को,
दूर आकाश से छोड़ दे नीचे को
सत्य के पर्वत की चोटी पर,
जोर से टक्कर खा
भीषण चट्टानों की,
नष्ट हो, चूर हो एक बार।[7]

'सत्य के पर्वत की चोट' को कवि आवश्यक मान रहा है। व्यवस्था जितनी दोषी है, उससे कहीं ज्यादा हम नागरिक दोषी हैं, क्योंकि इस कुव्यवस्था का पोषण हमारे ही द्वारा होता है। डॉ॰ कर्णसिंह का विचार है–'यह बड़े खेद का विषय है कि स्वतंत्रताप्राप्ति के कुछ ही समय बाद समाज-सुधार की ललक क्षीण हो गई। इसमें संदेह नहीं कि हिंदूसमाज के सुधार के लिए कई कानून पास किए गए हैं, जैसे संविधान के अंतर्गत छुआछूत को समाप्त कर दिया गया है, हिंदू कोड बिल पास किया गया है और बाल-विवाह का निषेध कर दिया गया है। यह बात भी सच है कि छुआछूत के प्रति, विशेष रूप से नागरिक क्षेत्रों में लोगों का दृष्टिकोण बहुत हद तक बदल गया है। लेकिन दुख का विषय यह है कि हम इस बात को नहीं समझे हैं कि कानून कितना ही प्रगतिशील क्यों न हो, सच्ची लगन से किए गए सामाजिक कार्य का स्थान नहीं ले सकता। अब हमें धीरे-धीरे समझ में आने लगा है कि मानव का जो व्यवहार उसके मानस और सामाजिक परंपराओं पर आधारित है, वह केवल कानूनों के माध्यम से बदला नहीं जा सकता।[8]

समाज में स्वस्थ विचारों का संचार करना, व्यक्तियों को उनके दायित्व के प्रति आगाह करना साहित्यकार का दायित्व है। वह कभी अपने आक्रोश से, कभी सहज शब्दों से तो कभी हृदयानुभूति के उदगार से व्यक्तियों को प्रेरित और उद्वेलित करता है। 'साहित्यकार का सामाजिक दायित्व' शीर्षक में केदार स्वीकारते हैं कि 'साहित्यकार भी सामाजिक प्राणी है। लेकिन कृतिकार है, इसलिए सविशेष है। उसका कर्म-क्षेत्र साहित्य के सृजन का क्षेत्र है। उस सृजन में निस्संदेह

वह अपनी समस्त शक्तियों से क्रियाशील होता है। इसलिए वह वैसा काम नहीं कर सकता, जो कि एक बढ़ई करता है या कचहरी का एक क्लर्क करता है या एक तकनीकी आदमी करता है। वह यह भी नहीं कर सकता कि बंदर पाले और नचाए। निश्चय ही यदि वह सृजन को मनोयोग से करता है तो वह अन्य कामों के लिए समय नहीं दे सकता। इसलिए देश की साधारण स्थिति में वह वही करे, जो उसे करना है, किंतु देश पर आपत्ति आने पर वह भी उस आपत्ति से नहीं बच सकता, इसलिए उसे भी उन सब लोगों के साथ, उस आई हुई आपत्ति से जूझना होगा। तब वह सबसे कटकर साहित्य के सृजन में पूरा समय नहीं खपा सकता।[9]

घोर अनियमितताओं और असंतोष की वजह से प्रगतिवाद का जन्म हुआ। समाज में फैले शोषण के जाल पर केदार का कटाक्ष जायज लगता है। जैसे–

गेहूँ में गेरुआ लगा/ घोंघी ने खा लिया चना,
बिल्कुल बिगड़ा, खेल बना।
अब आफत से काम पड़ा/ टूटा सुख से भरा घड़ा।
दिल को धक्का लगा बड़ा।
जमींदार ने कहा भरो/ सब लगान अब अदा करो,
वरना जिंदा आज मरो।[10]

जमींदारों की क्रूरता से केदार का साक्षात्कार है। वे सामज में फल-फूल रही इस नग्नता से रू-ब-रू हैं। इस अन्याय का प्रतिकार करना कवि का दायित्व है और वे इस निर्वाह से कभी नहीं चूकते। केदार जी पूँजीवाद के बढ़ते खतरे से परिचित थे। उन्हें लगता था कि मनुष्य ने नगर बनाया, समृद्धि खड़ी की, किंतु सुख की बढ़ती हवस ने उसे अमानुष बना दिया। वह जनसमुद्र के बीच में रहकर भी निरंतर अकेला पड़ता जा रहा है। व्यक्ति के सामुदायिक एवं सामाजिक जीवन को पूँजीवाद ने छिन्न-भिन्न कर दिया है–

वियाबान में नहीं,
शहर में रहता हूँ,
जहाँ आदमी का
आदमी खाए जाता है
शान-शौकत का भूगोल बनाने में,
पूँजी का पुंजीभूत आतंक जमाने में,
तभी तो अकेला हूँ,
मैं ही गुरु–
और मैं ही चेला हूँ।[11]

इस शोषण को बेझिझक झेलती जनता को देख केदार आश्चर्यचकित होते हैं। 'समाजशास्त्रीय दृष्टि से मनुष्य के मौलिक और तीव्र मनोवेगों में भूख और काम मूर्द्धन्य महत्त्व रखते है।'[12] और इस तीव्र मनोवेग भूख के प्रति भी जब जनता आक्रोशित नहीं होती, तब केदार को आश्चर्य होता है। निगाहें बदल रही हैं अर्थात् पुरातन नजरिए में बदलाहट का अहसास केदारजी को है, विचारों में बदलाहट के भी संकेत उन्हें मिलते हैं, लेकिन तब भी दशा वही की वही–

आदि से अंत तक/ कायम है

 ISSN 0975-735X

यहाँ/ वहाँ,
आदमीनुमा धब्बे–/ औरतनुमा गड्ढे।
यही है सूरत/ हरेक शहर की,
जो न बदली–/ न बदली
आज तक/ अब तक,
बदली निगाह के साथ,
बदले विचार के साथ।[13]

समाजवादी लेखन में व्यक्तियों में समाज के प्रति दायित्वबोध पैदा करने का हुनर विकसित किया। प्रगतिवादी लेखन मूलतः समाजवादी लेखन है और केदार को इस उत्तरदायित्व का गहरा एहसास है। समाजवादी लेखन के माध्यम से केदारनाथ अग्रवाल ने जनसाधारण को सजग बनाने का प्रयास किया है। समाजवादी साहित्य के बारे में 'दमित्री मर्कोव' की धारणा से केदार सहमत प्रतीत होते हैं। मर्कोव का विचार था–'समाजवादी साहित्यों में प्राप्त अन्य महत्त्वपूर्ण कलात्मक नवीनताओं में, जनसाधारण की, उनकी समाजवादी चेतना के विकास की और व्यक्ति और समूह या वर्ग के बीच संबंध की प्रस्तुति है, जो नई कला की एक अनिवार्य विशेषता है।[14]

साहित्यकारों पर समाज का दायित्व जनसाधारण की अपेक्षा ज्यादा है। वे समाज की विसंगतियों और उसकी श्रेष्ठता को अपनी जीवंत संवेदनशीलता के जरिए अपनी वाणी देते हैं। यह वाणी जितनी प्रखर होती है, समाज पर उतनी ही तीव्रता से प्रहार करती है। 'बट्रेंड रसेल' मानते थे कि 'किसी मनुष्य की आवश्यकताएँ या इच्छाएँ उसके अपने जीवन तक सीमित नहीं होती। यदि उसका चिंतन व्यापक और कल्पना सजीव है तो उस समाज की असफलताएँ, जिसमें वह रहता है उसकी अपनी असफलताएँ होंगी और सफलताएँ उसकी अपनी सफलताएँ : समाज की सफलता से उसके अपने विकास को पोषण मिलता है और असफलता से उसके विकास में बाधा पड़ती है।[15]

उपर्युक्त कथनों के मर्म से केदारनाथ अग्रवाल सहमत थे। उनका चिंतन व्यापक और कल्पना सजीव है, इसमें जरा भी संदेह नहीं है। सामाजिक ताने-बाने के बिखरने से आहत केदार व्यथित ही नहीं होते, बल्कि सामाजिक, राजनीतिक विद्रूपताओं की पोल-पट्टी खोलते हुए उद्घोष करते हैं–

लीला के बाद/ रामलीला के राम
जंगली जनतंत्र में/ रावण का रोल अदा करते है
दूसरों की संपदा हरते हैं।
न नय से डरते/ न अनय से बचते हैं
जहाँ-देखो तहाँ/ एक नई लंका रचते हैं।[16]

यथार्थ की सजीवता का यह जीवंत उदाहरण समाज की कई परतों पर से पर्दा उठाता है। समाज में जाने-माने प्रतिष्ठित पदों पर आसीन लोग सामने कुछ और पीछे कुछ करते नजर आते हैं। इस पर तीखा प्रहार आवश्यक है। यहाँ कवि या साहित्यकार सिर्फ अनियमितताओं को उजागर ही करना नहीं चाहते, बल्कि उसमें सुधार की उम्मीद लिए रहते हैं। भारतभूषण अग्रवाल ने ठीक ही कहा है–'यदि कविता का उद्देश्य व्यक्ति की इकाई और समाज की व्यवस्था के बीच के

संबंध को स्वर देना और उसको शुभ बनाने में सहायता करना है, तो हिंदी के कवि को समाज से नाराज होकर भागने की बजाय समाज की उस शोषण-सत्ता से लड़ना होगा, जिसने उसको कोरा स्वप्नाभिलाषी और कल्पनाविलासी बना छोड़ा है, और जिसने उसको अपनी कविता को ही एकमात्र संपति मानने के भ्रम में डाला है। इस संघर्ष के पथ पर के अपने अनुभवों को यदि पद्यबद्ध करेगा तो पाएगा कि उसकी कविता केवल मर्मस्पर्शी और सशक्त ही नहीं वरन साथ ही उसको अधिक ज्ञानी और सामाजिक बनानेवाली भी है। तब कविता उसके हाथ में एक मूल्यवान अस्त्र की भाँति होगी, आज की तरह अपार्थिव, अस्तित्वहीन फूलों की सेज नहीं।[17]

सौंदर्य की बद्धमूल परिभाषा से इतर केदार व्यापक सामाजिक स्वरूप एवं प्रकृति में सौंदर्य देखते हैं। उनका सौंदर्य उपनिषद् की इस पंक्ति–'सर्वे भवंतु सुखिनः, सर्वे संतु निरामया' से प्रभावित लगता है। देह-यष्टि के सुघढ़पन का सौंदर्य, प्रकृति के लुभावने दृश्यों का सौंदर्य, एकपक्षीय सौंदर्य है। केदारनाथ अग्रवाल सौंदर्य को समग्र रूप से देखते हैं। मनुष्य, पशु, पक्षी, चेतन, अचेतन, सबमें। मनुष्य को मनुष्यता की ओर ले जानेवाली चेतना उनकी नजर में सौंदर्य है।

संदर्भ

1. फूल नहीं, रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ॰ 35
2. वही, पृ॰ 22
3. पेड़ का हाथ, विश्वनाथ त्रिपाठी, पृ॰ 5
4. फूल नहीं, रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ॰ 49
5. अपूर्वा, केदारनाथ अग्रवाल, पृ॰ 35
6. पेड़ का हाथ, विश्वनाथ त्रिपाठी, पृ॰ 18
7. विचार-बोध, केदारनाथ अग्रवाल, पृ॰ 108
8. अपूर्वा, केदारनाथ अग्रवाल, पृ॰ 25
9. फूल नहीं, रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ॰ 111
10. पंख और पतवार, केदारनाथ अग्रवाल, पृ॰ 95
11. मधुशाला, हरिवंशराय बच्चन, पृ॰ 8-9
12. आत्मगंध, केदारनाथ अग्रवाल, पृ॰ 148
13. चिंतामणि भाग-1, रामचंद्र शुक्ल, पृ॰ 110
14. जमुन जल तुम, केदारनाथ अग्रवाल, पृ॰ 37
15. पल्लव, पंत, पृ॰ 20
16. वही, पृ॰ 20

योगशिक्षा और मूल्याधारित शिक्षा में उसका महत्त्व

अमित मोहन, शारीरिक शिक्षा विभाग
जे०एस० विश्वविद्यालय, शिकोहाबाद (फिरोजाबाद) उ०प्र०

भारतवर्ष में विगत कई वर्षों से शिक्षा के क्षेत्र में अनेक प्रयोग हुए हैं। शिक्षा को व्यावहारिक एवं प्रयोगात्मक बनाने की दिशा में भी कार्य हुआ है। नैतिक शिक्षा तथा शारीरिक शिक्षा जैसे विषय शिक्षा में समाहित किए गए, ताकि बालकों का चरित्र-निर्माण हो सके और उनके स्वस्थ शरीर के विकास में सहायता मिल सके। तकनीकी शिक्षा पर सर्वाधिक ध्यान केंद्रित किया गया। माना कि जीवन में आज तकनीकी शिक्षा अत्यंत महत्त्व रखती है, किंतु सार्थक जीवन के लिए तकनीकी अथवा वैज्ञानिक होना ही पर्याप्त नहीं है। जीवन में मूल्यों का समावेश अनिवार्य है। यदि शिक्षा का आधारभूत अर्थ–निकालना, ग्रहण करना या अर्जित करना है, तो वास्तविक शिक्षा वही होगी, जो मूल्याधारित या मूल्योन्मुख अथवा मूल्यपरक होगी। अर्थात् शिक्षा वह, जिसमें मूल्य या मानवजीवन के सार का समावेश होगा। जैसा कि 'उपनिषद्' में प्रार्थना करते हुए कहा गया है–

असतो मा सद्‌गमय (Let us from untruth to truth)
तमसो मा ज्योतिर्गमय (From darkness to light)
मृत्योर्मामृतं गमय (From mortality to immortality)

अर्थात् हमें असत् से सत् की ओर, अंधकार से प्रकाश की ओर तथा मृत्यु से अमृतत्त्व की ओर ले चलो। शिक्षा यही करती है तथा इस उद्देश्य के लिए उसमें मूल्यों का समावेश आवश्यक है। मूल्यों के समावेश का संक्षेप में अभिप्राय यह है कि उसमें व्यक्ति, समाज और राज्य के अनिवार्य तत्त्वों का समावेश किया जाए। वह एक व्यक्ति के चरित्र-निर्माण का सशक्त साधन है।

योग और शारीरिक शिक्षा मूल्याधारित शिक्षा में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं। यहाँ हम इसी दृष्टि से योग की मूल्याधारित शिक्षा में भूमिका का अध्ययन करने जा रहे हैं।

योग का स्वरूप और महत्त्व

योग भारतवर्ष की एक अत्यंत प्राचीन विद्या है, जो मानवता को दिया गया अमूल्य वरदान है। यह विद्या विज्ञान-सम्मत है एवं अध्यात्म से भी जुड़ी हुई है। इसे स्वस्थ जीवन-यापन की कला भी कहा जा सकता है। एक स्तर पर जाकर यह दर्शन का विषय बन जाता है। चित्त अथवा बुद्धि एवं मन से संयुक्त जीवात्मा के कर्म रूपी मलों की शुद्धि हो जाने पर संपूर्ण तत्त्वों के यथार्थ स्वरूप के प्रत्यक्षीकरणपूर्वक परमात्मस्वरूप के साक्षात्कार की अवस्था को ही 'योग' का वास्तविक स्वरूप बताया गया है। श्रुति-प्रतिपादित योग का यह स्वरूप 'कठोपनिषद्' में कुछ इस प्रकार निरूपित किया गया है–

यदा पन्यावतिष्ठते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहु परमात्मां गतिम्
तां योगामिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रिय धारणाम्।
अप्रभत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवप्ययौ।

(कठोपनिषद्, 2/3/10-11)

अर्थात् जब पाँचों ज्ञानेंद्रियाँ (अपने-अपने विषयों से उपरत होकर) मन के साथ अवस्थान करती हैं एवं बुद्धि भी (आत्मविरुद्ध विविध) चेष्टाओं से निवृत्त हो जाती है, उस स्थिति को परम गति कहते हैं।

उस स्थिर इंद्रियों की धारणा को 'योग' माना गया है। यह एक ऐसी दिव्य भावना है, जिसमें साधक प्रमाद से रहित हो जाता है; क्योंकि योग ही सभी संस्कारों का प्रवर्तक और अशुभ संस्कारों का निवर्त्तक होता है। योग के अनेक मार्ग और अनेक धाराएँ हैं। प्राय: सभी में योग के इसी स्वरूप को प्रकारांतर से मान्यता दी गई है।

'योग' शब्द संस्कृत की 'युज्' धातु एवं 'घञ्' प्रत्यय से बना है, जिसका अर्थ है–जुड़ना या एकजुट होना अथवा सम्मिलित होना (युजयते अनेनां इति योग:)। संस्कृत व्याकरण में 'युज् धातु के प्राय: दो अर्थ मिलते हैं–एक, 'जोड़ना', 'संयोजित करना'। (युजृपीयोगे, गण 7, हेमचंद्र धातु पाठ) और दूसरा–'समाधि', 'मन:स्थिरता'। (युनिंथ समाधौ, गण 4, हेमचंद्र धातुपाठ) 'योग' में ये दोनों ही अर्थ ग्राह्य हैं। कहीं-कहीं पाणिनीय व्याकरण का संदर्भ देते हुए बताया गया है कि 'योग' शब्द 'युजिर योगे' तथा 'युज संयमने' धातुओं से भी निष्पन्न है और इसके तीन गण प्राप्त होते हैं–

1. दिवादिगण–युज् समाधौ।
2. चुरादिगण–युज् संयमने।
3. रुघादिगण–युजिर योगे।

(राजकुमारी पांडेय, भारतीय योग-परंपरा के विविध आयाम, पृ॰ 24)

जब हम 'योग' शब्द की व्युत्पत्ति एवं अर्थ पर विचार करेंगे, तो पाएँगे कि इसके प्रधानत: दो अर्थ हैं–एक; जीव और ब्रह्म (अथवा आत्मा और परमात्मा) का मिलन; इसे कहेंगे–'अद्वैतानुभूति'। दो; वैराग्य तथा अभ्यास द्वारा चित्तवृत्तियों की एकाग्रता, जिसकी परिणति 'समाधि' अवस्था में होती है। इसी क्रम में 'योग' का अर्थ मिलता है–'जोड़ना'।

योग को प्राय: निम्नांकित के साथ जुड़ा हुआ देखा जा सकता है–

1. व्यक्ति की चेतना और सार्वभौमिक चेतना (Individual consciousness and universal consciousness)
2. आत्म (Atman (Individual self) और ब्रह्म (Brahman & The all pervading spirit)
3. मनुष्य और ईश्वर (Man and God)
4. ज्ञान और प्रज्ञा अथवा अवबोध (Knowledge and wisdom)
5. विज्ञान और आध्यात्मिकता (Science and spirituality)

विज्ञान तथा अध्यात्म की दृष्टि से कर्ममार्ग (Path of action) तथा ज्ञानमार्ग (Path of knowledge) के रूप में योग को दो वर्गों में रखा जा सकता है।

वस्तुत: कर्ममार्ग और ज्ञानमार्ग के मिलने से ही पूर्ण स्वतंत्रता की प्राप्ति संभव है। पूर्ण स्वतंत्रता अर्थात् मोक्ष या केवल्य। जन्म-मृत्यु के बंधन से मुक्ति।

ज्ञानमार्ग के अंतर्गत योगाभ्यास आता है, जिसके लिए–'अष्टांग योग' शब्द है। अर्थात् आठ स्तरीय पथ। यह मुक्ति का सर्वोत्तम मार्ग माना गया है। दूसरा मार्ग–क्रियापरक है।

इन तथ्यों को दृष्टिपथ में रखकर हम 'योग' की कतिपय महत्त्वपूर्ण परिभाषाओं को इस प्रकार देख सकते हैं–

1. मन के समस्त अनावश्यक विचारों–चिंता, क्रोध, तनाव, खिन्नता, चंचलता, घृणा, अभिमान आदि को रोककर मन को अभीष्ट ध्येय–आत्मा तथा प्राकृतिक पदार्थों में नियुक्त कर उसके यथार्थ रूप को जानना तथा मन की सात्त्विक वृत्ति का भी निरोध कर ईश्वर का साक्षात्कार करना योग है। (परिव्राजक, स्वामी सत्यपति (व्याख्याकार), योगदर्शनम्, पृ॰ 10)

2. चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है–'योगनिश्चत्तवृत्तिरोध:'। (पातंजल योगसूत्र:)

3. योग कर्मों का कौशल है–'योग: कर्मसु कौशलम्'। (श्रीमद्भगवद्गीता, 2/50)

4. महर्षि व्यास के अनुसार योग समाधि का वाचक है, जो चित्त का सार्वभौम धर्म है–'योग: समाधि: तप सार्वभौमिश्चित्तस्य धर्म:।' (व्यास भाष्य-1/2)

5. योगवाशिष्ठ में मन को शांत करने के उपाय को योग कहा गया है–'मन: प्रशमनोपायो योग इत्यभिधीयते।' (योगवाशिष्ठ, उद्धृत, आचार्य देवव्रत, आसन प्राणायाम, पृ॰ 9)

6. याज्ञवल्क्य के अनुसार जीवात्मा और परमात्मा के मिलन का नाम योग है–'संयोग योग रत्युक्तोजीवात्म: परमात्मनो:।' (ऐसा ही वेदांत में मिलता है।)

7. वैशेषिक दर्शन में 'योग' के लिए कहा गया है–'तदनारंभ आत्मस्थे मनसि शरीरस्य दु:खाभाव: संयोग:।' (वैशेषिक सूत्र, 6/2/16) अर्थात् मन का आत्मा में स्थित होने पर उसके (मन के) कार्य जो अनारंभ है, वह योग है।

8. कठोपनिषद् (कठोपनिषद्, 2/3) में योग का लक्षण यह बताया गया है–

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टिते तामाहु: परमं गतिम्
तां योग निति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रिय धारणाम्।
अप्रचत्तस्तु तदा भवति योगो हि प्रभवाष्ययौ।

अर्थात् जब पाँचों इंद्रियाँ–मन के सहित निश्चल हो जाती हैं, बुद्धि का व्यापार भी रुक जाता है, इस स्थिति को योग कहते हैं। निश्चय से ज्ञान की उत्पत्ति और कर्म का क्षय होना ही योग है।

योग अत्यंत प्राचीन भारतीय विद्या है। इसे एक मानसशास्त्र माना गया है। इसके अंतर्गत मन की चंचलता को संयत करते हुए उसे नकारात्मक एवं पाशविक वृत्तियों से हटाना, मोड़ना या खींचना सिखाया जाता है। माना जाता है कि सुंदर और सार्थक जीवन की किसी भी क्षेत्र में सफलता संयत मन पर निर्भर करती है। मन: संयम से आशय है किसी एक समय में मन या चित्त को एक ही लक्ष्य पर, किसी एक ही वस्तु पर एकाग्र करना। मन को अभ्यास द्वारा ऐसा बनाया जा सकता है। यद्यपि आरंभ में यह कठिन प्रतीत होता है, किंतु धीरे-धीरे अभ्यास करते हुए इस स्थिति को आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। योग इसमें सर्वाधिक सहायक है।

योगी को तपस्वी, ज्ञानी और धर्म करनेवाले से भी श्रेष्ठ माना गया है–

तपस्विऽभ्याधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मातेऽधिक:।
कर्मिम्यश्चाधिको योगी तस्माद् योगी भवार्जुन्।

(श्रीमद्भगवद्गीता, 6/46)

योग ऐसा क्षेत्र है जो धर्म-संप्रदायों से ऊपर है। यह स्वयं में कोई धर्म, संप्रदाय अथवा धर्मविषयक तत्त्वज्ञान नहीं है। बल्कि विश्व के सभी धर्मों एवं तत्त्वज्ञानों का सहायक है। योग किसी धर्म अथवा संप्रदाय का प्रचार नहीं करता। इसके विपरीत यह उन धर्मों के माननेवालों को मार्ग दिखाता है कि किस प्रकार वे अपने-अपने धर्म के तत्त्वों को सही रूप में एकाग्र चित्त होकर समझें। योग यह बताता है कि स्वस्थ शरीर और स्वस्थ मन से धर्मविषयक बातों को एकाग्रता से समझकर हम शांति और आनंद की प्राप्ति कर सकते हैं।

संक्षेप में, यौगिकजीवन का अर्थ है–'शरीर का युक्त व्यायाम, सादा सात्त्विक आहार और सद्विद्या का अध्ययन।' इसलिए कभी कोई वैज्ञानिक दृष्टिसंपन्न व्यक्ति योग से युक्त जीवन को बुरा अथवा अवैज्ञानिक नहीं कहेगा। कैसी विडंबना है कि शरीर को स्थूलकाय बनाने को स्वस्थ काया माननेवाले अज्ञानी लोग ऐसे 'फूड सप्लिमेंट' अपना रहे हैं, जिनमें हानिकारक रसायन हैं। 'पौष्टिक आहार' के नाम पर इस तरह के न जाने कितने रासायनिक पदार्थ बाजार में मिल रहे हैं। इसी तरह शारीरिक व्यायाम के नाम पर कितने ही 'जिम' खुले हुए हैं। कितनी ही तरह की कसरतें कराई जाती हैं। लेकिन वास्तविकता यह है कि ऐसे 'कसरती जवान' न तो योग करनेवालों की तरह शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से स्वस्थ होते हैं और न ही उनके जैसे दीर्घायु। इस संदर्भ में योग के ज्ञाता डॉ॰ श्री आर॰ शामशास्त्री का यह कथन पठनीय है कि–'योगी कसरती की तरह न तो हजार डंड-बैठक लगाता है, न बहुत खाता ही है। शरीर या बुद्धि को बेहिसाब बढ़ाना उसका काम नहीं है। उसे न स्नायुओं को फुलाने की परवाह है, न वजन बढ़ानेवाले खाद्यों की है। उसे तो नियमित सात्त्विक आहार चाहिए। योगी का युक्त आहार-विहार ऐसा होता है कि उसका चित्त प्रसन्न, बुद्धि स्थिर और गठा हुआ सुडौल शरीर होता है।' ('कल्याण', योगांक, दसवाँ वर्ष)

वे यह भी कहते हैं कि योगशिक्षा से अर्थकरी विद्या के अध्ययन में, कृषि और उद्योग-धंधों में, सामरिक शिक्षा में, युद्ध, व्यापार और राज्य शासन में भी काम लिया जाए तो इन क्षेत्रों में भी सफलता निश्चित है। हम इसमें जोड़ना चाहेंगे कि वैज्ञानिकों ने योग के महत्त्व को स्वीकार करते हुए चंद्र और मंगल यानों में जानेवाले वैज्ञानिक यात्रियों के लिए योग को आवश्यक माना है और अपनाया है। इसकी महत्ता का सबसे बड़ा प्रमाण है कि विश्वभर में प्रतिवर्ष 21 जून को 'योग दिवस' मनाया जाने लगा है।

समग्रत: योग एक मन:शास्त्र है, जो विज्ञान और दर्शन पर आधारित है। यह शरीर और मन दोनों को समान रूप से विकसित करने एवं स्वस्थ रखने में अत्यंत उपयोगी है।

योग के प्रकार

योग एक अत्यंत विस्तृत दर्शन है। यह केवल आसन, प्राणायाम आदि शारीरिक क्रियाओं से संबंधित ही नहीं है। प्राचीन भारत में योग की अनेक प्रणालियाँ तथा मार्ग प्रचलित थे। इस प्रकार यह एक गूढ़ विद्या है। आधुनिकयुग में योगविषयक ग्रंथों में योग की जिन अनेकानेक प्रणालियों का वर्णन मिलता है, उन सबकी गणना की जाए तो उनकी संख्या एक सौ से ऊपर ही बैठेगी। अलग-अलग योग-प्रणालियाँ हैं, उनके अलग-अलग प्रवर्तक और अनुयायी हैं।

सामान्यत: विद्वान् दो प्रकार के योग-मार्ग बताते हैं—एक है 'हठ योग', और दूसरा—'राज योग'। किंतु वास्तव में अन्य बहुत-सी महत्त्वपूर्ण प्रणालियाँ भी हैं, जिनके माध्यम से लाखों लोग आत्मोन्नति करते रहे हैं। आज भी कर रहे हैं। आचार्य श्रीराम शर्मा ने कम से कम 51 प्रकार के योग-मार्गों की सूची दी है। (पं॰ श्रीराम शर्मा आचार्य, योग-दर्शन, (2000), पृ॰ 16 से 18)

लेकिन यह सूची अंतिम नहीं है और न ही पूर्ण। इनके अतिरिक्त योग के और भी कई मार्ग हैं। विभिन्न संप्रदायों ने अपनी-अपनी योग-पद्धति को अलग-अलग नाम दिया है। लेकिन मूल स्रोत महर्षि पतंजलि का योगदर्शन ही है और योग के क्षेत्र में वह ग्रंथ आज भी प्रकाशस्तंभ है। यहाँ हम कतिपय अत्यधिक प्रचलित और सर्वाधिक संदर्भित योग-मार्गों अथवा योग-प्रणालियों का संक्षेप में परिचय देंगे। योग के प्राचीन प्रामाणिक ग्रंथ दो माने गए हैं—'शिवसंहिता' और 'गोरक्षशतक'। इन दोनों में योग के चार मुख्य प्रकारों का वर्णन है—

मंत्रयोगो हष्च्चैव लययोगस्तृतीयक:।
चतुर्थो राजयोग:।
तथा—
मंत्रो लयो हठो राजयोगंतर्भूमिका क्रमात्
एक एव चतुर्धाऽयं महायोगोभियत्।

उपर्युक्त दोनों श्लोकों के अनुसार योग के चार प्रकार हैं—

1. मंत्र योग
2. हठ योग
3. लय योग
4. राज योग।

हम यहाँ संक्षेप में योग के इन चार प्रकारों का परिचय देंगे।

1. मंत्रयोग

'मंत्र' इस प्रकार के योग का मुख्य आधार है। 'मंत्र' का अर्थ इस प्रकार बताया गया है—'मननात् त्रायते इति मंत्र:।' अर्थात् मन को त्रय मंत्र ही है। तदनुसार मंत्र योग का संबंध मन से है। मन को इस प्रकार परिभाषाबद्ध किया गया है—'मनन इति मन:।' अर्थात् जो मनन-चिंतन करता है, वही मन है। अत: सरल शब्दों में कहें तो मंत्र के द्वारा मन की चंचलता को नियंत्रित करना, मंत्र योग है। 'मंत्र योग' का वर्णन 'योग तत्त्वोपनिषद्' में मिलता है। इसमें कहा गया है कि—'अल्पबुद्धिरिम योग सेवंते साधकाधमा:' (योग तत्त्वोपनिषद्, 22) (अर्थात् अल्पबुद्धि साधक मंत्र योग से सेवा करता है।) ऐसा कहने का आशय यह है कि मंत्र योग उन साधकों के लिए है, जो अल्पबुद्धि हैं।

मंत्र की प्रक्रिया इस प्रकार बताई गई है—मंत्र से ध्वनि तरंगें पैदा होती हैं। मंत्र मन और शरीर दोनों पर प्रभाव डालता है। साधक मंत्र में जप का प्रयोग करता है। मंत्र जपने में तीन घटक विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं—'उच्चारण', 'लय' और 'ताल'। माना गया है कि इन तीनों घटकों का सही अनुपात मंत्र की शक्ति को बढ़ा देता है। मंत्र जप चार प्रकार से किया जाता है—'वाचिक', 'मानसिक', 'उपांशु' तथा 'अणपा'।

मंत्र योग के भक्ति, शुद्धि, आसन, हवन, समाधि इत्यादि सोलह अंग बताए गए हैं। माना गया है कि इन सोलह साधनों से मन देवता में लय हो जाता है।

2. **हठयोग**

इसे 'प्राण योग' और 'कुंडलिनी योग' भी कहा जाता है। 'हठ' का शाब्दिक अर्थ है हठपूर्वक किसी कार्य को करना। 'हठ प्रदीपिका' में हठ का अर्थ इस प्रकार निरूपित किया गया है–

हकारेणोच्यते सूर्यष्ठकारश्चंद्र उच्यते।
सूर्या चन्द्रमसो र्योगाद्धठ योगोऽभिधीयते।

तदनुसार 'ह' का अर्थ सूर्य और 'ठ' का अर्थ चंद्र बताया गया है। माना गया है कि सूर्य और चंद्रमा की समान अवस्था 'हठ' है। शरीर की कई हजार नाड़ियाँ हैं। उनमें से तीन प्रमुख-प्रमुख नाड़ियों का वर्णन योगशास्त्र में मिलता है। ये तीन नाड़ियाँ हैं–'पिंगला' अर्थात् 'सूर्य नाड़ी', जो दाहिने स्वर का प्रतीक है। 'इड़ा' अर्थात् 'चंद्र नाड़ी', जो बाएँ स्वर का प्रतीक है। इन दोनों के मध्य तीसरी नाड़ी है–'सुषुम्ना'। अतः हठयोग वह क्रिया है, जिसमें इड़ा और पिंगला नाड़ी के सहारे प्राण को सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश कराकर ब्रह्मरंध्र में समाधिस्थ किया जाता है। हठयोग के प्रामाणिक माने जानेवाले ग्रंथ 'हठ प्रदीपिका' में हठयोग के चार अंग वर्णित हैं–'आसन', 'प्राणायाम', 'मुद्रा' और 'बंध'। जबकि 'घेरंड संहिता' में इनकी संख्या सात बताई गई है–'षट्कर्म', 'आसन', 'मुद्राबंध', 'प्राणायाम', 'ध्यान', 'समाधि'। इसी तरह 'योगतत्त्वोपनिषद्' में हठयोग के आठ अंग बताए गए हैं, जो इस प्रकार हैं–'यम', 'नियम', 'आसन', 'प्राणायाम', 'प्रत्याहार', 'धारणा', 'ध्यान' और 'समाधि'।

हठयोग और राजयोग परस्पर संबंध रखते हैं, ऐसा कहा गया है कि हठयोग का उद्देश्य केवल राजयोग (समाधि) की संप्राप्ति के लिए है। बिना हठयोग के राजयोग सिद्ध नहीं होता। और बिना राजयोग के हठयोग निष्फल है। इसलिए इन दोनों का ही साथ-साथ अभ्यास करना चाहिए।

3. **लययोग**

यह नादानुसंधान भी कहलाता है। चित्त में विलीन हो जाना सरल शब्दों में 'लययोग' है। लययोग की स्थिति आने पर प्राण-संचार स्थिर अथवा निरुद्ध होकर कुंभक की अवस्था आ जाती है। जब हम कहते हैं कि चित्त का अपने स्वरूप में विलीन होना अथवा चित्त की निरुद्धावस्था लययोग मानी जाती है, तो इसका आशय यह भी है कि साधक के चित्त में जब चलते, बैठते, सोते और भोजन करते समय, हर समय ब्रह्म का ध्यान रहे; यही लययोग है। साधक का चित्त सदैव ब्रह्ममय रहता है। 'योगतत्त्वोपनिषद्' में कहा गया है–

गच्छस्तिष्ठन स्वप्न भुंजन् धयायेंत्रिष्कलमीश्वरम् स एव लययोगः स्यात।

अधिकांश मध्यकालीन महात्माओं ने हठयोग और राजयोग के स्थान पर लययोग का ही किसी-न-किसी रूप में प्रतिपादन किया है। इसमें साधक को सिद्धासन में बैठकर वैष्णवी मुद्रा धारण करनी होती है और अनाहत ध्वनि को दाहिने कान से सुनना होता है। इस प्रकार के नाद का किया गया अभ्यास बाहर की ध्वनियों को ढँक लेता है।

4. **राजयोग**

'राजयोग' को, जैसा कि नाम से ही ध्वनित है; सभी योगों का राजा माना गया है। यह सब योगों में प्रधान है। इस योग-प्रणाली में सभी योगों की कुछ-न-कुछ सामग्री अवश्य मिल जाती है।

 ISSN 0975-735X

राजयोग का मूल सिद्धांत साधक की चित्तवृत्तियों का निरोध करना है। महर्षि पतंजलि-द्वारा प्रतिपादित सुविख्यात 'अष्टांगयोग' राजयोग का विषय है। 'अष्टांगयोग' अर्थात् योग के आठ अंग। यह आठ अंग सभी धर्मों का सार है। ऐसा माना जाता है कि इन आठ अंगों से बाहर धर्म, योग, दर्शन, मनोविज्ञान आदि तत्त्वों की कल्पना नहीं की जा सकती। योग के ये आठ अंग इस प्रकार हैं–यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। इन आठ अंगों में से प्रत्येक अंग के अपने-अपने उपांग हैं। इस प्रकार इनकी संख्या अनेक हो जाती है। वर्तमान में योग के प्राय: तीन अंग ही प्रचलन में देखे जाते हैं–आसन, प्राणायाम और ध्यान। कहा गया है कि राजयोग समाधि का वाचक है। (येत्येक वाचका राजयोग: समाधिश्च–हठयोग प्रदीपिका, 4/79)

श्रीमद्भगवत् गीता में योग

श्रीमद्भगवत् गीता में योग के तीन मार्ग बताए गए हैं। ये हैं–

1. ज्ञान मार्ग,
2. भक्ति मार्ग और
3. कर्म मार्ग।

गीता का उपदेश है कि इन तीनों मार्गों में आपस में कोई द्वंद्व नहीं है। गीता आश्चर्यजनक रूप से ज्ञान, भक्ति और कर्म सिद्धांत का प्रतिपादन करती है और इन तीनों के एकत्व पर बल देती है। इन तीनों को तीन अश्वों के रूप में देखा जा सकता है, जो हमारे शरीर रूपी रथ को मिलकर खींचते हैं और मोक्ष तक आसानी एवं सुरक्षित रूप से ले जाते हैं।

गीता में तीन भाग हैं। क्रमश: प्रथम छह अध्याय 'कर्मयोग' का प्रतिपादन करते हैं; इससे आगे के छह अध्याय 'भक्तियोग' का और अंतिम छह अध्याय 'ज्ञानयोग' का प्रतिपादन करते हैं।

समग्रता में गीता के अनुसार कर्मयोगी, भक्तियोगी, संन्यासी, ध्यानयोगी, आत्मसंयमी, स्थितिप्रज्ञ और संतुष्ट गृहस्थ सबको एक माना गया है। वहाँ यह भी कहा गया है कि योग उसके लिए नहीं है, जो बहुत अधिक भोजन करता है और न ही उसके लिए है, जो बिल्कुल नहीं खाता। यह उसके लिए भी नहीं है, जो बहुत अधिक सोता है अथवा जागता रहता है। कहने का तात्पर्य यह है कि श्रीमद्भगवत् गीता में निर्दिष्ट किया गया है कि आहार-विहार और निद्रा-जागरण का सम्यक् नियंत्रण योग के लिए आवश्यक है। वहाँ सूत्र रूप में कहा दिया गया है कि मन की समता ही योग है।

इसी क्रम में योग के प्रकारों की संख्या तीन–ज्ञान, भक्ति और कर्म मार्गों से विस्तार पाकर 8 हो जाती है। योग के ये आठ प्रकार हैं–1. अभ्यास योग, 2. ध्यानयोग, 3. ब्रह्मयोग, 4. संन्यास योग, 5. बुद्धियोग, 6. ज्ञानयोग, 7. भक्तियोग, 8. कर्मयोग।

हमारे विचार से लंबे समय से महर्षि पतंजलि का योग-दर्शन अधिक ग्राह्य है।

योग का महत्त्व

भारतीय समाज में योग की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। इसे प्राय: मोक्षमार्ग का सर्वोत्तम साधन माना जाता था। विशेष रूप से योगविद्या संन्यासियों के लिए समझी जाती थी। योगी संन्यासी साधु जीवन व्यतीत करते थे और गृहस्थ जीवन त्यागकर पहाड़ों तथा वनों में जाकर एकांत साधना किया करते थे। इसीलिए सामान्यजन और गृहस्थ के लिए योगविद्या दुर्लभ मानी जाती थी। सच्चे

योगियों-साधकों की संख्या कम होती चली गई। इसका परिणाम यह हुआ कि योगविद्या का धीरे-धीरे लोप होता चला गया। इधर कुछ दशकों में योग के प्रति लोगों का रुझान बढ़ा है। समाज में बढ़ते तनाव, द्वंद्व, संघर्ष, चिंता, प्रतिस्पर्धा आदि प्रवृत्तियों से मुक्ति पाने के लिए लोगों को योग की शरण में जाने के लिए प्रेरित किया है। इससे यथेष्ट लाभ भी हुआ है। इसलिए आज योग न केवल भारतवर्ष में, अपितु विश्वभर में पुन: लोकप्रिय हो रहा है। योग के इस प्रचार-प्रसार के मूल में यह धारणा काम कर रही है कि योग केवल 'मोक्ष' का ही मार्ग नहीं है, अपितु यह सामान्यजन के जीवन को स्वस्थ, प्रसन्नचित्त बनाते हुए; सभी तरह के दु:खों से मुक्त कर सकारात्मक दिशा प्रदान करता है। आज तदनुसार योग की दुर्लभ एवं कठिन साधनावाली अवधारणा समाप्त हुई है और जनसामान्य के लिए ग्राह्य सरल पद्धतियों का प्रचार-प्रसार हो रहा है।

हम योग के महत्त्व को निम्नांकित क्षेत्रों में समझ सकते हैं–

1. शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में योग का महत्त्व

योग से मनुष्य का शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य ठीक रहता है। इस दिशा में अनेकानेक शोधकार्य हुए है और हो रहे हैं। यही कारण है देश-विदेश में बड़ी संख्या में लोग इसे अपना रहे हैं और स्वस्थ्यलाभ कर रहे हैं। 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' भी इस बात की पुष्टि कर चुका है कि योग एक सुव्यवस्थित एवं वैज्ञानिक जीवन-पद्धति है, इसलिए वर्तमान में तीव्रता से फैल रहे मनोदैहिक रोगों में योगाभ्यास अत्यंत उपयोगी है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के इस मत पर ध्यान देते हुए विश्वभर में 2015 से प्रतिवर्ष 21 जून को 'योग दिवस' मनाया जाता है।

योग के अनेक आसनों और क्रियाओं का अध्ययन किया गया है। इन अध्ययनों से अनेक आश्चर्यजनक परिणाम सामने आए हैं। यथा–योगाभ्यास के अंतर्गत 'षट्कर्म' की विशेष प्रक्रिया होती है। इससे व्यक्ति के शरीर में निहित विषैले तत्त्व सुगमता से बाहर निकल जाते हैं। इसी तरह विभिन्न योगासनों के निरंतर अभ्यास से शरीर लचीला, फुर्तीला और सुडौल बनता है। रक्त-प्रवाह सुचारु होता है। प्राणायाम से मन की एकाग्रता बढ़ती है, जिससे कार्य-क्षमता भी बढ़ती है। तन-मन दोनों स्वस्थ रहते हैं।

2. रोगों के उपचार में योग का महत्त्व

आज दुनिया में अनेक तरह के रोग फैले हुए हैं। संपूर्ण मनव-जाति इन रोगों से त्रस्त है। योग इन रोगों के निदान में एक अच्छे साधन का कार्य करता है। विभिन्न प्रकार के रोगों से मुक्ति पाने में विभिन्न प्रकार के योग आसनों के सकारात्मक परिणाम प्राप्त हुए हैं। सबसे वैज्ञानिक मानेजाने वाली एलोपैथिक चिकित्सा-प्रणाली का एक नकारात्मक पक्ष प्राय: देखा गया है कि अधिक दवाओं के सेवन के 'साइड इफैक्ट' हो जाते हैं। बहुत-सी ऐसी दवाइयाँ हैं, जो हर किसी को अनुकूल नहीं होतीं। सभी का शरीर हर तरह की दवा को स्वीकार नहीं करता। इसी कारण योग के प्रति जनसामान्य की रुचि में विस्तार हुआ है। यह एक निर्दोष एवं व्यवस्थित जीवन-शैली है, जो बिना नकारात्मक प्रभाव के अनेक तरह के रोगों में लाभप्रद है। उदाहरण के लिए गैस, कब्ज जैसे साधारण रोग बिना दवाओं के मात्र कुछ योगासनों के अभ्यास से ठीक हो जाते हैं। इसी तरह दमा, उच्च एवं निम्न रक्तचाप, हृदयरोग, मधुमेह, मोटापा, संधिवात, अवसाद आदि का प्रभावी उपचार योगासनों से संभव है। इसतरह के अनेक शोधकार्य हुए हैं और हो रहे हैं, जिनके

आशानुरूप परिणाम प्राप्त हुए हैं।

3. पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन की खुशहाली में योग का महत्त्व

योग व्यक्ति-व्यक्ति की जीवन-शैली को सुधारते हुए उसकी चिंतन-पद्धति को भी सकारात्मक बनाता है। जैसाकि सर्वविदित है, व्यक्ति परिवार की इकाई होता है। कोई भी पारिवारिक संस्था व्यक्ति के समग्र विकास पर टिकी होती है। परिवार से समाज का विकास जुड़ा हुआ है। इस प्रकार यह कड़ी राष्ट्रीय विकास से लेकर अखिल विश्व के विकास तक जुड़ी है। योगाभ्यास से होनेवाले सकारात्मक परिणाम यह दर्शाते हैं कि योग से व्यक्ति में पारिवारिक एवं सामाजिक मूल्यों का विकास होता है। व्यक्ति में मानवीय मूल्यों; प्रेम, करुणा, अहिंसा, सदाचार, आत्मीयता, परस्पर सम्मान एवं सौहार्द आदि का विकास और आधान होता है। ये गुण निश्चय ही व्यक्ति के माध्यम से परिवार एवं समाज के विकास के लिए महत्त्वपूर्ण हैं।

अध्ययन बताते हैं कि वर्तमान समय में एकल परिवार बढ़ रहे हैं। संयुक्त परिवारों का स्वरूप बदल रहा है। इससे अनेकानेक समस्याएँ जन्म ले रही हैं। आज देखने को मिल रहा है कि परिवार के सदस्यों में प्रेम का अभाव है। असहिष्णुता है। क्रोध और असंतोष की भावनाएँ बढ़ गई हैं। संवेदनहीनता और स्वार्थ बढ़ रहा है। इससे व्यक्ति का विकास तो प्रभावित हो ही रहा है, परिवार और समाज की धुरी कमजोर हो रही है। योगाभ्यास से इन दुष्प्रभावों से बचा जा सकता है। योग के माध्यम से सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शौच, तप, संतोष, स्वाध्याय, परोपकारिता आदि-आदि का प्रसार होता है, जिससे व्यक्ति के अंदर संस्कार आते हैं, और व्यक्तित्व-विकास के साथ-साथ परिवार एवं समाज का विकास होता है।

4. आध्यात्मिक क्षेत्र में योग का महत्त्व

योगविद्या प्राचीन समय से ही आध्यात्मिक विकास का सर्वोत्तम साधन रही है। जैसा कि हम योग के स्वरूप के संदर्भ में देख चुके हैं, योग का उद्देश्य होता है आत्मा और परमात्मा के संयोग से समाधि की अवस्था प्राप्त करना। इस मर्म को समझते हुए योगी साधक योग-साधना-द्वारा केवल्य अथवा मोक्ष की प्राप्ति करते रहे हैं। इसकी प्रक्रिया कठिन साधना से जुड़ी हुई है, जिसमें यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि के चरण पार किए जाते हैं। अध्यात्म का यही पथ है।

5. मूल्याधारित शिक्षा एवं खेलकूद में योग का महत्त्व

योग शिक्षा; विशेष रूप से मूल्याधारित शिक्षा, शारीरिक शिक्षा एवं खेल-कूद के क्षेत्र में विशेष महत्त्व रखता है। सतत योगाभ्यास से विद्यार्थियों में एकाग्रता बढ़ती है। उनमें ऊर्जा का स्तर बढ़ता है। तनाव में कमी आती है। ऐसे बहुत से आसन और प्राणायाम हैं, जिनके अभ्यास से बच्चों में शारीरिक एवं मानसिक दुर्बलता दूर की जा सकती है। उनका शरीर लचीला, फुर्तीला, सुगठित और नीरोग बनता है। ऐसे अनेक शोधपरक अध्ययन हुए हैं कि योगाभ्यास से बच्चों में एकाग्रता और स्मृति-शक्ति पर सकारात्मक प्रभाव देखा गया है। इसीलिए कुछ वर्षों से प्राथमिक स्तर से लेकर महाविद्यालय और विश्वविद्यालय स्तर के पाठ्यक्रमों में योग-शिक्षा का समावेश किया जा रहा है।

योग के माध्यम से न केवल खेल-कूद की अभिरुचियों में वृद्धि दिखाई दे रही है, बल्कि

विद्यार्थियों की खेल-क्षमताओं में भी वृद्धि हुई है। अपनी खेल-कुशलता, कौशल, क्षमता और एकाग्रता बढ़ाने के लिए खिलाड़ी योग का सहारा लेते हैं। उनकी शारीरिक क्षमता बढ़ती है, उनमें ऊर्जा का स्तर बढ़ता है, उनका मानसिक तनाव कम होता है।

शिक्षा के क्षेत्र में नैतिक शिक्षा और मूल्याधारित शिक्षा को योग से जोड़कर अच्छे परिणाम सामने आए हैं। विद्यालय स्तर से ही समाज में गिरते नैतिक मूल्यों को पुन: स्थापित किए जाने के लिए योग अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो रहा है। विद्यार्थियों में योगाभ्यास से आत्मसंयम, परोपकार, परस्पर सम्मान, कर्त्तव्य-बोध, अनुशासन आदि गुणों का समावेश किया जा सकता है।

समग्रत: हम कह सकते हैं कि योग एक संतुलित और व्यवस्थित जीवन-शैली है। यह वैज्ञानिक है। इसका हमारे जीवन के अनेक क्षेत्रों में महत्त्व है। और, जैसा कि 'योगशिखोपनिषद्' में कहा गया है–

योगात्परतंरपुण्यं योगात्परतरं शिवम्।/ योगात्परपरंशक्तिं योगात्परतरं न हि।

अर्थात् योग के समान कोई पुण्य नहीं, योग के समान कोई कल्याणकारी नहीं, योग के समान कोई शक्ति नहीं और योग से बढ़कर कुछ भी नहीं है।

संदर्भ

1. कठोपनिषद्, 2/3/10-11
2. कल्याण, गोरखपुर, योगांक, दसवाँ वर्ष
3. परिव्राजक, स्वामी सत्यपति (व्याख्याकार), योगदर्शनम् , पृ॰ 10
4. राजकुमारी पांडेय, भारतीय योग-परंपरा के विविध आयाम, पृ॰ 24
5. पातंजल योगसूत्र:
6. योगवाशिष्ठ, उद्धृत, आचार्य देवव्रत, आसन प्राणायाम, पृ॰ 9
7. व्यास भाष्य-1/2
8. वैशेषिक सूत्र, 6/2/16
9. पं॰ श्रीराम शर्मा, आचार्य योग-दर्शन, (2000), पृ॰ 16 से 18
10. श्रीमद्भगवद्गीता, 2/50

27 **सिंडिकेट बैंक कॉलोनी, गैलाना रोड (आगरा)**

 ISSN 0975-735X

अरुण कमल के काव्य में स्थानीयता बनाम राष्ट्रवाद

मोनिका वर्मा (शोधछात्रा)
दयालबाग एजुकेशनल इंस्टीट्यूट
दयालबाग, आगरा

परिचय

'स्थानीयता' भले ही हिंदी साहित्य के लिए एक नया तथ्य या स्वर हो, लेकिन व्यापक दृष्टिकोण से देखा जाए तो यह नया शब्द जरूर हो सकता है, लेकिन नया तथ्य या दृष्टिकोण नहीं। स्थानीयता एक स्थान, एक विस्तृत क्षेत्र की व्याख्या करती है, जिसके अंतर्गत उस स्थान के रीति-रिवाज, संस्कृति-सभ्यता, भाषा-बोली आदि सभी सरोकार आते हैं। यदि हम स्थानीयता को परिभाषित करें तो हम कह सकते हैं कि, 'किसी धर्म या काल का भौगोलिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि दृष्टियों से विस्तृत एवं तात्कालिक वर्णन ही स्थानीयता है।'

प्रो॰ हरिमोहन एक साक्षात्कार में स्थानीयता को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि 'स्थानीयता हमारे कहीं होने की पहचान है। यह बात सीधी-सी नहीं है। स्थानीयता के कई स्तर हो सकते हैं। जैसे वर्तमान में हम जहाँ हैं, उस देशकाल का वातावरण, उसका वैशिष्ट्य, हमारे अतीत के संस्कार, हमारे भीतर रची-बसीं, हमारे जन्मस्थान की परिवेशगत अथवा बचपन की स्मृतियाँ।'

आगे वह स्थानीयता को साहित्य के संदर्भ में व्याख्यायित करते हुए कहते हैं कि 'साहित्य के संदर्भ में बात कुछ बदल जाती है। वह सामान्य से विषेश बन जाती है। कोई रचनाकार जब अपनी किसी रचना पर काम कर रहा होता है, तब यह स्थानीयता चाहे-अनचाहे उसकी रचना में जगह पा लेती है। पाठक स्थानीयता के उन संदर्भों या संकेतों के सहारे उस रचना में संचरित स्थानीयता तक पहुँच सकता है। इसलिए रचनाकार की रचना में निहित स्थानीयता व्यापक हो जाती है और कह सकते हैं कि वह सार्वजनीन तथा सार्वकालिक हो जाती है।' (साक्षात्कार के आधार पर)

राष्ट्र प्राय: ऐसे जनसमूह को कहा जाता है, जो एक भौगोलिक सीमाओं में एक निश्चित देश में रहता हो, समान परंपरा, समान हितों तथा समान भावनाओं में बँधा हो और जिसमें एकता के सूत्र में बँधने की उत्सुकता तथा समान राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाएँ पाई जाती हों। (विकिपीडिया)

राष्ट्रवाद क्या है? राष्ट्रवाद सामान्य शब्दों मे अपने देश या राष्ट्र से होनेवाला मोह है। जिस साहित्य में अपने देश के रीति-रिवाज, संस्कृति-सभ्यता, भाषा-बोली आदि का वर्णन हो, वह साहित्य ही राष्ट्रवाद के होने का उल्लेख करता है। कोई भी कवि किसी भी तरह अपने राष्ट्र एवं

वहाँ की विशेषताओं से दूर नहीं रह सकता।

'राष्ट्रवाद एक भावना भी है और विचारधारा भी है। एक भावना के नाते राष्ट्रवाद अपने राष्ट्र के प्रति प्रेम का संकेत देता है। अत: राष्ट्रवाद को मातृभूमि से प्रेम अथवा देशभक्ति का समरूपी माना जाता है।'[1]

'भारत के प्रकांड विद्वान एवं उच्चकोटि के दार्शनिक श्री अरविंद ने हमारी राष्ट्रीयता को 'राष्ट्रप्रेम-वृक्ष' के रूप में मूर्तिमान करने का प्रयास करते हुए कहा है कि मातृभूमि की मिट्टी और भारत के सागरों से बहते पवन झकोरों के स्पर्श से भारत के पर्वतों से प्रवाहित होनेवाली नदियों, भारतीय जीवन के दृश्यों, त्योहारों और रीति-रिवाजों को देखने से, भारतीय भाषाओं, संगीत और काव्यों को सुनने से प्राप्त होनेवाले सुख की अनुभूति ही राष्ट्रप्रेम-वृक्ष का मूल है। अपने अतीत का अभिमान, अपने वर्तमान की वेदना तथा भविष्य के लिए तीव्र आकांक्षा इस राष्ट्रप्रेम-वृक्ष के स्कंध तथा शाखाएँ हैं। देश के लिए आत्माहुति, उसके लिए अपनी सुध-बुध भूल जाना, उसकी सेवा तथा उसके लिए अपार कष्टसहिष्णुता इस वृक्ष के फल हैं।'[2]

हम स्थानीयता एवं राष्ट्रवाद पर विचार करने के बाद यह कह सकते हैं कि यह कोई भिन्न अवधारणाएँ नहीं हैं। छोटी-छोटी स्थानीयताएँ मिलकर राष्ट्र बनती हैं। जो कवि अपने राष्ट्र से प्रेम की भावना रखता होगा, वह निश्चित तौर पर अपने स्थान एवं अपने लोगों से भी जुड़ा होगा। क्योंकि जब तक अपने लोगों अपने स्थान के प्रति ही प्रेम एवं समर्पण की भावना नहीं हो, तब राष्ट्र के प्रति समर्पण निरर्थक है या अविश्वसनीय है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि स्थानीयता का विस्तृत दृष्टिकोण ही राष्ट्रवाद है।

राष्ट्रीयता और राष्ट्रवाद सूक्ष्म स्तर पर परस्पर समानता लिए हैं। राष्ट्रीयता का भाव तीव्र एवं व्यापक होता है। उसके मूल तत्त्व बाबू गुलाबराय ने इस प्रकार बताए हैं–'एक विशिष्ट भूभाग से संबंधित एक राजनीतिक इकाई, उसमें रहनेवाले लोगों में पारस्परिक सहयोग और सेवा के साथ सर्वतोमुखी उन्नति करने और संगठित रहने की उत्कट अभिलाषा, उस भू-भाग से प्रेम और उसकी सभी चीजों पर जैसे साहित्य, संस्कृति, रहन-सहन, वेशभूषा आदि पर गर्व की भावना।'[3]

राष्ट्रवाद में राष्ट्रीयता की तीव्र भावना रहती है। राष्ट्रवाद विभिन्न विचारधाराओं को भी अपने आपमें समेट लेता है। यहाँ वर्ग, जाति और धार्मिक विभाजन एक हो जाते हैं, राष्ट्रहित सर्वोपरि होता है।

विवेचन

अरुण कमल समकालीन कवियों में एक ऐसे विरले कवि हैं, जिनमें स्थानीयता का बोध अधिक प्रबल है। उनकी प्रत्येक कविता में स्थानीयता एवं राष्ट्रवाद का स्वर मुखरित होता है। उनकी कविताएँ पाठक को अपने समाज के प्रत्येक रूप से परिचित कराती हैं। अरुण कमल जी की कविताओं में स्थानीयता बनाम राष्ट्रवाद का स्वर किसी एक तत्त्व के माध्यम से नहीं, बल्कि प्रत्येक रूप में आया है। चाहे उत्सवों की बात हो या संस्कारों की, खान-पान की बात हो या पहनावे की, भाषा की बात हो या लोगों के सुख-दु:ख की, पाठक प्रत्येक वर्णन में अपने समाज और राष्ट्र को महसूस कर सकता है।

एक कविता में उन्होंने अपने राष्ट्र के प्राकृतिक सौंदर्य की चर्चा बड़े ही खूबसूरत शब्दों से की है, जिसमें उन्होंने बारिश होने के बाद के दृश्य को हूबहू शब्दों के माध्यम से अपनी कविता

 ISSN 0975-735X

में उतारा है–

अभी भी बादल छोप रहे हैं
अमावस्या का हाथ बँटाते।[4]

उनकी कविताओं में प्रकृति का वर्णन ही नहीं है बल्कि प्रकृति से और उसकी हर अनमोल वस्तु से उनके लगाव का प्रतिबिंब भी है। वह लिखते हैं कि–

पककर अपने ही उल्लास से फटता/ एक फल दो शरीफे का
और रस के तेज वेग से जिस ईख के/ फटे हों पोर
वह ईख दो मुझे।[5]

इस चकाचौंध वाले संसार में कवि न अपनी प्राकृतिक संपदा का महत्त्व भूले हैं और न ही अपने संस्कारों को। अपने राष्ट्र में रिश्तों का बहुत महत्त्व है, चाहे फिर वह रिश्ता खून का हो या प्रेम का। कवि अपनी एक कविता की सामान्य पंक्तियों से दो सखी के खूबसूरत रिश्ते को बयाँ करते हैं–

मुश्किल से गर्दन जरा-सा घुमाई
दायाँ तलवा पीछे उठाया
और सखी ने झुककर/ खींचा रेंगनी काँट।[6]

हमारे देश के लोग अपनी जन्मभूमि को बहुत महत्त्व देते हैं और विपरीत परिस्थितियों में भी वह अपनी जन्मभूमि, अपने स्थान को छोड़ने से कतराते हैं। कवि ने अपने राष्ट्र के लोगों का, अपने स्थान एवं राष्ट्र के प्रति सम्मान व्यक्त किया है–

कि हर साल बाढ़ में पड़ने के बाद भी
लोग दियारा छोड़कर कोई दूसरी जगह क्यों नहीं जाते।[7]

कवि ने जहाँ एक ओर अपने देश, अपने स्थान के लगाव को दर्शाया है, वहीं दूसरी ओर ऐसे लोगों का वर्णन भी किया है, जो न चाहते हुए भी अपने स्थान से दूर हो जाते हैं। अपनी 'यात्रा' नामक कविता में कवि ने एक ऐसे व्यक्ति का चित्रण किया है, जो अपने परिवार का पेट पालने के लिए अपने स्थान से दूर जा रहा होता है। कवि जब उसके दूर जाने का कारण पूछते हैं, तब वह व्यक्ति अपनी मजबूरी बताते हुए कहता है–

कौन नहीं चाहता जहाँ जिस जमीन उगे
मिट्टी बन जाए वहीं,
पर दोमट नहीं, तपता हुआ रेत ही है घर
तरबूज का,
जहाँ निभे जिंदगी, वही घर वही गाँव।[8]

अपने लोगों के दु:खों को कवि भूल नहीं पाता और अपने राष्ट्र में फैली गरीब जनता के दु:ख को अलग-अलग रूपों में बयाँ करता है। यह गरीबी सामान्य नहीं है बल्कि इतनी कठोर है कि धनतेरस जैसे शुभ अवसर पर, जब लोग बर्तनों का खरीदना शुभ मानते हैं, तब कुछ लोग अपने आखिरी बर्तन को भी बेचने के लिए मजबूर हैं–

आज धनतेरस है/ नए-नए बर्तन खरीदने का दिन
और आज ही हम अपने आखिरी बर्तन लिए

घूम रहे हैं दुकान-दुकान।[9]

कवि ने पूँजीपतियों द्वारा गरीबों पर किए जानेवाले शोषण को भी अपनी कविताओं में व्यक्त किया है। जहाँ पूँजीपति अपनी मौजमस्ती या अपने व्यापार के लिए गरीबों के मकानों को बिना सोचे-समझे उखाड़ फेंकते हैं। 'हाट' नामक कविता में एक सामान्य परिवार का चित्रण है, जिसमें बेटे के जवान होने पर पिता उसे घर-वार की जिम्मेदारी सौंपता है और माँ उसे काम ढूँढने के लिए मीठा खिलाकर उसके सफल होने की कामना करती हुई घर से विदा करती है। लेकिन बेटे को काम मिलना तो दूर बल्कि जब वह काम की तलाश खत्म कर घर लौटता है तो उसे मालूम होता है कि–

लेकिन वहाँ जहाँ घर था मेरा घर नहीं था
अट्टालिका थी लौह-कपाट और द्वारपाल।[10]

'हाट शीर्षक कविता इस संग्रह की एक असाधारण कविता है। इसमें कवि ने ऐसा जादुई वातावरण बनाया है कि मन उसकी काव्य-कला पर रीझ उठता है। इसमें कवि जवान होने पर काम करने की खोज में बाहर निकलता है, लेकिन उसे काम नहीं मिलता। हारकर जब ढली हुई देह लिए वह घर लौटता है तो पाता है–'वहाँ जहाँ घर था मेरा घर नहीं था/ अट्टालिका थी लौह कपाट और द्वारपाल-/ यहाँ मेरा घर था मेरे पिता मेरी माँ/ मेरा घर?/ द्वारपाल हँसे/ तुम किस जन्म की बात कर रहे हो?' इसके मूल में नए युग का संत्रास ही है, जो एक साधारण जन को गृहवंचित किए जाने से पैदा हुआ है। यह कैसा परिवर्तन और कैसी प्रगति है कि गरीबों की झोंपड़ी उजाड़कर धनपति वहाँ अपनी अट्टालिका खड़ी कर रहे हैं।[11]

अरुण कमल की कविताएँ राजनीतिक माहौल से भी दूर नहीं रहीं। उन्होंने अपने राष्ट्र के कुछ भ्रष्ट नेताओं का और उनकी बदौलत बदहाल राजनीति का चित्रण भी अपनी कविताओं में किया है। जब भी कोई हादसा होता है तो अपने राष्ट्र के राजनेता उस हादसे में ऐसे लोगों का हाथ होने की बात कहते हैं, जो उनका प्रतिरोध न कर सके। एक गरीब की दुर्घटना का गुनहगार भी दूसरे गरीब को बताया जाएगा और असली गुनहेगार से मोटी रकम लेकर अपने भ्रष्टाचार को बढ़ावा दिया जाएगा–

मारे गए मुसहर, उसमें भी/ किसान सभाओं का हाथ है
विद्यार्थियों के हंगामों में/ छात्र-संगठनों का हाथ है
और राज्य में जो भी गड़बड़ी है
सबमें कम्युनिस्टों का हाथ है।[12]

कवि ने राजनीतिक व्यवस्था पर करारा व्यंग्य करते हुए लिखा है–

हुजूर ने ठीक फरमाया
इस दुनिया के पीछे भी ईश्वर का हाथ है। [13]

'नये इलाके में' कवि ने लिखा है–

धोखा दे जाते हैं पुराने निशान
खोजता हूँ ताकता पीपल का पेड़/ खोजता हूँ ढहा हुआ घर
और जमीन का खाली टुकड़ा जहाँ से बायें/ मुड़ना था मुझे। [14]

इस कविता में समाज के सिर्फ भौगोलिक परिवर्तन को ही नहीं दर्शाया गया, बल्कि इस

 ISSN 0975-735X

भौगोलिक स्थिति के माध्यम से मानव-मन की व्याख्या भी की गई है। जहाँ प्रत्येक मनुष्य स्वार्थ के कारण अजनबी होता जा रहा है। उसके मन के लोभ, स्वार्थ ने उसको अंधा बना दिया है। कवि उसी स्वार्थी मानव-मन की व्याख्या करते हुए कहता है कि मनुष्य के इस बदले स्वभाव के कारण संदेह होने लगता है 'क्या यह वही है, जिसे हम बहुत पहले से जानते हैं? उसकी जिन आदतों और स्वभाव से हम उसे जानते थे, वह सब स्वार्थ के कारण मिट चुकी हैं और उनकी जगह नई आदतें, नए स्वभाव जन्म ले रहे हैं। जिस व्यक्ति से आज मिले हैं, वह दूसरे दिन ही पराया लगने लगता है और यह एक दिन का परिवर्तन हमें अरसों बाद का लगने लगता है। क्योंकि इतने कम समय में बदलने का करतब भी हर कोई नहीं कर पाता। कवि इसी परिवर्तन की तेजी अनोखे शब्दों के माध्यम से करता है–

जैसे वसंत का गया पतझड़ को लौटा हूँ
जैसे बैशाख का गया भादों का लौटा हूँ।[15]

सुधीररंजन सिंह ने इस कविता के संदर्भ में लिखा है कि, 'नये इलाके' में कविता एक तरह से पूरे संग्रह का घोषणापत्र है। नया इलाका महज स्थान या समय नहीं, मनुष्य का वह बदलता हुआ बोध भी, जिसमें करुणा और दूसरों के प्रति सम्मान के लिए स्थान कम हुआ है।'[16]

'काल की यह गति और देश का यह परिवर्तन सामान्यत: अदृश्य रहता है। अदृश्य को दृश्यमान बनाने के लिए अंतराल का यह उपयोग अरुण की रचना-दृष्टि है, जिसका संबंध यथार्थवादी जीवन-दर्शन है।'[17]

कवि अपनी कविताओं से लोगों को अपने राष्ट्र के प्रति सम्मोहित ही नहीं करते, बल्कि जागरूक भी बनाते हैं। कवि ने अपनी कुछ कविताओं में अपने देश के महान लोगों का चित्रण करके पुरानी अवधारणाओं को नकारा है। उनकी 'बुढ़ापा' शीर्षक कविता बुढ़ापे का अर्थ ही बदल देती है। जहाँ लोग बुढ़ापे का मतलब आराम करना और पोते-पोतियों को दुलारना मानते हैं, वहीं अब्दुल गफ्फार खाँ जैसे लोग बुढ़ापे के मायने ही बदल देते हैं, जिन्होंने इसी उम्र में सबके उज्ज्वल भविष्य के लिए स्वयं प्रताड़नाएँ सहीं–

मगर बुढ़ापे का मतलब बादशाह खान भी है
बुढ़ापे का मतलब
खुली हवा के लिए
रोटी और शोरवे के लिए
दुनिया-भर के पोते-पोतियों के लिए
गिरफ्तारी जेल और पीठ पर कोड़े।[18]

'बुढ़ापा' शीर्षक कविता, जो अब्दुल गफ्फार खाँ के प्रति लिखी गई है, हिंदी में संभवत: ऐसी अकेली कविता है। अब तक हम यह समझते रहे हैं कि बुढ़ापा का मानी होता है दिनभर खाट पर पड़े रहना, हुक्का गुड़गुड़ाना और आते-जाते किसी भी आदमी को रोककर खैरियत पूछना,...अरुणजी ने इस कविता में यह कहा है कि बुढ़ापे का मतलब बादशाह खान भी है। साथ-साथ दुनिया-भर के पोते-पोतियों के लिए गिरफ्तारी, जेल और पीठ पर कोड़े। इस तरह–'जुल्म के खिलाफ लड़ने की उम्र कभी खत्म नहीं होती। उम्रदराज हो तुम्हारी, चिनार देवदारु बादशाह खान/ न विवशता न थकान न स्यापा/ हो, तो जिंदगी की नोक हो बुढ़ापा।'[19]

एक कवि या साहित्यकार वह है, जो बिना हथियार के तूफान ला देता है, लोगों की मानसिकता बदल देता है। विस्तृत दृष्टिकोण रखनेवाले प्रत्येक कवि की पुतली में कोई विशिष्ट वस्तु नहीं, बल्कि अपने राष्ट्र, अपने क्षेत्र और अपने लोग और अपने लोगों का दर्द यानी एक संसार समाया होता है। 'पुतली में संसार' नामक कविता में भी कवि धनुर्धारी अर्जुन की तरह स्वयं जीतने हेतु अपनी दृष्टि मछली की आँख की पुतली पर एकाग्र नहीं कर पाते, बल्कि दुनियाभर के प्रति सहानुभूति के कारण उन्हें न केवल मछली की पुतली बल्कि उसकी आँख, वह मछली, वह खंभा जिसके सहारे मछली को टाँगा गया है, आकाश, गुरुदेव, सब जन धनुर्धर, पूरी भीड़, उनकी ध्वनियाँ आदि सभी उन्हें दिखाई दे रहे हैं–

> और मैं देखता हूँ, तो मुझे केवल पुतली नहीं
> पूरी आँख दिख रही है गुरुदेव
> और मछली और वह खंभा
> और आकाश और आप और ये सब जन धनुर्धर
> इतनी भीड़ इतनी ध्वनियाँ।[20]

हम निष्कर्षतः यह कह सकते हैं कि जब तक हमें अपने लोक से जुड़ाव नहीं होगा, तब तक हमारे अंदर स्थानीयता का भाव नहीं हो सकता और जो स्थानीयता है वही व्यापक रूप में राष्ट्रवाद है। अरुण कमल की उपर्युक्त कविताओं के माध्यम से यह स्पष्ट है कि अरुण कमल के काव्य में स्थानीयता बनाम राष्ट्रवाद मुख्य रूप से उभरकर आया है। उनकी राष्ट्रवाद या राष्ट्रीयता की पहचान उनकी कविताओं में निहित स्थानीयता से विश्वसनीय बनती है। वे कट्टरता के नहीं, सामंजस्य एवं लोकसंवेदना, व्यापक राष्ट्रीयता के अनूठे कवि हैं। उनकी कविताओं में संचरित स्थानीयता सीमित न होकर राष्ट्रीयता की उस दिव्य भावना से जुड़ी हुई है, जो किसी राष्ट्र के सदस्यों में मिलनेवाली सामुदायिक भावना है, जो भावना देश को संगठित एवं सुदृढ़ करती है। इसकी जड़ें ग्राम्य संस्कृति में हैं। लोक में हैं। उनकी कविताएँ भारतीय संस्कृति से बद्धनाल हैं, जो राष्ट्रीयता और राष्ट्रवाद की सच्ची आत्मा है। राष्ट्रवाद में विचारधाराएँ इतना महत्त्व नहीं रखतीं, राष्ट्रहित सर्वोपरि होता है। अरुण कमल की कविताएँ इसकी साक्षी हैं।

संदर्भ

1. शैलेंद्र सेंगर, राजनीति विज्ञान के सिद्धांत, दिल्ली, एटलाण्टिक पब्लिशर्स, 2008, पृ॰ 669
2. डॉ॰ नरेश, मिश्र, आधुनिक हिंदी राष्ट्रीय काव्यधारा : राष्ट्रीयता और मानवतावाद, संजय प्रकाशन दिल्ली, 2004, पृष्ठ 28
3. गुलाबराय, राष्ट्रीयता, विश्व प्रकाशन संस्थान, दिल्ली, 2013, पृ॰ 11
4. अरुण कमल, सबूत, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999, पृ॰ 12
5. सबूत, पृ॰ 36
6. सबूत, पृ॰ 41
7. सबूत, पृ॰ 25
8. अपनी केवल धार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, पृ॰ 13
9. सबूत, पृ॰ 35
10. नये इलाके में, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृ॰ 20–21

11. नंदकिशोर नवल, हिंदी कविता : अभी, बिल्कुल अभी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ॰ 237-238
12. अपनी केवल धार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, पृ॰ 43-44
13. अपनी केवल धार, 2006, पृ॰ 44
14. नये इलाके में, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृ॰ 13
15. नये इलाके में, पृ॰ 13-14
16. अजय तिवारी, संवेद-अंक-16, नई दिल्ली, 2007, पृ॰ 67
18. सबूत, पृ॰ 32
19. नंदकिशोर नवल, हिंदी कविता : अभी, बिल्कुल अभी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ॰ 232-233
20. पुतली में संसार, 2006, पृ॰ 13

e-mail . monikaverma.281991@gmail.com

श्रमिकवर्ग तथा शेखर जोशी का रचना-संसार

डॉ॰ संजयकुमार राठौर
हिंदी अध्ययनशाला
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म॰प्र॰)

भारतीय श्रमिकवर्ग की साहित्य में उपस्थिति और दृष्टिकोण के प्रति कुछ ही लेखक सचेत एवं संवेदनशील रहे हैं। यहाँ भी बात प्रेमचंद से ही शुरू करनी पड़ेगी। वैसे भी हिंदी कहानी में कोई भी बात बिना प्रेमचंद के शुरू भी नहीं हो पाती है। प्रेमचंद ने 'मजदूर' फिल्म की कहानी लिखी है, जो सिनेमाई-सीमा के कारण सूत्रबद्ध स्वरूप में श्रमिक-जीवन को दर्शाती है। यह हमारे विमर्श का विषय भी नहीं है। हम अच्छी तरह जानते है कि प्रेमचंद ने कारखाने के मजदूरों पर कोई कहानी नहीं लिखी। भारतीय किसान-जीवन के सबसे आधिकारिक कहानीकार के रूप में प्रेमचंद के श्रमिक जीवन के प्रति उनके रचनात्मक दृष्टिकोण की स्पष्ट झलक 'गोदान' में होरी के बेटे गोबर लखनऊ में जाकर एक मिल में मजदूर हो जाता है। प्रेमचंद ने गोबर को जिस मिल में काम करने के लिए छोड़ा था, उस मिल के कई मजदूरों की कहानी के बाद में जिन लोगों ने लिखी है, उन सबमें शेखर जोशी हमें कुछ अलग ढंग से आकृष्ट करते हैं।

शेखर जोशी के रचना-संसार के विषय हमारे आसपास की खिड़कियों, गलियों, रास्तों, कस्बों, शहरों, कारखानों में आते-झाँकते एवं बातें करते दिखाई देते हैं। पहाड़ी इलाकों की गरीबी एवं वहाँ से हुआ विस्थापन, औद्योगिक मजदूरवर्ग के हालात, शहरी कस्बाई निम्न एवं मध्यमवर्ग के आर्थिक-सामाजिक-नैतिक संकट, धर्म एवं जाति से जुड़ी रूढ़ियाँ और उनका प्रतिफल, दैनंदिन स्थितियों का वर्गीय चरित्र उनकी कहानियों में मार्मिकता एवं प्रमाणिक उपस्थिति के साथ दर्ज होता है। इन्हीं उपस्थितियों के आधार पर रचनाकार को किसी-न-किसी चेतना का वाहक मानना सिद्ध करता आया है। यह भी कई बार हमारे सामने विशेष किस्म की परेशानी खड़ा करता है। शेखर जोशी की कहानियों में उपस्थित कथावस्तु अपनी पूरी संवेदनशील प्रामाणिकता एवं प्रभाव के साथ अपने पाठकों को पूरी तरह आश्वस्त करते हैं।

शेखर जोशी की कई कहानियों में श्रमिक-जीवन अपने विविध रंगों के साथ उकेरा गया है। इन कहानियों में 'बदबू', 'नौरंगी बीमार है', 'आशीर्वचन', 'मेंटल', 'उस्ताद', 'दाज्यू', 'हलवाहा' और 'निर्णायक' आदि हैं। शेखर जोशी की कहानियों में श्रमिक जीवन केवल कारखानों की सीमा में, गेट-मीटिंग में, नारे लगाने में, श्रमिक आंदोलनों आदि में ही नहीं सिमटा है। इन कहानियों से श्रमिक-जीवन के उन अनछुए रेशों की पहचान स्पष्ट होती है, जिनको किनारे करके न तो छोटे से छोटा संघर्ष किया जा सकता है और न ही किसी बड़ी क्रांति की मशाल जलाई जा सकती है। 'दाज्यू' कहानी का मदन चाय की दुकानों पर काम करनेवाला जाना-पहचाना बालश्रमिक ही है।

 ISSN 0975-735X

श्रमिक की परिभाषा में जगदीशबाबू भी आते हैं। मानव-विरोधी व्यवस्था जिस तरह बारीक ढंग से अपना काम करती है, उसका मार्मिक उदाहरण 'दाज्यू' कहानी में मिलता है। मदन और जगदीशबाबू दोनों विस्थापन की पीड़ा से गुजर रहे हैं। दोनों एक ही तरह के समाज एवं परिवेश से जुड़े हुए भी हैं। कामकाजी स्तर पर भी दोनों श्रमिक के दायरे में ही आते हैं। इतनी समानता के बाद भी यह 'व्यवस्था' उन दोनों के बीच बड़ी दीवार खड़ी कर देती है। यह दीवार श्रम को अलग-अलग रंग एवं पैकेटों में बाँटकर तैयार की गई है। जगदीशबाबू कुछ दिन के लिए मदन से अपनापन दिखाते हैं, पर उन्हें जल्दी ही अपने मध्यवर्ग का होने का अहसास हावी हो जाता है। जगदीशबाबू एवं मदन के बीच जिस तनाव का चित्र शेखर जोशी ने खींचा है, उनमें बाल-श्रमिक मदन का वह प्रतिरोधी चेहरा सामने आता है, जो अपनी गरीब स्थिति के प्रति सजग एवं सहज होने के जटिल एवं तनाव की प्रक्रिया के बाद ही संभव है। शेखर जोशी ने श्रम के इस विभेदीकरण की विसंगति की संपूर्ण मार्मिक एवं क्रूर परिणति की पहचान एवं बहुत छोटे और सहज बच्चे को उम्र एवं समय से बहुत पहले वर्गचेतना की कठोर वास्तविकता से परिचित ही नहीं करती बल्कि उसके संबंध में परिपक्व और ठोस निर्णय लेने के लिए बाध्य भी करती है।

मदन एवं जगदीशबाबू के बीच होनेवाली तमाम घटनाओं से वर्गों के बीच के संबंधों, तनावों का वास्तविक एवं संवेदनशील ढाँचा अपने बारीक जोड़ों के साथ हमारे सामने आता है। मदन को जिस जगदीशबाबू से अपनेपन और लगाव के पुख्ता उम्मीद थी, वहीं से वह नाउम्मीद ही नहीं होता, बल्कि चेतना में बदलाव की मारक प्रक्रिया से भी गुजरता है। मदन एवं जगदीशबाबू के बीच होनेवाली इस प्रक्रिया से श्रमिक और मध्यमवर्ग के बीच रिश्तों के महत्त्वपूर्ण आयाम का प्रमाणिक आख्यान रचा जाता है। श्रमिकवर्ग भी अक्सर मदन की तरह ही निम्न मध्यवर्ग से नाउम्मीद होता रहा है और कई बार मध्यवर्ग जगदीशबाबू की तरह ही अपनी जरूरत और समय के हिसाब से श्रमिकवर्ग से अपनापन दर्शाने की आभासी वास्तविकता को तरह-तरह से रचने का प्रयास करता है। 'मेंटल' कहानी दो स्तरों पर घटित होनेवाली त्रासदी को रेखांकित करती है। श्रमिक वर्ग द्वारा सच सामने लाना और उसके साथ मध्यवर्ग से किसी आदमी के खड़े होने की स्थिति को सहज मान लेना आसान नहीं होता है। यह समाज संस्कृति की कथित मुख्यधारा के लिए तो एक धक्के की तरह होता है और यह धारा इस पर बेहद सधी हुई प्रतिक्रिया देता है। वह श्रमिक एवं मध्यवर्गीय संवेदना को मेंटल घोषित कर देता है।

शेखर जोशी की एक कहानी 'बदबू' में यथार्थ अपने कुटिल पेंच के साथ सामने आता है। कारखाने में साहब की भूमिका वाला पात्र एक जगह कहता है कि 'मैं कौन होता हूँ, जो तुम लोग मुझसे यह कहने के लिए आते हो? मैं भी तो भाई, तुम्हीं लोगों की तरह एक छोटा-मोटा नौकर हूँ।'[1] इस कथन के बाद कहानीकार दर्ज करता है—'अपनी दोनों हथेलियों को मेज पर फैलाकर साहब ने कृत्रिम मुस्कान का ऋण लौटा दिया एवं अपनी कुर्सी पर अधीन आश्वस्त होकर बैठ गए।'[2] यह साहब कोई और नहीं बल्कि जगदीशबाबू ही हो सकते हैं। यह वही साहब है जो कारखाने के हर श्रमिक की बारीक से बारीक गतिविधि पर नजर रखता है। यहाँ तक कि श्रमिक के बीच किसी तरह की सामूहिकता पनपने को राजनीतिक गतिविधि के रूप में वही पहचानता भी है। शेखर जोशी की कहानियों में मजदूर यूनियनों की उपस्थिति बड़ी विरलतम है। 'बदबू' कहानी में मजदूर यूनियन की सांकेतिक चर्चा भर मिलती है, पर इसी कहानी में संगठन एवं संघर्ष

के लिए जरूरी चेतना और प्रतिबद्धता की अंतर्धारा प्रवाहित है। 'हाथों में कैरोसिन तेल की बदबू अब भी आ रही थी।'[3] और स्थिति को वह श्रमिक अपने लिए अपने होने जैसा मानता है। बदबू आने का एहसास ही उसे अपने भीतर जीवन की आशा बने रहने की तरह देखता है। बदबू आने की पुख्ता पुष्टि हो जाने के बाद उसके हर्ष की सीमा नहीं रहती है।

शेखर जोशी की कहानियों का श्रमिक दयनीय मानसिकता से प्रभावित नहीं होता दिखता है। उसके भीतर अपने जीवन के यथार्थ एवं कठिन स्थितियों से उपजा दु:ख तो मिल सकता है, पर हम उसके दु:ख की हीनता एवं दीनता का पर्याय नहीं साबित कर सकते हैं। 'दाज्यू' का मदन जब अपना परिचय 'बाय' के रूप में देता है तो पाठक को उसकी दृढ़ता ही झकझोरती है। हीनता तो जगदीशबाबू की उभरती है। यही स्थिति हर कहानी में है। 'हलवाहा' बनने का निर्णय हीनता-बोध से उपजा न होकर श्रम के महत्त्व के वास्तविक बोध से विकसित होता है। शेखर जोशी के श्रमिक पात्र अपने श्रम को प्यार एवं सम्मान देने वाले हैं। 'आशीर्वचन' में श्यामलाल की रिटायरमेंट की कहानी कहते हुए शेखर जोशी ने इस मनोस्थिति को उकेरा है। कहानीकार दर्ज करता है कि 'वाह रे मर्दो! एका भी क्या होता है! दूसरे दिन से कैंची-मशीन पर लोहे की चादरें ऐसे फरफरातीं जैसे ताश के पत्ते हों, वह खुद ही मशीन आपरेट करता था। दस चादरों की कटाई के बाद गुनियाँ जाँच लेता, कहीं ऐंच-बाँक न रहे, माल खारिज न हो।'[4] सुबह से कारखाने का दो बार चक्कर लगा चुका श्यामलाल साथियों से मिले नए कपड़े पहनने के बाद तीसरी बार भी कारखाने का चक्कर लगाता है। हर चक्कर में उसे अपने जीवन से कुछ खत्म हुआ ही अनुभव होता है। 'वहीं खड़े-खड़े श्यामलाल ने हिदायत दी। फिर जैसे अचानक कुछ याद आ गया हो, उसने झपटकर दूसरे कारीगर का कंधा छूकर पूछा, 'बिजली की लाइन बंद कर दी है न?' शायद यह चूक हो गई थी, वह आदमी दौड़कर भी मीटर ऑफ कर आया।'[5] शेखर जोशी की कहानी 'उस्ताद' भी अपने श्रम से प्यार एवं उस पर नाज करनेवाला पात्र है। पहले ही दिन उस्ताद ने अपना महत्त्व जता दिया था, 'तीस साल हो गए हैं, यहीं मोटरों का काम करते-करते। डॉक्टर के पास सौ मरीज जाते हैं तो बीस भी ठीक नहीं होते हैं, लेकिन कसम है इन औजारों की जो आज तक एक भी गाड़ी मेरे हाथ से खराब निकली हो! पूछ लो उससे!'[6] यह उस्ताद ताईद कहता है–'जिसने एक बार उस्ताद मान लिया उसे पूरा काम सिखाना पड़ता है, वरना अपना ही नाम बदनाम होता है। पर सीखना होगा दिल लगाकर।'[7] यह दिल तभी लग सकता है, जब सीखे जाने वाले काम के प्रति प्यार एवं सम्मान का भाव हो। जो उस्ताद अपने हुनर के सबसे बारीक नुस्खे को छुपाकर रखता है, वही उस्ताद अपने सिखाने के स्तर को बनाये रखने के लिए अपने शागिर्द की क्लास ट्रेन छूटने के पाँच मिनट पहले रेलवे प्लेटफार्म पर भी लेने पहुँच जाता है। अपने शागिर्द को सब-कुछ सिखा देने का संतोष उस्ताद के चेहरे को चमक से भर देता है। यह मन:स्थिति ही एक श्रमिक को होनहार नई पीढ़ी के कारीगरों के प्रति आश्वस्त करती है।

शेखर जोशी की कहानियों के माध्यम से श्रम के सार्वकालिक महत्त्व का बिना नारे-बैनर के बदले स्थापित कर दिया है एवं बेहतर समय और समाज रचने के लिए आवश्यक मन:स्थितियों एवं चेतना की अंतर्धारा का उनकी कहानियों में प्रवाहित होते स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

संदर्भ

1. शेखर जोशी, डांगरी वाले, पृ॰ 50

ISSN 0975-735X

2. वही, पृ॰ 50
3. वही, पृ॰ 54
4. शेखर जोशी, संकलित कहानियाँ, पृ॰ 168
5. वही, पृ॰ 169
6. शेखर जोशी, डांगरी वाले, पृ॰ 16
7. वही, पृ॰ 17

नरेंद्रमोहन के नाटकों में नारीमुक्ति की कामना

डॉ॰ संतराम वैश्य
रितु (शोध छात्रा)
हिंदी विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालयय, हरिद्वार

भूमिका

समकालीन हिंदीनाट्य लेखकों में नाटककार नरेंद्रमोहन का नाम उल्लेखनीय है। इनके नाटकों में हमें भ्रष्ट शासन-व्यवस्था के विरुद्ध उठनेवाले स्वरों के अतिरिक्त वर्तमान समय की नारी की मुक्ति के स्वर भी बड़े स्पष्ट रूप से प्रकट हुए हैं। नाटककार ने समकालीन नारी के जीवन-प्रसंगों को उसकी दशा और स्थिति को बड़े सटीक ढंग से अपने नाटकों में प्रस्तुत किया है। नारी सहनशीलता की प्रतिमूर्ति होती है और उसके इस गुण को उसकी दुर्बलता मानकर पुरुषप्रधान समाज निरंतर उसका शोषण करता चला आ रहा है, परंतु वर्तमान युग की नारी अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो रही है और उसका यह कदम संपूर्ण नारी-समुदाय के लिए वरदान सिद्ध हुआ है। अपने अस्तित्व की रक्षा करते हुए नारी अपने मुक्तिमार्ग पर अग्रसर है तथा समकालीन नाटककारों का इस दिशा में योगदान सराहनीय है।

नारी पुरोधा नाटककारों में भारतेंदु हरिशचंद्र, जयशंकर प्रसाद, लक्ष्मीनारायण मिश्र, हरिकृष्ण प्रेमी, उदयशंकर भट्ट, डॉ॰ नरेंद्रमोहन, विष्णु प्रभाकर, लक्ष्मीनारायण लाल आदि नाट्य-लेखकों के नाम प्रमुख हैं, जिन्होंने अपने नाटकों में जहाँ एक ओर भ्रष्ट शासन-व्यवस्था की पोल खोली है, वहीं दूसरी ओर नारीमुक्ति का भी प्रयास किया है।

नारीमुक्ति

नारी और मुक्ति की कामना दोनों समाज के दो विपरीत पहलू हैं। यह एक कटु सत्य है। सदैव से ही समाज पर उन पुरुषों का आधिपत्य स्थापित है, जिन्होंने इसका निर्माण किया है और जो स्वयं समाज के ठेकेदार बन बैठे हैं। स्त्री स्वभाव से ही शांत, सहनशील और ममतामयी होती है। यहाँ नारीमुक्ति से हमारा तात्पर्य नारी को समाज में समानता का अधिकार प्रदान करने से है। जैसे–वाचन का अधिकार, नेतृत्व का अधिकार, वैचारिक स्वतंत्रता आदि। समकालीन प्रमुख नाटककार डॉ॰ नरेंद्रमोहन ने अपने नाटकों में 'नारीमुक्ति की कामना' को एक प्रमुख समस्या के रूप में उठाया है तथा उसकी मुक्ति का मार्ग भी प्रशस्त किया है।

इनके नाटक 'हद हो गई यारो!' की स्त्री-पात्रा सुंदरी अपने पति के द्वारा किए जानेवाले अत्याचारों का विरोध करते हुए मुक्ति की कामना करती है। वह कहती है–

सुंदरी–डर-डरकर बहुत देख लिया, कामिनी और बड़ी शिद्दत से जाना है कि...

कामिनी–रुक क्यों गई?

'सुंदरी–औरत का सबसे बड़ा दुश्मन डर है–डर जो लुभाता है, अटकाता है, रोकता है। सोचती हूँ, उस दुश्मन के चिथड़े-चिथड़े करके फेंक दूँ, मगर कर नहीं पाती हूँ। एक पल चुप सच मानकर, कामिनी, देव ने मेरी जिंदगी को नए मायने दिए हैं, मगर आज मैं फुफकारते हुए साँपों से घिरी हूँ और मुक्ति की कोई आस नहीं है। समझ नहीं पाती हूँ ब्याहता हूँ, बिनब्याही औरत हूँ या विधवा।'[1]

इससे स्पष्ट है कि सुंदरी अपने पति कुंदन के विरुद्ध अपनी मुक्ति का प्रयास करने को अग्रसर होती है। स्वामी जब उसे कुंदन के विरुद्ध जाने को मना करता है तो सुंदरी कुंदन की पत्नी बने रहने और चुपचाप जुल्म सहते रहने से साफ-साफ शब्दों में इनकार कर देती है–

'तुम्हारा मतलब है दीवार में चिन जाना मंजूर करूँ, दबती और पिसती रहूँ, जिल्लत और जुल्म सहती रहूँ और चूँ तक न करूँ, तो सब ठीक-ठाक। नहीं, नहीं मुझे नहीं मंजूर इस तरह जीना...।'[2]

नारी के प्रति सामाजिक भेद-भाव का प्रश्न सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है, क्योंकि सामाजिक भेदभावपूर्ण नीति-नियम ही स्त्री को भीतर से कमजोर, असहाय और डरपोक बनाते हैं। जिस कारण सामाजिक शोषण का विरोध करने में वह असमर्थ हो जाती है। नारीमुक्ति से हमारा तात्पर्य नारी को उस शोषणपूर्ण व्यवस्था के मूल्यबोध से मुक्त कराना है, जो उसे उपभोग की वस्तु-मात्र समझती है और नारी के स्वतंत्र अस्तित्व को पूर्णत: नकारती है।

'जो औरत पुरुष के बनाए हुए धर्म और कानूनी पिंजड़े में स्वयं को बंदी रखती है या अपने को विसर्जित करती है, उसे सभी अच्छी कहते हैं। सभी उसकी प्रशंसा करते हैं। यह भी पुरुष तंत्र का कौशल है कि जो स्त्री पिंजड़ा तोड़कर बाहर आती है, उसे अश्लीलता की दोषी ठहरया जाए। उसे सामाजिक बहिष्कार का शिकार होना पड़े। मानो किसी भी स्त्री के लिए पारिवारिक पिंजड़ा ही उसका परम आराध्य है।'[3]

भारतेंदु ने भी स्त्री-समस्याओं पर आधारित नाटक लिखे। विधवा-विवाह, बाल-विवाह, वैश्यावृत्ति आदि पर इस समय अनेक नाटक लिखे गए। सपत्नी, विधवा-जीवन, वेश्यावृत्ति आदि पर प्रसाद युग में भी अजातशत्रु नाटक लिखा गया। प्रसाद ने अतीत के पट पर वर्तमान का चित्रण किया। ध्रुवस्वामिनी में प्रसाद ने स्त्री-समस्या को प्रस्तुत किया। तलाक एवं पुनर्विवाह का अधिकार हिंदूस्त्री को है या नहीं, इस बात को भी उन्होंने प्रस्तुत किया है।

'क्यों हमारे साहित्य में प्राय: स्त्री को ही देवी या दानवी, सती-साधवी या कुलटा, दबी कुचली दासी या प्रतिशोध में उग्रता-उच्छृख्लता की प्रतिमूर्ति, कुंठित या आक्रोश, सहमी-सुकड़ी, भयभीत या हर लाज-शर्म को उतार फेंकनेवाली भ्रष्ट नारी की परस्पर विरोधी छवियाँ और प्रतिध्वनियाँ ही मिलती है।'[4]

नरेंद्रमोहन के नाटक 'मलिक अंबर' की नारी-पात्रा हमीदा भी अपने पति सुलतान की विलासी प्रवृत्ति और कायरता को देखकर स्वयं को उसकी बीबी होने की जिल्लत से मुक्त करा लेती है। वह कहती है–

'माँ, मेरा हाल रखैल-सा ही है। जानती हो, सुलतान की पहली बीबी ने मुझे गुलाम,

सुलतान की रखैल और बागी बाबू की बेटी कहा? सुलतान पूरी तरह से उसके कब्जे में हैं। जो सुलतान मुझ पर जान लुटाता था, उसे ही मैं भद्दी, काली और दाग-दाग दिखने लगी। हुँह! सुलतान–कमीना, नपुंसक, मिट्टी का लोंदा। उसे देखते ही मेरे अंदर पता नहीं कहाँ से नफरत की चिनगारियाँ फूटने लगती हैं।'[5]

इससे स्पष्ट है कि हमीदा अपने कायर और विलासी पति सुलतान के साथ रहने और जिल्लत-भरी जिंदगी जीने से उचित स्वयं को उसकी बीबी होने के भार से मुक्त करना समझती है।

हमारे समाज में जितने भी नियम-कानून व्याप्त हैं, वे सभी पुरुषों ने अपनी सुविधानुसार स्थापित किए हैं और स्त्री को मात्र नियम, संस्कृति, संस्कार और एक कुशल गृहिणी एवं माँ के रूप में अपने कर्त्तव्यों का पालन करने का अधिकार ही प्रदान किया गया है। हमारे भारतीय समाज में पुरुषों के अनुशासन में रहनेवाली ही आदर्श नारी की परिभाषा है। वास्तविकता यह है कि यह सभी नियमावली पुरुषप्रधान समाज के प्रतिमान हैं, जो कि स्त्री के अधिकारों और स्वतंत्रता के विरोधी हैं।

समापन

वर्तमान समय की नारी का संपूर्ण क्रोध इस बात पर है कि एक मनुष्य की भाँति जो अधिकार और मान्यताएँ पुरुषों के लिए सहज रूप से स्वीकार्य हैं, वही अधिकार और मान्यताएँ स्त्रियों के लिए वर्जित क्यों हैं? और एक ही प्रश्न उसके मानस में घूमता रहता है कि क्या आज भी वर्तमान समय में स्त्री की दशा में कुछ सुधार हुआ है?

वर्तमान सामाजिक व्यवस्था पुरुषों के द्वारा निर्मित नियमों के अनुरूप संचालित है। परंतु आज की नारी अपने अधिकारों के लिए आवाज उठाना जानती है। वह अपनी स्वतंत्रता का पूर्ण रूप से सही उपयोग करते हुए जीवन को सही दिशा में अग्रसर कर रही है। कोई भी रूढ़िवादी नियम-कानून आज की नारी को उसके अधिकारों व स्वतंत्रता से वंचित नहीं कर सकता। अत: समकालीन समय में समाज की विचारधारा और जीवन-पद्धति बदलते स्वरूप के अनुसार ही स्त्री की स्थिति भी परिवर्तित हो रही है। समाज में अपना स्थान बनाए रखते हुए, नारी अपने जीवन का ध्येय निश्चित कर रही है, जोकि एक स्वस्थ समाज के निर्माण की आधारशिला है और यह तभी संभव है, जब एक स्त्री को भी पुरुषों के समान समानता का अधिकार प्राप्त होगा।

संदर्भ

1. डॉ॰ नरेंद्रमोहन, हद हो गई यारो! किताब घर प्रकाशन अंसारी रोड़, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2012
2. वही, पृ॰ 45
3. तसलीमा नसरीन, नष्ट लड़की : नष्ट गद्य, अनु॰ मुनमुन सरकार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1995
4. आशा रानी व्होरा, आजकल, फरवरी, संस्करण 19
5. डॉ॰ नरेंद्रमोहन, मलिक अंबर, संजय प्रकाशन, अंसारी रोड़, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण

गुरु गोविंदसिंह के साहित्य में वीर-भावना

डॉ॰ राजविंद्र कौर
सहायक प्रोफेसर
विश्वविद्यालय शिक्षण महाविद्यालय
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

सारांश

गुरु गोविंदजी के साहित्य में भक्ति-भावना बहुत पुष्ट है, तथापि उसका स्वर वीरता का है और उसका अधिक अंश युद्ध-वर्णन से पूर्ण है। उनकी वीर-रचनाएँ उपलब्ध हैं—विचित्र नाटक, चौबीस अवसार, चंडीचरित्र उक्ति विलास एवं चंडीचरित्र द्वितीय। विचित्र नाटक में गुरु गोविंदजी एक वीर एवं साहसी यशस्वी, शूरवीर, कुशल सेना-संचालक, धर्मरक्षक के रूप में एक राष्ट्रनायक के रूप में उभरकर आते हैं। चंडीचरित्र उक्ति विलास में गुरु ने चंडी देवी की उपासना करके देवी से शक्ति माँगी है ताकि वह शत्रु का नाश कर सकें। चौबीस अवतार में राम और कृष्ण को योद्धा के रूप में दिखाया गया है, जो असुरी शक्तियों का नाश करते हैं।

गुरु गोविंदसिंह का जन्म 1666 ई॰ में पटना में हुआ। आपके पिता का नाम गुरु तेगबहादुर था। बचपन से ही आपको शस्त्र चलाने और कृत्रिम युद्ध के खेल बहुत प्रिय थे। 1675 ई॰ में केवल नौ वर्ष की आयु में आप गुरु गद्दी पर विराजमान हुए तो आपने अपने शिष्यों की निरीहता और भक्ति को शौर्य और शक्ति में परिवर्तित कर दिया। आपके मन में औरंगजेब और उसके शासन के अन्याय-अत्याचार के प्रति घृणा भर गई थी। आपने परिस्थितिवश देश, धर्म और संस्कृति की रक्षा के लिए भक्ति के साथ-साथ शक्ति का रूप 'खालसा' निर्माण किया। आयुभर आप औरंगजेब की सेनाओं, पहाड़ी, राजाओं तथा उनके भड़काए नवाबों-सूबेदारों की सेनाओं से लड़ते रहे। आप निर्भीक, अडिग और अपार शक्ति के पुंज थे।

'दशमग्रंथ' वीरकाव्य का मुख्य अंश है। वह धर्म- योद्धाओं का प्रेरणास्त्रोत है। 'दशमग्रंथ' में दो प्रकार की वीररचनाएँ उपलब्ध हैं—एक ऐतिहासिक प्रबंध के रूप में जैसे 'विचित्र नाटक' (अपनी कथा) और दूसरी पौराणिक प्रबंधों के रूप में जैसे 'चौबीस अवतार,' चंडीचरित्र उक्ति विलास' एवं 'चंडीचरित्र द्वितीय'।

विचित्र नाटक

गुरु गोविंदसिंह द्वारा चरितकाव्य शैली में रचित यह एक ऐसा वीरकाव्य है, जिसमें किसी देवी-देवता या अन्य वीर-पुरुष के चरित्र में अनेक अतिमानवीय, अलौकिक अथवा चमत्कारपूर्ण घटनाओं का समावेश करके उसकी वीरता, शौर्य, दृढ़ता, साहस, पौरुष आदि गुणों की अतिशयोक्तिपूर्ण

प्रशंसा नहीं की गई, वरन् यह गुरुजी के अपने जीवन से संबंधित है और उसमें 'आत्मकथा' की सी सत्यता, यथार्थता एवं सहजता है। आत्मनिरीक्षण और भावपूर्ण अभिव्यक्ति की दृष्टि से यह एक आदर्श, उत्कृष्ट एवं विशिष्ट रचना है। यह अत्यंत विश्वासपूर्ण, दृढ़, स्वच्छ एवं आकर्षक शैली में रचित मनोहर आत्मकथा है।

इस धरातल पर अपने आगमन के उद्देश्य की ओर संकेत करते हुए वे लिखते हैं कि मुझे गुरुदेव ने धर्म-स्थापना के लिए भेजा है और कहा है कि जहाँ दुष्टों को देखो, उन्हें मार गिराओ। वे हिंदुओं के मन में यह बात बिठाना चाहते थे कि वे यवनों के अन्याय और अत्याचारों से उनका उद्धार करने के लिए ही यहाँ आए हैं।

मध्यकालीन भारत की हिंदू जनता रूढ़िग्रस्त, प्रमादयुक्त, आलसी और निरुद्यमी हो चुकी थी। उनके अंदर एक नई कर्मण्यता एवं कर्मठता पैदा करने की जरूरत थी। ऐसी कर्मण्यता जो उनमें शक्ति, साहस, स्वाभिमान एवं उत्साह का संचार कर सके। 'विचित्र नाटक' में गुरुजी ने इन भावों को जाग्रत करने का स्तुत्य कार्य किया है। परिश्रम का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए उन्होंने लिखा है कि जो हंसी में भी परिश्रम, उद्यम करेगा वह सभी सुखों और सिद्धियों को प्राप्त करेगा।

व्यक्तित्व : विचित्र नाटक (अपनी कथा) में गुरु गोविंद एक वीर एवं साहसी यशस्वी, शूरवीर, कुशल सेना-संचालक, राष्ट्र-प्रेमी, धर्म-रक्षक, दृष्ट संहारक, संत उद्धारक, आस्थावान एवं विनम्र राष्ट्रनायक के रूप में आते हैं।

रचना सौष्ठव : इस रचना में कुल 24 अध्याय है, जिसमें से आठ में युद्ध-वर्णन है। रचना की उदात्त वीर-प्रवृति का परिचय आरंभ में ही मिल जाता है, जब कवि अधर्मी और अत्याचारी शत्रु की विनाशक खड्ग की वंदना करते हैं–

खग खंड विहंड खल दल खंड अति रण मंड बखंडं।
भुज दंड अखंड तेज प्रचंड़ जोति अमंडं भान प्रभं।
सुख संता करणं दुर्भत दरणं किलविख हरणं अस सरणं।
जै जै जग कारण स्त्रिसट उबारन मम प्रतिपारन जै तेगं।

कथानक : कथानक का आरंभ गुरुजी की पूर्व जन्म की कथा से होता है, जिसमें वे अपने इहलोक में आगमन के उद्देश्य की ओर भी संकेत कर देते हैं। गुरुजी ने अपने सोढी वंश का संबंध सूर्यवंश से स्थापित किया है, जिससे उनके वीर-चरित्र का ही परिचय मिलता है। इस रचना में 'अकाल स्तुति', वंश-वर्णन तथा पूर्वजन्म एवं इस जन्म की संक्षिप्त कथा के पश्चात् उन्होंने भंगाणी, नादौन, खानजादा तथा हुसैनी युद्ध का वर्णन किया है।

इसमें श्रीनगर (गढ़वाल) के पहाड़ी राजा के युद्ध का वर्णन है। राजा फतेशाह पहाड़ी राजा ने बिना किसी कारण से उन पर आक्रमण कर दिया, जिनका उन्होंने डटकर मुकाबला किया। यहाँ कवि ने दोनों पक्षों के प्रमुख वीरों के नामों का उल्लेख करते हुए उनके शौर्य की प्रशंसा की है और उनके प्रहार-प्रतिप्रहार एवं भिड़ंत का अत्यंत सजीव एवं ओजस्वी चित्रण किया है। उदाहरणस्वरूप महंतकृपाल तथा नंदचंद आदि के युद्ध का भव्य वर्णन किया है। वे कहते हैं कि 'कृपाल ने क्रोधित होकर कुतका उठाई और हठी शूरवीर हयातखाँ के सिर पर दे मारी। उसके सिर में से मिझ की छींटें इतनी जोर से निकलीं, जैसे कृष्ण द्वारा मक्खन की मटकी फोड़ देने पर मक्खन के छींटे उठे हों। उसी समय नंदचंद भी बहुत क्रोधित हुआ और उसने नजाबतखाँ को बरछी मारी और

साथ ही तलवार खींच ली। वह तीखी तलवार युद्ध करते-करते टूट गई। तलवार के टूट जाने पर उसने कटार निकाल ली। उस शूरवीर ने सोढी वंश की लाज रख ली। कृपालदास का क्रोध भी भड़क उठा, क्रोध में भरे उस शूरवीर ने भी घमासान युद्ध किया। उस वीर ने अपने शरीर पर अनेक तीर सहे–

क्रिपाल कोपीयं कुतका संभारी। हठी खान ह्यात के सीस झारी।
उठी र्छिाच्छ इच्छं कढा मेझ जोरं। मनो माखंन मटकी कान्ह फोरं।
तहाँ नंद चंद कीयो कोपु भारो। लगाई बरछी क्रिपाणं सभारो।
तुटी तेग त्रिक्खी कढे जमदंढ। हठी राखीयं लज्ज बंसं सनंढं।
तहां मातलेयं क्रिपालं क्रुद्धं। छकियो छोभ छत्री कर्‍यो जुद्ध सुद्धं।
सहे देह आपं महावीर बाणं। करो खान बानीन खाली पलाणं।
हठियां साहब चंद खेतं खत्रियाणं। हने खान खूनी खुरासान मानं।
तहाँ बीर बंके भली भाँति मारे। बचे प्राण लेके सिपाही सिधारे।

जिससे योद्धाओं के भाव, अनुभाव, क्रोध, शस्त्र-संचालन युद्ध-कुशलता, घाव सहने, रक्त-प्रवाह आदि का सजीव चित्र नेत्रों के सामने आ जाता है। हरीचंद के क्रोध, दृढ़ता, अस्त्र-शस्त्र एवं प्रतिद्वंद्वी से युद्ध का भी कवि ने ऐसा वर्णन किया है–

जहाँ एक वीरं हरीचंद कोप्यो। भली भंति सो खेत मो पाव रोप्यो।
महाक्रोध के तीर तीखे प्रहारे। लगे जौनि के ताहि पारे पधारे।।
हरीचंद क्रुद्धं। हने सूर सुद्धं।
भले बाण वाहे। बड़े सैन गाहे।
रसे रुद्र राचे। महां लोह माचे।
हने सत्रधारी। लिटे भूप भारी।
तबै जीत मल्लं। हरीचंद झल्लं।
ह्दिे ऐच मार्यो। सुखेतं उतार्यो।
लगै बीर बाणं। रिसियो तेज माणं।
समुह बाजडारे। सवरगं सिधारे।

इस युद्ध के कुछ समय अनंतर एक मुगल योद्धा दिलाबरखाँ ने रात के समय गुरुजी पर आक्रमण किया, परंतु उसे भी हार खानी पड़ी।

युद्ध की भीषण गति एवं युद्ध की विकरालता एवं भयानकता को प्रकट करने के लिए कवि ने डाकणी, भूत-प्रेत, वीर-वैताल आदि के हँसने, नाचने, रक्तपान करने तथा चबी चाबड़ियों, गिद्धों, शृंगालों आदि के मांस नोचने का वर्णन है।

भंगाणी की युद्ध-कथा में गुरु ने सामरिक विद्या एवं युद्ध-नीति का भी परिचय दिया है। भंगाणी के युद्ध में विजय प्राप्त करके गुरुजी आनंदपुर पहुँचे। इसी समय नादौन के राजा भीमचंद पर अलफखाँ ने आक्रमण किया, जिसमें गुरुजी ने भीमचंद की सहायता करके अलफखाँ को पराजित किया। इस युद्ध का भी उन्होंने अत्यंत वेगपूर्ण एवं सजीव चित्रण किया है। दोनों पक्षों के योद्धाओं के नाम बताकर उनकी वीरता की प्रशंसा भी की गई है और उनके उत्साह रणोल्लास, अनुभाव आदि के चित्रण के अतिरिक्त युद्ध के कोलाहलमय, विकराल एवं भयावह वातावरण को

भी प्रस्तुत किया गया है।

'विचित्र नाटक' में मुगल-सेना तथा कुछ पहाड़ी राजाओं का अन्य पहाड़ी राजाओं से किए गए एक अन्य युद्ध का भी वर्णन है। इस युद्ध में जुझारसिंह नाम का राजपूत योद्धा बड़ी शूरवीरता से लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्त करता है। कवि ने जुझारसिंह के शौर्य, उत्साह, साहस आदि का भव्य चित्रण किया है।

चंडी-चरित्र उक्ति विलास

'चंडी चरित्र उक्ति विलास', चंडी-चरित्र तथा चंडी दी वार में, मार्कण्डेयपुराण के आधार पर चंडी की कथा भी निरूपण किया है। इन रचनाओं में उन्होंने चंडी के मधु-कैटभ, महिषासुर, धर्मलोचन, चंड, मुंड, रक्तबीज, शुंभ-निशुंभ नाम के आठ दैत्यों से भयंकर युद्ध, उनके विनाश तथा देवी की विजय का अत्यंत ओजस्वी और चित्रात्मक वर्णन किया है। 'धर्मयुद्ध' में शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए देवी से वर माँगते हुए गुरु जी कहते हैं–

देहि शिवा वर मोहि इहै सुभ करमन ते कबहूँ न टरों।
न डरों अरि सों जब जाइ लरों, निसचे कर अपनी जीत करों।
अरु सिख हो अपने ही मन को, इह लालच हउ गुन तउ उचरों।
जब आव की अउध निदान बने, अत ही रन में तब जूझ मरों।

कुछ विद्वानों ने उन्हें देवी का उपासक कहा है, परंतु उनकी स्तुति का कारण यह हो सकता कि जिस समय गुरु गोविंद का प्रादुर्भाव हुआ, हिंदू जनता धर्मांध औरंगजेब के आतंक, अत्याचार, अनीति और अन्याय के कारण दु:खी थी। हिंदुओं को शक्ति-संधान, शक्ति-संगठन और शक्ति का आह्वान करने के लिए देवी-देवताओं की स्तुति की। चंडी-चरित्र में वे लिखते हैं कि इस कथा को सुनकर कायर भी भीष्म युद्ध करने लगते हैं।–'सुने सूम सोफी लरे जुद गाढे' उनके 'चंडी-चरित्र' को देखने से विदित होता है कि गुरुजी ने देवी के युद्धों का ही वर्णन किया है, अन्य किसी भी प्रसंग को महत्त्व नहीं दिया। सांप्रदायिक सिद्धांतों, उपासना विधि, मर्यादा, अथवा नैतिक मूल्यों आदि की इसमें कहीं भी विवेचन नहीं हुई। ये काव्य-ग्रंथ भक्ति-ग्रंथ के रूप में न लिखकर वीर-काव्य के रूप में लिखे गए हैं। वस्तुत: दशमगुरु ने देवी के दुष्टदमनकारी युद्धों में उसके पराक्रम और शौर्य-प्रदर्शन को अपनी युग-परिस्थितियों के परिवेश में आँका। हिंदुत्व और देश की उस संकटकालीन स्थिति में उसे शुद्ध 'शक्ति' के रूप में ग्रहण किया। 'चंडीचरित्र' असुर संहार (यवन अत्याचारी) के लिए भारतीय वीर-शक्ति का आह्वान करनेवाला 'शक्ति-काव्य' हैं, जहाँ वे स्वयं देवी (शक्ति) से यह प्रार्थना करते हैं कि 'जिस प्रकार तुमने अधिक क्रोधित होकर शुंभ का संहार किया, उसी प्रकार संतों के सभी शत्रुओं को विकराल रूप धारण करके चबा जाओ–

जिमि संभासुर को हना अधिक कोप के कालि,
तिमी साधन के सत्र सभ चाबत जहि काल।

वे चाहते थे कि प्रत्येक हिंदू देश और धर्म की रक्षार्थ खड्ग धारण करके वैसे ही उठ खड़ा हो और अत्याचारी एवं आतंकवादी मुगल शासक को ललकारे और विनष्ट करे, जैसे देवी ने शुंभ-निशुंभ, महिषासुर आदि दैत्यों को ललकारा और विनष्ट किया था। राम, कृष्ण आदि अवतारों ने अत्याचारी असुरों का संहार करने के लिए इसी 'शक्ति' की उपासना की थी।

युद्ध-वर्णन

इस खंड-काव्य में योद्धाओं की भिड़ंत अथवा प्रहार-प्रतिप्रहार का वर्णन अधिक है। कवि ने युद्ध-चित्रों के अतिरिक्त असुरों के अत्याचारों से दु:खी देवताओं द्वारा देवी से अपने परित्राणार्थ प्रार्थना करने, देवी के युद्ध के लिए निकलने, असुर सेना के प्रस्थान, शत्रु-सेना के भागने, शुंभ-निशुंभ द्वारा वीरों का दान देकर युद्ध के लिए भेजे जाने, शत्रुओं द्वारा अपने सैनिकों की मृत्यु पर मंत्रणा करने आदि के साथ वीरों के उत्साह, उनकी गर्वोक्तियों एवं कायरों के त्रास आदि का वर्णन किया है। युद्ध में प्रयुक्त तीर, तलवार, मुगदर, त्रिशूल, गदा, बरछी आदि अस्त्र-शस्त्रों एवं शंखों, घंटों, बंब आदि रण वाद्यों का भी उल्लेख हुआ है–

कोप के सुंभ निसुंभ चढ़े धुनि दुंदभ की दसहूँ दिस धाई।
पाइक अग्र भए मधि बाज रथी रथ साज के पाँति बनाई।
मातै मतंग के पुंजन ऊपरि सुंदर तुंग धुजा फहराई।
सक्र सो जुद्ध के हेत मनो धरि छाड़ि सपच्छ उड़े गिरराई।
धूर उड़ी तब ता छिन मै तिह के कनका पग सों लपटाए।
ठउर अडीठ के जै करिबै कहि तेजमनो मन सीखन आए।
कोप चढ़े रन चंड आउ मुंड सु ले चतुरंगन सैन भली।
तब सेस के सीस धरा लरजी जनु मधि तरंगनिनाल हली।
खुर बाजन धूर उड़ी नभि को कवि के मन ते उपमा न टली।
भव भार अपार निवारन कौ धरनी मनो ब्रह्म के लोक चली।

असुरी सेना के प्रस्थान का वर्णन किया है। शुंभ-निशुंभ की सेना चलने से शेष के सिर पर से पृथ्वी हिलने लगी। धूल इतनी उड़ी कि मानो पृथ्वी ही आकाश को उड़ी जा रही हो।

शुभ-निशुंभ की एक उत्साहपूर्ण गर्वोक्ति देखिए–

इउ सुनिके उनि के मुखते तब बोलि उठिओ करि खग्ग सोंभारे।
इउ हनिहों बरचंडि प्रचंडि अजा बन मैं जिम सिंह पछारे।

युद्धभूमि

इन रचनाओं में युद्धभूमि के भी कवि ने सजीव और यथार्थ चित्र अंकित किए हैं। कुछ उदाहरण देखिए–

लोथन ऊपरि लोथ परी तह गीध स्रिगालनि मांस चरिओ है।
गूंद बहें सिर केसन ते सित पुंज प्रवाह धरान परिओ है।
घाइल घूमत है रन मैं इक लोटत है धरनी बिललाते।
दौरत बीच कबंध फिरै जिह देखत काइर हैं डरपाते।
स्रौन प्रवाह मैं पाइपसार के सोए है सूर मनो मदमाते।
किते स्रोण चट्टं। किते सीस फुट्टं।
कहूं हूह छुट्टं। कहूं वीर उट्ठं।
कहूं धूरि लुट्टं। किते मार रट्टं।
भणै जस्स भट्टं। किते पेट फट्टं।

युद्ध के चित्रों को सजीव और चित्रात्मक बनाने के लिए अलंकारों का भी प्रचुर किया गया है। छंद के तीन चरणों में कवि युद्ध का चित्रण करता है और चौथे चरण में समानांतर चित्र सामने लाकर उसे सजीव रूप प्रदान कर देता है, ऐसे प्रयोगों में उपमान योजना या तो पौराणिक घटनाओं से संबंधित है या प्रकृति एवं सर्वसाधारण के व्यावहारिक जीवन से। उपमान सर्वग्राह्य, सामान्य एवं बिंब-विधायक हैं। रसोत्कर्षक उपमाओं और रूपकों की योजना करने में कवि बहुत ही निपुण है। उदाहरण देखिए-

(क) आवत पेखिके चंड कुवंड ते बान लगिओ तन मूरछ पारिओ।
राम के भ्रातन जिउ हनुमान को सैल समेत धरापर डारिओ।

(ख) फेरि उठिओ कर लै करवार को चंड प्रचंड सिउ जुद्ध करिओ है।
घाइल क्षै तन केहर ते बहि स्रउन समूह धरान परिओ है।
गेरूं नगं परके बरखा धरनी परि मानहु रंग ढरिओ है।

वस्तुतः छंदों की सरपट लय, यति-वैविध्य, संयुक्त-व्यंजन, अनुप्रासयुक्त वर्ण-योजना, ध्वनिमय शब्द एवं अलंकृत शैली, तीरों की टंकार, तलवारों की झनक, डमरू की डंकार एवं शंखध्वनि के साथ मिलकर युद्धभूमि के वास्तविक, यथार्थ एवं भीषण वातावरण की सृष्टि करते हैं।

वीरों का व्यक्तित्व

शुंभ-निशुंभ, रक्तबीज आदि दैत्यों के शौर्य, साहस, निर्भयता का भी कवि ने अच्छी तरह प्रदर्शन किया है। उनकी गर्वोक्तियाँ जहाँ उनके उत्साह की व्यंजक हैं, वहाँ उनका शस्त्र-संचालन एवं भयंकर लोह-वर्षण उनके शौर्य और साहस को प्रकट करते हैं। देवी के शौर्य एवं शक्ति का तो अनेक स्थलों पर निरूपण हुआ है। रक्तबीज तथा अन्य दैत्यों के हनन हेतु जब क्रुद्ध देवी के मस्तक से काली प्रकट होती है, तो उसके प्रचंड एवं भयानक रूप का चित्रण कवि ने इस प्रकार किया है-

दैतन के बध कारन को निज भाल ते जुआल की लाट निकासी।
काली प्रतच्छ भई तिहते रन फैल रही भयभीर प्रभासी।
मानहु स्रिंग सुमेर को फोरिके धार परी धर पै जमुना सी।
मेरु हलिओ दहलिओ सुरलोकु दसौ दिस भूधर भाजत भारी।
चालि परिओ तिह चउदहि लोक मैं ब्रह्म भइओ मन मैं भ्रम भारी।
धिआन रहिओ न जटी सुफटी धर यो बलि के रन मै किलकारी।

काली के प्रकट होने से चारों ओर आतंक और भय छा जाता है और जब वह रणभूमि में किलकारती है तो मेरु हिल उठे, सुरलोक दहल गया, पर्वत भागने लगे, चौदहों लोकों में हलचल मच गई। गुरु गोविंदसिंह ऐसी ही भारतीय-वीरशक्ति को जाग्रत करना चाहते थे, जिससे यवन-शासक दहल उठें और चारों ओर आतंक छा जाए। इस रचना में कवि के अद्भुत काव्य-कौशल एवं रचना-नैपुण्य का परिचय मिलता है। इस कविता का प्रत्येक छंद प्रत्येक चरण, मुर्दों में भी जीवन की ज्वाला दहकाने वाला और कायरों में वीर-दर्प का संचार करने वाला है। श्रोता अथवा पाठक के अंग जोश से फड़कने लगते हैं और उनका खून उबलने लगता है।

शस्त्रनाममाला

यह एक ऐसी रचना है, जिसमें गुरु गोविंदसिंह के समय में प्रयुक्त होनेवाले सभी अस्त्र-शस्त्रों का विशद् वर्णन किया गया है। इसमें युद्ध-शस्त्रों का केवल विवरण मात्र नहीं है, वरन् उन योद्धाओं की वीरता का भी वर्णन है, जिन्होंने युद्ध में इनका प्रयोग किया था। साथ ही इन्हें प्रयुक्त करनेवाले देवताओं का भी उल्लेख किया गया है। आरंभ में शस्त्रों का मानवीयकरण हुआ है और अंत में 'अकाल पुरुख' की भी अस्त्र-शस्त्रों के रूप में वंदना की गई है। यथा–

तुम गुरज तुमही गदा तुम ही तीर तुफंग।
दास जान मोरी सदारच्छ करो सरवंग।

इसीलिए गुरुजी के लिए भी खड्ग, असि, बाण, गुरज, गदा आदि अस्त्र-शस्त्र उपासना के केंद्र हैं, क्योंकि वे भी इन्हीं की सहायता से दुष्टों, अत्याचारियों, अधर्मियों का विनाश कर रहे थे। 'बिचित्र नाटक' में उन्होंने इसीलिए खड्ग की जयजयकार की है (जय तेगं)। 'शस्त्रनाममाला' में इनके पौराणिक महत्त्व की प्रतिष्ठा करके वे अपने योद्धाओं में इनके प्रति अनुराग और धर्मयुद्ध के लिए उमंग उत्पन्न कर सके। इस प्रकार 'शस्त्रनाममाला' को भी वीरकाव्यों के अंतर्गत स्थान दिया जा सकता है।

चौबीस अवतार

इस ग्रंथ में मच्छ, कच्छ, नर-नारायण, मोहिनी, बराह, नृसिंह, बावन, परशुराम, ब्रह्मा, रुद्र, जालंधर, विष्णु, दुर्गा, अर्हंतदेव, मनु, धंवंतरि, सूर्य, चंद्र, राम, कृष्ण, निहकलकी, बौद्ध आदि अवतारों की कथाओं का निष्ठापूर्वक वर्णन किया गया है। जब पृथ्वी पर असुरों की शक्ति और आतंक बढ़ता है तथा संत दु:खी होते हैं तो दुष्टों के विनाश के लिए और संतों के उद्धार के लिए अवतार यहाँ आते है–'जब-जब होत अरिस्ट अपारा। तब तब देह धरत अवतारा।'

रामावतार–रामावतार उच्च नैतिक स्वर एवं उदात्त वीर-भावना से ओत-प्रोत एक उत्कृष्ट प्रबंधकाव्य है। यह रचना गुरु ने पाऊटा निवास के समय की। उस समय गुरुजी युद्धों की तैयारी में थे और अपने अनुयायियों को संगठित एवं उत्साहित कर रहे थे।

इस ग्रंथ में कथा का आरंभ रघुवंश के प्रवर्तक रघु की कथा से और अंत लव-कुश को राज्य देकर राम-लक्ष्मण सहित सभी अयोध्यावासियों के स्वर्गारोहण से होता है। रामजन्म से पूर्व की कथा अत्यंत संक्षिप्त है। राजा दशरथ के विवाह, कैकेयी को वरदान देने और दशरथ के बाण से श्रवणकुमार की मृत्यु संबंधी सभी प्रसंग मुख्य कथा की पूर्वपीठिका का कार्य करते हैं।

इसमें राम के ताड़का, विराध, धूम्राच्छ, अंकपन, नारांतक, भूवांतक, कुंभकर्ण, त्रिसुंड, सहोदर, इंद्रजीत, कंतकाई, मकराछ, एवं रावण आदि दैत्यों से युद्ध का सजीव वर्णन किया है।

यदि हम 'रामावतार' की कथा को ध्यानपूर्वक देखें तो मालूम होगा कि कवि की रुचि युद्ध-वर्णनों में ही अधिक है, अन्य प्रसंगों का या तो उल्लेख-मात्र किया है या अत्यंत संक्षिप्त वर्णन करके आगे बढ़ गया है। जैसे युद्ध के लिए उत्साहित वीर-योद्धा के लिए मार्ग में ठहरने का अधिक अवकाश नहीं होता, वह केवल इधर-उधर दृष्टि डालता जाता है और शीघ्रातिशीघ्र रणभूमि में पहुँचना चाहता है। उसी प्रकार 'रामावतार' का लेखक भी वायुयान की तीव्र गति से युद्धभूमि की ओर बढ़ जाता है। वह मार्ग की भूमियों-घटनाओं पर नजर जरूर डालता है, मगर वह वहाँ उतरता नहीं। उतरता वह युद्धभूमि में ही है।

इन युद्ध-वर्णनों में 'विचित्र नाटक' (अपनी कथा) की भाँति योद्धाओं की भीषण भिड़ंत और प्रहार-प्रतिप्रहार का ही वर्णन अधिक है। उसमें योद्धाओं, अश्वों, गजों के क्षत-विक्षत होकर गिरने, भूत-प्रेत, डाकनि-योगनि, वीर-बैताल आदि के नाचने, एवं गिद्धों, काक, कंक, शृंगाल आदि द्वारा मांस नोचने, रक्तपान करने आदि का भयावह दृश्य उपस्थित किया गया है। कवि ने युद्धकथा का वर्णन अधिक नहीं किया।

सेना स्थान–कहीं-कहीं सेना-प्रस्थान का वर्णन करते हुए कवि ने उसकी विशालता, भयंकरता आदि के साथ उसके प्रमुख योद्धाओं का भी उल्लेख किया है। राम जब लंका पर आक्रमण करने के लिए प्रस्थान करते हैं तो उनके दल-बल का इसी प्रकार का चित्रण किया गया है।

इस आक्रमण की सूचना पाते ही रावण अपने शूरवीरों को सनद्ध-बद्ध कर युद्ध के लिए भेज देता है। इसके बाद कवि अनेक दैत्यों के साथ राम के युद्धों का ओजस्वी, उग्रतापूर्ण एवं विशद् वर्णन करता है। जब राक्षस हल्लागुल्ला करके राम को घेर लेते हैं, उस समय के कोलाहल, मेघ के समान रणवाद्यों की गर्जना, कमानों के कड़कड़ाने, कृपाणों के भड़कने, तीरों की वर्षा और योद्धाओं के उत्साह से जूझने में उनके रणोल्लास आदि का कवि ने अत्यंत सजीव वर्णन किया है।

जूझते हुए योद्धाओं के अस्त्र-शस्त्रों के खंडित होने, योद्धाओं के क्षत-विक्षत होकर गिरने, अंग भंग होकर लोथों के इधर-उधर बिखरने, हाथियों की मेघगर्जन को लज्जित कर देनेवाली गर्जन, अश्वों के हिनहिनाने एवं कट कटकर गिरने, सेना के भागने, मांस मंज्जा एवं रक्त-प्रवाह पर गिद्ध, काक, कंक, शृंगाल आदि के मँडराने एवं मांस नोचने, भूत-प्रेत, वीर-बैताल एवं योगनियों के नाचने आदि से सकल युद्धभूमि का भयावह, विकराल एवं भीषण वातावरण अंकित करने में कवि पूर्ण सफल रहा है। कुछ उदाहरण देखिए–

गजं गजे हयं हले हला हली दली हलो हलं।
बबज्ज सिंधरे सुरं छुटतं बाण केवलं।

रावण की ओर से एक एक शूरवीर राम की सेना से युद्ध करने आता है और राम लक्ष्मण अथवा कोई अन्य वीर उससे जूझता है। इस प्रकार के द्वंद्वयुद्ध का भी 'रामावतार' में सजीव चित्रण किया गया है। राम और रावण का द्वंद्व युद्धवर्णन इस दृष्टि से अत्यंत ओजपूर्ण है।

रावन रोस भर्यो रन मो रिस सौ सर ओघ प्रओघ प्रहारे।
भूमि अकास दिसा बिदिसा सब ओर रुके नहिं जात निहारे।
स्त्री रघुराज सरासन लै छिन मौ छुम के सर पुंज निवारे।
जानक भान उदै निस कउ लखिके सबही तप तेज पधारे।

यहाँ राम और रावण के एक-दूसरे पर प्रहार-प्रतिप्रहार का ही वर्णन हीं किया गया, वरन् दोनों वीरों के शौर्य, उत्साह, साहस, दृढ़ता, निर्भीकता, युद्ध-कुशलता, प्रचंडता आदि का भी सजीव चित्रण किया गया है, ऐसे ही युद्धों से वीरों का ओजस्वी चरित्र उभरकर सामने आता है। कवि ने दोनों पक्षों के योद्धाओं की वीरता की समान रूप से प्रशंसा की है। जहाँ राम, लक्ष्मण, हनुमान, अंगद आदि की वीरता उसकी प्रशंसा का विषय रही है, वहाँ उसने अकंपन, मेघनाथ, कुंभकर्ण, रावण आदि की वीरता की भी खूब प्रशंसा की है। अंगद, राम तथा लक्ष्मण भी उनके शौर्य एवं साहस से मोहित होकर उनकी प्रशंसा करते दिखाई देते हैं।

कृष्णावतार : यह भागवत दशम स्कंध के आधार पर रचित एक बृहदारकार एवं उत्कृष्ट प्रबंधकाव्य है। इसमें कवि ने जरासंध, शिशुपाल आदि युद्धों का वर्णन किया है। यह 'भागवत दशम स्कंध' के आधार पर रचित 2492 छंदों का एक बृहदाकार एवं उत्कृष्ट प्रबंधकाव्य है। 'रामावतार' में कवि का ध्यान मुख्यत: युद्धवर्णन पर ही रहा है, अन्य महत्त्वपूर्ण प्रसंगों का अत्यंत संक्षिप्त वर्णन किया है, या उल्लेख-मात्र कर दिया है। परंतु 'कृष्णावतार' में कवि ने कृष्ण के चरित्र का व्यापक एवं विशद् चित्रण किया है। 'कृष्णावतार' की रचना संवत् 1745 (सन् 1688) में पऊंटे में हुई। इस समय गुरु गोविंदसिंह की आयु लगभग 22 वर्ष की थी। तारुण्य का जोश उनमें भरा हुआ था। अपने पिताश्री की हत्या का प्रतिशोध लेने के लिए वे दृढ़-प्रतिज्ञ थे, और उसी के लिए यहाँ शक्ति-संचय कर रहे थे। उनके साथ यहाँ कई सशक्त कवि थे, जो हिंदुओं में सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय जागरण के अभियान में, अपने काव्य-प्रतिभा से उनकी सहायता कर रहे थे। 'कृष्णावतार' इसी आंदोलन का एक अंग था। इसके द्वारा वे कृष्ण-भक्ति का प्रचार करना नहीं चाहते थे। कंस, जरासंध आदि असुर उनके लिए मुगल शासकों के प्रतीक थे। वे दिखाना चाहते थे कि उनके विरुद्ध वे उसी प्रकार से लड़ रहे हैं, जैसे कृष्ण असुरों के साथ लड़ रहे थे और अपने अनुयायियों को इस धर्मयुद्ध के लिए उत्साहित करने के लिए ही वे कृष्ण की वीर कथाएँ सुनाते थे।

इस प्रबंध में देश-काल की सीमाओं को भूलकर खडगसिंह, अमिटसिंह, गजसिंह, धनासिंह, हरिसिंह, अणतसिंह अजबसिंह आदि 'सिंह' नामधारी योद्धाओं की वीरता का निरूपण एवं सेरखाँ, सैदखाँ, दिलवरखाँ, दलेलखाँ, आजाइबखाँ आदि मीरों, सयद्दों, सेखों, पठानों के वध का कथन भी रचनाकार के निहित उद्देश्य को ही प्रकट करता है। यहाँ अमितेस अचेलस जैसे शत्रु-पात्र भी विद्यमान हैं। कवि के कल्पनालोक पर उसका लक्ष्य इतना छाया हुआ है कि उस काल में भी वह 'सिंह' एवं 'खाँ' पात्रों की सृष्टि कर लेता है। 'सिंह' नामधारी योद्धा यद्यपि कृष्ण के प्रतिद्वंद्वी भी हैं, फिर भी उनके शौर्य, वीरता, धीरता, दृढ़ता, उत्साह, साहस, रणोल्लास आदि का ओजस्वी एवं विशद चित्रण किया गया है। केवल खडगसिंह के युद्धवर्णन में 350 छंद हैं। सभी योद्धा इन वीरों की वीरता की प्रशंसा करते हैं। कृष्ण भी उनके शौर्य-प्रदर्शन एवं साहस से मोहित होकर उनकी प्रशंसा करने लगते हैं। शिव, ब्रह्मा, इंद्र, कुबेर भी उनके युद्धकौशल एवं भयंकर प्रहारों से भयभीत होकर भाग खड़े होते हैं। प्रकारांतर से कवि ने यहाँ अपने योद्धाओं की वीरता की प्रशंसा करके उनके उत्साह को ही बढ़ाया है।

युद्ध-कथा–'कृष्णावतार' के वर्णनों का एक विशिष्टता यह है कि कवि ने युद्ध का क्रमिक एवं पूर्ण विकास दिखाया है, जिसका 'विचित्र नाटक' (अपनी कथा) में प्राय: अभाव है। वहाँ योद्धाओं के जूझने, उनकी भिड़ंत का ध्वन्यात्मक चित्रण ही अधिक हुआ है, परंतु 'कृष्णावतार' में कृष्ण के जरासंघ एवं शिशुपाल आदि के साथ अनेक युद्धों का पूरे ब्यौरे के साथ सजीव, विशद एवं ओजपूर्ण वर्णन किया गया है। उदाहरणार्थ जरासंघ के साथ युद्धों में पहले कवि ने उनके कारण पर प्रकाश डाला है। कंस के केश पकड़कर भूमि पर खींचकर मारने का जो चित्रण कवि ने किया है, उससे इस तथ्य को व्यंजित किया गया है कि कवि दुष्टों, अत्याचारियों के प्रति किस प्रकार का घृणाभाव रखता है और उसका संहार किस प्रकार करना चाहता है। यथा–

हरि कूदत बै रंग भूमिह ते नृप थो सो जहाँ तहाँ ही पग धार्यो।

कंस लई कर ढाल संभार के कोप भर्यो अस खैंच निकार्यो।

नीह कलंकी (कल्कि) अवतार

कल्कि अवतार वीररस प्रधान खंडकाव्य है, जिसमें आसुरी-शक्तियों पर देवी-शक्तियों की विजय दिखाई गई है। कथा के आरंभ में पृथ्वी पर फैले असत्य, अधर्म, अन्याय, व्यभिचार एवं पापाचार का विस्तृत वर्णन करते हुए कहा गया कि जब धरा इस प्रकार के अधर्म और पापाचार के मार से दु:खी हो गई और अपने उद्धार के लिए 'अकाल पुरुख' का ध्यान करती है तो आकाशवाणी होती है कि स्वयं अकाल पुरुख कल्के के रूप में संभल के स्थान पर अवतार धारण करके और दुष्टों का विनाश करेंगे। कल्कि के प्रकट होने पर दरबार युद्धभूमि में बदल जाता है। वहाँ ढाल से ढाल और खड्ग से खड्ग टकराने लगती है। महीनों तक युद्ध चलता रहता है। अंत में कल्कि दुष्ट शुद्र राजा का नाश कर देता है।

पारसनाथ रुद्रावतार : रुद्रावतार कथा भी वीररस-प्रधान है। युद्धों का ओजस्वी एवं सजीव चित्रण किया है–

मो तो और बली को है,
जउन मोते जंग जीते जुद्ध, मैं कर जै।
इंद्र चंद उपपाद कौ पल मद्धि जीतो जाई।
अउर ऐसो को भेयो रण मोहि जीतै आई।

निष्कर्ष : गुरु गोविंदजी का काव्य वीर-भावना से ओत-प्रोत है। उन्होंने विचित्र नाटक, चंडीचरित्र और चौबीस अवतार तथा अन्य साहित्य के माध्यम से अपने अनुयायियों तथा हिंदू जनता के दिलों में मुगलों से युद्ध करने के लिए प्रेरित किया तथा अपने देश को मुगलों से आजाद करवाने के लिए संघर्ष किया।

संदर्भ

1. डॉ॰ जयभगवान गोयल, गुरुमुखी लिपि में हिंदी-साहित्य, हिंदी साहित्य संसार, दिल्ली-6
2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा काशी
3. डॉ॰ महीपसिंह, गुरु गोविंदसिंह एक युग-व्यक्तित्व, उमेश प्रकाशन, दिल्ली-6
4. डॉ॰ मनमोहन सहगल, हिंदी साहित्य का भक्तिकालीन काव्य, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला
5. डॉ॰ नगेंद्र, रीतिकाव्य की भूमिका, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
6. डॉ॰ भारतभूषण चौधरी, गुरु गोविंदसिंह के दरबारी कवि, साहित्य सदन पांडव रोड, विश्वासनगर, दिल्ली
7. डॉ॰ भारतभूषण चौधरी, रीतिकाल के अल्पज्ञात कवि, संजीव प्रकाशन कुरुक्षेत्र।

मो॰ 9896374621
rajvinderkaur2004@gmail.com

निराला की कविताओं में मुक्त छंद-विधान

डॉ॰ दीप्ति
सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग
हिंदू कॉलेज, अमृतसर (पंजाब)

छंद-बंध ध्रुव तोड़-फोड़कर पर्वत कारा
अचल रूढ़ियों को कवि, तेरी कविता-धारा
मुक्त, अबाध, अमंद, रजत निर्झर-सी निःसृत
गलित-ललित आलोक-राशि, चिर अकलुष विजित।[1]

उपर्युक्त पंक्तियों में सुमित्रानंदन पंत ने सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' के व्यक्तित्व और कृतित्व का सटीक वर्णन किया है। छायावाद के प्रधानस्तंभ श्री सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' का आधुनिक हिंदीकवियों में निसंदेह महत्त्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि उन्हें व्यक्तिगत जीवन में अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ा। 'निराला' का जीवन बहुत संघर्षपूर्ण रहा। उन्होंने निरंतर अनेक अभावों को झेलने के बाद भी हिंदी साहित्य को बहुमूल्य रचनाओं का योग दिया। उन्होंने परिमल, अनामिका, अपरा, कुकुरमुत्ता, गीतिका, अणिमा, बेला, अर्चना, आराधना, गीतगुंज, नए पत्ते, तुलसीदास जैसी अमूल्य कृतियाँ का हिंदी साहित्य को प्रदान कीं। निराला के काव्य में वस्तुतः जीवन का प्रत्येक रंग–खुशी, दुख-सुख, प्रेम और वैराग्य इत्यादि मिलता है।

निरालाजी ने अपनी काव्य-यात्रा 1916 ई॰ में सर्वप्रथम प्रकाशित काव्य-संग्रह 'जूही की कली' से आरंभ की। इस काव्य-संग्रह में हमें कवि की प्रतिभा का प्रथम परिचय मिलता है। उनके 1922 ई॰ में प्रकाशित दूसरे काव्य-संग्रह 'अनामिका' में उनकी काव्यकला का प्रौढ़ रूप परिलक्षित होता है। उनकी उत्कृष्ट रचनाएँ 'राम की शक्तिपूजा' और 'सरोज स्मृति' इसी काव्य-संग्रह में संकलित हैं। 'परिमल' नामक कृति में 'तुम और मैं' जैसी अध्यात्मवादी और 'भिक्षुक' और 'विधवा' जैसी प्रगतिशील रचनाओं से कवि की प्रगतिशील सोच का पता लगता है। इसके अतिरिक्त उनके ललित गीतों का संकलन 'गीतिका' भी है। उनकी रचना 'तुलसीदास' जहाँ प्रबंधकाव्यात्मक रचना है, वहीं 'कुकुरमुत्ता' विशुद्ध रूप से प्रगतिवादी रचनाओं का संग्रह है। अणिमा, नए पत्ते, बेला आदि रचनाओं में उनका विषादपूर्ण आत्मदर्शन दृष्टिगोचर होता है। आत्म-अभिव्यक्ति की दृष्टि से अर्चना, अराधना, गीतगुंज तीन संग्रह महत्त्वपूर्ण हैं। निराला ने अद्‌भुत प्रतिभा का परिचय देते हुए भाषा, छंद, अभिव्यक्ति के क्षेत्र में सफलतापूर्वक नवीन प्रयोग किए।

मुक्तछंद : अवधारणा

कलापक्ष के क्षेत्र में निराला की मुख्य देन मुक्तछंद है। मुक्तछंद कोई नई अवधारणा नहीं है। हमें इसके बीज प्राचीन साहित्य में ही मिल जाते हैं। प्राचीन वैदिक साहित्य में भी स्वतंत्र छंदों

का प्रयोग मिल जाता है। आधुनिककाल में द्विवेदीयुग में ही तुकों से छंद की स्वतंत्रता शुरू हो गई थी, लेकिन उसे पूर्ण रूप से मुक्त कराने का श्रेय निराला को ही जाता है। 'परिमल' की भूमिका में मुक्तछंद के समर्थन में निराला जी कहते हैं, 'मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बंधन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छंदों के शासन से अलग हो जाना। जिस तरह मुक्त मनुष्य कभी किसी तरह भी दूसरे के प्रतिकूल आचरण नहीं करता, उसके तमाम कार्य औरों को प्रसन्न करने के लिए होते हैं फिर स्वतंत्र, इसी तरह कविता का भी हाल है।'[2] छंदों की मुक्ति के समर्थक निराला को आरंभ में काफी विरोधों का सामना करना पड़ा। उनकी लंबी कविताओं में कोई चरण बहुत लंबा होता था, कोई चरण बहुत छोटा होता था और कोई मँझोला, जिस कारण इन छंदों को 'रबड़ छंद' या 'केंचुआ छंद' भी कहा जाने लगा। सर्वविदित है कि मुक्तछंद के चरण समान नहीं होते और न ही इनमें कोई तुक पाई जाती है, परंतु वास्तविकता में मुक्तछंद में एक लय समाहित होती है। इसप्रकार रूढ़ि मुक्त काव्य में कविता का रूप और भी निखरकर सामने आता है।

निराला की पहली कविता 'जूही की कली' में छंदों की रूढ़ियों से मुक्त कविता के दर्शन होते हैं। हिंदी की प्रथम मुक्तछंद की कविता के रूप में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस कविता में विषम चरण जहाँ दृष्टिगोचर होते हैं, वहीं इसमें तुक भी नहीं मिलती, परंतु इसमें हमें एक लय मिलती है–'जब तक चरण स्वच्छंद न रहेंगे, तब नुपूर से मनमाना सुर कैसे निकलेगा। निरालाजी के शब्दों में, 'नुपूर के सुर मंदे रहे, जब न चरण स्वछंद रहें।'[3]

निरालाजी की विचारधारा में समय-समय पर परिवर्तन आता रहा। उनकी मुख्य मुक्त छंद प्रधान रचनाओं–परिमल, अपरा और गीतिका में छायावाद, रहस्यवाद और प्रगतिवाद तीनों की अभिव्यक्ति है। उनकी छायावादी रचनाओं में जहाँ प्रेम, प्रकृति चित्रण तथा कल्पना का सुंदर प्रयोग मिलता है, वहीं प्रगतिवादी कविताओं में यथार्थ और अनुभव का पूर्ण विकास परिलक्षित होता है। उनकी रहस्यवादी कविताओं में हमें गूढ़ चिंतन दिखाई देता है।

सर्वप्रथम यहाँ मुक्तछंद प्रधान छायावादी कविताओं का विश्लेषण करते हैं। उनकी प्रथम छायावादी रचना 'जूही की कली' में श्रृंगार के संयोगपक्ष का बहुत सुंदर प्रतीकात्मक चित्रण मिलता है। इस रचना में विजय-वन-वल्लरी पर सोती हुई 'सुहागभरी' कली नायिका रूप में चित्रित हुई है और नायक है पवन। प्रकृति-चित्रण की दृष्टि से भी यह रचना उल्लेखनीय है–

नायक ने चूमे कपोल
डोल उठी वल्लरी की लड़ी जैसे हिंडोल।[4]

इस कविता में अभिव्यक्त संयोग शृंगार के अंतर्गत उन्मुक्त प्रेम के चित्र और मुक्त छंद सर्वप्रथम निराला ने प्रस्तुत किया, जिस कारण इन्हें विरोधों का भी सामना करना पड़ा।

निराला की छायावादी कविता में प्रेम के सूक्ष्म एवं स्थूल दोनों प्रकार के वर्णन मिलते हैं। उनकी रचनाओं में प्राकृतिक सौंदर्य-वर्णन की भी प्रधानता रही। उन्होंने प्रकृति को अप्रस्तुत एवं प्रतीक विधान के रूप में बड़ी खूबसूरती से चित्रित किया। प्रकृति की मनोहर छवियों ने इनके मन को बहुत प्रभावित किया। उन्होंने प्रकृति के साथ रागात्मक तादात्म्य स्थापित करते हुए उसका चित्रण किया है। उदाहरणस्वरूप सांध्य सौंदर्य का एक चित्र लीजिए, जिसमें संध्या की कल्पना परी-सी सुंदरी के रूप में चित्रित की गई है–

दिवावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्या सुंदरी परी-सी
धीरे-धीरे-धीरे।[5]

निरालाजी कहीं-कहीं साधना को प्रियतमा मानकर उससे प्रणय-निवेदन करते हैं। ऐसी ही उनकी रचना 'कविता' में कविता-देवी को उस पार सुदूर चट्टानी समुद्र तट पर बैठा हुआ देखता है और वहाँ से कविता उसे आकर किस प्रकार अपनाती है, उसका चलचित्र कवि के शब्दों में देखिए–

भरा हुआ था हृदय प्यार से उसका
उस कविता का
वह थी, निश्च्छल अविकार
अंग-अंग से उठी तरंगें उसके
वे पहुँची कवि के पास
कहा–
तुम चलो, बुलाया है उसने जल्दी तुमको उस पार।[6]

निरालाजी ने अपनी मुक्तछंद प्रधान रहस्यवादी रचनाओं में प्रकृति की सुंदरता का अंकन करते हुए उसे अध्यात्म का रंग दिया। उन्होंने प्रकृति के क्रिया-व्यापारों के चित्रण द्वारा ईश्वर की विराट सत्ता का सांकेतिक रूप में अंकन किया है। इसी के साथ कहीं-कहीं आत्मा और परमात्मा के संबंध पर भी प्रकाश डाला है। उनकी रचना 'तुम और मैं' में रहस्यवादी भावना की अभिव्यक्ति मिलती है–

तुम तुंग हिमालय श्रृंग
और मैं चंचल गति सुर सरिता
तुम विमल-हृदय उच्छ्वास और
मैं कांतकामिनी कविता।[7]

निरालाजी की रहस्यवादी रचनाओं में प्रेम का मधुर गान भी सुनाई देता है। उनकी 'रेखा' कविता में उस अदृश्य विराट सत्ता के प्रति प्रथम प्रेम का वर्णन मिलता है–

यौवन के तीर पर प्रथम था आया अब
स्रोत सौंदर्य में
वीचियों में कलरव सुख-चुंबित प्रणय का
था मधुर आकर्षणमय
मज्जनावेदन मृदु फूटता सागर में। [8]

निरालाजी की कविताएँ न केवल प्रेम अथवा सौंदर्य-चित्रण और अध्यात्म को अभिव्यक्त करती रहीं, बल्कि उनमें जनजीवन का यथार्थ चित्रण भी मिलता है। कल्पना, अनुभूति और सौंदर्य विषयों पर चलनेवाली उनकी कलम अब ठोस यथार्थ पर चलने लगी। सहृदय निराला ने समाज तथा व्यक्ति के दुख को महसूस कर अपने काव्य में अभिव्यक्त किया। उन्होंने जीवन के कटु यथार्थ को सर्वहारावर्ग का अंकन भी अपनी रचनाओं में किया। उदाहरण के लिए 'भिक्षुक' के

प्रति उनकी सहानुभूति का चित्र देखा जा सकता है–

वह आता
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।
x x x
साथ दो बच्चे भी हैं सदा हाथ फैलाए
बाएँ से वे मलते हुए पेट को चलते
और दाहिना दयादृष्टि पाने की ओर बढ़ाए। [9]

निरालाजी की 'कुकुरमुत्ता' रचना में प्रगतिशील विचारधारा की अभिव्यक्ति हुई है। 'कुकुरमुत्ता' हास्य-व्यंग्य शैली की रचना है। इसमें सर्वहारावर्ग का प्रतिनिधि 'कुकुरमुत्ता' है, जो पूँजीपतिवर्ग के प्रतिनिधि 'गुलाब' का विरोध करता है। इस कृति में कुकुरमुत्ता गुलाब से निशंक भाव से कहता है–

अबे सुन बे गुलाब!
भूल मत गर पाई खुशबू रंगो-आब
खून चूसा तूने खाद का अशिष्ट
डाल पर इतरा रहा है कैपिटलिस्ट।[10]

निरालाजी की 'बादल-राग' शीर्षक कविता में इनकी विद्रोही-चेतना विशेष रूप से परिलक्षित होती है–

उर में पृथ्वी के, आशाओं से
नवजीवन की, ऊँचा कर सिर
ताक रहे हैं, ये विप्लव के बादल
फिर फिर।[11]

निरालाजी की प्रगतिवादी कविताओं में करुणा का भी समावेश मिलता है। उनकी करुणभावयुक्त 'विधवा' कविता की कुछ पंक्तियाँ यहाँ प्रस्तुत हैं–

वह इष्टदेव के मंदिर की पूजा-सी
वह दीपशिखा-सी, शांत भाव में लीन
वह क्रूर काल तांडव-सी स्मृति रेखा-सी
वह टूटे तरु की छुटी लता-सी दीन
दलित भारत की विधवा है।[12]

निरालाजी ने श्रमिकों की दयनीय दशा का भी चित्रण अपनी रचनाओं में किया है। उन्होंने मजदूरों के प्रति सहानुभूति व्यक्त करते हुए कहा है–

वह तोड़ती पत्थर
देखा मैंने उसे इलाहाबाद के पथ पर।[13]

इसप्रकार निराला समर्थ शिल्पी के रूप में हिंदी साहित्य जगत में अवतरित हुए। कल्पना, अनुभूति, संवेदना, आध्यामिकता और यथार्थ इनके कवित्व के प्रमुख तत्त्व हैं। भाषा-शैली में उन्होंने अनेक सफल प्रयोग किए हैं। नए अप्रस्तुतों के आयोजन, बिंब-विधान, प्रतीक-विधान उनकी रचनाओं की विशेषताएँ हैं। उनका हिंदी साहित्य में सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान अतुकांत

मुक्तछंद रहा। निरालाजी के अनुसार, 'मुक्तछंद की रचना में मैंने भाव के साथ सौंदर्य पर ध्यान रखा है। बल्कि कहना चाहिए ऐसा स्वभावत: हुआ, नहीं तो मुक्त छंद न लिखा जा सकता, वहाँ कृत्रिमता नहीं चल सकती।' [14]

मुक्तछंद को अपनाकर निश्चित रूप से कविता को लाभ ही पहुँचा है। निराला के मुक्त छंदों की एक विशेषता यह है कि इसमें विशेष लय, संगीत और स्वर अवश्य मौजूद रहते हैं। आज विदेशी भाषाओं में भी मुक्तछंद का प्रयोग बढ़ रहा है। आरंभ में जिन मुक्तछंद वाली कविताओं का विरोध किया गया, उनका ही बाद में अनेक कवियों ने अनुसरण किया। इसप्रकार निरंतर संघर्षरत निराला ने निरंतर बाधाओं और विरोधों रूपी विष पीकर हिंदी साहित्य जगत को श्रेष्ठ रचनाओं रूपी अमृत प्रदान किया तथा मुक्तछंद रूपी अनमोल उपहार देकर साहित्य की समृद्धि में अपना अमूल्य योगदान दिया।

संदर्भ

1. हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, डॉ॰ शिवकुमार शर्मा, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, 1977, पृ॰ 519
2. आधुनिक हिंदी कवियों की काव्यकला, डॉ॰ प्रेमनारायण टंडन, हिंदी साहित्य भंडार, लखनऊ, 1961, पृ॰ 196
3. छायावाद, नामवरसिंह, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1954, पृ॰ 130
4. हिंदी आधुनिक कवि, रवींद्र भ्रमर, भारती साहित्य मंदिर, दिल्ली, 1966, पृ॰ 65
5. वही, पृ॰ 66
6. आधुनिक हिंदी कवियों की काव्यकला, डॉ॰ प्रेमनारायण टंडन, हिंदी साहित्य भंडार, लखनऊ, 1961, पृ॰ 83
7. हिंदी के प्रमुख साहित्यकार, उदयभानु हंस, अनिल प्रकाशन, दिल्ली, 1995, पृ॰ 88
8. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत 2007, पृ॰ 88
9. हिंदी के प्रमुख साहित्यकार, उदयभानु हंस, अनिल प्रकाशन, दिल्ली, 1995, पृ॰ 89
10. हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, डॉ॰ शिवकुमार शर्मा, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, 1977, पृ॰ 519
11. हिंदी साहित्य का इतिहास : रीतिकाल एवं आधुनिककाल, अविनाश शर्मा, गुरु नानकदेव विश्वविद्यालय, अमृतसर, 2003, पृ॰ 141
12. हिंदी के प्रमुख साहित्यकार, उदयभानु हंस, अनिल प्रकाशन, दिल्ली, 1995, पृ॰ 89
13. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत 2007, पृ॰ 88
14. आधुनिक हिंदी कवियों की काव्यकला, डॉ॰ प्रेमनारायण टंडन, हिंदी साहित्य भंडार, लखनऊ, 1961, पृ॰ 196

द्वारा डॉ॰ साहिल साहनी
19-ई, कालेज लेन
रानी का बाग
अमृतसर (पंजाब)
मो॰ 09501077702

संत नितानंद का साधना-पथ

सुधा महला
असिस्टेंट प्रोफेसर (हिंदी)
संगीत एवं नृत्य विभाग
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

किसी प्रधान उद्देश्य को ध्यान में लाकर उसके निमित्त आवश्यक प्रयत्न करने की क्रिया को 'साधना' की संज्ञा दी जाती है। उसका मुख्य व साध्य वस्तु या तो कोई ऐहिक सुख होता है अथवा पारलौकिक आनंद हुआ करता है। इसकी सिद्धि के लिए साधक अस्तित्व में विश्वास रखकर उसमें प्रवृत्त होता है। उसकी उपलब्धि की अवधि तक सदा उत्साहपूर्ण प्रयत्नशील रहता है।

प्रधानतः साधना या तो ज्ञान का आधार लेकर चलती है अथवा भक्ति का आश्रय लेकर की जाती है। ज्ञानमयी साधना बुद्धि का अवलंबन ग्रहण करती है और उसके साथ व्यवस्थित ढंग से अग्रसर होती हुई किसी अंतिम ध्येय तक पहुँचने के लिए सचेष्ट होती है। भक्ति की साधना में तर्क-वितर्क की जगह श्रद्धा या विश्वास के भाव काम करते हैं और साधक अपने उद्देश्य के प्रति दृढ़ आस्था रखने के लिए प्रेरित किया करते हैं। 'भक्ति एक प्रकार का अनुराग या आसक्ति हैं, जिसे साधक अपने से बड़े के प्रति श्रद्धाभाव के साथ प्रदर्शित करता है। कुछ कर्मोपासक अपने कार्य की सिद्धि के निमित्त अपने जीवन को ही संयत व सुंदर बना लेना चाहते हैं।'[1]

1. उत्तरी भारत की संत-परंपरा

भक्ति के क्षेत्र में विभिन्न संप्रदायों ने कर्मकांड की अनेक पद्धतियों को जन्म दिया, जिसके फलस्वरूप भक्ति का सात्त्विक रूप दब गया। दूसरी ओर हठयोगियों ने अनेक कष्टसाध्य यौगिक प्रणालियों को प्रचलित किया। संतों ने विभिन्न मत-मतांतरों के सीमित दायरों से बाहर निकलकर सबके लिए सुलभ बना दिया। इन्होंने ब्राह्य आचरण की अपेक्षा आंतरिक आचार-विचार की शुद्धता को या निर्मलता के लिए आवश्यक माना तथा उसके द्वारा बताए गए प्रभु के सच्चे भाव से नामस्मरण को ही शुद्धता का आधार बताया तथा उसी को सहज साधना की संज्ञा दी।'[2] मध्यकालीन संतों की भाँति संत नितानंद जी ने सहज साधना को ही परमात्मा को प्राप्त करने का साधन माना है। संत नितानंद का बचपन का नाम नंदलाल था। यह सत्य है कि बचपन उनका पढ़ाई-लिखाई में व्यतीत हुआ, परंतु माता-पिता एवं पत्नी की मृत्यु के उपरांत वह संसार से विरक्त हो गए। सांसारिक सुख एवं विषय-वासनाएँ उन्हें तुच्छ लगने लगीं और वह भगवद्भक्ति में डूब गए।

नितानंद जी सहज साधना को निवृत्ति मार्ग बताते हुए कहते हैं—

 ISSN 0975-735X

सहज-सहज सब को कहै, सहज न समझा जाय।
जिन सहजै प्रभु पाइयां, उन सहजै लौ लाय।[3]

भक्तिकालीन संतों एवं कवियों ने गुरु के महत्त्व को विशेष श्रद्धाभाव से प्रकट किया है। संत कबीर ने गुरु की महिमा का वर्णन करते हुए वाणी में कहा है कि–

सतगुरु की महिमा अनत, अनत कियो उपकार।
लोचन अनत उघाड़िया, अनत दिखावणहार।[4]

कबीर ग्रंथावली

संत नितानंद जी कहते हैं कि सच्चा गुरु अपने शिष्य को सीधी राह पर लाकर उसे ईश्वर सम्मुख बनाता है। दुनिया में भटकते हुए लोगों में गुरु के द्वारा सच्चा ज्ञान दिया जाता है, जिससे जीव अध्यात्म की भावना से भर उठता है। संत नितानंद भी अपने गुरु गुमानीराम की शरण को कदापि छोड़ना नहीं चाहते–

कुमति निवारी जीव की, करी सुमति परकाश।
नितानंद गुरु चरण की, कदे न छाडूँ आस।[5]

नितानंद जी कहते हैं कि जैसे सूर्य के उदय होने पर अंधकार की कालिमा छट जाती है, वैसे ही गुरुदेव के ज्ञानरूपी सूर्य के उदय होने पर अज्ञान का तिमिर नष्ट हो जाता है। गुरुदेव की एक ही नजर अपने शिष्यों को निहाल कर देती है। जैसे–

नितानंद गुरुदेव ने, देखत किए निहाल।
जिनके घर कौड़ी नहीं, भर दिए हीरे लाल।[6]

संत नितानंदजी ने भी संतों की तरह निर्गुणोपना पर बल देते हुए कहते हैं कि वह घट-घट में समाया हुआ है, उसका कोई मर्म नहीं जानता। वह पाप तथा पुण्य से अतीत है, ज्ञान और ध्यान का अविजय है। स्थूल तथा सूक्ष्म से परे है। वह अनुपम तत्त्व निर्गुण के गुण को पाना सरल नहीं। निर्गुण ब्रह्म के विषय में इस पद में अभिव्यक्ति की गई है–

नितानंद रबी चंद की, कहन मात्र है बात।
नूर तेज महबूब का, मुख से कहा न जात।[7]

नितानंद जी का कथन है कि सभी लोग अपने चर्म-चक्षुओं के द्वारा केवल संसार को देखा करते है, किंतु अंतर्दृष्टि या आत्मदृष्टि से जब ब्रह्म का ज्ञान हो जाता है, तब जीवात्मा ब्रह्मरूप हो जाती है।

सत्संगति का अर्थ साधारणतया सत्पुरुषों अथवा साधु पुरुषों के संग से ही लिया जाता है। संतों ने सत्संगति को परमात्मा की प्राप्ति की एक आवश्यक सीढ़ी माना है। सज्जनों की संगति से एक आध्यात्मिक वातावरण की सृष्टि होती है। शास्त्र बताते हैं कि जिस साधक को सत्संग प्राप्त हो जाता है, उसकी कायापलट हो जाती है। उसके संकल्प में शुद्धता आती है। संत नितानंद जी ने सत्संगति की महिमा की परंपरा को बढ़ाया है। संतों की चरण-शरण में जाने से लोहा भी कंचन हो जाता है तथा संगति के प्रभाव से काग भी हंस बन जाते हैं। अज्ञान का अंधकार समाप्त हो जाता है तथा मनुष्य जन्म-मरण के बंधन से छुटकारा पा लेता है।

यथा–

साध संग साहेब मिले, मिटै तिमिर अज्ञान।
जन्म-मरण बंधन छुटे, घट में प्रगटै भान।[8]
साधू संगत तो मिलै, कृपा करै गुरु देव।
लोहा कंचन हो गया, पारस अलख अभेष।[9]

समाज में पाखंड प्रत्येक देश एवं काल में होता आया है। रामायण और महाभारत इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। रावण ने सीता का हरण पाखंडी साधु बनकर किया था। युधिष्ठिर को शकुनि ने कपटनीति से हरा दिया था।

कबीर आदि संतों ने हिंदुओं और मुसलमानों के पाखंडों का घोर खंडन किया है। आज धर्म के नाम पर पाखंडियों का अजीब खेल चल रहा है। संत नितानंद जी ने अपनी रचना 'सत्यं सिद्धांत प्रकाश' में सामाजिक पाखंडों का जोरदार खंडन किया है–

काया करम की कोठड़ी लगे अज्ञान किवाड़।
पाहन पूजत ना खुलै पीडित कहो हजार।[10]
मूरत पूजे हर मिलै, तो सभ को मिल जाय।
नितानंद भवसिंधु में, कौन सहे दुख आय।[11]

कबीर की भाँति इन्होंने मूर्तिपूजा का खंडन किया। उन्होंने कहा था कि कोई पत्थर, पीपल, बड़ या तुलसी के पौधे को पूजने से पार नहीं हो सकता। क्योंकि–

नितानंद नर काकिया, सो साहेब क्यों होय।
पीतल, पाहन पूजकर, पार न पहुँचा कोय।[12]
मूरत जड़ पाषान की, नहीं पावै नहीं खाय।
नितानंद इस भरत में, भ्रमा सकल जग जाय।[13]

संत नितानंद क्रांतिकारी कवि थे। जहाँ हिंदुओं की मूर्तिपूजा को पाखंड बताया नहीं मुसलमानों की कथनी और करनी में अंतर बताया। वाणी के माध्यम से कहते हैं–

मुल्ला मदारै चढ़कर, कहाँ सुनावे टेर।
मिलन चहै महबूब को, दिल दुनिया से फेर।[14]

निस्वार्थ भाव से दूसरे के प्रति जो कार्य किया जाता है, वह परोपकार कहलाता है। परोपकार की भावना पुस्तकों में नहीं, विचारों में होती है। अर्थात् दूसरे के हित की भावना का उद्‌भव कहीं बाहर से नहीं, अंतरंग से होता है। कुछ लोगों की नियत अपने पेट भरने पर ही होती है, परंतु संतों की प्रवृत्ति इनसे भिन्न होती है। संत तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में परोपकार के संबंध में कहा है कि–'परहित सरिस धर्म नहिं भाई, परपीड़ा सम नहिं अधमाई।'[15]

निस्वार्थ भाव से जो उपकार किया जाता है, उससे बढ़कर दूसरा धर्म ही नहीं है। बदले की भावना से किया गया उपकार व्यापार है, जिससे पैसा कमाया जा सकता है, धर्म नहीं। परोपकारी व्यक्ति आत्मविश्वासी, निर्भीक, तत्पर एवं कष्टसहिष्णु होता है, जो स्वार्थ का त्याग कर परमार्थ में लगा रहता है। उसे सुख-दुःख, हानि-लाभ, धूप-छाया की परवाह नहीं होती है। संत दूसरे की पीड़ा को समझते हैं। नरसी मेहता के भजन 'वैष्णव जन तो तैने कहिये, जे पीर पराई जाणे रे।'[16]

संत नितानंदजी कहते हैं कि स्वार्थ छोड़कर परमार्थ के लिए जो जीता है, उसका जीवन सफल हो जाता है। इसलिए कमाए धन का दुरुपयोग न करके परमार्थ में लगाने की प्रेरणा देते हुए

कहते हैं—

नितानंद धन कृपण का, किसी न आया काम।
रतन जन्म बहुत मोल का, यूँ बिरथा बिन राम।[17]

संत नितानंदजी अन्य संतों की भाँति कपट को दुख का मूल एवं भलाई से सुख मानते हैं। इसलिए वह दया करने की प्रेरणा देते हुए कहते हैं—'दया सभी पर कीजिए, तजिए बैर-विरोध।'

संत नितानंदजी अन्य संतों की भाँति कपट को दुख का मूल एवं भलाई को सुख मानते हैं। इसलिए वह दया करने की प्रेरणा देते हुए कहते हैं—

दया सभी पर कीजिए, तजिए बैर-विरोध।
जो चाहै दीदार को, उलट आपमें देख।[18]

सारांशत: यह कहा जा सकता है कि जब सांसारिक विषय-वासनाओं से मन ऊब जाता है, चंचल मन स्थिरता को प्राप्त हो जाता है एवं इंद्रियों पर संयम होने से चंचलता मिल जाती है, तब वैराग्य एवं ज्ञान पैदा होता है। नितानंद ने वैषम्य को दूर कर समता स्थापित करने का प्रयास किया। परोपकार, सेवा, क्षमा, करुणा, दान, धैर्य, सत्संग, सहज योग, गुरु की महिमा आदि का प्रचार करके वे शुद्ध आचरण एवं सात्त्विकता पर बल देते हैं। वे कहते हैं, इसी से ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है। अज्ञान का विनाश होता है।

संदर्भ

1. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की संत परंपरा
2. डॉ॰ रामकुमार भारद्वाज एवं अनीता भारद्वाज, हरियाणा के संत कवि नितानंद, पृ॰ 58
3. संत सिद्धांत प्रकाश, साखी 4, पृ॰ 209
4. कबीर ग्रंथावली
5. सत्य सिद्धांत प्रकाश, साखी 26, पृ॰ 3
6. सत्य सिद्धांत प्रकाश, साखी 2, पृ॰ 18
7. वही, साखी 49, पृ॰ 57
8. सत्य सिद्धांत प्रकाश, साखी 8, पृ॰ 231
9. वही, साखी 8, पृ॰ 230
10. सत्य सिद्धांत प्रकाश, साखी 2, पृ॰ 217
11. वही, सारवी 3, पृ॰ 217
12. वही, साखी 7, पृ॰ 218
13. वही, साखी 8, पृ॰ 218
14. वही, साखी 13, पृ॰ 345
15. रामचरितमानस, उत्तरकांड, 41/1
16. नरसी मेहता द्वारा गाए गए भजन की पंक्ति
17. सत्य सिद्धांत प्रकाश, साखी 69, पृ॰ 116
18. वही साखी, 66, पृ॰ 215

वर्तमान समाज में स्त्री-चिंतन

सर्वदमन त्रिपाठी
प्रवक्ता राजनीतिशास्त्र

साहित्य के संदर्भ में 'विमर्श' संकल्पना आधुनिककाल की देन है। आज दलित-विमर्श, स्त्री-विमर्श, आदिवासी विमर्श आदि संकल्पनाएँ काफी रूढ़ हुई दिखाई देती हैं। 'विमर्श शब्द मूलत: गहन सोच-विचार, चिंतन-मनन को व्यक्त करता है। विमर्श किसी भी विषय को लेकर हो सकता है। व्यक्ति, समाज, वर्ग, जाति, विचार आदि विमर्श के विषय हो सकते हैं। विमर्श का स्वरूप अत्यंत व्यापक है। इसके अंतर्गत संसार के किसी भी विषय पर तर्कसंगत, सोच-विचार विनिमय हो सकता है, किसी भी विषय पर विवेचन-विश्लेषण किया जा सकता है। स्त्री-विमर्श, समकालीन साहित्य का केंद्रीय विषय है। स्त्री-संदर्भ को लेकर जो प्रश्नाकुलता और रचनात्मक छटपटाहट देखने को मिल रही है, उसमें यह आभास होता है मानो स्त्री-विमर्श आधुनिक या उत्तर-आधुनिक साहित्य की ही समाजिक चिंता है। नारी-मुक्ति आज भी करीब-करीब सारी दुनिया के नारी-समाज का नारा है। इसका मतलब हुआ कि मानवता का आधा हिस्सा आज भी परतंत्र है। स्त्री-विमर्श और कुछ नहीं है यह आत्मचेतना, स्व की पहचान, समानाधिकार की पहल का ही दूसरा नाम है। जहाँ से 'मैं' की चिंता का अहसास होता है, वहीं से स्त्री-विमर्श की शुरुआत होती है। वर्तमान स्त्री के बारे में प्रभा खेतान ने कहा—'आज स्त्री ने सदियों की खामोशी तोड़ी है। उसकी नियति में बदलाव है। उसके व्यक्तिगत जीवन का उद्देश्य, दर्शन, उसका मन, मिजाज सभी तो बदल रहा है।'[1]

वर्तमान नारी को आत्मबोध एवं आत्मचेतना से परिपूर्ण होने के कारण उसे अपने कार्य पर पूरा विश्वास होने लगा है। वह जानने लगी है कि वह समाजिक विकास में पुरुष से अधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था में अंतर्विरोध होते हैं, जिनका प्रतिबिंब हम उस समाज में देख सकते हैं। स्त्रियों पर संस्कृति, नैतिकता, परंपरा और मर्यादा के संरक्षण के नाम पर सदियों से दमन और उत्पीड़न का क्रम जारी है। पितृसत्तात्मक मूल्य-व्यवस्था में स्थितियों को दोयम दर्जा हासिल हुआ। उसकी हैसियत घर के भीतर और बाहर पुरुष-संरक्षण के बीच आँकी जाती रही। घरेलू अर्थहीन मूल्यहीन कामों में उलझी वे स्वयं को 'कमतर' करके देखने की आदी होती गईं। स्त्री को देवी का दर्जा दिया गया। मनुष्य का दर्जा पाने के लिए छटपटाती वह देवी बन गईं। देवी तो वैसे भी केवल देती है, लेती कुछ नहीं। स्त्री को भी केवल देना है—त्यागमयी, समर्पणमयी, अलंकारों से लदी देवी पाषणी हो, पुरुषों की 'भोग्या' ही बनना।

वर्तमान स्त्री की सोच में आज तीव्र गति से परिवर्तन आया है। आज वर्तमान स्त्री ने अपने अधिकारों के लिए आवाज बुलंद की है। समाज में वह अपने लिए जगह माँग रही है। अपनी

 ISSN 0975-735X

पहचान के लिए लड़ रही है। अपने होने का एहसास आज की स्त्री को हो गया है। स्त्री का आज उसे अपने बीते हुए कल से बाहर तो ले आया है, परंतु भारतीय समाज जो कि पितृसत्तात्मक समाज है, वह स्त्री की इस बाहरी जिंदगी को किसी तरह बरदाश्त नहीं कर पा रहा है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में भारतीय स्त्री की स्थिति वैदिककाल से लेकर आज तक समय एवं स्थिति-परिस्थिति के अनुसार बदलती रही है।

पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने स्त्री को कभी पुरुष का सहयोगी समझा ही नहीं, उसे पुरुष पर निर्भर ही बनाया है। सच तो यह है कि 'जितनी वह अपनी इच्छाओं-आकांक्षाओं को दबाती है, समाज उसे उतनी ही महान, पतिव्रता, आदर्श नारी की उपमा देता है। वह संज्ञाविहीन, अस्तित्वहीन जीवन जीने को अभिशप्त, उत्पीड़ित है। जीवन में पल-प्रतिपल मरती-पिसती धुटन से भरी हुई जिंदगी जी रही है।'[2]

आत्मनिर्भरता स्त्री-विमर्श का अभिन्न अंग है। स्त्री का जितना शोषण आत्मनिर्भरता के अभाव में हुआ, उतना आत्मनिर्भर होने पर नहीं दिखाई देता है। स्त्री की सारी आजादी आत्मनिर्भर होने पर निर्भर है। वर्तमान नारी आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होना चाहती है। जब वह पुरुष पर आश्रित नहीं रहती, तब अपने जीवन के संबंध में वह अनेक निर्णय स्वयं लेती है। 'मुझे चाँद चाहिए' उपन्यास की वर्षा वशिष्ठ इसी विचार की कायल है। विवाह करने की अपने भाई द्वारा दी गई सलाह वह इसलिए ठुकराती है कि उसे अपने पाँव पर खड़े रहना है। आर्थिक दृष्टि से स्वयं पूर्ण बनना है। अपात्र जीवनसाथी को ढोना उसे अमान्य है, अतः अपने भाई को वह सुनाती है–'आयु के जिस मोड़ पर मैं खड़ी हूँ, उसमें शादी मुझे उतने महत्त्व की नहीं लगती, जितना अपने पाँवों पर बड़ा होना लगता है। कुपात्र के साथ बँधने से अकेले रहना अच्छा है।'[3]

भारतीय समाजिक चिंतन और साहित्य में स्त्री-विमर्श की एक अविच्छिन्न श्रृंखला है, जिसके आधारभूत तत्त्व नारीदेह की प्राकृतिक संरचना, नारी-मनोविज्ञान और नारी-जीवन के सामाजिक संदर्भ रहे है। आजादी के पश्चात् सदी के अंतिम दशक के साहित्य में स्त्री-विमर्श अत्यंत सशक्त रूप में सामने आया है। अब स्त्रियाँ अपनी अस्मिता की खोज करने लगी हैं। आज साहित्य अपने सामंतवादी लक्ष्य को पीछे छोड़कर संघर्ष पर अग्रसर हो रहा है। आज स्त्री पितृसत्तात्मक व्यवस्था को सिरे से नकारती हुई इसे अपने प्रति साजिश स्वीकार करती है। प्रभा खेतान पूछती है–'कौन लोग हैं, जो हमें श्लोक सुना-सुनाकर बता रहे हैं कि हम अविश्वसनीय, अबला, पुरुष निर्भर एवं संकल्पहीन हैं। शास्त्र द्वारा प्रतिपादित स्त्री पहचान और पुरुष से उसकी भिन्नता दोनों में ही मुझे भयानक षड्यंत्र दिखाई देते हैं।'[4]

नारी आज सिर्फ बच्चों को जन्म देने की मशीन बनकर रहना नहीं पसंद करती। जब पुरुष-प्रधान समाज उस पर सिर्फ मातृत्व या सिर्फ सेवाकार्य लादता है, तब वह उसका अस्वीकार करती है। उसे अपनी क्षमता पर विश्वास है कि गृहस्थी के साथ वह अपनी नौकरी भी पूरी जिम्मेदारी के साथ कर सकती है। वर्तमान नारी इस कदर व्यावहारिक बनती जा रही है कि वैचारिक मतभेद होने पर वह पति से अलग रहने का निर्णय लेती है। अगर वह आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर है तो उसमें साहस ज्यादा नजर आता है। 'नया मानदंड' (स्त्री-विमर्श, खंड-1) के अतिथि संपादक डॉ० कमलकुमार अपने संपादकीय में नारीवाद के बारे में ठीक ही लिखते हैं–'नारीवाद का मूल उद्देश्य स्त्री की चुप्पी और सनातनी सोच को तोड़ना था। उसके अनुभवों को

अभिव्यक्ति देना था। स्त्री-जीवन के विविध प्रसंगों पर विचार, तर्क और बुद्धि से सोचना, समझना था।'[5]

नारीमुक्ति आज करीब-करीब सारी दुनिया के नारी-समाज का नारा है। इसका मतलब यही हुआ कि मानवता का आधा हिस्सा आज भी पराधीन है। वर्तमान सामाजिक व्यवस्था का रेशा-रेशा पुरुषों द्वारा पुरुषों के लिए निर्मित है। पुरुष द्वारा नारी पर थोपी हुई गुलामी का ठोस रूप है घर की चारदीवारी में नारी को कैद रखना दर्शाता है कि स्त्रियों को चाहिए कि वे जबरन मातृत्व और यौन गुलामी के पिंजड़े से आजाद हों। स्त्रियाँ अपने शरीर पर नियंत्रण कर लें। स्त्री-विमर्श मूलत: महिला-संस्कृति का निर्माण चाहता है—एक ऐसा नया समाज जो समग्रता, विश्वास और यौनिकता के प्रोत्साहन के नारीवादी मूल्यों पर टिका है। बलात्कारित स्त्री को हथियार उठाकर आत्मरक्षा के लिए तैयार रहना चाहिए। इसके संदर्भ में भी दिल्ली उच्च न्यायालय के वकील अरविंद जैन की मान्यता है कि—'बलात्कारी कानूनी प्रक्रिया में सजा से बच सकता है। लेकिन जिस दिन औरतें आत्मरक्षा में खुद हथियार उठा लेंगी, उसे कोई नहीं बचा सकता।'[6]

महिलाओं ने अपनी निजता पर बल देने के लिए धर्म और परंपराओं द्वारा निर्धारित सीमाओं के पार जाकर व्यवहारसंहिता का उल्लंघन किया। महिलाओं ने अपने नजदीकी परिवेश में मौजूदा उत्पीड़न की संरचनाओं से सीधे टक्कर ली। अब आत्मचेतना और अस्तित्वबोध के फलस्वरूप स्त्रियों में चेतना दिखाई देती है। स्त्री-विमर्श एक शक्ति है, जो नारी-उत्थान, नारी-अस्मिता, आत्मनिर्भरता और उसके अस्तित्वबोध को प्रस्तुत करती है। स्त्री-विमर्श स्त्री की अस्मिता का, आत्मचेतना का, अन्याय के विरोध और उसकी अत्याचार के विरोध में खड़े रहने की लड़ाकू वृत्ति का न केवल परिचय देता है, बल्कि इस चिंतन को बल प्रदान करता है। आनेवाली पीढ़ी की नारियों में चेतना जागृति के यह दर्शन निश्चित ही प्रेरणादायी सिद्ध होगा, इसमें संदेह नहीं।

संदर्भ

1. प्रभा खेतान, उपनिवेश में स्त्री, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ॰ 53
2. राकेशकुमार, नारीवादी विमर्श, आधार प्रकाशन, एस॰सी॰एफ॰ 267, सेक्टर-16, पंचकूला, हरियाणा, प्रथम संस्करण 2001, पृ॰ 201
3. सुरेंद्र वर्मा, मुझे चाँद चाहिए, पृ॰ 48
4. हंस, सितंबर अंक 1996, पृ॰ 57
5. प्रधान सं॰ कुसुम चतुर्वेदी, अतिथि सं॰ कमलकुमार : नया मानदंड (स्त्री-विमर्श खंड 1) (त्रैमासिक), जनवरी-मार्च, 2001 अंक-19, पृ॰ संपादकीय 'क'
6. डॉ॰ अर्जुन चव्हाण, विमर्श के विविध आयाम, वाणी प्रकाशन, 21ए, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2008, पृ॰ 30

मो॰ 9411551598

sdtripathi15@gmail.com

नारी-अस्मिता : बदलता स्वरूप और साहित्य

सुमिता त्रिपाठी (शोधार्थी)
मो॰ला॰सु॰ विवि॰ उदयपुर, राजस्थान

आजकल साहित्य और समाज में 'नारी-अस्मिता', 'स्त्री-विमर्श' 'नारी-सशक्तिकरण आदि की चर्चा खूब सुनाई पड़ती है। 'नारी-अस्मिता' मूलतः आधुनिकता की देन है। नारी-अस्मिता स्त्री के प्रति होनेवाले शोषण के खिलाफ संघर्ष है। अस्मिता शब्द 'स्व' की पहचान अथवा अपने अस्तित्व की पहचान के अर्थ में जाना जाता है। साहित्य में सामाजिक, सांस्कृतिक प्रक्रिया से निर्मित अस्मिता की केवल अभिव्यक्ति नहीं होती है।

स्त्री-विमर्श, स्त्रीवाद, स्त्री-अस्मिता की प्रमुख चिंता पितृसत्तात्मक व्यवस्था है। पितृसत्तात्मक समाज ने अपनी विशिष्टता और श्रेष्ठता स्थापित करने के लिए स्त्री को स्त्रीत्व की जो परिभाषा सौंपी है, उसमें केवल रूढ़ि की घेराबंदी नहीं है, असमानता और समानवरीयता के ऐसे अंधविश्वासी अनुशासन भी हैं कि एक क्षण के लिए मन अक्रांत हो उठता है। स्त्री की गुलामी 'पितृसत्ता' के वर्चस्व में निहित है। एंगेल्स ने कहा, 'नारी-मुक्ति तब तक संभव नहीं, जब तक महिलाएँ घरेलू काम छोड़कर बाहर मजदूरी मिलनेवाले काम को नहीं स्वीकारतीं। साथ ही उनका मानना था कि मातृसत्ता से पितृसत्तात्मक समाज का अवतरण वास्तव में औरत जाति की सबसे बड़ी ऐतिहासिक हट थी। आज स्त्री का संताप शब्दों में ढलकर समय के यथार्थ को अभिव्यक्त कर रहा हैं।'[1]

इसके अनुसार उन स्थितियों में बुनियादी तौर पर बदलाव की जरूरत है, जिसमें स्त्री को 'लिंग-भेद' के कारण असमानता का शिकार होना पड़ता है। स्त्रीवाद स्त्री को उसकी पुरुष-निर्भरता वाली 'इमेज' से छुटकारा दिलाकर उसकी 'अस्मिता' के रूप में स्थापित करना चाहता है। आर्थिक शोषण से मुक्ति, समाजिक समानता, समान अधिकार, संवैधानिक भेदभाव से मुक्ति, अधिकार-हनन का विरोध आदि स्त्रीवाद अथवा स्त्री-अस्मिता के बुनियादी जनाधार हैं।

नारी-अस्मिता नारी-चेतना की पैरवी, रचनात्मक संसार में तब तक अपूर्ण, अर्थहीन व सतही रहेगी, जब तक देश की आधी आबादी की मूल समस्याओं को अनदेखा किया जाता रहेगा। वास्तव में नारी-चेतना का अभियान स्वयं नारी के लिए अपने अस्तित्व को मानवीय रूप में अनुभव करने और करवाने का आंदोलन है कि मैं मनुष्य हूँ और समाज में रहनेवाले अन्य मनुष्यों की तरह मैं भी सम्मानपूर्वक रहने की अधिकारिणी हूँ। नारी-अस्मिता का सवाल नारी के अधिकारों, समाज में उन कार्यस्थल पर और परिवार में स्त्रियों के दमन-शोषण के प्रति जागृति तथा स्त्री-पुरुषों द्वारा इन परिस्थितियों को बदलने की दिशा में चेतना, कार्यशीलता, दमन से मुक्ति तथा परिवार व परिवार से बाहर अपने जीवन-संचालन का आधार तथा चुनाव की स्वतंत्रता है। स्त्री-अस्मिता का प्रमुख आधार स्त्री को पुरुष-संदर्भ से बाहर लाना और स्त्री-संदर्भ में देखना है। स्त्री का शोषण हजारों वर्षों से होता आ रहा है। स्त्री-अस्मिता के संबंध में सुधा सिंह का कथन

है–'स्त्री की अस्मिता का सवाल केवल व्यक्तिगत अस्मिता का सवाल नहीं, बल्कि सामाजिक अस्मिता का सवाल भी है। अस्मिता से जुड़ी समस्याओं का केंद्र में आना व्यापक रूप से आर्थिक और उत्तर-आधुनिक दौर में अस्मिता के बदलते रूपों-संस्थाओं और 'स्व' की बदलती चेतना के कारण संभव हुआ। अस्मिता का विमर्श व्यक्तिगत अस्मिता से सामाजिक अस्मिता का विमर्श है, यह विषम सामाजिक अस्मिता का विमर्श है। यह विषय सामाजिक यथार्थ की पड़ताल का विमर्श है।'[2]

भारतीय चिंतन-परंपरा में वैदिककाल में नारी मानवसृष्टि की जननी, आद्याशक्ति, मातृशक्ति के रूप में सदैव सम्मानित की जाती रही तथा अनंत शक्ति का स्रोत मानी गई। अथर्ववेद में स्त्री को 'समाज्ञी' का नाम दिया गया है। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवता:।' जहाँ स्त्रियों को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है, वहाँ पुरुषों की गिनती तो स्वत: देवताओं की कोटि में की जाती है। किंतु यह समय देर तक नहीं रहा। वैदिककाल के बाद ही स्त्री की स्थिति में परिवर्तन आना शुरू हुआ। कन्या के जन्म की उपेक्षा, बाल-विवाह, सती-प्रथा आदि कुरीतियाँ समाज में व्याप्त होती गईं। पतिव्रता और सतीत्व का महत्त्व सर्वोपरि हो गया। मध्यकाल तक आते-आते बौद्ध, जैन तथा इस्लाम के प्रभाव के कारण नारी के लिए अनेक नए-नए नियम बनने लगे, जिनका एक ही उद्देश्य था कि स्त्री पर पुरुषों का पूर्ण अधिकार हो। स्त्री जब-जब पुरुष की वासना का शिकार होने लगी, तब-तब वेश्यावृत्ति तेजी से बढ़ने लगी। स्त्रियों का अपहरण, उसे जिंदा जला देना, स्त्रियों को भेंट देना जैसी बातें आम हो गईं। जब इस्लाम धर्म का भारत में प्रवेश हुआ तो धर्मांतरण के भय से नारी को पर्दे में कैद कर दिया और विधवा पुनर्विवाह पर कड़ा बंधन लगा दिया।

मध्यकाल के पश्चात् भारत में धीरे-धीरे आधुनिकता का प्रवेश हुआ। नारियों पर लादी हुई कुरीतियों और कुप्रथाओं पर तीखे सवाल उठाए जाने लगे। उसी समय भारतीय राजनीति में महात्मा गांधी का आविर्भाव नारियों में नारी-अस्मिता बोध जाग्रत करने में बहुत सहयोगी हुआ। उन्होंने स्त्री पर किए जानेवाले अत्याचारों को हृदय से अनुभूत किया था। गांधीजी मान्यता थी कि शोषण की उत्पत्ति असमानता से ही शुरू होती है और इस प्रकार यह असमानता एक हिंसा है। गांधीजी बाल-विवाह को हानिकारक मानते है वे कहते हैं कि 'धर्म के नाम पर 'गोरक्षा के लिए हम शोर मचाते हैं, परंतु बाल-विधवा रूपी मानव गाय की रक्षा करने से इंकार करते हैं। धर्म के नाम पर अपने देश की तीन लाख से अधिक ऐसी बाल-विधवाओं के ऊपर हमने वैधव्य का बोझ रखा है, जो बेचारी विवाह-संस्कार का अभिप्राय तक नहीं समझ सकती।'[3]

स्वतंत्रता-संग्राम ने नारी-अस्मिता के संदर्भ में नए आयाम जोड़े और स्त्री को उसकी अस्मिता से परिचित करवाया। उन्हीं हालात ने स्त्री के समक्ष यह बात रखी कि वह केवल स्त्री नहीं, एक मानवी भी है तथा मानवोचित अधिकारों की अधिकारिणी भी है। स्त्री द्वारा स्त्री की यह पहचान एक नए आंदोलन का सूत्रपूत भी बनी, जिसे 'नारीमुक्ति आंदोलन' का नाम दिया गया। शिक्षा के प्रचार-प्रसार से नारियों में जागरूकता आई है। उसमें आत्मविश्वास भी बढ़ रहा है। विषय परिस्थितियों से टकराने की क्षमता भी बढ़ी है। वे अपनी जिम्मेदारियों को पुरुषों से भी अधिक अच्छी तरह निभाने लगी है।

वेश्यावृत्ति, कन्याभ्रूण हत्या, दहेज, घरेलू हिंसा आदि कुछ ऐसी समस्याएँ हमारे समाज में व्याप्त हैं, जो नारी-अस्मिता को नकार रही हैं। आज के समाज में नारी शिक्षित हुई है, स्वावलंबी

हुई है, किंतु रातों रात प्रसिद्ध हो जाने की बढ़ती महत्त्वाकांक्षा ने नारी को वस्तु बना देने को विवश कर दिया है। इसके लिए वह स्त्री देह का दुरुपयोग कर रही है। स्त्री देह का नग्न प्रदर्शन मर्डर यदि फिल्मों में देखा जा सकता है। स्त्री को इस मानसिकता को खत्म करना होगा। उसे अपनी शक्ति और सामर्थ्य के बल पर अपनी पहचान वैसी ही बनानी होगी। आँसू बताती रहनेवाली नारी के स्थान पर अपने को सबला रूप में बदलना होगा। स्त्री को 'व्यक्ति' की बजाय 'वस्तु' मानकर चलने का दृष्टिकोण अभी कायम है। विज्ञापनों में स्त्री के शरीर को उत्पाद की लोकप्रियता बढ़ाने के साधन के रूप में इस्तेमाल किया जाता है–इससे औरत की गरिमा और सम्मान को गहरी चोट पहुँची है।

स्त्री के जीवन में वास्तव में रोटियाँ बनाना, साधारण तरीके से शिक्षा प्राप्त करना और विवाह का इंतजार करना है। यदि वह अपने पिता के घर में कुछ नवीन व्यवस्थाएँ जैसे घर की साज- सज्जा आदि करना चाहती है तो उसके माता पिता कहते है कि जहाँ तुम्हारा घर होगा, जहाँ शादी होगी, वहाँ जाकर करना। किंतु शादी के बाद पुरुष उसका पति घर पर एकछत्र राज्य करता है, तब वह सोचती है आखिर मेरा घर कौन है? मेरी अहमियत क्या है, तो वह इसी अहमियत, सम्मान और स्वत्व को लेने घर से बाहर निकल पड़ी और कामकाजी महिला। अत: यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि पुरुष के एकछत्र राज्य के फलस्वरूप सभी अपने अस्तित्व को कायम रखने के लिए समाज में कामकाजी महिला के रूप में आ गईं। वास्तव में 'स्त्री श्रम' को यथोचित महत्त्व मिले तो कामकाजी स्त्री पर और दफ्तर के बीच एक संतुलन बनाते हुए घर-परिवार एवं राष्ट्र के सर्वांगीण विकास में अपना सहयोग देगी। प्रेमचंद्र गांधी कहते हैं–'स्त्री की आँखों में नींद का एक समुद्र है, जिसमें आकंठ डूब जाना चाहती है वह, लेकिन घर और दफ्तर के बीच पसरा हुआ रेगिस्तान उसकी इच्छा को सोख लेता है।'[4]

वैदिक साहित्य में नारी का सर्वाधिक सशक्त स्वरूप प्राप्त होता है। जैसे समाज का स्वरूप एवं परिस्थितियाँ बदली समाज में नारी-अस्मिता का पतन हुआ, वैसा ही स्वरूप साहित्य में भी दिखाई पड़ने लगा। आदिकाल भक्तिकाल एवं रीतिकाल में नारी-अस्मिता का प्रभाव साहित्य पर पड़ा। नारी के संदर्भ में बदलती हुई स्थिति का प्रभाव कवि-मानस पर भी पड़ा। प्रेमचंद्रोत्तर साहित्य में नारी-अस्मिता का स्वरूप बिल्कुल अलग प्रकार का है। वह जानने लगी कि वह समाज में पुरुष से अधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। उसका मानना है कि स्त्री होने के नाते वह जिस क्षमता का वहन कर रही है, उस क्षमता को पुरुष कभी नहीं वहन कर सकता। प्रभा खेतान के उपन्यास 'छिन्नमस्ता' की नायिका प्रिया अपने दोस्त फिलिप से कहती है कि–'एक पुरुष पैसा कमाता है, दो चार लोगों को पाल देता है। लेकिन स्त्री यदि सीमाएँ लाँघ जाए तो वह पारंपरिक समाज उसके लिए खत्म हो सकता है, परंतु मानव समाज तो बहुत बड़ा है, औरत होकर मैं जो समाज को दे सकती हूँ, वह नरेंद्र पुरुष होकर कभी नहीं दे सकता।''[5]

स्वतंत्र्योतर उपन्यासकारों और कहानीकारों में कमलेश्वर शीर्षस्थ कथाकारों में से एक हैं। उनके कथासाहित्य की स्थितियाँ अत्यंत भामिनी है। अपने पहले उपन्यास एक सड़क सत्तावन गलियाँ की नायिका बंसिरी का विद्रोहिणी रूप में सृजन कर कमलेश्वर ने स्पष्ट कर दिया था कि आने वाले उपन्यासों और कहानियों की नारियाँ नारी-अस्मिता से सराबोर होगी। अस्मिता की खोज के परिप्रेक्ष्य में मंजुल भगत का उपन्यास 'अनारो' एक उत्कृष्ट रचना मानी जा सकती है। अनारों

में एक कर्मठ, श्रमशील नारी की जीवटता, आत्मनिष्ठा है। उपभोक्तावादी अपसंस्कृति की विकृतियों से निम्नवर्ग अछूता नहीं रहा है। 'अनारो' महानगरीय समाज की समस्याओं का जटिलताओं से जूझती हुई टूटने के किनारे पर पहुँचकर भी नहीं टूटती। चित्रा मुद्‌गल के उपन्यास 'एक जमीन अपनी' में नारी-चेतना आंदोलन के परिप्रेक्ष्य ने एक दिग्भ्रमिता नायिका के संकटों का विवेचन किया है। आज का शिक्षित स्त्री समाज नारी-अस्मिता की लड़ाई लड़ता हुआ भी यह नहीं जानता कि वे अधिकार वास्तव में क्या है। अपनी अस्मिता की तलाश में महिला-लेखन पुन: सक्रिय है। नारी की स्थिति भले ही स्थानिक प्रभाव व कालप्रवाह से बदलती रही हो, उसकी छवि भी भले ही समय-समय पर दबती-उभरती रही हो, परंतु हर युग के निर्माण में उसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। उसकी अस्मिता को लेकर साहित्य में हमेशा ही समय सापेक्ष अनेकानेक प्रश्न उठाए जाते रहे हैं। उनका समाधन हुआ है या नहीं यह सब कुछ निरुत्तरित ही है, जब तक वह 'मानवी' रूप में उभरकर सामने न आए। सब नाते-रिश्तों के बावजूद वह स्वतंत्र इकाई भी है और स्वतंत्र अस्तित्ववाली भी है।

नारी-अस्मिता के बदलते स्वरूप में संबंध में यह कह सकते हैं कि नारी-अस्मिता तब तक अपूर्ण अर्थहीन एवं निरर्थक है, जब तक देश की आधी आबादी की पहचान सभी कवियों एवं साहित्यकारों न की जाय। नारी अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति हेतु जब भटक जाती है तो साहित्यकार उसको सही मार्ग दिखा साहित्य-धर्म का पालन करते हैं। स्त्री के संघर्ष, सोच और समझ को नए सिरे से देखने एवं समझने की जरूरत है।

संदर्भ

1. मुक्ता, उत्तर-आधुनिकता, उत्तर संवाद, नया प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण 2006, पृ॰ 6
2. सुधा सिंह, ज्ञान का स्त्रीवादी पाठ, ग्रंथ शिल्पी, लक्ष्मीनगर दिल्ली, संस्करण 2008, पृ॰ 15
3. मनोजकुमार सिंह, महात्मा गांधी एक अवलोकन, के॰के॰ पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2007, पृ॰ 213
4. सीमा दीक्षित, शय्या से सर्वोच्च अदालत तक, सामयिक बुक्स, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2011, पृ॰ 127
5. प्रभा खेतान, छिन्नमस्ता, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2010, पृ॰ 186

सी 115, **प्रथम तल**
केवल पार्क, आजादपुर
दिल्ली 110033
sumitatripathi20@gmail.com
मो॰ 9968043067

ISSN 0975-735X

वित्तपोषण योजनाओं में लघु उद्योग इकाइयों की समस्या एवं समाधान

डॉ॰ प्रमोदकुमार त्रिपाठी
सहायक अध्यापक, वाणिज्य विभाग
मारवाड़ बिजनेस स्कूल, गोरखपुर (उ॰प्र॰)

इस शोध-पत्र में यह जानने का प्रयास किया गया है कि भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक अपने संसाधनों अर्थात् कुल वित्तीय कोषों का उपयोग किस प्रकार कर रहा है। इस दृष्टिकोण से बैंकों ने समग्र संसाधनों अर्थात् कोषों को किस प्रकार विनियोजित किया है। बैंक तथा विविध प्रकार की सहायता, वित्तपोषण क्रिया-कलापों को किस प्रकार कर रहे हैं–

1. समग्र संसाधनों की संरचना एवं प्रवृत्ति
2. समग्र संसाधनों के उपयोग की संरचना एवं प्रवृत्ति
3. ऋण व अग्रिम की संरचना एवं प्रवृत्ति
4. निवेश की संरचना एवं प्रवृत्ति
5. नकदी एवं बैंक अतिशेष की संरचना एवं प्रवृत्ति
6. वित्त सहायता क्रियाकलापों का विश्लेषण
7. समग्र सहायता की संरचना एवं प्रवृत्ति
8. पुनर्वित्त सहायता की संरचना एवं प्रवृत्ति
9. बिल वित्तपोषण की संरचना एवं प्रवृत्ति
10. संस्थाओं को संसाधन सहायता की संरचना एवं प्रवृत्तियाँ
11. परियोजना वित्तपोषण की संरचना एवं प्रवृत्ति
12. अल्प ऋण सहायता की संरचना एवं प्रवृत्ति
13. प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष सहायता

भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक द्वारा बिल वित्तपोषण योजनाओं का मुख्य उद्देश्य लघु उद्योग इकाइयों के बिल संबंधी समस्या का समाधान करना है। बिल वित्तपोषण के अंतर्गत सिडबी द्वारा बिल पुनर्भुनाई (अंतर्देशीय आपूर्ति बिल) बिल पुनर्भुनाई 'देशी बिल', बिलों की प्रत्यक्ष भुनाई योजना तथा बिलों की प्रत्यक्ष भुनाई नामक चार योजना से चलाई जा रही हैं। अध्ययन अवधि के दौरान 753.35 करोड़ से 2008.85 करोड़ रुपए इस योजना के अंतर्गत मंजूर किए गए, जो अध्ययन अवधि के बीच के चार वर्ष 2001 से 2004 तक 753.35 करोड़ रुपए से 951.91 करोड़ रुपए के बीच रही। पूरी अवधि में आठ वर्षों तक गिरावट की प्रवृत्ति थी, परंतु बाद में यह ठीक हो गई। बिल वित्तपोषण के अंतर्गत किए गए मंजूरियों का संवितरण वर्ष 1997

से निरंतर बढ़ता हुआ वर्ष 2006 में 96.77 प्रतिशत हो गया, अर्थात् संवितरण निरंतर ठीक हुआ।[1] बिल वित्त पोषण योजना के अंतर्गत बिल पुनर्भुनाई कुल वित्त पोषण के 0.06 प्रतिशत से 17.69 प्रतिशत के बीच है जो कि बाद के दो वर्षों में नहीं की, बिल पुनर्भुनाई योजना के अंतर्गत कुल बिल वित्तपोषण का बहुत थोड़ा ही प्रतिशत इस योजना के अंतर्गत मंजूर किया गया है, जो कि 35 से 7.72 प्रतिशत के बीच है। बिल वित्तपोषण योजना के अंतर्गत प्रत्यक्ष भुनाई एक महत्त्वपूर्ण मद है, जिसके[2] अंतर्गत उपकरण बिल वित्तपोषण तथा घटक (प्राप्य बिल) बिल वित्तपोषण सम्मिलित हैं। इसके अध्ययन से स्पष्ट है कि उपकरण बिल वित्तपोषण कुल बिल वित्तपोषण के 7.90 से 31.29 प्रतिशत के बीच है, जोकि अध्ययन अवधि के बाद दो वर्षों में 7.90 से 31.29 प्रतिशत के बीच है, जोकि अध्ययन की अवधि के बाद के दो वर्षों में 7.90 एवं 10.01 प्रतिशत है।[3] घटक बिल वित्तपोषण कुल वित्तपोषण का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं बड़ा मद है, जिसके अंतर्गत भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक ने कुल वित्तपोषण का 51.70 से 90.95 प्रतिशत मंजूरियाँ की हैं, जोकि वर्ष 2001 के बाद उत्तरोत्तर बढ़ी हैं। कुल बिल वित्तपोषण की मंजूरियों के संवितरण के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि बिल पुनर्भुनाई का संवितरण 57.58 से 87.41 प्रतिशत हुआ है, जो कि निरंतर बढ़ा है। बिल पुनर्भुनाई की मंजूरियों का संवितरण 98.04 से 99.67 के बीच हुआ है, जो कि अध्ययन के दौरान का संवितरण वर्ष 1997 में 70.72 से बढ़ता हुआ वर्ष 2006 में 82. 82 प्रतिशत हुआ।[4] इसी प्रकार घटक बिल वित्तपोषण के मंजूरियों का संवितरण 96.34 से उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ वर्ष 2006 में 82.72 प्रतिशत हुआ। इसी प्रकार घटक बिल वित्तपोषण की मंजूरियों का संवितरण 96.34 से उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ वर्ष 2006 में 98.33 प्रतिशत हो गया। इससे स्पष्ट है कि बिल वित्तपोषण योजना के अंतर्गत सभी मदों के अंतर्गत मंजूरियों का संवितरण निरंतर ठीक हुआ है।[5]

संस्थाओं को संसाधन सहायता की संरचना एवं प्रवृत्तियाँ

भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक लघु इकाइयों के संवर्द्धन एवं विकास से जुड़ी हुई संस्थाओं को संसाधन सहायता प्रदान करती है। ताकि इस क्षेत्र को शीघ्रता से ऋण उपलब्ध कराया जाना सुनिश्चित हो सके। भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक ने मुख्यत: पाँच संस्थाओं को संसाधन सहायता प्रदान करती है, जिसके अंतर्गत राज्य वित्त निगम एवं राज्य औद्योगिक विकास निगम, गैर-बैंकिंग वित्त कंपनियाँ, फैक्टरिंग कंपनियाँ अल्पावधि ऋण राज्य बिजली बोर्ड एवं विद्युत निगम तथा अन्य संस्थाओं, जिनमें बैंकों को विदेशी मुद्रा में ऋण व्यवस्था तथा सिडबी की सहयोगी संस्था शामिल है।[6] सिडबी में अध्ययन अवधि के दौरान 492.00 करोड़ रुपए से 1603. 97 करोड़ रुपए की सहायता मंजूर की है, जो वर्ष 2000 तक अधिक है तथा बाद में कम हुई है, अर्थात् इसमें उच्चावचन की प्रवृत्ति दिखती है।[7] इस सहायता की मंजूरियों का संवितरण 46.81 से 107.09 प्रतिशत के बीच हुआ है जो कि अध्ययन अवधि के बाद के वर्षों में तुलनात्मक रूप से अधिक है।[8] संस्थाओं को सहायता के अंतर्गत सिडबी ने राज्य वित्त निगम, राज्य औद्योगिक विकास निगम को कुल संसाधन सहायता का 5.24 प्रतिशत से 67.10 प्रतिशत मंजूरियाँ की हैं, जोकि वर्ष 2001 तक 32.44 से 67.10 प्रतिशत के बीच है तथा वर्ष 2002 से वर्ष 2006 के बीच 5.24 से 23.38 प्रतिशत के बीच है अर्थात् बाद के वर्षों में मंजूरियाँ घटी हैं।[9] गैर-वित्तीय

कंपनियों को कुल संसाधन सहायता का 2.18 से 30.94 प्रतिशत मंजूरियाँ की गईं जो कि अपवादस्वरूप वर्ष 2006 को छोड़कर शुरू के वर्षों में अधिक तथा बाद के वर्षों में कम हुईं।[10] सिडबी फैक्टरिंग कंपनियों को संसाधन सहायता प्रदान करती है, जो कि कुल संसाधन सहायता का 4.27 से 28.25 प्रतिशत के बीच है, जोकि वर्ष 2000 से 2003 के बीच 16.17 से 28.25 प्रतिशत के बीच अधिक है। अल्पावधि ऋण राज्य बिजली बोर्ड एवं विद्युत निगम को सिडबी ने संसाधन सहायता प्रदान की, जोकि कुल संसाधन सहायता का 4.22 से 33.45 प्रतिशत के बीच है, जोकि अध्ययन अवधि के दौरान अनेक वर्षों में नहीं दी गई तथा बाद के वर्षों में कम दी गई। अन्य संस्थाओं को संसाधन सहायता के अंतर्गत सिडबी में कुल संसाधन सहायता का 3.06 प्रतिशत से 70.27 प्रतिशत मंजूरियाँ की गई, जोकि वर्ष 2002 के बाद वर्षों में तुलनात्मक रूप से अधिक रहा।

संदर्भ

1. बनर्जी, अमलेश एंड सिंह, बैकिंग एंड फाइनेंसियल सेक्टर रिफार्म्स इन इंडिया, दीप एंड दीप पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2001
2. बत्रा, जी॰एस॰ एंड डॉगवाल, बैकिंग एंड डेवलपमेंट फाइनेन्स, न्यू विस्तार, दीप एंड दीप पब्लिकेशंस, नई दिल्ली 1999
3. शर्मा, एच॰सी॰, एक विकास अर्थव्यवस्था में बैंकिंग का विकास, साहित्य भवन पब्लिकेशंस, आगरा 1969
4. कुलश्रेष्ठ, आर॰एस॰, वित्तीय प्रबंध, साहित्य भवन पब्लिकेशंस एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, आगरा 2001
5. वेस्टन, फ्रेड, जे॰, दि फाइनेन्सिग ऑफ स्मॉल बिजनेस, मैकमिलन, न्यूयार्क, 1967
6. सिन्हा, एम॰के॰, मनी बैंकिंग विकास एवं समस्याएँ, विकास पब्लिशिंग हाउस, मुंबई, 1979
7. भट्टाचार्य, के॰एम॰, मैनेजमेंट ऑफ नॉन परफार्मिंग एडवांसेज इन बैंक्स, जर्नल ऑफ एकाउन्टिंग एंड फाइनेंस, वाल्यूम 16, नं॰ 1, मार्च, 2002
8. रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया, सम एस्पेक्ट्स एंड इस्यूज रिलेटिंग टू एन॰पी॰ए॰, इन कामर्शियल बैंक्स, आर॰बी॰आई॰, बुलेटिन, वाल्यूम 53, नं॰ 7, जुलाई 1999
9. वार्षिक रिपोर्ट, भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक, सिडबी टॉवर, 15 अशोक मार्ग, लखनऊ 1996 से 2006 तक
10. उद्योग व्यापार पत्रिका, नई दिल्ली, मनी एंड बैंकिंग सेंटर फॉर मौनिटरिंग इंडियन इकोनॉमी प्रा॰लि॰, मुंबई 2005

जातीय व वर्गीय चेतना एवं समाजवादी पार्टी

डॉ॰ शशिकांत मणि त्रिपाठी (प्राचार्य)
पी॰डी॰आर॰ पी॰जी॰ कॉलेज, तिलौरा
सहजनवाँ, गोरखपुर (उ॰प्र॰)

भारत की सामाजिक व्यवस्था में जाति की भूमिका महत्त्वपूर्ण होने के साथ ही निर्णायक भी रही है। आज भी समाज में व्यक्ति की प्रतिष्ठा और उसका स्थान काफी सीमा तक उसकी जाति पर निर्भर करता है। जाति पर आधारित समाज-विभाजन मूलत: वर्ण-व्यवस्था का ही विकृत रूप हैं। वर्ग-व्यवस्था की जड़ें अतीत के अंधकार में ही छिपी हुई हैं। अधिकांश विचारक इस विषय पर एकमत नहीं हैं कि जाति-भेद की अनूठी प्रथा का आरंभ और विकास कैसे हुआ। वैदिक काल में वर्ण-व्यवस्था के प्रवर्ग अंदर से खुले थे और व्यक्ति की साममाजिक स्थिति जन्म निर्धारित नहीं थी। जन्मजात जाति-प्रथा का आरंभ वैदिकोत्तर काल में माना जाता है। इन वर्गों में से प्रत्येक का विशेष सामाजिक कृत्य, संस्कृति और जीवन-शैली का अपना अलग स्तर था। ऋषि-मुनियों ने वर्ण-व्यवस्था को सनातन और शाश्वत की संज्ञा दी और धीरे-धीरे लोगों में यह विश्वास फैल गया कि जाति-प्रथा ईश्वर-प्रदत्त व्यवस्था है।

कालांतर में भारतीय समाज इन्हीं वर्णों के कारण हजारों जातियों और उपजातियों में बँट गया। यहाँ तक कि जब 1957 में जब भारत सरकार ने अनुसूचित जातियों की प्रथम सरकारी सूची प्रकाशित की, तो उसमें ऐसी ग्यारह सौ जातियों का उल्लेख था।[1] पिछड़ी जातियों पर नियुक्त अर्वाचीन मंडल आयोग ने तीन हजार सात सौ सैंतालीस जातियों में ही आकलित किया।[2] जाति की कठोरता और जटिलता में भी उत्तरोत्तर वृद्धि हुई, जिसके कारण यह सामाजिक भेद-भाव के साथ-साथ आर्थिक विषमता का आधार बन गई। जाति-प्रथा ने भारतीय समाज को प्रगति से विमुख कर दिया और यह सामाजिक विषमता, सामाजिक ह्रास, जातिगत राजनीति के विघटन और विनाश का कारण बन गई।

आजादी के पश्चात् अतीत से विरासत में मिली जातीय वर्गीय और सामाजिक असमानताओं ने भारतीय राजनीति को सशक्त रूप से प्रभावित किया है। भारतीय राजनीति में जाति एक बहुत बड़ा तथ्य है, जो शक्ति के ढाँचे को नियंत्रित करता है और राजनीतिक अभिजनों की भर्ती में यही प्रमुख निर्णायक कारण है। भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के प्रारंभ होने के पश्चात् यह धारणा विकसित हुई कि पश्चिमी ढंग की राजनीतिक संस्थाओं और लोकतांत्रिक मूल्यों को अपनाने के फलस्वरूप जातिवाद जैसी पारंपरिक संस्था का अंत हो जाएगा, परंतु स्वाधीन भारत की राजनीति में जाति का प्रभाव अनवरत रूप से बढ़ता रहा। जहाँ सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्र में जाति के बंधन ढीले हुए, वहीं राजनीतिज्ञों एवं प्रशासनिक अधिकारियों की कृपा

 ISSN 0975-735X

से राजनीति और प्रशासन में इनका महत्त्व अधिक बढ़ गया है। प्रमुख राजनीतिक विचारक मायनर वीनर ने लिखा है, 'अनेक मामलों में दल जाति का पर्याय बन गया है और दल का प्रत्येक सदस्य इसी बात का इच्छुक है कि दल ऐसी इकाई बनी रहे, जिसमें कोई अपरिचित या बाहर का व्यक्ति न हो।[3]

समाज-सुधार आंदोलन, शहरीकरण और सुधरी हुई संचार-व्यवस्था ने जाति-प्रथा को तोड़ने के बजाय उसे और बढ़ाया है, क्योंकि विकास के कारण जातियों में अधिक कारगर ठोस और दृढ़ संगठन बने जिससे जाति एक संगठित संस्था के रूप में उदित हुई और राजनीति में अपने को एक शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया। मोरिस जोन्स ने भी इस बात को स्वीकार किया है कि, 'हर प्रकार की राजनीति में जाति एक ऐसी ताकत बन गई है कि इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती है। चुनाव लड़ने के लिए नामजद किए गए किसी दल के उम्मीदवार की सूची के पीछे एक आंतरिक कथा होती है, अर्थात् इस बात का बड़ी बारीकी से अध्ययन व विचार किया जाता है कि कौन उम्मीदवार किस जाति का वोट प्राप्त कर सकेगा।[4] इस प्रकार मायनर वीनर और मॉरिस जोन्स ने जातियों की प्रबलता को भारतीय राजनीति में स्वीकार किया है, परंतु इस तथ्य की ओर दोनों ने ही ध्यान नहीं दिया कि कौनसी जातियाँ राजनीतिक सत्ता और रुतबा प्राप्त करने में अधिक सफल रही हैं।

भारत की वर्तमान सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक स्थिति संक्रमणकालीन जटिलताओं की अभिव्यक्ति है। इन जटिलताओं में एक जटिलता भारत के राजनीतिक क्षितिज पर एक प्रबल सामाजिक, राजनीतिक शक्ति के रूप में पिछड़े हुए वर्गों का अभ्युदय है।

04 नवंबर, 1992 को जब मुलायम सिंह ने समाजवादी पार्टी का गठन किया, तो उस समय भारतीय राजनीति संक्रमणकालीन दौर से गुजर रही थी। काँग्रेस नरसिम्हाराव के नेतृत्व में अपने पतन की तरफ अग्रसर थी। उत्तर प्रदेश में उसकी स्थिति और बिगड़ी हुई थी। तात्कालिक परिस्थितियों में भारतीय राजनीति में संप्रदायवाद तथा जातिवाद अपने चरमोत्कर्ष पर था, क्योंकि एक तरफ राममंदिर विवाद तथा दूसरी तरफ मंडल कमीशन के कारण जातिवाद तथा संप्रदायवाद का बड़ी तेजी से विकास हो रहा था। इन्हीं सारी परिस्थितियों तथा केंद्रीय नेतृत्व के अभाव के कारण ही जातिवाद तथा संप्रदायवाद के आधार पर क्षेत्रीय दलों का गठन होना शुरू हुआ। उत्तर प्रदेश में समाजवादी पार्टी तथा बहुजन समाज पार्टी इन्हीं तात्कालिक परिस्थितियों की उपज हैं, इसके साथ ही भाजपा अपने को भारतीय राजनीति में स्थापित करने का प्रयास कर रही थी। राम मंदिर विवाद के कारण अल्पसंख्यक मुस्लिम अपने को नेतृत्वविहीन पा रहे थे, उनका नेतृत्व करनेवाला कोई दिखाई नहीं दे रहा था। लेकिन जब मुलायमसिंह यादव ने अयोध्या में विवादित ढाँचे को सुरक्षित रखा तो मुस्लिम जनता, मुलायमसिंह यादव के साथ हो गई, दूसरी तरफ पिछड़ी जातियाँ मंडल कमीशन लागू होने के बाद जनता दल के साथ हो गईं। सवर्ण हिंदू, राममंदिर विवाद के कारण भाजपा के साथ तथा दलितवर्ग बसपा के साथ हो गए थे। लेकिन जनता दल के विघटन के बाद विशेषकर उत्तर प्रदेश में पिछड़ी जातियों का सबल नेतृत्व करनेवाला कोई व्यक्ति नहीं मिल रहा था। मुलायमसिंह यादव ने यह देखा कि प्रदेश के 45 प्रतिशत पिछड़ा तथा 15 प्रतिशत अल्पसंख्यक हैं। अत: यह दोनों मिलकर 60 प्रतिशत होंगे। अत: दूसरी ताकत बनकर उभरकर आने का उन्हें पूरा विश्वास था। इसी जातीय समीकरण के आधार पर उन्होंने नई पार्टी

का गठन किया।

1993 में विधानसभा चुनाव को देखते हुए समाजवादी पार्टी ने पिछड़ी जातियों और अल्पसंख्यकों के लिए अपने चुनाव-घोषणा-पत्र में भी यह व्यवस्था दी कि 'समाजवादी पार्टी दलितों, पिछड़ों, सभी वर्गों की महिलाओं और अल्पसंख्यकों को बराबरी पर लाने के लिए संसद, विधानसभाओं तथा पंचायतराज संस्थाओं में 70 प्रतिशत आरक्षण दिए जाने की नीति घोषित करती है। मलाईदार परत को अस्वीकार करते हुए मंडल कमीशन को ज्यों का त्यों लागू करने की घोषणा करती है।[5]

समाजवादी पार्टी की राष्ट्रीय कार्यकारिणी में भी यह प्रस्ताव पारित किया गया कि 'समाजवादी पार्टी औरतों, दलितों, अल्पसंख्यकों और पिछड़ों को विशेष अवसर उपलब्ध कराने की पक्षधर है, इसके लिए जब तक जातिगत, विद्या, बुद्धि, संस्कार की भिन्नता मिट नहीं जाती, तब तक इन वर्गों को विशेष अवसर के सिद्धांत के अनुकूल 60 से 70 प्रतिशत नौकरियों में आरक्षण की व्यवस्था होनी चाहिए। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा मंडल आयोग की सिफारिशों को वैध ठहराने का समिति स्वागत करती है और इसे समाजवादियों की जीत मानती है।[6]

समाजवादी पार्टी, पिछड़े वर्गों को आरक्षण की सुविधा देने की पक्षधर थी। पार्टी का मानना था कि देश का समाजवादी आंदोलन लंबे समय से पिछड़े वर्ग को सामाजिक न्याय दिलाने का नारा लगाता रहा कि 'सोशलिस्टों ने बाँधी गाँठ, पिछड़े पावें सौ में साठ।' यह व्यवस्था मंडल कमीशन के रूप में आई। परंतु इसमें जो 'क्रीमीलेयर' की बात थी, तो समाजवादी पार्टी ने उसका विरोध किया, क्योंकि पार्टी का मानना था कि, 'कानूनी दाँवपेंच में मलाईदार परत' के नाम पर समाज के दलित, पिछड़े एवं किसान वर्ग को दिग्भ्रमित किया जा रहा है और उसका हक छीना जा रहा है, उन्हें आपस में लड़ाने की साजिश की जा रही है। समाजवादी पार्टी क्रीमिलेयर की अवधारणा को अस्वीकार करती है और मंडल कमीशन की रिपोर्ट को ज्यों का त्यों लागू करेगी। चाहे इसके लिए सर्वोच्च न्यायालय में पुनर्विचार याचिका दायर करनी पड़े या संविधान में संशोधन करना पड़े।'[7]

सन् 1993 के विधानसभा चुनाव में मुलायमसिंह यादव ने सर्वाधिक 47 प्रतिशत स्थानों पर टिकट पिछड़े वर्गों को दिए। उत्तर प्रदेश में मुस्लिमों के रहनुमा होने के कारण प्रदेश में उनकी 14 प्रतिशत संख्या को देखते हुए मुसलमानों को 14 प्रतिशत स्थान पर टिकट दिए। इसके साथ-ही-साथ प्रदेश में 47 प्रतिशत पिछड़ों के होने के कारण 40 स्थानों पर यादवों को पार्टी का उम्मीदवार बनाया।

सत्ता में आने के बाद समाजवादी पार्टी की सरकार द्वारा पिछड़े वर्गों तथा अनुसूचित जातियों को लोकसभा में आरक्षण देने के 11 दिसंबर, 1993 को उत्तर प्रदेश लोकसेवा संशोधन अध्यादेश 1993 को प्रख्यापित किया गया। इसके साथ ही साथ मुलायमसिंह ने मुसलमानों के हितों के लिए भी कई तरह के कार्य किए। सन् 1992 के बाद ज्यादातर मुसलमान मुलायमसिंह यादव के साथ थे। मुलायमसिंह ने सरकार बनाने के बाद मुस्लिम वक्फ संशोधन अधिनियम 1994 के अंतर्गत उत्तर प्रदेश मुस्लिम वक्फ अधिनियम-1960 की धारा-144 की उपधारा-2 राज्य सरकार को यथास्थिति बोर्ड के कृत्यों का निर्वहन तथा कर्त्तव्यों का पालन करने के लिए सशक्त करती थी, में संशोधन किया गया। इसके साथ-ही-साथ उत्तर प्रदेश अध्यादेश संख्या-13 सन् 1994 के

अंतर्गत एक अल्पसंख्यक आयोग की स्थापना का भी आदेश जारी किया गया। जो भारत सरकार अधिनियम नेशनल कमीशन फार माइनरिटीज एक्ट 1992 के तर्ज पर एक विधि स्थापित की।

मुलायमसिंह यादव ने पिछड़े वर्गों तथा मुसलमानों के हितों के लिए कई तरह के कार्य किए। लोहिया के विचारों का अनुसरण करते हुए श्री यादव ने लोहिया के विशेष अवसर के सिद्धांत को लागू करते हुए समतामूलक समाज की स्थापना का प्रयास किया। लेकिन मुलायम सिंह यादव के ऊपर पिछड़े वर्गों के नेता तथा पिछड़ी जातियों की राजनीति का जो लेबल लगा हुआ था, उससे वे उबरना चाह रहे थे, क्योंकि वे अब प्रदेश की राजनीति से निकलकर केंद्र की राजनीति में अपनी भूमिका निभाने का प्रयास कर रहे थे, इसके लिए वे पिछड़े वर्गों तथा अल्पसंख्यकों के वोटबैंक से परे जाने की कोशिश कर रहे थे। 1995 में सरकार गिरने के बाद मुलायमसिंह यादव की सोच में कुछ परिवर्तन आया जिसके परिणामस्वरूप उन्होंने कई जगह ऐसे विचार व्यक्त किए, जिससे यह स्पष्ट होता था कि राजनीति में जाति के पक्षधर तो थे, लेकिन वह भी एक सीमा तक रखने से संबंधित मान्यताओं को सामने लाते थे। सन् 1996 के विधानसभा चुनावों में 'उनके हिस्से में आई 282 टिकटों में से 60 सवर्णों को भी टिकट दिए। यह एक नए किस्म की समस्वरवादी राजनीति थी, जिसके जरिए वे प्रदेश के दायरे से निकलकर केंद्र की तरफ बढ़ने की कोशिश कर रहे थे।[8]

मुलायमसिंह यादव राजनीति से परे हटकर सवर्णों को अपने सांगठनिक पदों पर लाने का प्रयास करने लगे। आमतौर पर उनकी आलोचना करनेवाले कई पत्रकारों ने भी इस परिवर्तन को लक्ष्य किया कि सपा में यादवों की जगह गैर-यादवों और कई मामलों में सवर्णों की संख्या बढ़ती चली जा रही है।'[9]

मुजफ्फरनगर में पिछड़े वर्गों की एक सभा में अपनी जातिवादी व्यवस्था पर दृष्टि डालते हुए श्री यादव ने कहा था कि, 'बिहार के पूर्व मुख्यमंत्री स्व॰ श्री कर्पूरी ठाकुर व स्व॰ चौधरी चरणसिंह का नाम लेकर उन्होंने कहा कि श्री ठाकुर नाई थे, बिहार में उनकी जाति कितनी रही होगी, लेकिन वे वहाँ के बड़े नेताओं में एक थे और दो बार मुख्यमंत्री बने। इसी प्रकार चौधरी चरणसिंह पहले मुख्यमंत्री और बाद में प्रधानमंत्री भी बने। यह कोई उनकी जाति की ताकत के बल पर नहीं हुआ था। उन्होंने महात्मा गांधी का नाम लेकर कहा कि श्री गांधी ने अपने कुशल नेतृत्व तथा सिद्धांत निष्ठा की ताकत पर देश को आजाद कराया। बाबू राजेंद्रप्रसाद देश के राष्ट्रपति अपनी जाति के बलबूते पर नहीं बने थे, जयप्रकाश नारायण भी कौनसी जाति की ताकत पर देश के नेता बने। उन्होंने इसी क्रम में डॉ॰ लोहिया व राजनारायण वगैरह का नाम लिया।[10]

इस प्रकार समाजवादी पार्टी के गठन के बाद से लेकर सत्ता में आने तक मुलायमसिंह यादव पर जातिवादी राजनीति का आरोप लगाया जाता रहा है। सत्ता में आने के बाद उन्होंने पिछड़े वर्गों के हितों के लिए कई तरह की घोषणाएँ कीं। मुलायमसिंह यादव भी लोहिया की तरह पिछड़े वर्गों को हमेशा आगे लाने की बात किया करते थे। सत्ता में आने के बाद लोहिया की नीतियों को लागू करने के प्रयास किए। लेकिन अगर देखा जाय, तो मुलायमसिंह यादव की पिछड़े वर्गों की राजनीति एक विशेष जाति तक ही सीमित थी। जातिवादी राजनीति भारतीय राजनीति में स्वतंत्रता के बाद से ही शुरू हो गई थी, लेकिन इसका ज्यादातर प्रयोग 1967 के आम चुनाव में दिखाई दिया। उसके बाद भारतीय राजनीति से जाति ग्रसित होती चली गई। इसका स्पष्ट प्रमाण जनता

दल सरकार के गठन के बाद भारतीय राजनीति में विशेष रूप से देखने को मिला। 90 के दशक में सभी राजनीतिक दलों ने जातिवादी राजनीति की शुरुआत कर दी, जिसमें लगभग सभी जातियों का अपना दल तथा नेता हो गए और ये अपनी जाति के लोगों को अपनी तरफ आकर्षित करने का प्रयास करने लगे। मुलायमसिंह यादव ने भी पिछड़े वर्गों की राजनीति शुरू की, जिसमें ज्यादातर पिछड़े वर्ग के लोग उनके साथ थे। इसी बात को ध्यान में रखते हुए उन्होंने नए दल का गठन किया। सन् 1993 के विधानसभा चुनाव में मुलायमसिंह ने बहुजन समाज पार्टी के साथ समझौता किया, जिसको दलित वर्गों का समर्थन प्राप्त था। इस समझौते के आधार पर वे प्रदेश में सत्ता के सर्वोच्च पद पर पहुँचे। जून, 1995 में बहुजन समाज पार्टी द्वारा मुलायमसिंह यादव सरकार से समर्थन वापस लेने के बाद समाजवादी पार्टी की सरकार का पतन हो गया। इसके बाद मुलायमसिंह यादव ने अपनी नीतियों में परिवर्तन किए, क्योंकि उनको लगा कि यदि सवर्ण वोट भाजपा के पाले में छोड़ दिया जाएगा, तो उत्तर प्रदेश में उन्हें ज्यादा सफलता नहीं मिल सकती। अत: वे सवर्णों को अपनी तरफ आकर्षित करने का प्रयास करने लगे। सम्मेलनों, जनसभाओं में वे जातिवादी राजनीति से परे हटकर सभी वर्गों के हितों की बात को उठाने लगे। मुलायमसिंह यादव का मूल उद्देश्य समाजवादी पार्टी को भविष्य में एक मजबूत दल के रूप में स्थापित करना था।

संदर्भ

1. ईशाक, एच॰आर॰, इंडिया अनटचेवल्स, न्यूयार्क 1965, पृ॰ 29
2. मंडल आयोग रिपोर्ट, पिछड़ा वर्ग आयोग पर मंडल आयोग की रिपोर्ट, पृ॰ 302, 354
3. मायनर वीनर, पार्टी पॉलिटिक्स इन इंडिया, नई दिल्ली, पृ॰ 73-74
4. जोन्स मोरिस, भारतीय शासन एवं राजनीति, 1977, पृ॰ 58
5. समाजवादी पार्टी का चुनावी घोषणा-पत्र, 1993
6. समाजवादी पार्टी के राष्ट्रीय कार्यकारिणी के प्रस्ताव, 4-5 दिसंबर, 1992, नई दिल्ली।
7. समाजवादी पार्टी के राष्ट्रीय कार्यकारिणी के प्रस्ताव, 06 मई, 1993, भोपाल।
8. अभयकुमार दूबे, मुलायम सिंह एक आलोचनात्मक अध्ययन, नई दिल्ली, 1997, पृ॰ 49
9. वही
10. जनसत्ता, 6 जून, 1997

ISSN 0975-735X

Shashi Deshpande's Views on Feminism

Dr. M.S.Vimal (Asstt.Professor of English)
Govt.P.G.College, Niwari, Distt. Tikamgarh (M.P.)

Shashi Deshpande (born- 1938) is basically a Kannada writer. As being a novelist, she has achieved, *'Sahitya Akademi Award'* in 1980 for her novel, *'The Dark Holds No Terror'* and *'Padam Shri Award'* in 2009. As a versatile genius, her contribution as a novelist, short-story writer, children literature-writer and as an essayist is really praiseworthy. In the galaxy of Indian writers in English, she has stamped her name in the chain of renowned writers of world repute. So far her nine novels have been published through which, she has boldly favoured women life. As a feminist, she has played the great role in the revolution of 'feminism'. Although she in beginning did not consider herself as a feminist but in the later part of her literary life, she boldly admitted that she is a feminist. As a writer, she did not start her work as a feminist yet her depiction of women-plight has automatically brought and established her as a feminist. In her novels, she has minutely portrayed women's sorrows revealing the picture of male dominated Indian urban society. Her focus is laid mostly on urban life of India. It is generally believed that in towns and cities, the educated people live and they are superior in thought in comparison to rural areas' people. Deshpande has bluntly broken this notion exposing the fact that even the well-educated people residing in towns and cities are equally discriminative as the lay-men living in rural areas are. They are not free from mean mentality and traditional negative thinking towards women.

As much as deeper, we go through her novels, we find that the so-called well-civilized society is also inclined with women's exploitation. The well-educated people too are victim of superiority complex. They are even today not ready to consider women equal to them in status. In her novels, the major themes are- negligence, frustration, fear, divorce, rapes and other types of women's torturing. The main motif behind writing this article is to expose Deshpande's views on 'feminism', so it is needful to know first what the 'feminism is. The term 'feminism' has been originated from the Latin word 'femina' which means 'woman' (through French 'feminism). It refers to the emancipation of women; equal in status in comparison to men. Generally we find that women are supposed to be inferior in comparison to men in society. This is the major problem of women-life and this problem is not confined up to any particular country but almost it is spread in the

entire world. So in present scenario of literature, 'feminism' has become a vital part of debate. As it is clear that the roots of feminism lie in Latin and French literatures so it is also believed that the concept of 'feminism' is the product of 'French Revolution', the revolution that has widely affected the human-society based on male domination. It is also believed that the building of 'feminism' is standing on the pillars of' Marxism'. Karl Marx is supposed to be the producer of revolutions for human rights. Marxist ideology is the landmark against exploitation whether it is exploitation of man by man or of woman by man or vice- versa. The political scope of 'feminism' has been broadened by the impact of 'Marxist Ideology' that has made feminists challenge sexism along with capitalism for both encouraged the patriarchal social set-up in which women are kept under subordination.

Through her novels, Shashi Deshpande has openly come to confront with the women-challenges. The selection of characters for novels, she has chosen the urban background of India. The views of Shasideshpande pertaining 'feminism' come out in limelight through her narratives. All the nine novels are replete with the exploration of woman-plight. As a writer, she started her work not thinking that she was working in the stream of 'feminism'. Initiatively, she has written everything on the basis of her own experiences and keen observation of society in which women are kept under the extreme exploitation. Nature has provided everything to women but male dominated society mechanically reduced the rights of women for which they are still fighting. They have been fighting for centuries for the same but so far the desirable success could not be achieved. The tireless efforts have been made and are being made in this concern. In fact, feminism is a serious attempt to analyze, comprehend and clarify how and why feminity or the feminine sensibility is different from masculinity or the masculine experience. It is said, *"Feminism brings in to perspective the points of difference that characterize the 'feminine identity' or 'feminine psyche' or 'felinity' of woman. It can be studied by taking in to account the psychosomatic, social and cultural construction of feminity vis-à-vis masculinity"1*

As being a feminist, she has clearly exposed the gross gender discrimination and its fall-out in a male dominated society in her first novel, *'Roots and Shadows.* Through this novel, she has depicted the agony and suffocation experienced by the protagonist Indu in a male-dominated and tradition-bound society. Indu being an educated and self- respected woman does not agree to follow the imposed commands by her husband. She stands against her husband's brutality to get rid of mental exploitation. For the sake of liberation, she has to face numerous challenges. Not only Indu but all the women characters of all the novels have been shown under the clutches of exploitation. The portrayal of woman-predicament itself is an evidence to prove the fact that the views of Shashi Deshpande regarding the 'feminism' are that women should not tolerate males' exploitation silently. As much as they remain in silent mode so much the men would keep on torturing them. According to her

focused views, women should courageously enhance their will-power and stand against their exploitation in the same way as her most of women characters do in the novels.

If we talk of her second novel, *'The Dark Holds No Terror'*, we can say that its protagonist Saru comes ahead to protest her husband who wanted to keep her under his clutches. Deshpande not only focuses on the brutality of husbands or other people from in-laws' side but also she focuses on the brutality of parental homes where daughters are treated mercilessly. Here, Deshpande has exposed gender-based discrimination prevailed in urban society of India. In *'That Long Silence'*, her third novel, Jaya, the female protagonist has been shown feeling self-guilt since she is unable to make justice with herself. As being an intelligent lady, she wants to establish herself as a writer but her husband does not let her to do so. It is but natural that the person intended to make his or her literary career, needs meeting with other intellectuals too. Jaya is not allowed to meet such persons so she feels herself incapable to make wanted career in literary field.

So is the case with other novels and other women characters. Some are frustrated because of their mental torturing; some are victim of physical exploitation. Some are suppressed in parental homes and some are insulted and humiliated in in-laws homes. Ultimately, women are still living under the rudeness of men and facing different type of exploitations. It is mentioned, *"It is not difficult to agree with the view that in Shashi Deshpande's novels, we observe a change corresponding to the change in the contemporary society. We notice that the plot in her novels begins with an unconventional marriage and later on deals with the problems of adjustment and conflicts in the minds of the female protagonists and ultimately portrays their endeavour to submit to the traditional roles."2*

Hence, it is to be told again that Shashi Deshpande is one of the great feminists among the contemporary writers of Indian writings in English. She is an activist in the stream of feminism. Her literary revolt for the sake of women's emancipation is eternal. It has brought a drastic change not only in Indian society but also in all the other societies of other countries. As a writer, her views on feminism are apparently come in our sight that are completely concerned with women's exploitation; social, political, economic and moral. Her message via novels is universal. It is meant for healthy social atmosphere's establishment. She has raised the problems of educated and working women that have generally been ignored by the other novelists. As we know that most of the Indian novelists have used their pens to write about exploitation of uneducated and helpless rural women. Shashi Deshpande has come forward to behold beyond this all and found that the well-educated and working classes' women too are compelled to face troubles under the male dominated society. In the towns and cities too women are not free to breathe in peace and prosperity even though they are well educated and are earning money by doing different type of professions.

They are still in want of existence. They either could not make their respected identity or they have to face numerous gender-based challenges in doing so. Most of the men reluctantly come ahead to respect women's feelings and to give proper place to women in society. Due to this reason, women are still wandering and confronting for their entity.

Undoubtedly, Deshpande's novels are the mile-stone in the revolt by women against their exploitation. We can agree with Sarla Palkar who writes:

"*the writer has tried to convey to the society that the need of time, in this traditional phase, is not a total revolt but a gradual change in the society for which everyone has to put some efforts to bridge the gap between the old and the new generation.*"[3]

References

1. Kanwar Dinesh Singh, Feminism and Post Feminism (New Delhi: Swarup and Sons,) P. 3
2. Shanta Krishnaswami, The Woman in Indian Fiction in English(New Delhi:Ashish) P. 6-10.
3. Sarla Palkar, Breaking the Silence : Shashi Deshpande's That Long Silence, Indian Women Novelists, ed. R.K.Dhawan Set. !, Vol.5 (New Delhi:Prestige Books), 1991, P. 169-175.

Feministic Approach of Shashi Deshpande

Haricharan Ahirwar (Asstt. Professor of English)
Govt. Degree College, Lavkushnagar
Chhatarpur (M.P.)

As being a novelist of modern era, particularly, the novelist of twentieth century, the name of Shashi deshpande is considered as a great feminist. Although she did not regard herself as a feminist but it is sure that she is a feminist of superb class. Her all the novels are replete with the profundity of woman-predicaments. Her characters; major as well as minors are representatives of woman-plight. As a dignified feminist, Shashi Deshpande has created a jerk in the male dominated society. As a woman writer she has keenly understood the sufferings of women under the clutches of men whether they are father, brother, husband or any other relatives. The revelation of the stories of woman-plight is not only informative but also an instrument of improving the social machinery. Through her novels, she has tried to focus upon a fact that woman has always been kept under the subordination of males. In childhood, as a daughter, she has been kept under the care of her father and in the same state, as soon as she grew up her brothers came forward to shower their commands. After marriage, she comes in the new home, totally the home of a stranger where she makes different type of compromises to adjust herself as a wife, daughter in-law and sister in-law. Madam Deshpande like the other feminists has beheld this miserable condition in urban Indian society and minutely portrayed it in her writings, particularly in her novels.

The women have been traditionally characterized as ideally warm, gentle and submissive who are to be kept in subordination to the male members of the family. Manu declares, "*Day and night, women must be kept in subordination to the males of the family, in childhood to the father, in youth to her husband, in old age to her sons."1*

As far as the feministic approach of Shashi Deshpande is concerned, her all the six novels are depiction of quest of women for their existence. Even in the age of science and technology women are suppressed and treated improperly, many a times, they are kept under exploitation. Through her characters, Shashi Deshpande has boldly focused on social discrimination. In the literary world, male writers have shown women inferior in comparison to men. They have shown men as, 'superior sex' and woman as, 'inferior sex'. But it is wrong to say that all the male writers do like this. Some male writers too have worked for woman-

emancipation. In 'feminist-stream', there are so many male writers who are focusing on women-virtues. They have advocated women's liberation from all kinds of exploitations.

Shashi Deshpande's women characters are the representation of urban Indian women's plight. They show how the themes are related to women's sufferings. She has exposed the gross gender discrimination and its fall-out in a male dominated society. Her first novel, *'Roots and Shadows'*, clearly shows this aspect of women-life. Its female protagonist is Indu, who feels different type of problems in male dominated society. As a wife, she is not ready to accept the old traditions in which, women are kept in suffocation of four walls. She openly comes in front of her husband and confronts with social challenges. Same is the case with her second novel, *'The Dark Holds No Terror'*, in which, Saru, the female protagonist has been shown in suffering right from her childhood. In the parents' home, she was not provided parental treatment and after marriage too, she was not lucky enough to have deserving love and affection. Rather, she was tortured and humiliated in several ways. Saru's parents were in the want of male child so they fully neglected her.

After marriage, she managed herself in a balanced manner and increased her status in society. But her husband Manohar's sense of humiliation did not let Saru feel happy life. Inferiority complex of her husband came to be an obstacle in her life. Deshpande has revealed this social exploitation of women very sharply appealing for women-liberation. The third novel of Shashi Deshpande is *'That Long Silence'*, in which Jaya is the main female character. Jaya is an intelligent girl. She wants to establish herself as a writer but due to her husband's restrictions, her dream could not come to be true. She did not feel free atmosphere for literary works. She could not make friendship with other intellectuals. In this way, these three novels of Shashi Deshpande's first phase of literary career raised the problems of gender discriminations.

The second phase of her literary career starts with her fourth novel, *'The Binding Vine',* through which the novelist has presented Urmi as female protagonist. Urmi narrates the tale of Mira, her mother in-law who is victim of marital rape. Mira was not happy with her married life. In her solitude, she passed her time by composing poems. Her poems have been published by Urmi after her (Mira) death. Urmi narrates the second tale of Shakuntai, another woman who was deserted by her husband for another woman. The worst part of this tale is that Shakuntai's elder daughter Kalpana is raped by Prabhakar, her sister Salu's husband. '*In a Matter of Time'*, her fifth novel, Deshpande has focused on the story of three women generations of the same family. Through this novel, the novelist has told us how the women in a particular family are kept under the clutches of exploitation. Sumi is deserted by her husband Gopal, and she faces different type of predicaments

and humiliations. She has been shown confronting with all type of sorrows and sufferings. Her courage has been focused that seems to be novelist's goal to highlight women's spirit.

Sumi's mother Kalyani was married off to her maternal uncle Shripati. When their four year old son gets lost at a railway station, Shripati sends Kalyani back to her parents' house with two daughters. Kalyani's mother Manorma feels fear lest her husband should take another wife because she could not give birth to any male child who could be successor of the family. Thus, in this novel too, we find the focus on fear, frustration, negligence, exploitation, and moral humiliation of women.

Let us see in brief about Deshpande's latest novel, *'Small Remedies'* in which she has presented another story of woman-exploitation. The protagonist of this novel is Savitribai who is a well determined and talented musician. For the sake of her interest in music, she decides to remain spinster throughout her life but this male dominated society creates numerous hindrances in her path so she has to face various types of troubles.

After going through the entire works of Shashideshpande, we come to conclude that she is a feminist of superb kind. Her focus on women's predicaments proves that her interest in feminism is natural. In an interview with Laxmi Holemstorm, she says:

*"It is difficult to apply Kate Miller or Simone de Beauvoir or whoever to reality of our lives in India. And then there are such terrible misconceptions about feminism by people here. They often think it is about burning bras and walking out your husband, children, or about not being married not having children etc. I always try to make the point now about what feminism is not, and to say that we have to discover what it is in our own lives, or experiences."*2

Hence, Deshpande's above interview shows that she is a genius feminist. Let us see another interview of her in which she admits frankly that she is a feminist. It is as follows:

"I now have no doubts at all in saying that I am a feminist. In my own life, I mean. But not consciously, as a novelist, I must also say that my feminism has come to me very slowly, very gradually and mainly out of my own thinking and experiences and feelings. I started writing first and only then discovered my feminism. And it was much later that I actually read books about it."3

As a feminist, Deshpande has rendered her great contribution in the development of woman-awareness. In this respect, she is regarded as one of the pioneer-feminists in the post modern era of Indian writings in English. In a research paper entitled, 'The Dilemma of the Woman Writer', she writes, *"It is a curious fact that serious writing by women is invariably regarded as 'feminist writing'.*

A woman who writes of women's experiences often brings in some aspects of those experiences that have angered her, caused her strong feeling. I do not see why this has to be labeled feminist fiction. "4

The above statement of Shashideshpande has proved that even the term 'feminism' is in itself is humiliating for women. Why the writings by women are supposed to be women-literature?, Why women have been separately placed in the literary stream?, and Why literature by men is not taken as Man's literature? Several other questions also rise in this respect. Literary discrimination is also prevalent here; it has also been focused by Deshpande in her novels and other writings. She has clearly observed women life; plight, pain, predicaments, negligence, fear and frustration and over all, she has keenly observed the mood of Indian people that is mostly discriminative, negative and humiliating towards women.

References

1. WWW.Google.Com
2. Shashi Deshpande, Interviw:Shashi Deshpande Talks to Laxmi Holemstorm' Wasafiri, No.17 Spring 1993, P. 26.
3. ibid P. 26.
4. Feminism and Recent Fiction in English ed. Sushila Singh (New Delhi:Prestige Books) P. 50.

Moral Strategy to Check Declining Child Sex Ratio

(With Special Reference to Uttarakhand)

Dr. Kavita Bhatt, R.A., FDC
PMMMNMTT

Abstract of the Research Paper

With advancement of science, we have a strong feeling of civilization in our mind, but we can't claim to be civilized with the practice of discrimination against half of the population called women. Particularly, in this situation, when the modern science is being used as tool fordiscriminatory, cruel, violentactivities to destroy female feticide. It resulted in declining child sex ratio in many countries of the world. India with pre-dominantly patriarchal society is also in alarming crisis. The situation is distressing in various states as well as Uttarakhand too. Generally, higher literacy rate, socio-political awareness and woman empowerment are considered the optimistic assumptionsto determine solutions for this problem. It is Strange,but bitterly true thatthese presuppositions have failed in case of Uttarakhand. In spite of; appreciating records about these three measures, the child sex ratio is declining day by day. There are several hidden reasons as moral degradation and lose implementation of rules respectively on socio-individual and political levels. Thus, moral awareness, policy reformation and strong punishment majors are supposed to bea moral strategy for the solution of above problem. The problem is rooted in the socio-individual mindset for so called second sex; having peculiar capacity of creation and reproduction. So, we focus efforts to present a clear picture of burning problem in this paper dividing three parts. In first part: **we shall try to draw the clear picture of current problem with special reference to Uttarakhanddefining sex (natural) and gender (imposed) with the differentiation of these both.** In second part:**we shall try to inquire the reasons rooted in gender discrimination; resulted as present problem.**In concluding third part: **we shall focus on moral strategy to prepare a solution as socio-individual moral awareness and policy reformation at political level**. Now we shall move to the first part of paper.

Part I

First of all,we shall explain the meaning of sex ratio and child sex ratio. Sex ratio is the number of women against 1000 men, while child sex ratio is the number of girls against 1000 boys in the age group of 0-6. As per fresh data; this ratio has

shown an alarming decline in 27 states as well as Uttarakhand too.

It is necessary to understand the present problem of declining child sex ratio rooted in gender bias. The balanced ratio of females and males is necessary for equilibrium worldwide; but the socio-cultural conditions of India and several other countries are not favorable for it. The child sex ratio in India has dropped to 914 females against 1,000 males, one of the lowest since Independence according to Census 2011. As per the provisional data of Census 2011, while the overall sex ratio had gone up by seven points to touch 940, against 933 in census 2001, the child sex ratio plummeted to 914 from 927. Before highlighting the situation; let us make a short observation of the conditions responsible for the current situation.

The tradition, cultures and religious trends of Indian society knitted with predominantly patriarchal fibers. It is the basic reason to prepare an extensive secondary status for women. The society is suffering from a lot of social diseases in case of women like dowry, dowry harassment, various kinds of violence including domestic, rape, sexual abuse, sex racketing, prostitution and trafficking etc. Such kinds of immoral acts create an unhealthy society. Basically, these are the reasons responsible for making subordinate place to women in the process of birth, grooming, marriage and property etc. and to such an extent that even the birth of a girl child in a family is not a hoppy moment. A destructive trend of violence against women was running and still following in some places of India. These trends are responsible for the death of girl-children during 0-6 beginning years of their lives. An examination of the causes to eliminate the girl child indicates that the reasons are similar and different depending upon the geographical location.

We may see the table for recent details[1]based on the answer given by the Minister of Women & Child Development in the Lok Sabha in response to question number 1132 dated 28 November,2014:

Child Sex Ratio from 1991Census to 2011 Census

S.No.	State Name	Census 1991	Census 2001	Census 2011	No. of Gender Critical Districts
1	Haryana	879	819	834	12
2	Rajasthan	916	909	888	10
3	Uttar Pradesh	927	916	902	10
4	Maharashtra	946	913	894	10
5	Punjab	875	798	846	11
6	Jammu & Kashmir	Not Available	941	862	5
7	Delhi	915	868	871	5
8	Gujarat	928	883	890	5
9	Madhya Pradesh	941	932	918	4
10	Uttarakhand	949	908	890	2

Child sex ratio as above table[2] is enough to be shocked anybody. The situation

 ISSN 0975-735X

of Uttarakhand is also very upsetting and it is near to Rajasthan in this context. Although, the numbers of critical districts are 2 in counting; but we may see that the overall ratio decreasing census by census in comparison of 1991and 2001. Now we should make an observation of literacy rate of above 10 states according census 2011 for the actual situation; as we have already said that higher literacy rate makes a balance between child sex ratio; but it is contradictory in case of Uttarakhand. The details of literacy rate[3] in above 10 states is being presented in the table as below-

Literacy Rate accordingCensus 2011

S. No.	State Name	Overall Literacy Rate in %	Male Literacy Ratein %	Female Literacy Ratein %
1	Haryana	76.6	85.4	66.8
2	Rajasthan	67.1	80.5	52.7
3	Uttar Pradesh	69.7	79.2	59.3
4	Maharashtra	82.9	89.9	75.5
5	Punjab	76.7	81.5	71.3
6	Jammu & Kashmir	68.7	78.3	58.0
7	Delhi	86.3	91	80.9
8	Gujarat	79.3	87.2	70.7
9	Madhya Pradesh	70.6	80.5	60
10	Uttarakhand	79.6	80.3	70.7
	India	74.04	82.14	65.46

Haryana, Rajasthan and Uttar Pradesh have declining in child sex ratio; and the literacy rates are also very low in these states; according to the above table. Uttarakhand has better literacy rate than above three states; but it has a distressing situation to decline child sex ratio year by year. So, this is the time to be aware on the governmental and individual levels. The prime minister recently launched the "BetiBachao- BetiPadhao" (protect girl child- educate girl child); it means there is need to reform the policy on government level; but it can't reach to the desired goals; unless and until the individual moral awareness will not support it. Everyonemust to be aware of the concerned real meaning of sex and gender with differentiation of these both. Thus, now we shall try to focus on it.

Really, these facts are very shocking, the problem is not limited to mere number of particular sex but, it is more than that. It may be resulted as the disturbance for equilibrium of nature and day by day degraded moral level of human being. Obviously, nature didn't prepare gender; it prepared only two different sexes giving responsibility of creation and reproduction. Gender is an imposition of society. While it is a social problem requiring changing the mindset of people, yet all possible efforts need to be made at every level. Thus, it is required to understand the root of problem started from the definition of "Sex" and "Gender" with the particular differences between

the both. Generally, women are viewed as merely sex symbols and their creative power limited to bringing up babies. The biological differences dominate over other qualitative differences and achievements. Thus, biological characteristics determine gender and women's status in society. This has been called as "Biological Determinism"

Gender and Sex: Meaning and Interpretations with distinctions

While nature has created two sexes "Women and Men"; the essential differences between them is merely in the sphere of biological functions of reproduction. In rest of the matters, the differences by way of values, modes of behavior, life patterns and the supposed vulnerability of women, their need for protection and their inferiority by way of physical strength and potentialities are made out by the needs of the family, society and state. These are denoted by gender, gender roles and gender differences, and brought about by socialization, historical traditions, customary norms and state. Gender thus is an artifact, a social act and a political tool rather than a natural institution like "Sex" .This "Gender" can be altered, socially engineered and politically reconstructed while "Sex"cannot be (at least as of now)."Gender" also implies that the relationship between women and men can be changed from a patriarchal to a just and equal relationship, and it will be make impact on lives, patterns of behaviors and stereotyped roles of men and women too.[4]

THE DIFFERENCES BETWEEN SEX AND GENDER

Things determine Sex "Female-Male" Things determine Gender "Feminine-Masculine"

1.	Biological Constructsv
Chromosomesv	Internal and external
genitaliav	Hormonal states v
Other sex characteristics2.	Given 3.
Natural 4.	Immutable
1.	Society constructs v
Environmental shaping on sex v	Socially and
psychologically determined v	Scripted and learnt by
society2.	Changeable v
Culture- specific v	Cultures vary in
gender roles	

After the understanding the meaning and differences between sex and gender; let us move to frame of the reasons behind child sex declining ratio rooted in gender discriminations in the upcoming second part of the paper.

Part II

Reasons for child sex declining ratio rooted in gender discriminations

The truths and facts according to the data of Health and Family Welfare

Ministry of India, "Things have come to such a pass that in some villages of MP, no marriages have taken place for years because there are no girls and the boys are married by buying girls from far away villages of Bihar for paltry sums. In one district of West Rajasthan, 1997, the first, "Baraat" was received after 110 years and in another clan, there are only two female surviving children compared to 400 male children. In some **cases**,parents are prepared to accept the daughter if she happens to be the first child but thereafter they want only sons. Strong male preference and the consequent elimination of the female child continued to increase rather than decline with the spread of education. With the progress of science and technology it has been more scientific and easy. The moral guilt attached to elimination of the girl child after she is born is not felt equally if the child is eliminated while still in the womb. The increase in female foeticide has seen the proportionate decrease in female sex ratio which has hit an all-time low especially in the 0-6 age group and if this decline is not checked the very delicate equilibrium of nature can be permanently destroyed." [4]

The question is that; such situation; why took place; answer is very simple: due to discriminatory activities against women; widely treated as gender not as an equal sex. It invites a curiosity to know the meaning of gender discrimination. **Firstly,**we should understand the word "discrimination" after that we shall focus its use in the reference of gender.

It has two meaning with various perspectives; the first meaning of word "discrimination" is "a simple process of differentiation or recognition of the differences between any person or the thing to another person or the thing. Apart from its usual and primary meaning, the word "discrimination" also means, making an unjust distinction of the people on grounds of caste, color, creed, race, and sex and treating them differently." [5]We have already elaborated the meaning of word "gender", now we can understand the combined meaning of word "gender-discrimination". According Dr.Indoo Pandey Khanduri,"Putting together the two words together "Gender Discrimination" in its originality is a phenomenon, by which the role of individuals is determined within a particular society. "Gender-Discrimination" allows the distribution of the social responsibilities among the members of the society in such an effective manner that one can fulfill his/her responsibilities by using his/her physical and mental capabilities as optimum. The conflict of gender discrimination arises when only physical part of one's strengths, is considered and the mental part is neglected. As a result of such half-considered phenomenon, individuals are categorized as 'strong' and 'weak', 'emotionally strong' and 'emotionally sensitive', 'competent' and 'incompetent', 'leaders' and 'followers' etc. In this case the gender discrimination doesn't remain in its totality or originality and is considered as a factor deteriorating the process of development of human skills."[6]

We have already written that dowry, dowry harassment, various kinds of violence including domestic, rape, sexual abuse, sex racketing, prostitution and trafficking etc. are the social reflections of "gender-discrimination". These are the discrimination during the life of woman after birth but the other unbearable discrimination which resulted as declined child sex ratio is the cruel killing before birth. Sex selection: female foetues identification and abort it with cruelty.[7] Another hidden reasons are also responsible for it, let us draw these.

- Negligence for girl child resulting in their higher mortality below 6 years.
- High maternal mortality.
- Sex- selective abortions.
- Female infanticide.
- Change in sex ratio at birth.

Mainly, we can divide the reasons of declining child sex ratio in two categories "traditional and technical". Firstly, traditional reasons should be focused;

1. Traditional reasons- Patriarchal Society,son-orientedcomplex,social prestige, religious-cultural prejudices, family planning, poverty, and complications with daughters: "dowry, violence, rape, sexual abusing and harassment, psycho-physical exploitation, cultural prejudices about property and others" etc. arethe main traditional reasons for the preference to a male child. It resulted as the selection and caring for a male child by hook and crook. The scientific inventions have taken place for the cruel selection in place of well-being of humanity; while these have been invented for ultimate health. Consequently, the mass opt the illegal uses of scientific tools to choose male childand ruin a female child before her birth.

2. Scientific and Technical tools as Reasons- Pre -Natal Sex Determination Test is the main reason of low sex ratio resulted by abortion of female fetuses**,** following in India as well as Uttarakhand too. Such tests provide a choice for a male or female child. Couples prefer Male child to get rid of female child having individual and social problems. According a recent study 'Uttarakhand has never had any history of female infanticide. The contribution of firs to housework and farming was valued and they even fetched a bride price; but of late, Uttarakhand is undergoing a shift and new values seeping in from outside are slowly replacing the age-old traditional ones. Today, there seems to be drastic change in the thinking patterns of the hill community. This evident from the fact that majority of the hill women accept pre-natal-sex-determination tests and female foeticide, as the most effective way of limiting their family.[8]

Many studies have shown that these kinds of tests are the main reason of low child sex ratio in India followed by abortion of female foetus. Sex determination tests are seen as providing a "reproductive choice" a choice to decide to have a boy or a girl. Soon after the sex determining techniques, in 1983 Indian parliament banned the practice of sex determination in all public institutions; but the prime

legislation Pre-Natal-Diagnostic Techniques Act, passed on 20th **September 1994**, after a long campaign by the civil society and women organizations. Act provides the regulation of:

- The use of PNDT for the purpose of detecting genetic or metabolic disorders or chromosomal abnormalities or certain congenital mal-formations or sex related disorders.
- For the prevention of the misuse of such techniques for the purpose of PNDT leading to female foeticide.
- For matters connected there with or incidental thereto.

This Act came into force in 1996. By itself it is a comprehensive piece of legislation which defines the terms used therein, lays down when the use of pre-natal diagnostic techniques is prohibited and where it is regulated It has provisions for bodies which are responsible for policy making under the Act and those which are responsible for the implementation of the Act. The penalties for various offences and how and by whom cognizance of complaints is to be taken, are also elaborated. PNDT Act is a comprehensive piece of legislation[9];which prohibits of sex selection before or after conception and misuse of PNDT techniques for determination of sex of foetus, leading to female foeticide, as also advertisements in relation to such techniques for detection or determination of sex. The Act also specifies the punishment for violation of its provisions. Accordingly, the Act impose the following : 1- No person including a relative or husband of a woman shall seek or encourage the conduct of any sex-selection technique or her or him or both, 2- No person shall conduct or cause to be conducted any PN Diagnostic Technique including ultrasonography for purpose of sex determination[10]In fact a good doctor should counsel the patient that sex-determination is illegal andshould also positively propagate about the girl child. A doctor is highly regarded in thesociety and any counseling by him/her will have great impact in the implementation ofthe Act.

We have seen that the sex determination is totally restricted in the Act; while except some conditions, which are very clear in the Act; but, yet the proper implementation and strong punishment measures are required to stop such determination as a conspiracy against women. Here the prescriptions and regulations are also the part of PNDT Act, which is necessary to understand here, so let us move to understand these.

PRESCRIPTIONS AND REGULATIONS

The PNDT law is a prohibitory and regulatory statute; it seeks to put in place amechanism which prohibits sex selection while preventing the misuse and over-use of thepre-natal diagnostic techniques. At the same time, the Act permits and regulates the useof such techniques for the purpose of detection of specific genetic abnormalities ordisorders and for the larger benefit of mankind. The Act further

permits the use of suchtechniques only under certain conditions by the registered bodies. The PNDT Actprohibits the conduct of PND Techniques for determination of the sex ofthe foetus,but allows the conduct of PND Techniques for purposes thathave also been specified under the Act. as chromosomal abnormalities, genetic metabolic diseases, haemoglobinopathies, sex-linked genetic diseases, congenital anomalies, other abnormalities or diseases as specified by the Central Supervisory Board.

Now, it is very clear that we can't blame on PNDT with an abrupt manner, because the Act in this reference is regulatory; but it may be said the punishment majors should be more harsh and strong. Noticeable, that it is the mass, which use the scientific and technical methods for their foolish desires and immoral activities. Definitely, a person as a unit of mass or society is responsible for every negativity in this context.

After an elaboration of the situation of child sex declining ratio with its reasons; now we are in position to make an elaboration of moral strategy in this reference. It will be the theme of third i.e. concluding part of our paper.

Part III

Moral Strategy as the Solution:

While dealing with the moral strategy in this reference, the first need is to identify the root of problem. As, we have already said in the second part of the paper that "gender discrimination" is the root cause of this problem; and for the solution we should draw a stepwise moral strategy. Morality is the self-implementation of moral conduct; and of course; no governmental rule and regulation may be success without it. We can't say that government is doing nothing; but we can say that more is needed. In fact, the government has twofold responsibilities: first, to provide the facilities; second, preparation and implementation of strict rules and regulations with strong punishment measures for the accused. Government has been working on both levels; but the question is that which kind of moral responsibilities a person has on her/his individual level. It is obvious that a person is unit of a society, and she/he is quite responsible for the trend, so the moral responsibility of a person should be fixed.

Moral Awareness on Individual Level

Moral awareness on individual level depends upon some philosophical concepts like equality, right to be born and care, humanity and sensitivity etc. These could be the supporting concepts as humanitarian requirements of balanced sex-ratio which presupposed and pre-assumed the balanced child sex ratio.

1. Equality-Firstly, it is required to change the mindset, and every person need to initiate form her/him. The major barrier in the way towards the balanced gender structure is gender inequality based on the socio-cultural issues. The systematic discrimination of the females needs to be tackled from our society at

 ISSN 0975-735X

the multifarious level. The declining of child sex ratio is rooted in gender discrimination, and the reasons of discrimination are many fold as personal, social, religious and cultural. Family planning, nomination of property, old age security, earning means for money etc. are the personal reasons. Prestige, dowry, crime-violence against women etc. are the social reasons. Attaining of moksha on the cremation and pinda-danby son etc. are the religious reasons. The validating reasons are manyfold to choose a male child; social prestige and succession through males: sons carry forward not only lineage but property rights too, the condition precedent for attainment of moksha and cremation by son according to Hinduism, third the son's marriage as the golden chance to get the dowry. Any way reasons are rooted in the mind of an individual. And, basically, it is a great need to set a deep feeling of equality on individual level. Thus, it should be started from every individual as the unit of society. Woman should also be socialized from early childhood to consider themselves as equal to men. This would be positive influence on the coming generations as today's girl child would be tomorrow's mother as well as mother in law. The next point of individual awareness is right to be born and care.

2. Right to be born and care-It is wrong and poor interpretation of the problem that medical technology and week policies of government are the basic reasons for sex declining. The strict laws only can control the female infanticide and foeticide, it will not eliminate the problem completely. Philosophically, the right to be born and care are the humanitarian grounds to aware the person.

3. Humanity and sensitivity-The concern regarding declining female population in India is to rise above the social domain issue to become a political, economic and reformist issue and the entire society must be sensitized. We are living through a 'civilization crises'. Sensitization on humanitarian ground should be promoted. There are two equal sexes called female and male. They have physical distinctions,but having same levels of rationality. And, physically, females should be respected equal even more for their productive peculiarities, because they have more responsibility for human existence. The pain and suffering during the pregnancy and delivery are panic but women take all these without any respect and sensitization.

Except, individual awareness, the need of present issue is socio-cultural awareness. Thus, we shall try to elaborate all these.

Moral Awareness on Socio-cultural Level

1. Children should be taught to uphold moral and refrain from practices of dowry, female foeticide, and gender bias. Thevulnerable minds of the children should be so influenced that they grow up as adults who consider practicing dowry and female foeticide as immoral.

2. On the one hand, a woman is generally considered financially unproductive as her contribution is largely in the form of unremunerated family labour and, on the

other, she alienates her parents' property on marriage. Even in the present scenario, working women are financially productive, social perception does not change because apart from a few initial years, for the whole of her life she earns not for her parental but marital home. Consequently, it becomes extremely difficult to break through this nexus of sheer economic, traditional, and cultural practices tangle with the status of females in our society.

3. Everybody should be aware as unit of society that, tt is punishable to encourage dowry by giving or receiving, and it is punishable according the Dowry Prohibition Act, 1961, but, yet, it is a matter of prestige in the society. So, there is a need to be awake from such kind of dangerous prejudicial slumber.

4. Now, the women have been declared as a coparcener of parental property according Hindu Succession Amendment Act, 2005; but the daughters have been proved selfish and greedy by society on demanding, it is the harsh reality of current society.

Suggestions for Policy Reformation

1. Moral Education should be imparted as must in the schooling as well as higher education for every discipline; while sciences, arts, commerce and every professional course. It will enhance the rational level of person. Consequently, it will be resulted as refined thought process and morality. It is possible to uproot immoral activitieslike dowry, domestic violence, sexual abusing, sexual harassment, crime against women, rapes etc. After creating a safe and secure environment for women, it is possible to uproot gender discrimination; which resulted in balanced child sex ratio.

2. Strict implementation of laws banning female foeticide and dowry providing old age pension for parents who had no son, free and compulsory education for girls, job reservation for women in specific occupations and giving them an equal share in property, in the true sense of the word.

3. Strict punishment should be fixed for the defaulters in case of sex determination, dowry, domestic violence, sexual harassment, rape, sexual abusing, sex racketing, prostitution and trafficking etc.

4. The announcement of National Girl Day in 2009 on every 24 January; BetiBachao-BetiPadhao, Stop Killing Girls, incentive schemes like Dhanlakshmi, Ladli, Betihai Anmol, Kanyadan and so on conducted by state and central governmental level. The personal awareness in this regard is necessary to encourage the female child.

5. Every political party wants to create and cash a vote bank through women, but no one advocate women reservation in parliament; it is a bitter reality.

6. Actually, we discuss ever; but, a single step put forward as an initiative, never. And it is the real problem, we have to decide a well-beginning from ourselves, being an unit of society.

7. The rationale or framed within an inverted demand supply paradigm is that stopping supply of the technology will reduce the demand for determining the sex of the foetus and aborting if it is female.

8. Media also has a moral responsibility to publicize the concerned matters for the awareness of people.

9. While national attention on this issue is welcome, this is complex terrain. On the one hand, it is the right of females to be born, and of society to protect and preserve a gender balance. On the other hand lies a woman's right under the Medical Termination of Pregnancy Act (1971 revised in 1975) to have a safe and legal abortion as part of a whole gamut of reproductive rights. It is our duty to create an environment against one type of abortion (of a foetus only because it is female), we end up stigmatizing all abortions. Access to safe and legal abortion for Indian women is already severely limited, andis environment will not improve the things. Indeed, the word 'foeticide' i.e. 'killing of the foetus (used often without the qualifying 'female foeticide') dents abortion rights.

10. In order to marshal support of various groups and channelizing the efforts in a focused manner, government must take a lead in establishing a mission for balancing the sex ratio by the next census operation through a coordinated mix of reinforcement programmes and support mechanism.

Conclusion- Gender discrimination is the root cause of child sex declining ratio in India as well as Uttarakhand. Moral awareness on individual, socio-cultural and political levels should be needed. Moral strategy including equality, right to be born and care, humanity and sensitivity etc. is the core need to uproot the problem of child sex declining ratio in India as well as Uttarakhand.

References

1. (https://factly.in/the-beti-isssue-declining-child-sex-ratio/)
2. source:http://www.indiaonlinepages.com/population/literacy-rate-in-india.html
3. Kaushik, Prof. Susheela, Capacity Building of Women Managers in Higher Education : Women's Studies Perspectives, Manual I, University Grants Commission, New Delhi, 2008, pg. 22
4. Handbook on Pre-Conception & Pre-Natal Diagnostic Techniques Act., 1994, and Rules with Amendments, Published by Ministry of Health & Family Welfare, Government of India, 2006
5. Khanduri, Dr. Indoo Pandey, chapter "Gender Discrimination- Moral Implication and Responses" in book "Indian Women : Problems and Concerns" edited by Poonam choudhary&Damodar Singh, Janaki Prakashan, Bihar, India, 2013, pg. 55
6. Khanduri, Dr. Indoo Pandey, chapter "Gender Discrimination- Moral Implication and Responses" in book "Indian Women : Problems and Concerns" edited by Poonam choudhary&Damodar Singh, Janaki Prakashan, Bihar, India, 2013, pg. 55
7. Archana Shah & Mani Kant Shah, chapter Female Foeticide and Status of Girl Child, in book 'Woman Empowerment in Garhwal Himalayas' edited by Annapurna Nautiyal and Himanshu Baurai, Kalpaz Publications, Delhi, pg. 105
8. Archana Shah & Mani Kant Shah, chapter Female Foeticide and Status of Girl Child, in book 'Woman Empowerment in Garhwal Himalayas' edited by Annapurna Nautiyal and Himanshu Baurai, Kalpaz Publications, Delhi, pg. 105
9. Handbook on Pre-Conception & Pre-Natal Diagnostic Techniques Act., Section 4. 5 of the Act.

1994, and Rules with Amendments, Published by Ministry of Health & Family Welfare, Government of India, 2006
10. Ibid, Rule 3 (1) under the PNDT Rules

डॉ० कविता भट्ट द्वारा श्री सुभाषचंद्र भट्ट
सेंट्रल लाइब्रेरी, बिरला कैंपस एच०एन० बहुगुणा
गढ़वाल यूनिवर्सिटी श्रीनगर, गढ़वाल , उत्तराखंड-246174

Administrative Block-II
HNB Garhwal University
Srinagar (Garhwal)
Uttarakhand 246174
mrs.kavitabhatt@gmail.com

 ISSN 0975-735X

डॉ॰ राजेन्द्र मिश्र की रचनावली का प्रकाशन

संपादक : डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल

प्रकाशक : हिंदी साहित्य निकेतन, 16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ॰प्र॰)

सभी ग्यारह खंडों का मूल्य 11,000 रुपए, पृष्ठ संख्या 6000

सुविख्यात साहित्यकार और हिंदी साहित्य में आजकालीन साहित्य की अवधारणा को स्थापित करने वाले डॉ॰ राजेन्द्र मिश्र की रचनावली ग्यारह खंडों में प्रकाशित हो चुकी है। राजेन्द्र मिश्र मूलतः कवि हैं और उनकी रचनावली के 1 से 4 खंड में उनकी कविताओं का प्रकाशन किया गया है। खंड 5 में निबंध, खंड 6-7-8 में उपन्यास, खंड 9 में उपन्यास और नाटक, खंड 10 में कहानियाँ और एक कविता संकलन, खंड 11 में निबंध और डायरी प्रकाशित हैं।

राजेन्द्र मिश्र ने कविता में समय की अवधारणा को केंद्र में रखा है। खंड 1 में उनके कविता-संकलन, 'अपने समय में', 'अपने समय में नहीं', 'अपने समय का वर्तमान' एक अँगरेजी कविता-संकलन 'टाइम फ्लोज़', 'अपने समय के सामने', 'युद्ध अपने ही शिविर में', 'अधूरी यात्राएँ' और 'तुम अपने' संकलित हैं। 'तुम अपने में' सारी कविताएँ प्रेमकेंद्रित हैं। 'अपने समय में नहीं' में सारी कविताएँ आपातकाल के विरोध में हैं।

रचनावली का दूसरा खंड एक नए मोड़ पर लाता है। 'समय की जंग' में कवि ने आतंकवाद के विरोध में कविताओं की रचना की है। 'समय पिघल रहा है' में आत्मसंवेदना के व्यापक परिवेश को स्वर मिला है। 'अपने भूगोल में' वह समय को भूगोल तक ले गया है। अनेक साइबर कविताएँ इसमें रची गई हैं। 'तुम्हारे लिए' में प्रेम-कविताएँ हैं। 'तुम अपने' में जहाँ प्रेम का स्त्रीपुरुष फलक पर सृजन है, वहीं 'तुम्हारे लिए' में यह संबोधन बन गया है। 'युयुत्सु' लंबी कविता है, जिसमें महाभारत के पात्र का मिथक समसामयिक भारतीय परिदृश्य को अंकित करता है। इस खंड के अंत में 'आज कविताएँ' हैं, जो उसकी आज कविता की अवधारणा का सृजन करती हैं।

रचनावली के तीसरे खंड 'समय के भूगोल में' अपने अतीत के परिदृश्य को वह वर्तमान से जोड़ता है। 'असाबिया' में अरब क्रांति की कविताएँ हैं। राजेन्द्र मिश्र हिंदी के अकेले कवि हैं, जिन्होंने इस संकलन को रचकर अपने आपको वैश्विक परिदृश्य से जोड़ा है। हिंदी में अरब क्रांति पर यह अकेला संकलन है। 'आठवाँ राग' भी उनकी लंबी कविता है और उसमें मनुष्य-संवेदना के साथ भविष्य की कविता का संसार रचा गया है। इस खंड के अंत में 'सदियाँ गुजर रही हैं' में कवि जीवन-यात्रा के अंतिम पड़ाव को जीवन के परिदृश्य के साथ जोड़कर अत्यंत मार्मिक अभिव्यक्ति देता है।

रचनावली के चौथे खंड में उनके गीत हैं। कवि 'शब्दराग' से आरंभ करता है, फिर वह 'गीतराग' पर आता है। उसके बाद 'मीतराग' है। इस तरह यह गीतसृजन की विकास-यात्रा है और यही आजगीत की भूमिका है। इसके बाद 'यादों का सफर' है। फिर 'खत्म हुआ सफर' है। जिंदगी, गीत से जुड़ जाती है। अंत में 'हवाएँ खामोश हैं', जहाँ कविता और गीत में कोई अंतर नहीं रहता।

रचनावली के पाँचवें खंड में 'आज कविता' है। इसमें आज कविता की अवधारणा दी गई है। नई

कविता के बाद विस्तार से कविता के नए संदर्भ को पहली बार इसमें अंकित किया गया है। यही 21वीं सदी का सृजन है। इसके बाद 'साहित्य का भविष्य' में उत्तर-आधुनिक मनुष्य के विविध संदर्भ हैं। 'संपर्क भाषा और लिपि' में हिंदी और नागरी को केंद्र में रखा गया है। 'कविता का गद्य' में नए विश्व के ललित निबंध हैं। रचनाकार भारत की सबसे प्राचीन हिंदी मासिक पत्रिका 'वीणा' का संपादक भी रहा है। 'मेरे संपादकीय' में उनके सभी संपादकीय संकलित हैं, जिनमें समसामयिक संदर्भ के विषय लिए गए हैं।

रचनावली के खंड छह में उनके दो उपन्यास 'ठहरा हुआ पल' और 'अपनी परिधि में' संकलित हैं। 'ठहरा हुआ पल' अगर आत्मकथात्मक है तो 'अपनी परिधि में' स्त्री-पुरुष का संघर्ष इस सच का सामना करता है कि उनकी अपनी-अपनी परिधि होती है। वे विश्व-परिदृश्य के संदर्भ में अपने कथानकों की रचना करते हैं, जिसमें अंतर्विरोध के साथ ही अंतर्दृष्टि की चुनौतियाँ होती हैं। इस अर्थ में उनके उपन्यास अत्यंत रोचक और उत्तेजक भी होते हैं। खंड सात में भी उनके दो उपन्यास हैं, 'पिंजरे के पंछी' और 'ल्हासा का चाँद'। 'पिंजरे के पंछी' में उनके केंद्र में आज का मनुष्य है, जो विश्व के पिंजरे में बंद है। वह स्वतंत्र होकर भी स्वतंत्र नहीं है। 'ल्हासा का चाँद' तिब्बत पर लिखा उनका उपन्यास है। यह हिंदी में पहला ही उपन्यास है, जो रचनाकार को विश्व-परिदृश्य में रख देता है। तिब्बत का दमन और स्वतंत्राता के लिए संघर्ष इसके केंद्र में है। खंड आठ में भी उनके दो उपन्यास हैं, 'इतिहास की आवाज' और 'पाँचवाँ स्तंभ'। इतिहास की आवाज में आतंकवाद के साथ ही मुस्लिम महिलाओं की समस्याओं को उभारा गया है, जो तीन तलाक और बहुविवाह की वजह से सारी जिंदगी आतंक में जीती हैं। आज जिस तरह वे जागरूक होकर अपने अधिकारों के लिए संघर्ष कर रही हैं, वह इस उपन्यास में भी है। साथ ही कश्मीर-समस्या और धारा 370 के संदर्भ को भी उपन्यास में रखा गया है। 'पाँचवाँ स्तंभ' उपन्यास में जनता ही 'पाँचवाँ स्तंभ' है। इसमें 5 वर्ष में एकसाथ संसद और विधानसभा के चुनाव की बात की गई है। पुलिस को राजनीति से अलग करना आवश्यक है। इन उपायों से ही भ्रष्टाचार, कालाधन और अपराधों पर अंकुश लग सकता है।

रचनावली के खंड नौ में एक उपन्यास 'जिंदगी की सरहद' में पुरुष के समान ही स्त्री की स्वतंत्र सत्ता को स्वीकार किया गया है। इसमें तीन नाटक भी हैं। 'अधूरा नाटक' में आतंकवाद की पीड़ा अंकित है, जो जीवन को अधूरा करती है। 'औरत की जंग' में विवाहपूर्व अनुबंध को लिया गया है। इससे स्त्री-पुरुष की समानता ही अंकित नहीं है, बल्कि इस बात का भी समाधान है कि आज के युग में अलगाव के बाद होनेवाली त्रासदी से भी बचा जा सकता है। 'प्रजापथ' में नागरिक सुरक्षा और नागरिक अधिकारों के लिए संघर्ष की बात की गई है।

रचनावली के खंड दस में तीन कहानी-संकलन हैं। 'खत्म नहीं होती कहानी', 'विस्थापन का दर्द' और 'लड़की हँस रही है।' इनमें रचनाकार आज कहानी की अवधारणा और सृजन को स्वर देता है। वह रंगमंच के नए प्रयोग भी करता है। साथ ही कहानी का रंगमंच भी इसमें निर्मित हो गया है। इस खंड के अंत में उसका लघु प्रबंधकाव्य 'रत्नावली प्रसंग' भी है, जिसमें उस स्त्री के मिथक को रचा गया है, जो हिंदी के महाकवि तुलसी और उनकी पत्नी रत्ना पर आधारित है। इस ग्रंथ की रचना कवि ने अपने जीवन में सबसे पहले की थी और इसके लिए उन्हें राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का वह पत्र भी मिला था, जिसे इस पुस्तक में उसी रूप में रखा गया है।

रचनावली के ग्यारहवें और अंतिम खंड में 'सृजन और साहित्य' में उनके नए आलोचना-परिदृश्य के दर्शन होते हैं, जो सृजनात्मक निबंधों के रूप में है। 'जनभाषा हिंदी' के सभी निबंधों में हिंदीभाषा से जुड़े सारे आधुनिक आयाम मिल जाते हैं। इसके बाद 'लेखक की डायरी' है। इस डायरी में उनके सृजनात्मक

विकास के आंतरिक रचनात्मक दृश्य हैं। इस खंड के अंत में रचनाकार ने एक नया प्रयोग किया है। 'रचनावली से संवाद' में रचनाकार से रचनावली बातचीत करती है, जो एक संवाद के रूप में है। साक्षात्कार की इस प्रणाली का किसी रचनाकार ने पहली बार ही प्रयोग किया है। इसमें कोई अन्य व्यक्ति संवाद नहीं करता, रचनावली ही रचना के संबंध में अपने रचनाकार के सामने खड़ी हो जाती है।

राजेन्द्र मिश्र की अब तक 86 पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। सृजनात्मक पुस्तकों के साथ ही आलोचना, मीडिया और शिक्षा पर भी उनकी अनेक पुस्तकें हैं। उनकी आलोचना सृजनात्मक होती है। इस रचनावली में उनकी विविध विधाओं में लिखी 48 सृजनात्मक कृतियों का समावेश किया गया है। रचनावली से संवाद के अलावा जो केवल रचनावली के लिए ही लिखा गया है, उनकी अन्य सारी पुस्तकें, जिनका इस रचनावली में समावेश है, पुस्तक के रूप में पहले ही प्रकाशन हो चुका है। राजेन्द्र मिश्र ने हिंदी साहित्य के आधुनिककाल के बाद के समय को उत्तर आधुनिककाल कहा है। इस तरह यह रचनाकार समकालीनता से आगे आजकालीनता की संवेदनात्मक विचारयात्रा से जुड़ा है। उसकी एक राष्ट्रीय पहचान है। यह रचनावली इस अर्थ में रचनाकार को जानने का सबसे सशक्त माध्यम है। राजेन्द्र मिश्र 20वीं सदी के उत्तरार्ध से 21वीं में अब तक के समय का रचनाकार हैं, जिनके साहित्य में वर्तमान अतीत से जुड़ते हुए भविष्य की संभावना की तलाश करता है।

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल की रचनावली का प्रकाशन

संपादक

डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका

डॉ॰ मीना अग्रवाल

प्रकाशक : हिंदी साहित्य निकेतन, 16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ॰प्र॰)

सभी ग्यारह खंडों का मूल्य 10,000 रुपए, पृष्ठ संख्या 6000

सभी खंड एक साथ मँगाने पर डाक-व्यय सहित मूल्य 6000 रुपए

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल की रचनावली का संपादन और प्रकाशन हर्ष का विषय है। गीत और कविताओं से आरंभ करके साहित्य की विविध विधाओं में साहित्य-सृजन उनकी लेखन-क्षमता का पुष्ट प्रमाण है। इसी आधर पर उनकी रचनावली को ग्यारह भागों में प्रकाशित किया गया है—1. ग़ज़ल समग्र; 2. काव्य समग्र दो (कविताएँ, गीत, मुक्तक, दोहा); 3. कहानी समग्र; 4. गद्य समग्र (निबंध, साहित्यिक अनुभव, शोध, समीक्षा आदि); 5. जीवनी समग्र; 6. नाटक समग्र एक (बाल-नाटक); 7. नाटक समग्र दो (हास्य-नाटक, सामाजिक नाटक, नुक्कड़ नाटक); 8. व्यंग्य समग्र एक; 9. व्यंग्य समग्र दो; 10. भूमिका समग्र; 11. बालसाहित्य समग्र।

गिरिराजशरण की सबसे प्रिय विधा ग़ज़ल है। गजल के उनके छह संग्रह प्रकाशित हुए हैं, जिनमें 500 से अधिक ग़ज़ले संकलित हैं। ग़ज़ल के विषय में डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल ने स्वयं लिखा है—'ग़ज़ल हृदय की अनुभूति की सूक्तिमय शैली है।' उनकी ग़ज़लों की सबसे बड़ी विशेषता है—आशावाद।

गिरिराजशरण अग्रवाल समग्र के द्वितीय खंड में डॉ॰ अग्रवाल की कविताएँ (अक्षर हूँ मैं), हास्य कविताएँ (मेरी हास्य-व्यंग्य कविताएँ), मुक्तक (बूँद के अंदर समंदर) रूबाइयाँ, दोहे (जिनमें मुहावरा दोहे तथा पर्यायवाची दोहे भी सम्मिलित हैं) संगृहीत किए गए हैं। इसी खंड में अप्रकाशित रूबाइयाँ, दोहे (इनमें पर्यायवाची दोहे तथा मुहावरा दोहे प्रमुख हैं) तथा गीत (जो समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं) तथा हास्य-व्यंग्य शैली की ग़ज़लें भी संगृहीत हैं।

इस रचनावली का तीसरा खंड कहानियों का है। इस खंड में डॉ॰ अग्रवाल द्वारा लिखी गई 82 कहानियाँ संकलित हैं। इनमें से कुछ कहानियाँ उनके पूर्व प्रकाशित कहानी-संग्रहों—जिज्ञासा एवं अन्य कहानियाँ, छोटे-छोटे सुख, आदमी और कुत्ते की नाक में भी प्रकाशित हो चुकी हैं। इनके अतिरिक्त उनकी अप्रकाशित कहानियाँ भी इस खंड में सम्मिलित हैं। डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका के अनुसार 'डॉ॰ अग्रवाल कहानी लिखने की कला में तथा कहानी को जीवन के उच्च सरोकारों से जोड़ने में पूर्णतः पारंगत हैं। इस खंड में उनकी व्यापक जीवन-दृष्टि से परिपूर्ण कहानियाँ संगृहीत हैं।'

चौथा खंड गद्य समग्र का है। इस खंड में गिरिराजशरण अग्रवाल के 'सवाल साहित्य के' (साहित्य में लेखक के अनुभव) के साथ उनके समय-समय पर प्रकाशित लेख संगृहीत हैं। डॉ॰ अग्रवाल सन् 2001-2002 में रोटरी अंतर्राष्ट्रीय के मंडल 3100 के मंडलाध्यक्ष थे। मंडलाध्यक्ष के रूप में दिए गए उनके उद्बोधन और प्रकाशित आलेख भी इसी खंड में रखे गए हैं। इनके अतिरिक्त अनेक महत्त्वपूर्ण आलेखों का संग्रह भी इस खंड में किया गया है, जिसमें डॉ॰ अग्रवाल के चिंतन, मनन, विवेचन तथा उनकी शोधवृत्ति के दर्शन होते हैं। निबंधें की भाषा सहज, सरल, संप्रेषणक्षम है।

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल समग्र के पाँचवें खंड में भारतीय साधकों, संतों, महापुरुषों, राजनेताओं

और स्वतंत्रता-सेनानियों, साहित्यकारों की जीवनियाँ, क्रांतिकारी सुभाष के जीवन पर आधरित जीवनीपरक उपन्यास 'क्रांतिकारी सुभाष', लेखक का आत्मचरित (आत्मकथ्य) संयोजित किया गया है। 'क्रांतिकारी सुभाष' जीवनीपरक उपन्यास है, जो महान देशभक्त और स्वतंत्राता-सेनानी सुभाषचंद्र बोस के जीवन को आधर बनाकर लिखा गया है। आत्मकथ्य में डॉ॰ गिरिराजशरण ने अपने जीवन की उन घटनाओं का उल्लेख किया है, जो सामान्यत: पाठकों के सामने बाहरी व्यक्ति द्वारा नहीं आ सकतीं।

खंड छह और सात में डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल द्वारा लिखित बाल-नाटकों, हास्य-व्यंग्य एकांकियों, समाज तथा राजनीति से जुड़े एकांकियों तथा नुक्कड़ नाटकों को संगृहीत किया गया है। डॉ॰ अग्रवाल ने प्रभात प्रकाशन, दिल्ली के लिए एकांकी नाटकों की एक बड़ी शृंखला का संपादन किया था। इस शृंखला में विषय-क्रम से एकांकियों का संकलन किया गया था। तब भी उन्होंने प्रत्येक खंड के लिए एकांकियों की रचना की थी। उसके बाद तो उनके एकांकियों के अनेक संकलन प्रकाशित हुए। इनमें प्रमुख हैं—नीली आँखें (जो बाद में 'मंचीय सामाजिक नाटक' नाम से प्रकाशित हुआ), ग्यारह नुक्कड़ नाटक, मंचीय व्यंग्य एकांकी, बच्चों के शिक्षाप्रद नाटक, बच्चों के हास्य नाटक, बच्चों के रोचक नाटक। इन सभी पुस्तकों में प्रकाशित एकांकी नाटकों को इन दोनों खंडों में संयोजित किया गया है।

खंड आठ तथा नौ में डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल के 202 व्यंग्य संकलित हैं। हास्य और व्यंग्य के क्षेत्रा में डॉ॰ अग्रवाल का कार्य इतना व्यापक है, ऐसा कम लोगों को ही ज्ञात है। उनके व्यंग्य के पाँच संकलन प्रकाशित हुए हैं—बाबू झोलानाथ, राजनीति में गिरगिटवाद, मेरे इक्यावन व्यंग्य, आदमी और कुत्ते की नाक तथा आओ भ्रष्टाचार करें। हास्य-व्यंग्य-लेखन की एक विशिष्ट शैली को विकसित करने में डॉ॰ अग्रवाल का योगदान विशेष सराहनीय है। उन्होंने स्वयं कहा है—'विसंगतियों और विडंबना-विकारों के रहते हुए व्यंग्य हास्यशून्य नहीं हो सकता और हास्य भी व्यंग्य के बिना अपना अस्तित्व बनाकर नहीं रख सकता।'

खंड दस भूमिका खंड है। डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल ने सन् 1986 से 2004 तक प्रत्येक वर्ष की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाओं का संपादन किया। इनके अतिरिक्त विषय-आधारित कहानियों के ग्यारह खंडों, एकांकियों के दस खंडों, व्यंग्य के दस खंडों का संपादन किया। इन सभी खंडों में विषयानुसार भूमिकाएँ लिखीं। पिछले दशक के श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य एकांकी, पिछले दशक की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य कविताएँ, पिछले दशक की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य कहानियाँ संपादित कीं। इन सभी भूमिकाओं को दसवें खंड में सम्मिलित किया गया है। 'शोध दिशा' त्रैमासिक के जुलाई 2006 और उसके बाद लिखे गए महत्त्वपूर्ण संपादकीय भी दसवें खंड में सम्मिलित हैं।

गिरिराजशरण अग्रवाल की रचनावली के खंड ग्यारह में उनके द्वारा रचित बालसाहित्य को सम्मिलित किया गया है। उन्होंने बच्चों के लिए एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक लिखी 'मानव-विकास की कहानी', जो पहले 'आओ अतीत में चलें' नाम से प्रकाशित हुई थी और जिस पर उत्तर प्रदेश हिंदी संस्था के 'सूर पुरस्कार' सहित अनेक संस्थाओं ने पुरस्कार देकर प्रतिष्ठा की मुहर लगाई थी। इस पुस्तक में डॉ॰ अग्रवाल ने मानव-सभ्यता का इतिहास रोचक कहानी के रूप में प्रस्तुत किया है। इसी खंड में डॉ॰ अग्रवाल द्वारा लिखी हुई 29 बालकहानियाँ भी सम्मिलित हैं। इनमें कई कहानियाँ वैज्ञानिक और बालमनोविज्ञान के दृष्टिकोण से लिखी गई हैं।

यह डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली के ग्यारह खंडों का संक्षिप्त विवरण है। इन सभी खंडों में आप उनके व्यक्तित्व से उनके साहित्य की और साहित्य से उनके व्यक्तित्व की पहचान कर सकते हैं। डॉ॰ अग्रवाल एक तपस्वी साहित्यकार हैं, मौन साधक हैं, ज्ञान के जिज्ञासु और प्रसारक हैं। उनका काम बड़ा और विस्तृत है। यह रचनावली उनके जीवन की सार्थकता का प्रमाण है और इसका भी कि संभल या बिजनौर जैसे एक छोटे नगर से कोई कैसे राष्ट्रीय बनता है और अपनी पहचान को स्थायी बनाता है।

हिंदी साहित्य निकेतन

महत्त्वपूर्ण कोश एवं संदर्भ ग्रंथ

● **निश्तर ख़ानक़ाही एवं डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	
ग़शल और उसका व्याकरण	250.00
● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल एवं डॉ॰ मीना अग्रवाल**	
बृहत् हिंदी साहित्यकार संदर्भ कोश	1500.00
हिंदी तुलनात्मक शोधसंदर्भ	995.00
हिंदी शोध : नई दृष्टि	800.00
हिंदी शोध के नए प्रतिमान	800.00
शोधसंदर्भ–भाग–1	500.00
शोधसंदर्भ–भाग–2	550.00
शोधसंदर्भ–भाग–3	525.00
शोधसंदर्भ–भाग–4	595.00
शोधसंदर्भ–भाग–5	895.00
शोधसंदर्भ–भाग–6	1500.00
हिंदी तुकांत कोश	300.00

रचनावली

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल (संपादक)	
राजेन्द्र मिश्र रचनावली-1 (कविता खंड एक)	1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली-2 (कविता खंड दो)	1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली-3 (कविता खंड तीन)	1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली-4 (कविता खंड चार)	1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली-5 (निबंध खंड)	1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली-6 (उपन्यास खंड एक)	1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली-7 (उपन्यास खंड दो)	1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली-8 (उपन्यास खंड तीन)	1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली-9 (उपन्यास-नाटक खंड)	1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली-10 (कहानी खंड)	1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली-11 (निबंध-डायरी खंड)	1000.00
डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया (संपादक)	
डॉ॰ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (एक)	700.00
डॉ॰ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (दो)	700.00
डॉ॰ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (तीन)	700.00
डॉ॰ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (चार)	700.00
डॉ॰ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (पाँच)	700.00

डॉ॰ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (छह)	700.00
डॉ॰ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (सात)	700.00
डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका एवं डॉ॰ मीना अग्रवाल (संपादक)	
गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (एक)	950.00
गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (दो)	950.00
गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (तीन)	950.00
गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (चार)	950.00
गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (पाँच)	950.00
गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (छह)	950.00
गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (सात)	950.00
गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (आठ)	950.00
गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (नौ)	950.00
गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (दस)	950.00
गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (ग्यारह)	500.00

समीक्षा एवं समालोचना

सवाल साहित्य के ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
हिंदी सिनेमा और दांपत्य संबंध ● **डॉ॰ चंद्रकांत मिसाल**	500.00
सिनेमा और साहित्य का अंत:संबंध ● **डॉ॰ चंद्रकांत मिसाल**	200.00
सिनेमा, साहित्य और संस्कृति ● **नवलकिशोर शर्मा**	150.00
आमिर खान : हिंदी सिनेमा के सेवक ● **धर्मेंद्र उपाध्याय**	300.00
डॉ॰ कुँअर बेचैन के साहित्य में प्रतीक विधान ● **डॉ॰ अंजु भटनागर**	500.00
अमरकांत का कथासाहित्य ● **डॉ॰ योगेश गोकुल पाटिल**	400.00
नारी-समस्याओं का समाजशास्त्रीय अध्ययन ● **डॉ॰ अनुभूति**	450.00
राजस्थानी चित्रशैली में आखेट दृश्य ● **डॉ॰ सुषमा सिंह**	250.00
भोपाल के संग्रहालयों की चित्रकला ● **डॉ॰ सुषमा सिंह**	250.00
मृदुला गर्ग कृत अनित्य : इतिहास और आख्यान का संबंध ● **डॉ॰ ज्योति सिंह**	150.00
मृदुला गर्ग और नारी-अस्मिता का प्रश्न ● **डॉ॰ ज्योति सिंह**	300.00
काका हाथरसी : एक समीक्षा-यात्रा ● **डॉ॰ मिथिलेश माहेश्वरी**	300.00
सांप्रदायिकता और हिंदी कथासाहित्य ● **डॉ॰ मनोजकुमार**	250.00
अपनी कविताओं में अशोक चक्रधर ● **डॉ॰ दीपा के॰**	250.00
आधुनिक हिंदी गीतिकाव्य में संगीत (पुरस्कृत)● **डॉ॰ मीना अग्रवाल**	450.00
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल : व्यक्ति और साहित्य ● **डॉ॰ हरीशकुमार सिंह**	350.00
साठोत्तरी हिंदी-ग़ज़ल : डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल का योगदान ● **डॉ॰ अनिलकुमार शर्मा**	350.00
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल का व्यंग्य-साहित्य : कथ्य एवं भाषा ● **डॉ॰ वी॰ जयलक्ष्मी**	450.00

हिंदी ग़ज़ल और डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल ● **डॉ॰ पूनम अग्रवाल**	595.00
ग़ज़ल संस्कृति और भीतर शोर बहुत है ● **भागीनाथ वाकले**	400.00
हिंदी कथासाहित्य में नारी-विमर्श ● **प्रा॰ अमृता भरत पाटिल**	540.00
लोकरंगमंच के विविध आयाम ● **डॉ॰ पूर्णचंद शर्मा**	200.00
लोकनाट्य सांग : कल और आज ● **डॉ॰ पूर्णचंद शर्मा**	700.00
हरियाणा के लोकगायक ● **डॉ॰ पूर्णचंद शर्मा**	400.00
हरियाणा के लोककवि ● **डॉ॰ पूर्णचंद शर्मा**	300.00
देवबंद की स्वांग-परंपरा ● **डॉ॰ सुरेंद्र शर्मा**	200.00
एक साक्षात्कार : पं॰ अमृतलाल नागर के साथ ● **डॉ॰ शंकर क्षेम**	150.00
ग़ज़ल : सौंदर्य और यथार्थ ● **अनिरुद्ध सिन्हा**	150.00
समय के हस्ताक्षर (हिंदी के आधुनिक कवि) ● **डॉ॰ ज्योति व्यास**	150.00
कालिदास के साहित्य में भौगोलिक तत्त्व ● **डॉ॰ लालबहादुर रावल**	300.00
जनपद बिजनौर के आधुनिककालीन साहित्यकार ● **डॉ॰ अशोककुमार**	350.00
बिजनौर क्षेत्र की ग्रामोद्योग-संबंधी शब्दावली का अध्ययन ● **डॉ॰ ओमदत्त आर्य**	500.00
आस्थावाद एवं अन्य निबंध ● **डॉ॰ मिथिलेश दीक्षित**	300.00
साहित्य और संस्कृति ● **डॉ॰ मिथिलेश दीक्षित**	300.00
हिंदी व्यंग्य-निबंध : स्वतंत्रता के बाद ● **डॉ॰ आशा रावत**	350.00
आज़ादी के बाद का हिंदी गद्य व्यंग्य ● **डॉ॰ प्रेम जनमेजय**	500.00
हिंदी बालकाव्य के विविध पक्ष ● **विनोदचंद्र पांडेय**	300.00
हिंदी बालसाहित्य : डॉ॰ सुरेंद्र विक्रम का योगदान ● **डॉ॰ स्वाति शर्मा**	450.00
भीष्म साहनी का कथासाहित्य : सांप्रदायिक सद्भाव ● **डॉ॰ पी॰आर॰ वासुदेवन**	300.00
हिंदी ब्लॉगिंग : अभिव्यक्ति की नई क्रांति ● **अविनाश वाचस्पति, रवींद्र प्रभात**	495.00
हिंदी ब्लॉगिंग का इतिहास ● **रवींद्र प्रभात**	300.00
सूरदास का सौंदर्य-चित्रण ● **डॉ॰ विजय इंदु**	250.00
हरिऔध का सौंदर्य-चित्रण ● **डॉ॰ विजय इंदु**	500.00
साठोत्तरी हिंदी रेखाचित्र : शैलीवैज्ञानिक अध्ययन ● **डॉ॰ मीनल रश्मि**	250.00
समकालीन हिंदी कविता में सामाजिक चेतना ● **डॉ॰ शीला गहलौत**	500.00
संत रविदास ● **डॉ॰ सुदेश कुमारी**	300.00
हरिवंशराय बच्चन के काव्य में स्वच्छंदतावादी प्रवृत्तियाँ ● **डॉ॰ राजकुमार जमदग्नि**	500.00
साहित्य और संस्कृति का अंत:संबंध ● **डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया**	400.00
मोक्षशास्त्र का माहात्म्य ● **डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया**	400.00
वादविवाद प्रतियोगिता : पक्ष और विपक्ष ● **डॉ॰ गिरिराजशरण, डॉ॰ मीना अग्रवाल**	200.00
फिजी में प्रवासी भारतीय ● **डॉ॰ शुचि गुप्ता**	300.00
मुक्तिबोध का रचना-संसार ● **डॉ॰ शिवशंकर लधवे**	200.00
नाटककार पंडित राधेश्याम कथावाचक ● **डॉ॰ अशोक उपाध्याय**	200.00
यशपाल के उपन्यासों में सामाजिक चेतना ● **डॉ॰ अनीता रानी**	400.00

सृजन और साहित्य ● **डॉ॰ राजेंद्र मिश्र**	400.00
समालोचना के फलक ● **डॉ॰ बागेश्री चक्रधर**	300.00
शिक्षा की समस्याएँ और हिंदी कथासाहित्य ● **डॉ॰ शशिप्रभा**	450.00
ललित निबंध : परंपरा और चिंतन ● **डॉ॰ शिवाजी एन॰ देवरे**	300.00
ललित निबंधकार डॉ॰ श्यामसुंदर दुबे ● **डॉ॰ शिवाजी एन॰ देवरे**	300.00
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल की ग़ज़ल दृष्टि ● **डॉ॰ शिवाजी एन॰ देवरे**	300.00
रुहेलखंड के परंपरागत लोकगीत ● **श्रीमती नीरजा द्विवेदी**	200.00
हिंदी कहानी के नए प्रतिमान ● **डॉ॰ अभयकुमार खैरनार**	500.00
हिंदी नाटक के नए प्रतिमान ● **डॉ॰ मनोजकुमार**	400.00
हिंदी उपन्यास के नए प्रतिमान ● **प्रा॰ जसपालसिंह वळवी**	550.00
जनसंख्या अवधारणा एवं लैंगिक संरचना ● **डॉ॰ विश्वनाथ पांडेय**	500.00
भारत में सांप्रदायिक सद्‍भाव ● **डॉ॰ गीता यादव**	500.00
एक इंद्रधनुषी व्यक्तित्व ● **सं॰ डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	600.00
साठोत्तर व्यंग्य और श्रीलाल शुक्ल ● **डॉ॰ रमेश तिवारी**	400.00
स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता में व्यंग्य ● **डॉ॰ शेरजंग गर्ग**	700.00
कुछ व्यंग्य की कुछ व्यंग्यकारों की ● **डॉ॰ हरीश नवल**	300.00
राष्ट्रीयता, संस्कृति और साहित्य ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	700.00
साहित्यिक निबंध : मूल्य और मूल्यांकन ● **डॉ॰ निशा तिवारी**	400.00
जनमानस के पक्षधर हिंदी नुक्कड़ नाटक ● **डॉ॰ पी॰वी॰ कोटमे**	400.00
प्रेम जनमेजय के व्यंग्य साहित्य में सामाजिक एवं राजनीतिक चेतना ● **डॉ॰ साधना झा**	700.00
समकालीन साहित्य की दिशाएँ ● **डॉ॰ रमेश तिवारी**	400.00
डॉ॰ महेंद्रसागर प्रचण्डिय: व्यक्ति और स्रष्टा ● **डॉ॰ कनुप्रिया प्रचण्डिया**	450.00
साहित्य की परख ● **डॉ॰ कनुप्रिया प्रचण्डिया**	450.00

हास्य-व्यंग्य

मेरी हास्य-व्यंग्य कविताएँ ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	150.00
मेरे इक्यावन व्यंग्य ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	300.00
चुनी हुई हास्य कविताएँ ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	250.00
बाबू झोलानाथ ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	60.00
राजनीति में गिरगिटवाद ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	100.00
आदमी और कुत्ते की नाक ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	150.00
आओ भ्रष्टाचार करें ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
दूध का धुला लोकतंत्र ● **गोपाल चतुर्वेदी**	150.00
आधुनिक बेताल कथाएँ ● **गिरीश पंकज**	250.00
भज्जी का जूता ● **महेशचंद्र द्विवेदी**	150.00

क्लियर फंडा • **महेशचंद्र द्विवेदी**	120.00
प्रिय-अप्रिय प्रशासकीय प्रसंग • **महेशचंद्र द्विवेदी**	170.00
वीरप्पन की मूँछें • **महेशचंद्र द्विवेदी**	200.00
वसीयतनामा • **पं॰ सूर्यनारायण व्यास, सं॰ राजशेखर व्यास**	150.00
नो टेंशन • **डॉ॰ सुरेश अवस्थी**	200.00
काका की विशिष्ट रचनाएँ • **काका हाथरसी**	300.00
काका के व्यंग्य-बाण • **काका हाथरसी**	200.00
कक्के के छक्के • **काका हाथरसी**	200.00
लूटनीति मंथन करी • **काका हाथरसी**	200.00
खिलखिलाहट • **काका हाथरसी**	200.00
पैसे कहाँ से दें • **डॉ॰ आशा रावत**	200.00
चाहिए एक और भगतसिंह • **डॉ॰ आशा रावत**	100.00
नमस्कार प्रजातंत्राा • **महेश राजा**	150.00
ए जी सुनिए • **अशोक चक्रधर**	100.00
इसलिए बौड़म जी इसलिए • **अशोक चक्रधर**	100.00
नमस्ते जी • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	150.00
अब हँसने की बारी है • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	200.00
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल	
पिछले दशक की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य कहानियाँ	300.00
पिछले दशक की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य कविताएँ	300.00
पिछले दशक के श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य एकांकी	300.00
शिवशर्मा के चुने हुए व्यंग्य • **डॉ॰ शिव शर्मा**	200.00
बजरंगा (व्यंग्य-उपन्यास) • **डॉ॰ शिव शर्मा**	300.00
अपने-अपने भस्मासुर • **डॉ॰ शिव शर्मा**	250.00
प्रतिनिधि व्यंग्य • **दामोदरदत्त दीक्षित**	200.00
हँसते-हँसते कट जाएँ रस्ते • **मधुप पांडेय**	200.00
धमकीबाशी के युग में • **निश्तर ख़ानक़ाही**	200.00
ला ख़र्चा निकाल • **गजेंद्र तिवारी**	200.00
जलनेवाले जला करें • **गजेंद्र तिवारी**	200.00
पेट में दाढ़ियाँ हैं • **सूर्यकुमार पांडेय**	100.00
ये है इंडिया • **डॉ॰ हरीशकुमार सिंह**	220.00
आँखों देखा हाल • **डॉ॰ हरीशकुमार सिंह**	250.00
सच का सामना • **हरीशकुमार सिंह**	150.00
लिफ़्ट करा दे • **डॉ॰ हरीशकुमार सिंह**	200.00
देवेंद्र के कार्टून • **देवेंद्र शर्मा**	200.00
कार्टून कौतुक • **देवेंद्र शर्मा**	120.00

 ISSN 0975-735X

लिफ़ाफ़े का अर्थशास्त्र • **डॉ॰ पिलकेंद्र अरोरा** 200.00
अजगर करे न चाकरी • **बाबूसिंह चौहान** 200.00
जिंदगी तेरे नाम डार्लिंग • **डॉ॰ लालित्य ललित** 200.00
विलायतीराम पांडेय • **डॉ॰ लालित्य ललित** 200.00
नो कमेंट • **सुमित प्रताप सिंह** 200.00
सावधान पुलिस मंच पर है • **सुमित प्रताप सिंह** 200.00
चुनिंदा व्यंग्य : आलोक पुराणिक • **सं॰ डॉ॰ रमेश तिवारी** 300.00
चुनिंदा व्यंग्य : आशा रावत • **सं॰ डॉ॰ रमेश तिवारी** 300.00
चुनिंदा व्यंग्य : गिरिराजशरण अग्रवाल • **सं॰ डॉ॰ रमेश तिवारी** 300.00
चुनिंदा व्यंग्य : गोपाल चतुर्वेदी • **सं॰ डॉ॰ रमेश तिवारी** 300.00
चुनिंदा व्यंग्य : प्रेम जनमेजय • **सं॰ डॉ॰ रमेश तिवारी** 300.00
चुनिंदा व्यंग्य : महेशचंद्र द्विवेदी • **सं॰ डॉ॰ रमेश तिवारी** 300.00
चुनिंदा व्यंग्य : श्रवणकुमार उर्मलिया • **सं॰ डॉ॰ रमेश तिवारी** 300.00
चुनिंदा व्यंग्य : सुभाष चंदर • **सं॰ डॉ॰ रमेश तिवारी** 300.00
चुनिंदा व्यंग्य : सुशील सिद्धार्थ • **सं॰ डॉ॰ रमेश तिवारी** 300.00
चुनिंदा व्यंग्य : हरीशकुमार सिंह • **सं॰ डॉ॰ रमेश तिवारी** 300.00
चुनिंदा व्यंग्य : वागीश सारस्वत • **सं॰ डॉ॰ रमेश तिवारी** 300.00

कहानी

एक सपना मेरा भी था • **डॉ॰ आशा रावत** 200.00
एक थी माया • **विजयकुमार** 200.00
अमृत वृद्धाश्रम • **विजयकुमार** 350.00
सरहदों के पार • **सुरेशचंद्र शुक्ल** 200.00
छोटे-छोटे सुख • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल** 200.00
कथा जारी है • **बाबूसिंह चौहान** 250.00
इक्कीस कहानियाँ • **सत्यराज** 200.00
अंदर धूप बाहर धूप (नारी-मन की कहानियाँ) • **डॉ॰ मीना अग्रवाल** 250.00
कुत्तेवाले पापा • **मीना अग्रवाल** 150.00
क्या अच्छा क्या बुरा • **मीना अग्रवाल** 200.00
उत्तराखंड की लोकगाथाएँ • **डॉ॰ दिनेशचंद्र बलूनी** 200.00
एक बौना मानव •**महेशचंद्र द्विवेदी** 200.00
लव जिहाद • **महेशचंद्र द्विवेदी** 200.00
इमराना हाशिर हो • **महेशचंद्र द्विवेदी** 150.00
हैं आस्माँ कई और भी • **नीरजा द्विवेदी** 200.00
कौन कितना निकट • **रेणु 'राजवंशी' गुप्ता** 120.00
लघु कथाएँ • **डॉ॰ हरिशरण वर्मा** 150.00
कमरा नंबर 103 • **सुधा ओम ढींगरा** 150.00

कहानियाँ अमेरिका से ● **सं॰ इला प्रसाद**	150.00
अंतराल ● **संगीता**	200.00
प्रेमचंद की कालजयी कहानियाँ ● **सं॰ डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका**	150.00
लघुकथाएँ जीवनमूल्यों की ● **सं॰ सुकेश साहनी, रामेश्वर कांबोज 'हिमांशु'**	150.00
पंद्रह सिंधी कहानियाँ ● **सं॰ देवी नागरानी**	200.00
दर्द की एक गाथा ● **सं॰ देवी नागरानी**	300.00
भाँति-भाँति की मानुसी ● **अंशु त्रिपाठी**	250.00
लड़की हँस रही है ● **डॉ॰ राजेंद्र मिश्र**	300.00
आत्मकथा का कोलाज ● **नीलम चतुर्वेदी**	200.00
आ से आजादी ● **नीलम चतुर्वेदी**	300.00
ऐसा प्यार कहाँ ● **नीतू मुकुल**	250.00
रेल कहानियाँ ● **कृपासागर साहू**	300.00
मेरी समग्र कहानियाँ ● **प्रहलाद तिवारी**	800.00

उपन्यास

इतिहास की आवाज़ ● **राजेन्द्र मिश्र**	450.00
अनोखा उपहार ● **श्रीमती सुषमा अग्रवाल**	200.00
आसरा ● **श्रीमती सुषमा अग्रवाल**	100.00
तीन बीघा ज़मीन ● **श्रीमती सुषमा अग्रवाल**	200.00
मन के जीते जीत ● **श्रीमती सुषमा अग्रवाल**	200.00
कुल का चिराग ● **श्रीमती सुषमा अग्रवाल**	200.00
नया सवेरा ● **श्रीमती सुषमा अग्रवाल**	200.00
जागृति ● **श्रीमती सुषमा अग्रवाल**	450.00
कालचक्र से परे ● **श्रीमती नीरजा द्विवेदी**	200.00
शांतिधाम ● **श्रीमती नीरजा द्विवेदी**	250.00
भीगे पंख ● **महेशचंद्र द्विवेदी**	200.00
मानिला की योगिनी ● **महेशचंद्र द्विवेदी**	200.00
और लहरें उफनती रहीं ● **डॉ॰ तारादत्त निर्विरोध**	200.00
बजरंगा (व्यंग्य-उपन्यास) ● **डॉ॰ शिव शर्मा**	300.00
अराज-राज ● **डॉ॰ मोहन गुप्त**	200.00
सुराज-राज ● **डॉ॰ मोहन गुप्त**	350.00
एक गुमनाम फौजी की डायरी ● **डॉ॰ आशा रावत**	250.00
एक चेहरे की कहानी ● **डॉ॰ आशा रावत**	250.00
गुरुदक्षिणा (व्यंग्य-उपन्यास) ● **डॉ॰ आशा रावत**	200.00
एक फरिश्ता ऐसा देखा ● **प्रेमसागर तिवारी**	250.00
रोशनी का पहरा ● **डॉ॰ आरती लोकेश**	300.00
मेरे समग्र उपन्यास खंड एक ● **प्रहलाद तिवारी**	850.00

मेरे समग्र उपन्यास खंड दो ● **प्रहलाद तिवारी**	850.00
मेरे समग्र उपन्यास खंड तीन ● **प्रहलाद तिवारी**	850.00
मेरे समग्र उपन्यास खंड चार ● **प्रहलाद तिवारी**	850.00
मेरे समग्र उपन्यास खंड पाँच ● **प्रहलाद तिवारी**	850.00
मेरे समग्र उपन्यास खंड छह ● **प्रहलाद तिवारी**	850.00
मेरे समग्र उपन्यास खंड सात ● **प्रहलाद तिवारी**	850.00

एकांकी-नाटक

● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**

मंचीय हास्य-व्यंग्य एकांकी	200.00
मंचीय सामाजिक एकांकी	200.00
बच्चों के हास्य नाटक	200.00
बच्चों के रोचक नाटक	200.00
बच्चों के शिक्षाप्रद नाटक	200.00
बच्चों के अनुपम नाटक	200.00
बच्चों के उत्तम नाटक	200.00
भारतीय गौरव के बाल-नाटक	200.00
प्रेमचंद की कहानियों पर आधारित नाटक	200.00
ग्यारह नुक्कड़ नाटक	200.00
बच्चों के अनोखे नाटक ● **प्रकाश मनु**	200.00
हास्य-व्यंग्य के बाल-नाटक ● **प्रकाश मनु**	200.00
संसार : एक नाट्यशाला ● **बाबूसिंह चौहान**	250.00
ग्यारह एकांकी ● **डॉ॰ हरिशरण वर्मा**	200.00
संस्कार एवं अन्य नाटक ● **डॉ॰ हरिशरण वर्मा**	300.00
दमन ● **रामाश्रय दीक्षित**	100.00
स्वप्न पुरुष ● **डॉ॰ उर्मिला अग्रवाल**	250.00
अफलातून की अकादमी ● **डॉ॰ शिव शर्मा**	150.00
औरत की जंग ● **राजेन्द्र मिश्र**	200.00
प्रजापथ ● **राजेन्द्र मिश्र**	200.00

ललित निबंध एवं रेखाचित्र

कैसे-कैसे लोग मिले ● **निश्तर ख़ानक़ाही**	125.00
यादों का मधुबन ● **कृष्ण राघव**	150.00
समय के चाक पर ● **डॉ॰ लालबहादुर रावल**	125.00
समय एक नाटक ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	160.00
दर्पण झूठ बोलता है ● **बाबूसिंह चौहान**	60.00
मकड़जाल में आदमी ● **बाबूसिंह चौहान**	80.00

उफनती नदियों के सामने • **बाबूसिंह चौहान** 100.00
अनुभव के पंख • **चंद्रवीरसिंह गहलौत** 250.00
मेरे साक्षात्कार • **डॉ॰ बालशौरि रेड्डी** 250.00
आधी हकीकत आधा फसाना • **डॉ॰ बलजीत सिंह** 200.00
फूलों की महक • **डॉ॰ ओमदत्त आर्य** 200.00
संवाद साहित्यकारों से • **डॉ॰ गंगाप्रसाद गुप्त बरसैंया** 200.00

गीत-ग़ज़ल, कविता

निश्तर ख़ानक़ाही समग्र (प्रकाशनाधीन)/ **निश्तर ख़ानक़ाही** 500.000
ग़ज़ल मैंने छेड़ी (ग़ज़ल-संग्रह)/ **निश्तर ख़ानक़ाही** 80.00
ग़ज़लों के शहर में (ग़ज़ल-संग्रह)/ **निश्तर ख़ानक़ाही** 200.00
मेरे लहू की आग (ग़ज़ल-संग्रह)/ **निश्तर ख़ानक़ाही** 150.00
कोई आवाज़ देता है • **डॉ॰ कुँअर बेचैन** 250.00
दिन दिवंगत हुए • **डॉ॰ कुँअर बेचैन** 250.00
कुँअर बेचैन के नवगीत • **डॉ॰ कुँअर बेचैन** 200.00
कुँअर बेचैन के प्रेमगीत • **डॉ॰ कुँअर बेचैन** 250.00
पर्स पर तितली (हाइकु) • **डॉ॰ कुँअर बेचैन** 200.00
मातृभूमि के लिए • **रमेश पोखरियाल 'निशंक'** 200.00
संघर्ष जारी है • **रमेश पोखरियाल 'निशंक'** 170.00
जीवन-पथ में • **रमेश पोखरियाल 'निशंक'** 150.00
देश हम जलने न देंगे • **रमेश पोखरियाल 'निशंक'** 150.00
तुम भी मेरे साथ चलो • **रमेश पोखरियाल 'निशंक'** 150.00
झरनों का तराना है • **लक्ष्मी खन्ना सुमन** 200.00
अहसासों के ताने-बाने • **लक्ष्मी खन्ना सुमन** 200.00
समय के भूगोल में • **राजेंद्र मिश्र** 200.00
असाबिया • **राजेंद्र मिश्र** 200.00
आठवाँ राग • **राजेंद्र मिश्र** 200.00
हवाएँ ख़ामोश हैं • **राजेंद्र मिश्र** 200.00
सदियाँ गुज़र रही हैं • **राजेंद्र मिश्र** 300.00
शब्द ही नहीं हैं • **राजेंद्र मिश्र** 300.00
सप्त स्वर • **राजेंद्र मिश्र** 400.00
आपातकालीन कविताएँ • **राजेंद्र मिश्र** 300.00
शमा हर रंग में जलती है • **रामेश्वरप्रसाद** 150.00
अक्षर हूँ मैं (कविताएँ) • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल** 250.00
सन्नाटे में गूँज (ग़ज़ल-संग्रह) • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल** 200.00
भीतर शोर बहुत है (ग़ज़ल-संग्रह) • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल** 200.00

मौसम बदल गया कितना (ग़ज़ल-संग्रह) • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
रोशनी बनकर जिओ (ग़ज़ल-संग्रह) • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
शिकायत न करो तुम (ग़ज़ल-संग्रह) • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
आदमी है कहाँ (ग़ज़ल-संग्रह) • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
ख़ुशबू सा बिखर जाऊँगा (ग़ज़ल-संग्रह) • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	250.00
प्रतिनिधि ग़ज़लें • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
बूँद के अंदर समंदर (मुक्तक) • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
मान भी जा छुटकी • **गीतिका गोयल**	150.00
आदमी के हक़ में (ग़ज़ल-संग्रह) • **रामगोपाल भारतीय**	100.00
यहाँ तक वहाँ से (कविताएँ) • **रमेश कौशिक**	200.00
हास्य नहीं व्यंग्य (कविताएँ) • **रमेश कौशिक**	150.00
गांधारी का सच (खंडकाव्य) • **आर्यभूषण गर्ग**	200.00
राधेय (खंडकाव्य) • **डॉ॰ आकुल**	120.00
असितचंद्र : अवदात चंद्रिका (काव्य-नाटक) • **डॉ॰ आकुल**	120.00
शिंदगी गाती तो है/ (ग़ज़ल-संग्रह) • **डॉ॰ आकुल**	120.00
आसमान मेरा भी है (ग़ज़ल-संग्रह) • **किशनस्वरूप**	100.00
बूँद-बूँद सागर मैं (ग़ज़ल-संग्रह) • **किशनस्वरूप**	100.00
आँचल-आँचल ख़ुशबू (ग़ज़ल-संग्रह) • **कर्नल तिलकराज**	200.00
ज़ख़्म खिलने को हैं (ग़ज़ल-संग्रह) • **कर्नल तिलकराज**	200.00
अग्निसुता • **राजेंद्र शर्मा**	150.00
सीतायनी • **डॉ॰ शंकर क्षेम**	150.00
गंगापुत्र भीष्म : शर-शैया से • **डॉ॰ शंकर क्षेम**	150.00
हिरना लौट चलें (गीत-संग्रह) • **शचींद्र भटनागर**	250.00
तिराहे पर (ग़ज़ल-संग्रह) • **शचींद्र भटनागर**	250.00
ढाई आखर प्रेम के (गीत-संग्रह) • **शचींद्र भटनागर**	200.00
अखंडित अस्मिता (मुक्तक) • **शचींद्र भटनागर**	200.00
कुछ भी सहज नहीं (नवगीत-संग्रह) • **शचींद्र भटनागर**	200.00
त्रिवर्णी (नवगीत-संग्रह) • **शचींद्र भटनागर**	200.00
युवाओं के गीत • **शचींद्र भटनागर**	400.00
गुलमुहर की छाँव में (ग़ज़ल-संग्रह) • **मनोज अबोध**	100.00
मेरे भीतर महक रहा है (ग़ज़ल-संग्रह) • **मनोज अबोध**	150.00
तारा प्रकाश समग्र • **तारा प्रकाश**	600.00
उजियारा आशाओं का • **तारा प्रकाश**	150.00
बुलंदी इरादों की • **तारा प्रकाश**	150.00
चलने से मंज़िल मिलती है • **तारा प्रकाश**	200.00
इंद्रधनुष • **तारा प्रकाश**	200.00

संवेदनाओं के रंग ● **तारा प्रकाश**		200.00
सुरों के ख़त ● **अश्विनीकुमार 'विष्णु'**		100.00
सुनहरे मंत्र का जादू ● **अश्विनीकुमार 'विष्णु'**		100.00
सुनते हुए ऋतुगीत ● **अश्विनीकुमार 'विष्णु'**		150.00
सुबह की अंगूठी ● **अश्विनीकुमार 'विष्णु'**		150.00
सफ़र में साथ-साथ (मुक्तक-संग्रह) ● **डॉ॰ मीना अग्रवाल**		200.00
जो सच कहे (हाइकु-संग्रह) ● **डॉ॰ मीना अग्रवाल**		150.00
यादें बोलती हैं (कविताएँ) ● **डॉ॰ मीना अग्रवाल**		200.00
धूप अपनेपन की (मुक्तक-संग्रह) ● **डॉ॰ मीना अग्रवाल**		200.00
एक मुट्ठी धूप ● **नीरजा सिंह**		100.00
कटे हाथों के हस्ताक्षर ● **डॉ॰ कमल मुसद्दी**		150.00
फ़ासले मिट जाएँगे (ग़ज़ल-संग्रह) ● **डॉ॰ बलजीत सिंह**		150.00
शब्द-शब्द संदेश (दोहे) ● **डॉ॰ बलजीत सिंह**		150.00
जीवन है मुस्कान (दोहे) ● **डॉ॰ बलजीत सिंह**		150.00
भीतर का संगीत (दोहे) ● **डॉ॰ बलजीत सिंह**		200.00
सुख के बिरवे रोप (दोहे) ● **डॉ॰ बलजीत सिंह**		200.00
इंद्रधनुष के रंग (दोहे) ● **डॉ॰ बलजीत सिंह**		200.00
प्यार के गुलाल से (हाइकु) ● **डॉ॰ बलजीत सिंह**		200.00
हारना हिम्मत नहीं (मुक्तक) ● **डॉ॰ बलजीत सिंह**		200.00
मानव तू जग में सुंदरतम ● **डॉ॰ बलजीत सिंह**		200.00
रिश्ते नए अब जोड़िए (ग़ज़लें) ● **डॉ॰ बलजीत सिंह**		200.00
बहती नदी हो जाइए (ग़ज़लें) ● **डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'**		150.00
अँधियारों से लड़ना सीखें (ग़ज़लें) ● **डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'**		200.00
जीवन-अमृत : पर्यावरण चेतना (दोहा-संग्रह) ● **डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'**		200.00
अक्षर-अक्षर हो अमर (दोहा-संग्रह) ● **डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'**		200.00
वैदुष्यमणि विद्योत्तमा (खंडकाव्य) ● **डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'**		200.00
अनजाने आकाश में ● **महेशचंद्र द्विवेदी**		170.00
बातें कुछ अनकही ● **सत्येंद्र गुप्ता**		200.00
मैंने देखा है ● **सत्येंद्र गुप्ता**		200.00
हौसला तो है ● **सत्येंद्र गुप्ता**		200.00
जिंदगी रुकती नहीं ● **सत्येंद्र गुप्ता**		200.00
जज्बात की धूप ● **धूप धौलपुरी**		250.00
आड़ी-तिरछी यादों-सा कुछ ● **नवलकिशोर शर्मा**		180.00
जब चाँद डूब रहा था ● **नवलकिशोर शर्मा**		200.00
एड्स शतक ● **पूरणसिंह सैनी**		150.00
श्रीगोगाचरित (महाकाव्य) ● **पूरणसिंह सैनी**		300.00

श्रीकृष्णचरित (महाकाव्य) ● **पूरणसिंह सैनी**		800.00
खोजें जीवन सत्य (दोहे) ● **डॉ॰ ओमदत्त आर्य**		150.00
अपनी एक लकीर (दोहे) ● **डॉ॰ ओमदत्त आर्य**		200.00
राष्ट्र-शक्ति ● **सलेकचंद संगल**		150.00
माँ तुझे प्रणाम ● **सलेकचंद संगल**		150.00
लहरों के विरुद्ध ● **डॉ॰ रामप्रकाश**		200.00
हर वृक्ष महाबोधि नहीं होता ● **महेंद्र कुमार**		200.00
पीड़ा का राजमहल ● **डॉ॰ उर्मिला अग्रवाल**		200.00
मैं एक समुद्र ● **डॉ॰ तारादत्त 'निर्विरोध**		200.00
उड़ान जारी है ● **विनोद भृंग**		200.00
कहता कुछ मौन (हाइकु-संग्रह) ● **हरिराम पथिक**		200.00
जो जिया वो रचा (मुक्तक-संग्रह) ● **हरिराम पथिक**		200.00
धनुषभंजक राम ● **चंद्रवीरसिंह गहलौत 'बेदाग'**		200.00
एक कुल्हड़ चाय ● **स्वर्ण ज्योति**		200.00
सूर्यनगर की चाँदनी ● **रामेश्वर वैष्णव**		150.00
रात ● **दामोदर खड़से**		200.00
स्मृतियाँ ● **सुषमा अग्रवाल**		200.00
कविताएँ फेसबुक से ● **लालित्य ललित**		200.00
दुनिया इतनी भी बुरी नहीं ● **लालित्य ललित**		200.00
बचे रहेंगे केवल शब्द ● **लालित्य ललित**		200.00
मेरे लिए तुम्हारा होना ● **लालित्य ललित**		250.00
सब पता है ● **लालित्य ललित**		250.00
आँगन घर में टहलेगा ● **लालित्य ललित**		250.00
घर उदास है ● **लालित्य ललित**		300.00
अपने में से तुम्हें देखना ● **लालित्य ललित**		200.00
आदत सी तुम्हारी ● **लालित्य ललित**		250.00
चुप्पी में से उद्घोष ● **लालित्य ललित**		300.00
चुप हैं शब्द और उनके अर्थ ● **लालित्य ललित**		200.00
कभी सोचता हूँ कि ● **लालित्य ललित**		250.00
इतना होने के बाद भी● **लालित्य ललित**		250.00
विरमाल गीत समग्र ● **सं॰ डॉ॰ पंकज विरमाल**		500.00
विस्थापित मन ● **आस्था नवल**		200.00
रंगारंग कविताएँ ● **बलवंत रंगीला**		300.00
सिद्धांत सतसई ● **डॉ॰ महेंद्रसागर प्रचण्डिया/संपादन डॉ॰ कनुप्रिया प्रचण्डिया**		300.00
क़तरा-क़तरा सागर ● **प्रेमसागर कालिया**		300.00
श्रीमद्भगवद्गीता (पंजाबी कविता अनुवाद) ● **अनुवादक प्रेमसागर कालिया**		200.00

समकालीन महिला ग़ज़लकार ● **हरेराम 'समीप'** 300.00
कविताओं के मन से ● **विजयकुमार** 495.00
सोच की चिंगारियाँ ● **चमनलाल** 200.00
मेरी समग्र कविताएँ ● **प्रहलाद तिवारी** 950.00
कवि नहीं हूँ, फिर भी ● **सुरेंद्रकुमार यादव** 400.00
माट्टी की आवाज ● **रामकुमार आत्रेय** 250.00
मेघ संचार ● **पवित्र मोहन दाश** 250.00
मेरी समग्र कविताएँ ● **प्रहलाद तिवारी** 800.00

आत्मकथा-संस्मरण, साक्षात्कार, पत्र

मेरा जीवन : ए-वन ● **काका हाथरसी** 300.00
आमिर खान : हिंदी सिनेमा के सेवक ● **धर्मेन्द्र उपाध्याय** 250.00
आत्मसरोवर ● **ओम्प्रकाश अग्रवाल** 125.00
निष्ठा के शिखर-बिंदु ● **नीरजा द्विवेदी** 200.00
स्विट्जरलैंड के वे 21 दिन ● **नीरजा द्विवेदी** 200.00
कुछ अपनी कुछ जगबीती ● **नीरजा द्विवेदी** 250.00
सफ़र साठ साल का ● **डॉ॰ अजय जनमेजय (सं)** 400.00
यादों की गुल्लक ● **गीतिका गोयल, डॉ॰ अनुभूति (संपादक)** 300.00
आधी हक़ीक़त आधा फ़साना ● **डॉ॰ बलजीतसिंह** 150.00
मेरे साक्षात्कार ● **डॉ॰ बालशौरि रेड्डी** 250.00
संवाद : साहित्यकारों से ● **डॉ॰ गंगाप्रसाद गुप्त 'बरसैंया'** 200.00
उत्तरोत्तर ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल (संपादक)** 250.00
श्रद्धांजलि ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल (संपादक)** 250.00

बाल-साहित्य

गधा बत्तीसी ● **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'** 200.00
ईनी-मीनी की मजेदार दुनिया ● **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'** 200.00
चिड़ियों की दुनिया रंगीन ● **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'** 200.00
कविताओं में पंचतंत्राा ● **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'** 250.00
छुटके-मुटके जंगल में ● **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'** 200.00
नन्हे-मुन्ने गीत सुहाने ● **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'** 200.00
मैं भी स्कूल जाऊँगी ● **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'** 200.00
नन्ही-मुन्नी बाल ग़जलें ● **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'** 200.00
Tiny -Tots in Forest ● **Laxmi Khanna 'Suman'** 200.00
Adventures of the Laughing Donkey ● **Laxmi Khanna 'Suman'** 200.00
चुनमुन की कहानियाँ (पुरस्कृत) ● **गीतिका गोयल** 200.00
बातूनी कहानियाँ ● **गीतिका गोयल** 200.00

धरती पर चाँद (पुरस्कृत) ● **शंभूनाथ तिवारी**	200.00
हम बगिया के फूल (बालगीत) ● **डॉ॰ बलजीतसिंह**	200.00
आओ गीत सुनाओ गीत (बालगीत) ● **डॉ॰ बलजीतसिंह**	200.00
छुट्टी के दिन बड़े सुहाने (बालगीत) ● **डॉ॰ बलजीतसिंह**	200.00
दिन बचपन के (बालगीत) ● **डॉ॰ बलजीतसिंह**	200.00
जादूगर बादल (बालगीत) ● **विनोद भृंग**	200.00
आटे-बाटे दही चटा के (शिशुगीत) ● **बालकृष्ण गर्ग**	200.00
बालकृष्ण गर्ग के बालगीत ● **बालकृष्ण गर्ग**	500.00
किशोर मन की कहानियाँ ● **डॉ॰ सरला अग्रवाल**	200.00
चलो आकाश को छू लें ● **डॉ॰ तारादत्त निर्विरोध**	200.00
मानव-विकास की कहानी ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
पार्टी गेम्स ● **चाँदनी कक्कड़**	125.00
कागज की नाव ● **डॉ॰ सरोजनी कुलश्रेष्ठ**	200.00
शिक्षाप्रद बालकहानियाँ ● **डॉ॰ अशोक कुमार**	200.00
भारतीय लोकजीवन की कहानियाँ ● **डॉ॰ तारा प्रकाश**	200.00

विविध

उत्तराखंड में आध्यात्मिक पर्यटन ● **डॉ॰ सरिता शाह**	200.00
● **निश्तर ख़ानक़ाही, डॉ॰ गिरिराजशरण, डॉ॰ मीना अग्रवाल**	
पर्यावरण : दशा और दिशा (पुरस्कृत)	300.00
नारी : कल और आज	300.00
● **निश्तर ख़ानक़ाही, डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	
विश्व आतंकवाद : क्यों और कैसे	300.00
हिंसा : कैसी-कैसी	300.00
दंगे : क्यों और कैसे	300.00
● **रमेशचंद्र दीक्षित, निश्तर ख़ानक़ाही, डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	
मानवाधिकार : दशा और दिशा (पुरस्कृत)	300.00
अपराध-अपराधी : अन्वेषण एवं अभियोजन ● **डॉ॰ गिरिराज शाह**	200.00
गुरु नानकदेव ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
अमृतवाणी ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	300.00
आप भी तनावमुक्त हो सकते हैं ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	250.00
वेद-वेदांत दर्शन ● **डॉ॰ मूलचन्द दालभ**	300.00
प्रकृति : एक ज्ञेय तत्त्व ● **डॉ॰ मूलचन्द दालभ**	300.00
कन्हैया गीता ● **डॉ॰ मूलचन्द दालभ**	900.00
टास्कफोर्स : हैल्थकेयर प्रोजेक्ट्स ● **डॉ॰ गोविंद शर्मा एवं रवि लंगर**	450.00
सिद्धाश्रम का संन्यासी ● **मनोज भारद्वाज**	300.00

समुद्री दैत्य सुनामी ●	**डॉ॰ लालबहादुर रावल**	300.00
डगर पनघट की ●	**सुधीर गुप्ता**	200.00
था सुंदरतम की ●	**महेंद्र शर्मा**	200.00
Ecosystem in The Central Himalyas ●	**Dr.Vikram Singh IPS**	200.00

अपना आदेश निम्नलिखित पते पर भेजें

हिंदी साहित्य निकेतन

16 **साहित्य विहार, बिजनौर (उ॰प्र॰)**

फोन : 01342-263232, 09557746346, 07838090732

गुड़गाँव कार्यालय

बी-203, पार्क व्यू सिटी 2, सोहना रोड, गुड़गाँव 122018

0124-4076565

केंद्रीय हिंदी संस्थान

मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार

संपर्क : हिंदी संस्थान मार्ग, आगरा 282005, फोन : 0562-2530684,
वेबसाइट : www.hindisansthan.org, www.khsindia.org

संक्षिप्त परिचय

केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार के शिक्षा विभाग द्वारा 1961 ई० में स्थापित एक स्वायत्त शैक्षिक संस्था है। इसका संचालन स्वायत्त संगठन केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल द्वारा किया जाता है। संस्थान का मुख्यालय आगरा में स्थित है और इसके आठ क्षेत्रीय केंद्र–दिल्ली, हैदराबाद, गुवाहाटी, शिलांग, मैसूर, दीमापुर, भुवनेश्वर तथा अहमदाबाद में हैं।

संस्था के प्रमुख उद्देश्य

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 351 के अनुपालन में अखिल भारतीय भाषा के रूप में हिंदी का विकास करते हुए इसके विकास और प्रसार की दृष्टि से उपयोगी शैक्षणिक पाठ्यक्रमों की प्रस्तुति एवं संचालन ■ विभिन्न स्तरों पर गुणवत्तापूर्ण हिंदी-शिक्षण का प्रसार, हिंदी-शिक्षकों का प्रशिक्षण, हिंदीभाषा और साहित्य के उच्चतर अध्ययन का प्रबंधन, हिंदी के साथ विभिन्न भाषाओं के तुलनात्मक भाषावैज्ञानिक अध्ययन को प्रोत्साहन और हिंदीभाषा एवं शिक्षण से जुड़े विविध अनुसंधान कार्यों का आयोजन ■ अपने विभिन्न पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत विद्यार्थियों के लिए परीक्षा-आयोजन तथा उपाधि-वितरण ■ संस्थान की प्रकृति एवं उद्देश्यों के अनुरूप उन अन्य संस्थाओं के साथ जुड़ना या सदस्यता ग्रहण करना या सहयोग करना या सम्मिलित होना, जिनके उद्देश्यों से मिलते-जुलते हों और इन समान उद्देश्यों वाले संस्थानों को संबद्धता प्रदान करना ■ समय-समय पर नियमानुसार अध्येतावृत्ति (फैलोशिप), छात्रवृत्ति और पुरस्कार, सम्मान पदक की स्थापना कर हिंदी से संबंधित कार्यों को प्रोत्साहन आदि।

संस्थान के कार्य

शिक्षणपरक कार्यक्रम :

(1) विदेशी विद्यार्थियों के लिए हिंदी-शिक्षण, (2) हिंदीतर राज्यों के विद्यार्थियों के लिए अध्यापक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम, (3) नवीकरण एवं संवर्द्धनात्मक कार्यक्रम, (4) दूरस्थ शिक्षण कार्यक्रम (स्ववित्तपोषित), (5) जनसंचार एवं पत्रकारिता, अनुवाद अध्ययन और अनुप्रयुक्त हिंदी भाषाविज्ञान के सांध्यकालीन पाठ्यक्रम (स्ववित्तपोषित)

अनुसंधनपरक कार्यक्रम :

(1) हिंदी-शिक्षण की अधुनातन प्रविधियों के विकास के लिए शोध, (2) हिंदीभाषा और अन्य भारतीय भाषाओं का तुलनात्मक व्यतिरेकी अध्ययन, (3) हिंदीभाषा और साहित्य के क्षेत्र में आधारभूत एवं अनुप्रयुक्त अनुसंधान, (4) हिंदीभाषा के आधुनिकीकरण और भाषा प्रौद्योगिकी के विकास के उद्देश्य से अनुसंधान, (5) हिंदी का समाजभाषावैज्ञानिक सर्वेक्षण और अध्ययन, (6) प्रयोजनमूलक हिंदी से संबंधित शोधकार्य। अनुसंधानपरक कार्यों के दौरान द्वितीय भाषा एवं विदेशी भाषा के रूप में हिंदी-शिक्षण के लिए उपयोगी शिक्षण-सामग्री का निर्माण।

शिक्षण-सामग्री निर्माण और भाषा-विकास :

(1) हिंदीतर राज्यों और जनजाति क्षेत्र के विद्यालयों के लिए हिंदी-शिक्षण सामग्री निर्माण, (2) हिंदीतर राज्यों के लिए हिंदी का व्यतिरेकी व्याकरण एवं द्विभाषी अध्येता कोशों का निर्माण, (3) विदेशी भाषा के रूप में हिंदी-शिक्षण पाठ्यपुस्तकों का निर्माण, (4) कंप्यूटर साधित हिंदीभाषा शिक्षण सामग्री का निर्माण, (5) दृश्य-श्रव्य माध्यमों से हिंदी शिक्षण-संबंधी पाठ्यसामग्री का निर्माण, (6) हिंदी तथा हिंदीतर भारतीय भाषाओं के द्विभाषी/ त्रिभाषी शब्दकोशों का निर्माण।

संस्थान के प्रकाशन :

हिंदीभाषा एवं साहित्य, भाषाविज्ञान, अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान, तुलनात्मक एवं व्यतिरेकी अध्ययन, भाषा एवं साहित्य शिक्षण, कोशविज्ञान आदि से संबद्ध विभिन्न विषयों पर उपयोगी पुस्तकों का प्रकाशन। अब तक 150 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित। विभिन्न स्तरों एवं अनेक प्रयोजनों की पाठ्यपुस्तकों, सहायक सामग्री तथा अध्यापक निर्देशिकाओं का प्रकाशन। त्रैमासिक पत्रिका–'गवेषणा', 'मीडिया', और 'समन्वय पूर्वोत्तर' का प्रकाशन।

पुस्तकालय :

भाषाविज्ञान, अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान, भाषाशिक्षण और हिंदी साहित्य के विभिन्न विषयों की पुस्तकों के विशेषीकृत संग्रह की दृष्टि से हिंदी के सर्वश्रेष्ठ पुस्तकालयों में से एक। लगभग एक लाख पुस्तकें। लगभग 75 पत्र-पत्रिकाएँ (शोधपरक एवं अन्य)

संस्थान से संबद्ध प्रशिक्षण महाविद्यालय :

हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण के स्तर को समुन्नत करने तथा पाठ्यक्रम में एकरूपता लाने के उद्देश्य से उत्तर गुवाहाटी (असम), आइजोल (मिजोरम), मैसूर (कर्नाटक), दीमापुर (नागालैंड) के राजकीय हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण महाविद्यालयों को संस्थान से संबद्ध किया गया है।

योजनाएँ :

भारतीय सांस्कृतिक केंद्र, कोलंबो में सिंहली विद्यार्थियों के लिए केंद्रीय हिंदी संस्थान के पाठ्यक्रम की 2007-08 से शुरुआत, ■ अफगानिस्तान के नान्गरहर विश्वविद्यालय (जलालाबाद) में संस्थान द्वारा निर्मित बी॰ए॰ का पाठ्यक्रम 2007-08 से प्रारंभ, ■ विश्व के कई अन्य देशों (चेक, स्लोवानिया, यू॰एस॰ए॰, यू॰के॰, मॉरिशस, बेल्जियम, रूस आदि) के साथ शैक्षणिक सहयोग और हिंदी पाठ्यक्रम संचालन के संबंध में संवाद जारी ■ हिंदी के बहुआयामी संवर्धन के लिए हिंदी कॉर्पोरा परियोजना, हिंदी लोक शब्दकोश परियोजना, भाषा-साहित्य सीडी निर्माण परियोजना, पूर्वोत्तर लोकसाहित्य परियोजना तथा लघु हिंदी विश्वकोश परियोजना पर कार्य।

डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका
उपाध्यक्ष, कें॰हिं॰शि॰मं॰
kkgoyanka@gmail.com

प्रो॰ नंदकिशोर पांडेय
निदेशक
nkpandey65@gmail.com

 ISSN 0975-735X